हिंदी काव्य-धारा

[हमारे मध्यकालीन कवियोंने अपना नाता सिर्फ संस्कृतके कवियोंसे जोड़े रक्खा जिससे हिंदी साहित्यके ऐतिहासिक विकासकी यह महत्त्वपूर्ण कड़ी काव्य-परंपरामेंसे टूटकर अलग जा पड़ी······ बीचकी पाँच सदियोंके अपभ्रंश-काव्योंका थोड़ा-सा भी अनुशीलन हमें लाभ ही पहुँचायेगा······यह न केवल हिंदीकी ही, बल्कि बंगला-गुजराती-मराठी-सिंधी-उड़िया-पंजाबी-राजस्थानी-मगही-मैथिली-भोजपुरी आदि भाषाओंकी संमिलित निधि है, सिद्ध-सामंत-युगीन जन-साहित्यकी अवहेलना हमारे लिए परम हानिकर होगी।]

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल

इलाहाबाद

प्रकाशक
किताब महल
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९४५

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

अवतरणिका

इस संग्रहमें कवियोंकी अधिकसे अधिक कविताओंके देनेका निश्चय किया गया; ऐसी अवस्थामें एक-एक कविकी अलग-अलग आलोचना संभव नहीं। इसीलिए हमने एक-एक काव्य-युगके समझनेके लिये उसकी पृष्ठ-भूमि दे देने पर ही सन्तोष किया है।

सबसे पहले सवाल आता है इस युग—सिद्ध-सामन्त-युग—के कवियोंकी भाषाके बारेमें।

१. कवियोंकी भाषा

हमारे इस युग (७६०-१३०० ई०)की भाषा और आजकी भाषामें काफी अन्तर है, यह हम मानते हैं; तो भी हम बतलायेंगे, कि मूलतः वह भाषा और आजकी भाषा एक है। इस युगमें भी सरहपा (७६० ई०) और राजशेखर-सूरि (१३०० ई०)के बीचकी पाँच सदियोंमें भाषा अचल नहीं बनी रही। वस्तुतः दुनियामें कोई चीज़ अचल रह ही नहीं सकती। वहाँ यदि कोई अचल है, तो यही परिवर्त्तनका नियम। पीढ़ीके बाद पीढ़ी आती गई और भाषा भी उसके साथ बदलती गई। यदि हम सत्तर बरसकी दादीकी भाषाको ही देखें, तो उससे पोतीकी भाषामें परिवर्त्तन साफ़ दीख पड़ेगा। बोल-चालकी भाषाको तो छोड़िये, लेखबद्ध भाषा—जिसे छप जानेसे हम बाज़ वक़्त अचल समझनेकी ग़लती करते हैं—में भी परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है; इसे हम भारतेन्दु और राजा लक्ष्मणसिंहकी भाषासे १९५४ की भाषाकी तुलना करके आसानीसे देख सकते हैं। यदि आधी शताब्दीमें इतना अन्तर हो सकता है, तो सरहपा और राजशेखरके बीचकी पाँच शताब्दियोंने भाषामें काफ़ी अन्तर डाला है, यह आश्चर्यकी बात नहीं है।

पाँच शताब्दियोंमें कितना अन्तर हुआ, इसे हम आसानीसे समझ सकते; यदि कवियोंके हाथके लिखे या उनके समकालीन ग्रन्थ हमारे पास होते। मुश्किल यह है, कि हमारे पास जो हस्तलिखित प्रतियाँ पहुँची हैं, वह कई-कई शताब्दियों बाद लिखी गई थीं। यह भाषा संस्कृतकी तरह व्याकरण द्वारा दृढ़बद्ध कोई मृत-भाषा नहीं थी। इन हस्तलिखित प्रतियोंके लिखनेवाले काव्योंके समझने

और रसास्वादनके लिये लिखते-लिखवाते थे; और जब किसी शब्दके पुराने रूपको कुछ अपरिचित-सा हुआ देखते, तो उसे नवीन रूपमें लिख डालते। इस तरह हस्तलिखित प्रतियोंमें कवि-कालीन भाषासे परिवर्त्तन हो गया। फिर वे प्रतियां यदि किसी "नीम-हकीम खतरा-जान" सम्पादकके हाथमें पड़ गईं, तो क्या गति बनी, इसे मुनि जिनविजय जीके शब्दोंमें कहें तो—"जो कोई एवी जूनी कृति परिमाणमां वधारे लोक-प्रिय बनी होय, तेवी भाषा रचनामां जुदा जुदा जमानाना अनेक जातनां रूपो अने पाठ-भेदो उमेराई ते वधारे अनवस्थित रूप धारण करे छे। अने साथे कोई भाषा-तत्वानभिज्ञ संशोधक साक्षरने हाथे जो तेना जीर्ण-देहनूं कायाकल्प थई जाय, तो तद्दन नूतन रूप प्राप्त करी ले वे।"

"आवी जूनी कृतिओंनूं मूल-स्वरूप मेलववा माटे अधिक संख्यामां अने जेम बने तेम वधारे जूनी लखेली प्रतिओं मेलववी जोइये, अने तेमना सूक्ष्म अवलोकन अने पृथक्करणना आधारे पाठ-विचारणा थवी जोइये। आ पद्धतिए कार्य करवाथीज आवी प्राचीन कृतिओंनों आदर्शभूत पाठोद्धार थई शके, अने कर्त्तानी शुद्ध-भाषानो परिचय मली सके।"

यह तो हस्त-लिखित प्रतियोंके संपादनमें कितनी सावधानीकी जरूरत है, यह बात हुई।

इस संग्रहमें इन पुराने कवियोंकी कविताओंके जो नमूने दिये गये हैं, उनको एक बार देखते ही पाठक समझनेमें असमर्थ हो कह पड़ेंगे, कि यह तो हिन्दी-भाषा है ही नहीं। इसीलिए यहाँ यह बतलानेकी आवश्यकता है, कि वह उससे भी कहीं अधिक हिन्दी-भाषा है, जितनी कि आजकी मालवी, मारवाड़ी, मल्ली (भोजपुरी) और मैथिली। आपको जो दिक्कत हो रही है, वह दादी (पाली)की इस प्रतिज्ञा हीके कारण, कि उनके पास कोई शुद्ध संस्कृत—तत्सम—शब्द फटक नहीं सकता।

दादीकी इस प्रतिज्ञाको चाहे बुढ़भस कह लीजिए, उनके यहाँ गजको गय बोला जायगा; लेकिन गजेन्द्रकी जगह गयंद तो अब भी आप सुनते हैं; मृगांक (चंद्र)के स्थान पर मयंक अब भी प्रयुक्त होता है। इस भाषाके सम-

भनेमें जो दिक्कत होती है, वह इसी संस्कृत-रूपके पूरे बायकाट और एकमात्र तद्भव—अपभ्रंश—रूपके प्रचार हीके कारण।

आप जैसे ही तद्भव "मयंक" को तत्सम (मृगांक) रूप देनेकी कुंजी पा जायेंगे, वैसे ही यह भाषा आपके लिए उतनी ही आसान हो जायेगी जितनी सूर और तुलसीकी। आपके लिए यह काम हमने आमने-सामनेके पृष्ठोंपर तद्भव (मूल)-भाषा और तत्सम-भाषा (छाया) देकर कर दिया है। आप अपने किसी मित्रको सामनेका पृष्ठ पढ़नेके लिए कह कर यदि मूलभाषाकी पंक्तियोंको देखते जायें तो खुद समझने लग जायेंगे कि यह भाषा संस्कृत-प्राकृत नहीं, हिन्दी है।

आपने सुन रक्खा होगा, कि इस भाषाको अपभ्रंश कहते हैं, शायद इससे आप समझने लगे होंगे, कि तब तो यह हिन्दीसे जरूर अलग भाषा होगी। लेकिन नाम पर न जाइये, इसका दूसरा नाम "देशी" भाषा भी है। अपभ्रंश इसे इसलिए कहते हैं, कि इसमें संस्कृत शब्दोंके रूप भ्रष्ट नहीं, अपभ्रष्ट—बहुत ही भ्रष्ट—हैं, इसलिए संस्कृत-पंडितोंको ये जाति-भ्रष्ट शब्द बुरे लगते होंगे। लेकिन शब्दोंका रूप बदलते-बदलते नया रूप लेना—अपभ्रष्ट होना—दूषण नहीं भूषण है; इससे शब्दोंके उच्चारणमें ही नहीं अर्थमें भी अधिक कोमलता, अधिक मार्मिकता आती है। "माता" संस्कृत शब्द है, उसका "मातु", "माई", और "माबो" तक पहुँच जाना अधिक मधुर बननेके लिए था। खेद है यहाँ भी कितने ही "नीम-हकीमों" ने शुद्ध संस्कृत "माता" को ही नहीं लिया, बल्कि उसमें "जी" लगाकर "माताजी" बना उसके ऐतिहासिक माधुर्य्यको ही नष्ट कर डाला। अस्तु, यह निश्चित है कि अपभ्रंश होना दूषण नहीं भूषण था।

कवियोंकी भाषा पर विचार करते हुए हम तत्कालीन साधारण बोलचाल-की भाषापर चले गए, लेकिन हमें फिर सिर्फ साहित्यिक भाषापर विचार करना है। पाँच सदियोंके जिन कवियोंकी कृतियोंका हमने यहाँ संग्रह किया है, वह दो चार जिलेके बराबर किसी छोटेसे प्रदेशके रहनेवाले नहीं थे। जहाँ सरहपा और शबरपा बिहार-बंगालके निवासी थे, वहां अब्दुर्रहमानका जन्म मुल्तान-में हुआ था। स्वयंभू और कनकामर शायद अवधी और बुन्देली, क्षेत्र—युक्त

प्रान्त—के थे, तो हेमचंद्र और सोमप्रभ गुजरातके। और रसिक तथा आश्रयदाता होनेके कारण मान्यखेट (मालखेड) (निजाम हैदराबाद)का भी इस साहित्यके सृजनमें हाथ रहा है।

इस प्रकार हिमालयसे गोदावरी और सिंधसे ब्रह्मपुत्र तकने इस साहित्य-के निर्माणमें हाथ बँटाया है। यह भाषा संस्कृतकी तरह ही मृतभाषा नहीं थी, यह हम कह आये हैं। साहित्यकी भाषा भी कोई मूल बोलचालवाली भाषा होनी चाहिए, और वह भाषा जरूर एक परिमित क्षेत्रकी मातृभाषा हो सकती है। स्वयंभूकी भाषाकी क्रियाओं और कितने ही कुंजीके शब्दोंको देखनेसे वह अवधीके सबसे नजदीक मालूम होती है। यद्यपि ऐसा कहनेसे बहुत दिनोंसे चली आई इस धारणाके हम खिलाफ जा रहे हैं, कि अपभ्रंश साहित्य सौरसेनी और महाराष्ट्री अपभ्रंशों हीमें लिखा गया। लेकिन, जो सामग्री हमारे सामने मौजूद है, वह हमें वही कहनेके लिए मजबूर करती है। हाँ, इसका यह मतलब नहीं कि और भाषाओंके विशेष शब्द उसमें नहीं हैं। 'चंगा' ("अच्छा") शब्द का बहुत अधिक प्रचार अब पंजाबी और मराठीमें ही रह गया है, लेकिन हमारे सामने जो भाषा है, उसमें इसका खूब प्रयोग हुआ है। "थाक" (रहना) जिस अर्थ में यहां प्रयुक्त हुआ है, वह अब बंगलामें ही मिलता है। 'मेल्ही' (छोड़ना) अब राजपूतानामें ही बोली जाती है। 'ढूक' (देखना) अब सिर्फ बुन्देली और ब्रजभाषामें देखनेको मिलता है, और 'एवड़ा' (इतना) 'तेवड़ा' गढ़वाली और मराठीमें। अछे (हैं) 'छे' के रूपमें बंगला, मैथिली, गोरखा, मेवाड़ी और गुजरातीमें सुननेको मिलता है। इसलिए हम स्वयंभू जैसे कवियोंकी भाषाको जब पुरानी अवधी या कोसली कहते हैं, तो उसका यह मतलब नहीं, कि दूसरी प्रान्तीय भाषाओंसे उसका कोई संबंध नहीं था। वस्तुतः उस वक्त उत्तर-भारत की सारी भाषायें एक दूसरेके बहुत नजदीक थीं। प्रान्तीय भाषायें उस वक्त काफी थीं। "प्राकृत-चंद्रिका"में उनकी एक मोटीसी गणनाकी गई है, जो इस प्रकार है—

आचडी	कैकेयी
लाटी	गौडी

वैदर्भी	औड्री (उड़िया)
नागरी	सैंहली
बर्बरी	गुर्जरी
आवन्ती (मालवी)	आभीरी
पांचाली	मध्यप्रदेशी, आदि
टक्की	

मार्कण्डेयने "प्राकृत सर्वस्व"में जिन अपभ्रंशोंको गिनाया है, उनमेंसे कुछ हैं—

पांचाली (कन्नौज-बरेली)	सैंहली
वैदर्भी (बरारी)	आभीरी
लाटी (दक्षिण-गुजराती)	मध्यदेशीया
औड्री	गुर्जरी
कैकेयी	पाश्चात्या (पछैयाँ)
गौड़ी	

"कुवलय-माला"ने भी कितने ही नाम दिये हैं—

गोल्ली (गौड़ी)	लाटी
मध्यदेशीया	मालवी
मागधी	कोसली
अन्तर्वेदी	महाराष्ट्री
कीरी	
टक्की	
सिंधी	
मरुदेशी	
गुर्जरी	

इस प्रकार हिमालय-गोदावरी और सिन्ध-ब्रह्मपुत्रके बीच यद्यपि बहुतसी बोल-चालकी भाषायें थीं, मगर उनके साथ सबकी एक सम्मिलित भाषा भी थी।

बोलचालकी भाषाओंमें लिखित साहित्य था या नहीं, इसके बारेमें अभी

कुछ कहा नहीं जा सकता। सम्भव है, इन कविताओंको जिस रूपमें हम पेश कर रहे हैं, उसमें बहुत कुछ शताब्दियोंके लेखकों, पाठकोंका हाथ हो।

मूल-रूप में कितने ही कवियों——खास कर सिद्धों——ने अपनी कवितायें अपनी ही मातृभाषामें की होंगी।

ऊपरके कथनसे मालूम होता है, कि हमारे यहाँ सांस्कृतिक और साहित्यिक, राजनीतिक और व्यापारिक प्रयोजनके लिए एक भाषाकी आवश्यकताको बहुत पहिलेसे माना जाता रहा है। इसीलिए आज हिन्दीके राष्ट्रभाषाका सवाल कोई नई चीज़ नहीं है।

फिर भी सवाल दुहराया जायेगा, कि हमारे इन कवियोंकी भाषा हिन्दी नहीं, बल्कि संस्कृत-प्राकृतकी तरह कोई बिल्कुल ही अलग भाषा है। "अपभ्रंश" नाम सुनते-सुनते इस ग़लत धारणाके शिकार हम जरूर हो चुके हैं; मगर बात ऐसी नहीं है। संस्कृत (छन्दस्), पाली और प्राकृत जितनी एक दूसरेके नजदीक हैं, अपभ्रंश उतनी नहीं है। पुरानी संस्कृत या छन्दस् (वैदिक)-भाषा १५०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक थोड़ा बदलते हुए बोली जानेवाली जीवित भाषा थी।

५०० ई० पू०में बुद्धके समय उसने मूल-पालीका रूप धारण कर लिया और आगे हल्केसे परिवर्त्तनके साथ वह पाँच शताब्दियों तक जारी रही। फिर ईसवी सनके साथ प्राकृतका आरंभ हुआ और वह छठीं सदी तक चलती रही। इन बीस सदियोंमें छन्दस्, पाली, प्राकृतके जो तीन छोटे-मोटे भाषा-स्वरूप हमें मिलते हैं, उनमें परस्पर भेद होते हुए भी बहुत कुछ समानता है। असमानता यही है कि संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणको आसान (बालभाषा) बनाकर पालीने तद्भव शब्दोंकी रचना शुरू की। संस्कृतके भारी-भरकम व्याकरण-कलेवरको कम करके उसने द्विवचन और कुछ प्रयोगोंके झंझटसे बोलनेवालोंको बचाया——बोलनेवालोंने खुद अपनेको बचाया, यही कहना अधिक उचित होगा। कितना बचाया यह इसीसे मालूम होगा कि जहाँ शुद्ध संस्कृत बोलनेके लिए छ हजारसे ऊपर सूत्र-वार्त्तिकोंको याद रखनेकी जरूरत है, वहाँ पालीमें वह काम आठ-नौ सौ सूत्रोंसे ही हो जाता है।

प्राकृतने शायद व्याकरणके नियमोंकी संख्याको और कम नहीं किया, लेकिन तद्भव या उच्चारणके सरलीकरणके कामको उसने और जोर-शोरसे किया। उस युगमें स्वर ही नहीं व्यंजनोंकी भी खैर नहीं थी, यदि वह शब्दके आरंभमें न रहे। तद्भव करनेमें पाली और प्राकृत एक-सी रहीं।

लेकिन, इतना होते हुए भी सुवन्त, तिङन्त या शब्द-रूप और धातु-रूपकी शैलीमें दोनों हीने संस्कृतका अनुसरण नहीं छोड़ा, इसीलिए पाली और प्राकृत-को संस्कृत रूप देनेमें बहुत थोड़े श्रमकी जरूरत होती है—तद्भवको तत्सम कर दीजिए, आवश्यकता होनेपर द्विवचन और आत्मनेपद कर दीजिए, बस उसी पुराने ढाँचेमें ही संस्कृत रूप तैयार हो गया।

और अपभ्रंश? यहाँ आकर भाषामें असाधारण परिवर्त्तन हो गया। उसका ढाँचा ही बिल्कुल बदल गया, उसने नये सुवन्तों, तिङन्तोंकी सृष्टि की, और ऐसी सृष्टि की है, जिससे वह हिन्दीसे अभिन्न हो गई है, और संस्कृत-पाली-प्राकृतसे अत्यन्त भिन्न।

'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ' ये शब्द बतलाते हैं कि अपभ्रंशका स्थान हिन्दीके पास होना चाहिए या संस्कृत-पाली-प्राकृतके पास। वस्तुतः संस्कृतसे पाली और प्राकृत तक भाषा-विकास क्रमिक या अविच्छिन्न-प्रवाह-युक्त हुआ, मगर आगे वह क्रमिक विकास नहीं, बल्कि विच्छिन्न-प्रवाह-युक्त विकास—जाति-परिवर्त्तन—हो गया। आज अपभ्रंशकी यह अवस्था है कि संस्कृत-प्राकृत-पाली जाननेवाले मद्रास, सिंहल, और कर्नाटकके पंडित इस जाति-परिवर्त्तनके कारण अपभ्रंशसे बात तक नहीं करना चाहते। यह ठीक भी है, क्योंकि उन्हें इसके लिए हिन्दीकी विभक्तियोंको सीखना पड़ेगा। वहाँ संस्कृत-ज्ञानके बल पर काम नहीं चलेगा। लेकिन दूसरी तरफ हिन्दी-भाषियोंका अपभ्रंशके प्रति क्या कर्त्तव्य है, इसे आप अपने दिलसे पूछ सकते हैं। "जिसके लिये किया वही कहे चोर" वाली कहावत है, बेचारी अपभ्रंश हमारे लिए मारी गई।

मगर तर्क कर देनेसे काम नहीं चलेगा, आखिर पढ़ने-समझनेमें आपकी दिक्कतका ख्याल करना ही होगा। लेकिन दिक्कत है सिर्फ तद्भव और तत्समके झगड़े की। संस्कृत (छान्दस्)की औरस पुत्री पालीने तत्सम (शुद्ध संस्कृत)

शब्दोंका बायकाट शुरू किया, प्राकृतने दादीकी जगह माँका साथ दिया। बेचारी प्राचीनतम हिन्दी (अपभ्रंश)ने दादी और माँके पल्लेको पकड़े रक्खा, लेकिन आगे चलकर उसके बोलनेवालोंने वास्तविक भाषा (क्रिया, विभक्ति)को तो रक्खा, मगर परदादी—संस्कृत—के शब्दोंके शुद्ध रूप (तत्सम)को खूब तत्परतासे उधार लेना शुरू किया। लोग जितनी मात्रामें तत्सम शब्दोंसे अधिक और अधिक परिचित होते गये, उसी मात्रामें तद्भव रूपोंको भूलते गये, जिसका परिणाम है, यह आजकी दिक्कत।

तत्सम या शुद्ध संस्कृत-शब्दोंका प्रयोग क्यों फिरसे होने लगा? अवतरणिका-का कलेवर इसके विवरणके लिए पर्याप्त तो नहीं हो सकता। अस्तु, हम देखते हैं, कि चौदहवीं सदीसे तत्सम शब्दोंका प्रयोग बढ़ने लगता है। व्रजभाषा तब भी इस बारेमें कुछ संयमसे काम लेती है, लेकिन तुलसी-बाबाको तो हम अपनी अवधीमें लुटिया ही डुबानेके लिये तैयार दीखते हैं। शायद, बाबाको अपने "मानस"पर विश्वनाथकी मुहर लगवानी थी। अच्छा, तत्समका प्रचार बढ़ा क्यों? तेरहवीं सदीके आरम्भमें इस्लाम-धर्मी तुर्कोंका झंडा उत्तरी भारत-में गड़ गया था। कहा जा सकता है, कि उनके एक सदीके प्रभुत्वकी प्रतिक्रिया भाषा-क्षेत्रमें तत्समके रूपमें आई। लेकिन यही पर्याप्त कारण नहीं मालूम होता। लंकामें तो तुर्कों या इस्लामकी ध्वजा कभी नहीं गड़ी, लेकिन वहाँ भी तत्समकी यह प्रवृत्ति गद्य—भाषामें क्यों हुई? सिंहली-पद्यमें १६३२ तक तत्समका प्रवेश निषिद्ध था। एक और बात भी—इस्लाम शासनकी प्रतिक्रिया-में ही यदि पंडितोंने संस्कृत शब्द-रूपोंको जोड़ना शुरू किया, तो उसका प्रभाव साहित्य और पठित जनता तक ही सीमित होना चाहिए था, लेकिन तत्सम-शब्दों-का प्रचार निरक्षर साधारण जनतामें बहुत दूर तक कैसे घुसा? गाँवका अपठित किसान भी अपने लड़केका नाम 'माहव' नहीं रखता, बल्कि तत्सम-रूप 'माधव'को ही स्वीकार करता है। 'कृष्ण' आदि नामोंको भी वह तद्भवके 'धरम', 'करम' नहीं संस्कृतके नजदीकसे उच्चारण करना चाहता है; 'धम्म', 'कम्म'की जगह कहता है। इसलिए तत्समकी प्रवृत्ति चन्द शिक्षित दिमागोंकी उपज-मात्र नहीं कही जा सकती। तत्सम या परदादीकी पुनः प्राण-प्रतिष्ठा—एक परिमित क्षेत्र

में—के बहुतसे कारण हैं, जिनमें एक कारण यह भी है—समाजके विकासके साथ-साथ उसके लिए शब्दोंकी आवश्यकता भी बढ़ती है। नये शब्द पुरानी धातुओंसे गढ़े जा सकते हैं, या विदेशसे उधार लिये जा सकते हैं। साथ ही कभी-कभी इतिहास-प्रवाहमें छूट गये शब्दोंको भी नया अर्थ दिया जा सकता है। ये छूटे शब्द तद्भव-रूपमें भी हो सकते हैं, और तत्सम-रूपमें भी। जान पड़ता है, जिस वक़्त शब्दोंकी माँग बहुत बढ़ गई थी, उस वक़्त कुछ तत्सम (संस्कृत)-शब्दोंको भी चलाया जाने लगा। नये अर्थोंमें नये शब्दोंका प्रयोग करनेके लिए साधारण लोग भी मजबूर थे और वह जैसे-तैसे संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणपर अधिकार प्राप्त करनेकी कोशिश करने लगे। जब इस तरह अनिवार्य कारणोंसे लोग कितने ही तत्सम शब्दोंको अपना चुके और उन्होंने उसके उच्चारण पर भी कुछ अधिकार प्राप्त किया, तो फिर पण्डितोंकी बन आई और उन्होंने संस्कृत-तत्सम-शब्दोंको खूब ठूँसना शुरू किया। हमने कहा था कि अपभ्रंश और आजकी हिन्दी (खड़ी, अवधी—व्रज लेते)में अन्तर इतना ही है, कि एकमें शुद्ध संस्कृत—तत्सम—शब्दोंका प्रयोग बिल्कुल वर्जित है, जब कि आजकी साहित्यिक भाषामें मुश्किलसे किसी तद्भव-शब्दका प्रयोग होता है। अपभ्रंशमें 'होई', 'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ', आदि तुलसी-रामायण-वाली भाषाके क्रियापदोंका प्रयोग होनेपर भी जब तद्भव-शब्दोंके कारण लोगोंको उसका समझना मुश्किल हो गया, तो स्वयंभू आदि महान् कवियोंकी कृतियोंका पठन-पाठन छूटने लगा, और धीरे-धीरे वह बिल्कुल विस्मृत हो गयीं। संस्कृत-पाली-प्राकृतसे अलग होने तथा हमारी अपनी भाषा होनेपर भी हमने एक तरह इन कवियोंको मार डालना चाहा। शायद, पहले-पहल इन कवियोंका जैन और बौद्ध होना भी इस उपेक्षाका कारण रहा हो, किन्तु आज शेक्सपियर और उमर ख़ैय्यामकी दिल खोलकर दाद देनेवाले हम लोगोंसे तो ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

यहाँ एक बातको हम और साफ़ कर देना चाहते हैं। हम जब इन पुराने कवियोंकी भाषाको हिन्दी कहते हैं, तो इसपर मराठी, उड़िया, बँगला, आसामी, गोरखा, पंजाबी, गुजराती-भाषा-भाषियोंको आपत्ति हो सकती है। लेकिन

हमारा यह अभिप्राय हरगिज़ नहीं है, कि यह पुरानी भाषा मराठी आदिकी अपनी साहित्यिक भाषा नहीं है। उन्हें भी उसे अपना कहनेका उतना ही अधिकार है, जितना हिन्दी-भाषा-भाषियोंको। वस्तुतः ये सारी आधुनिक भाषायें बारहवीं-तेरहवीं शताब्दीमें अपभ्रंशसे अलग होती दीख पड़ती हैं। जिस समय (आठवीं सदीमें) अपभ्रंशका साहित्य पहले-पहल तैयार होने लगा था, उस वक़्त बँगला आदि उससे अलग अस्तित्व नहीं रखती थीं। उनके आजके क्षेत्रमें शायद मराठी और उड़ियाकी भूमिमें आख़िरी लड़ाई ख़तम हो चुकी थी, और यह दोनों भाषायें अपने यहाँ पहलेसे चली आई किसी द्राविड़ी भाषाकी चिता शान्त करनेमें लगी थी। गुजरातने तो हमें कई कवि दिये हैं, उनकी कविताओंका आस्वादन आप इस संग्रहमें करेंगे। वस्तुतः, यह सिद्ध-सामंत-युगीन कवियोंकी उपरोक्त सारी भाषाओंकी सम्मिलित निधि है।

सम्मिलित निधि है, अर्थात् बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक द्राविड़-भाषा-भाषी आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्णाटकको छोड़कर भारतके सभी प्रान्तोंकी एक सम्मिलित भाषा भी थी। यहाँ कोई-कोई अखण्ड हिन्दी-वादी या एक भाषा-वादी पाठक कह उठेंगे—तब तो अब भी क्यों न अ-द्राविड़ीय प्रान्तोंकी एक भाषा कर दी जाये। लेकिन, यह करना वैसा ही होगा, जैसे वयस्क स्वतन्त्र पोते-पोतियों-को फिर दादीके गर्भमें पहुँचानेकी कोशिश करना। गुजरात यद्यपि तेरहवीं शताब्दी तक आजके हिन्दी-क्षेत्रका अभिन्न अंग रहा है, आज भी होली-दिवाली, नाच-गाने और दूसरी सैकड़ों बातोंमें गुजरात हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंसे एकता रखता है, लेकिन आज उसके साहित्य और कितनी ही दूसरी सांस्कृतिक बातोंने गुजरातको एक स्वतन्त्र राष्ट्रका रूप दिया है, फिर हम क्या उससे वैसी अखंडता-की माँग कर सकते हैं।

अपभ्रंशके कवियोंको बिस्मरण करना हमारे लिये हानिकी वस्तु है। यही कवि हिन्दी-काव्य-धाराके प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भास, कालिदास और बाणकी सिर्फ़ जूठी पत्तलें नहीं चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्र-की तरह हमारे काव्य-क्षेत्रमें नया सृजन किया है; नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये, यह स्वयंभू आदिकी कविताओंसे अच्छी तरहसे मालूम हो जायेगा।

नये-नये छन्दोंकी सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कृतित्व है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई सौ ऐसे नये-नये छन्दोंकी उन्होंने सृष्टि की, जिन्हें हिन्दी कवियोंने बराबर अपनाया है, यद्यपि सबको नहीं। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसीके ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं। उन्हें छोड़ देनेसे बीचके कालमें हमारी बहुत हानि हुई और आज भी उसकी संभावना है।

हमारे मध्यकालीन कवियोंने अपभ्रंशके कवियोंको भुला दिया और वह प्रेरणा लेने लगे सिर्फ़ संस्कृतके कवियोंसे। स्वयंभू आदि कवि अपनी पाँच शताब्दियोंमें सिर्फ़ घास नहीं छीलते रहे, उन्होंने काव्य-निधिको और समृद्ध, भाषाको और परिपुष्ट करनेका जो महान् काम किया है, हमारे साहित्यको उनकी जो ऐतिहासिक देन है, उसे भुला कर, कड़ीको छोड़कर सीधे संस्कृतके कवियोंसे सम्बन्ध स्थापित करना हमारे साहित्य और हिन्दी-भाषा दोनोंके लिए हानिकर सिद्ध हुआ है। हम संस्कृत कवियोंसे सम्बन्ध जोड़नेके विरोधी नहीं हैं, लेकिन हमें इस बीचकी कड़ी—जो हमारी अपनी ही कड़ी है—को लेते संस्कृतके प्राचीन कवियोंके साथ सम्बन्ध जोड़ना होगा; तभी हम ऐतिहासिक विकाससे पूरा लाभ उठा सकेंगे।

२. आर्थिक और सामाजिक अवस्था

१—सम्पत्ति और उसके भोक्ता

सिद्ध-सामन्त-युगकी कविताओंकी सृष्टि आकाशमें नहीं हुई। वे हमारे देशकी ठोस धरतीकी उपज हैं। कवियोंने जो ख़ास-ख़ास शैली-भावको लेकर कवितायें कीं, वह देशकी तत्कालीन परिस्थितिके कारण ही। यह बात तब तक साफ़ नहीं होगी, जब तक तत्कालीन भारतकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अवस्थाओंकी पृष्ठ-भूमिमें हम उसे नहीं देखते। पहले हम उस काल—अथवा आठवींसे बारहवीं सदीकी पाँच सदियों—की आर्थिक अवस्थापर विचार करते हैं। उस समय भारत बहुत सम्पन्न था। अकेला रोम अपने यहाँसे हर साल ढाई लाख तोला सोना या साढ़े पाँच लाख सेस्तर्स

(पौने दो करोड़ रुपये) कपड़े और दूसरी चीज़ोंको खरीदनेके लिए भारत भेजा करता था। प्लीनी (२३-७९ ई०)ने बड़े क्षोभसे लिखा था—"हमें अपनी विलासिता और अपनी स्त्रियोंके लिए कितनी क़ीमत चुकानी पड़ती है।" उन्नीसवीं सदीके आरम्भके अंग्रेज भी प्लीनीकी तरह भारतीय कपड़ों और मसालोंके लिए देशसे धन खिचते देख चिन्तित थे; यद्यपि वह दूसरी ओर भारतको दूह भी रहे थे। भारत उन पाँच शताब्दियोंमें शिल्प-व्यवसाय और वाणिज्यमें दुनियाका सबसे समृद्ध देश था। अरब, पश्चिमी-एशिया, उत्तरी अफ़रीका और यूरोपसे अपार धन-राशि खिच-खिचकर हमारे देशमें चली आ रही थी। शिल्प और व्यापार ही नहीं, कृषि भी उन पाँच शताब्दियोंमें हमारे देशमें बहुत उन्नत-अवस्थामें थी। नदियों और जलाशयों द्वारा सिंचाईके प्रबन्धकी प्रथम जिम्मेदारी राज्यके ऊपर थी, इसे पाश्चात्य लेखकोंने भी माना है। इसका यह मतलब नहीं कि हमारी कृषि साइन्स-युगकी कृषिके समान उन्नत थी। उस वक़्त दुनियाको आधुनिक भौतिक साइन्सका पता ही नहीं था और जो कुछ कृषि-विज्ञान सभ्य-संसारको ज्ञात था, भारत भी उसमें किसीसे पीछे नहीं था।

उस समयकी भारतीय समृद्धिकी बात सुनकर आप शायद सतयुगका ख्वाब देखने लगेंगे, और कह उठेंगे—"वह वस्तुतः राम-राज्य था।" लेकिन यह कहना बहुत ग़लत होगा। चीन, जावा, अफ़्रिका, यूरोपसे जो माया भारतमें आ रही थी उसको भोगनेवाली सारी भारतीय जनता नहीं थी। कौन भोगनेवाले थे, आइये इसे देखें।

(१) **राजा-सामन्त**—इस सम्पत्तिके सबसे अधिक भागको सामन्त-राजा अपनी मौज और आरामके लिए कितना खर्च किया करते थे, इसकी वहाँ कोई सीमा नहीं थी। आजकी कितनी ही देशी रियासतोंकी तरह सारा राजकोष ही उनका वैयक्तिक कोष नहीं था, बल्कि व्यापारियों और सेठोंके खजानोंमें भी जो कुछ था, उसे खर्च कर डालनेमें उनका हाथ पकड़नेवाला कोई नहीं था। जिन्होंने हालके वाजिदअली शाह तथा दूसरे विलासी शासकोंके भोग-विलासके बारेमें पढ़ा है, वह आसानीसे समझ सकते हैं कि उस कालके क़न्नौज, मान्य-

खेट और पटनाके राजमहलोंमें विलासी भोजन, शौक़ीनीके वस्त्र, सुगंधित द्रव्य-पर कितना खर्च होता रहा होगा। प्रजाकी मेहनतकी कमाईसे उपार्जित यह महार्घ वस्तुएँ चार-पाँच दिनमें ही खतम हो जानेवाली थीं। इनके अतिरिक्त भी सामन्तोंके भारी खर्च थे।—नये-नये महल, क्रीड़ा-उपवन, सिंहासन, राज-पलंग, मोरछल, चमर और लाखोंके हीरा-मोती-महार्घ-रत्नोंके आभूषण, राज-महलोंकी सजावट, चित्र-कला, क्रीड़ामृग, सोनेके पींजड़ोंमें बन्द शुक-सारिका, लोहेके पींजड़ोंमें बन्द केसरी। दूर-दूर देशोंसे लाई कितनी ही दुर्लभ महार्घ-वस्तुओंके संचयमें भी देशकी सम्पत्तिका भारी भाग खर्च होता था।

फिर सामन्त या राजा अकेले ही उस सम्पत्तिको स्वाहा नहीं करते थे। उस समयके राजाओंके आदर्श थे—कृष्ण और दशरथ तथा उनकी सोलह-सोलह हजार रानियाँ। ये रानियाँ मोटा-झोंटा कपड़ा पहन, रूखा-सूखा खाकर दिन काटनेके लिए रनिवासमें नहीं रखी जाती थीं। इन हजारों रानियों और उसीके अनुसार उनके पुत्रों-पुत्रियों, बहुओं-दामादोंका खर्च भी देशकी उसी सम्पत्तिके मत्थे था। राजवंशके अतिरिक्त कितने ही राज-च्युत भगोड़े राजवंशी भी प्रजाकी गाढ़ी कमाईमें आग लगानेके अधिकारी थे। उस वक़्त राजवंशोंका उच्छेद अक्सर होता रहता था, फिर वे अपने सम्बन्धियोंके पास क़न्नौजसे सिंहल तकका चक्कर काटते रहते थे।

इनके अतिरिक्त राज-दरबारोंमें कलाकार, कवि, संगीतज्ञ, चित्रकार, मूर्त्तिकार ही नहीं, बहुत काफ़ी संख्या विदूषकों, चापलूसों, मसखरों आदिकी भी होती थी।

इन अमीरोंकी सेवाका काम सिर्फ़ वेतन-भोगी चाकर-चाकरानियोंसे नहीं चलता था, उनकी सेवाके लिए काफ़ी संख्या दास-दासियोंकी होती थी। इसके बाद शिकार या किसी दूसरे मनोविनोदके लिए जिधर भी उनकी सवारी जाती, उधरके किसान, कमकर और कारीगर अपने धन-उत्पादनके कामको छोड़ बेगारमें पकड़े जानेके लिए मजबूर होते।

(२) **पुरोहित, महंथ**—राजा अपने और अपने लग्गू-भग्गुओंपर कितनी सम्पत्ति स्वाहा करते थे, इसका थोड़ा-सा अन्दाजा ऊपरके वर्णनसे लग गया

होगा। लेकिन समृद्ध भारतकी सम्पत्तिके अपव्ययका लेखा इतने हीसे समाप्त नहीं होता। पुरोहित और महंथ लोगोंका भी खर्च राजसी ठाटके साथ होता था। उनके पास भी महल, दास, कमकर थे और उसीके अनुकूल उनका खर्च भी था। उस समय धार्मिक मठों और मन्दिरोंमें देशकी सम्पत्तिको खर्च करनेमें बहुत उदारता दिखलाई जाती थी।

सातवीं सदीमें नालन्दाके ताराके सोना, रतन, जवाहिरसे भरे जिस मंदिर-का ज़िक्र विदेशी तीर्थ-यात्रियोंने किया है, उसमें बारहवीं सदीके अंत तक बराबर वृद्धि ही होती गई और मुहम्मद बिन-बख़्तियारको जितना धन वहाँसे मिला उतना किसी राजमहलसे भी नहीं मिला होगा। राजवंशोंका हर सौ-दो सौ सालमें उच्छेद भी हो जाया करता था, लेकिन ये मंदिर तो चिरकाल तक सुरक्षित निधि बने रहते थे। महमूद राजपूतानेके रेगिस्तानोंकी खाक छानते सोमनाथमें पत्थर तोड़ने नहीं गया था। यह निश्चित है कि देशकी सम्पत्तिका काफ़ी भाग ब्राह्मण, जैन, बौद्ध मठों-मन्दिरोंमें जाता था।

(३) **सेठ**—इसके बाद देशकी सम्पत्तिके भारी हिस्सेके मालिक थे, वह श्रेष्ठी-सार्थवाह (कारवाँ-अध्यक्ष) जिनकी कोठियोंका जाल देशके भीतर ही नहीं, विदेशों तकमें बिछा हुआ था, और जिनके जहाज उस समयकी सभ्य दुनियामें सभी जगह पहुँचते थे। इन महासेठों, नगरसेठोंके पास कितनी सम्पत्ति थी, इसका कुछ अनुमान देलवाड़ा (आबू)के संगमर्मरके मन्दिर और उसके बहुमूल्य शिल्पकार्यको देखकर आप आसानीसे लगा सकते हैं।

वस्तुतः तत्कालीन भारतकी अपार सम्पत्तिके मुख्य भोगनेवाले थे, यही सामन्त, पुरोहित और सेठ तथा उनके दरबारी-खुशामदी।

(४) **युद्धका अपव्यय**—अमीर लोग, संगीत साहित्य काम-कलापर ही देशकी सम्पत्तिको स्वाहा नहीं करते थे, बल्कि उनकी फ़ज़ूलखर्चीका एक और भी बहुत भारी क्षेत्र था, वह था युद्ध, दिग्विजय। किसी सामन्त (राजा)के लिए बड़े शर्मकी बात होती यदि वह छोटा-मोटा दिग्विजय न करता या कमसे कम किसी पड़ोसी राजाकी कुमारीको न पकड़ लाता। यह सामन्तयुगके यौवन-का समय था। सामन्तों और उनके योद्धाओंके हाथोंमें लड़नेके लिए खुजली

पैदा होती रहती थी। उस समयका सामन्त मृत्युकी बिल्कुल ही पर्वाह नहीं करता था। उसकी सारी शिक्षा-दीक्षा उसे यही सिखलाती थी कि मौतसे डरना—कायरता—उसके लिए चिल्लू भर पानीमें डूब मरनेकी चीज है। आज जिस महायुद्धसे हम गुजर रहे हैं, उसने हमें साफ़ दिखला दिया है कि युद्धमें कितना अधिक अपव्यय होता है—आदमीकी गाढ़ी कमाईमें कितनी बेदर्दीसे और कितने भारी परिमाणमें आग लगाई जाती है। सत्तर सैकड़ा किसान, कम्मी, कारीगर जनताके श्रमसे उपार्जित धनका बहुत भारी ध्वंस ये सामन्त अपने दिग्विजयों और आये दिनकी आपसी लड़ाइयोंमें किया करते थे।

साधारण जनता—लेकिन सम्पत्ति पैदा कौन करता था? ये तीनों नहीं, बल्कि वह थे, किसान, कमकर और कारीगर। मिट्टीका सोना बनाना उन्हींके श्रमका चमत्कार था। चाहे सुनहले गेहूँ और सुगंधित बासमतीको लीजिए, चाहे कमखाब और दुकूलको, अथवा गोलकुण्डासे निकलनेवाले कोहनूरको; ये सभी चीजें किसानों, कमकरों और कारीगरोंके शारीरिक खूनको सुखानेसे पैदा होती थीं। जिस तरह आजके राजाओं, नवाबों और करोड़पति सेठोंके वैभव-को देखकर सारा देश सुखी और समृद्ध नहीं कहा जा सकता, उसी तरह उस समयके राजा-पुरोहित-सेठ-वर्गके हृदयहीन अपव्ययके कारण सारे भारतको स्वर्ग नहीं कहा जा सकता। उस समय शायद सारी जनताका दस सैकड़ेसे अधिक भाग नहीं रहा होगा, जिसके जीवनको मौज-मस्ती और आरामका जीवन कहा जा सकता।

(१) **दास-दासी**—फिर वह भारत दासप्रथाका भारत था। यदि दस सैकड़ा मौजवाले लोगोंके लिए व्यक्ति पीछे दो-दो दास-दासी रखे जाते थे, तो भारत-की कुल जन-संख्याका बीस सैकड़ा या हर पाँच आदमीमें एक आदमी दास था। दास आदमी नहीं थे, यद्यपि उनकी शकल-सूरत आदमीकी तरह होती थी। वह ढोरोंकी तरह अपने मालिककी जंगम सम्पत्ति थे, जिन्हें मालिक जब चाहें बेंच-खरीद सकते थे। उनका जीवन बिल्कुल अपने मालिककी दयापर निर्भर था। अभी अंग्रेजोंके राज्य स्थापित हो जानेपर अठारहवीं सदीके बाद तक यह दास-प्रथा भारतमें बनी रही थी। अभी भी दरभंगा जिलेमें दासोंकी

बिक्रीके कितने ही ताल-पत्र आप देख सकते हैं। और नैपालके स्वतंत्र "हिन्दू-राज्य"में तो १९२५ ई० तक बाक़ायदा दास-प्रथा जारी रही। यह ठीक है, दास-प्रथाके लिए हम सिर्फ़ भारत हीको दोषी नहीं ठहरा सकते, उस समय दुनियाके सभी मुल्कोंमें दास-प्रथा मौजूद थी और बाज़ारोंमें गोरे, भूरे, काले सभी रंगोंके ये मानव-पशु मिलते थे।

(२) **किसान, कम्मी, कारीगर**—जनताके बीस सैकड़े भारतीय दास तत्कालीन भारतीय समृद्धिके भोगनेके अधिकारी नहीं थे। बाक़ी सत्तर सैकड़े लोग किसान, कम्मी (अर्द्धदास) और कारीगर थे।—दस सैकड़ा कम्मी, पचास सैकड़ा किसान और दस सैकड़ा कारीगर मौज़की ज़िन्दगी नहीं बिता रहे थे। स्वयंभू और पुष्पदन्तके खेत अगोरनेवालियोंके मोटे गन्ने और द्राक्षा-लताओंको देखकर आप यह समझनेकी ग़लती न करें, कि वह उन्हीं अगोरनेवालियोंके उपभोगके लिए थे। वहाँ सारा शिल्प, सारा व्यवसाय, सारी कृषि मुट्ठीभर आदमियोंके भोगके लिए होती थी। दूसरोंको तो मुश्किलसे सिर्फ़ जीने और ब्याने भरका अधिकार था।

(क) **जनताका आत्म-सम्मान**—बीस सैकड़ा दासोंपर तो, नर-पशु होने-की वजहसे विचार करनेकी जरूरत ही नहीं, लेकिन सत्तर सैकड़ा किसान-कम्मी-कारीगरकी अवस्था? आत्म-सम्मान? ऊपरी वर्गके सामने बिल्कुल शून्य "परम भट्टारक परमेश्वर महाराजाधिराज"के सामने सम्मान-प्रदर्शन करने-के लिए जब दूसरे राजाओं और सामन्तोंको अपने मुकुट उनके चरणोंपर रखने पड़ते थे, तो साधारण जनताको किस तरह जुहार करनी पड़ती होगी, इसे आप खुद समझ सकते हैं। और दूसरी बेबसियाँ? सत्तर सैकड़ा जनताको शरीरसे मजबूत अपने तरुण पुत्रोंको सामन्तोंके युद्धके लिए भेंट करना पड़ता था—हाँ, यदि उनकी जाति छोटी नहीं समझी जाती हो, छोटी जातिके तरुणको बड़ी जातिके साथ एक पंक्तिमें लड़कर मरनेका भी अधिकार नहीं था। सत्तर सैकड़ा जनताको अपनी सुन्दर लड़कियोंको वैध या अवैध रूपसे रनिवासमें भेजनेके लिए भी तैयार रहना पड़ता था। कितनी ही जगह तो नव-विवाहिता-की प्रथम रात भी सामन्तके लिए रिज़र्व थी, चाहे वह हाथसे छूकर ही छुट्टी

दे दे। उस वक़्त साधारण जनताके आत्म-सम्मानकी बात करना ही फ़ज़ूल है।

(ख) **अकाल आदिमें यातना**—उस वक़्त इस आर्थिक हीनताके साथ कुछ सुभीते जरूर थे। उस समय भारतकी आबादी आजसे चौथाई या (दस करोड़)से कम ही रही होगी, जिसका मतलब है—लोगोंके पास अधिक खेत, खेत बनानेके लिए अधिक जंगल, जंगलोंमें जरूरतके लिए अधिक शिकार। उस समय जैनोंके तीर्थंकरों और देवताओंको छोड़ बाक़ी सभी देवी-देवता—ब्राह्मण बौद्ध दोनों—घास-खोर नहीं थे। यह भी अच्छा था कि अमीरोंकी शौक़ीनीकी प्रायः सारी चीजें देशके भीतर तैयार होती थीं। सम्भव है कुछ रेशम और बारीक दुशाले या क़ालीन बाहरसे आते हों। अतएव इनके लिए देशका धन बाहर नहीं जाता था। लेकिन इतना होने पर भी अकाल, बाढ़, युद्ध और महामारीमें साधारण जनताको कीड़े-मकोड़ेकी तरह मरनेसे बचाया नहीं जा सकता था। फ़सल अच्छी हुई, शिल्पकी वस्तुओंकी माँग रही, तो सत्तर सैकड़ा जनताकी साल-की खर्ची ठीकसे चलती रही। उस वक़्तके साधारण किसानोंसे आशा नहीं रखी जा सकती थी कि वे पचासों वैध-अवैध करों, राजकर्मचारियों, पुरोहितों और महाजनोंकी लूट-खसोटके बाद भी एक सालकी उपजको दो साल तक चला लेंगे। जब तक साल दो साल आगे तकके खानेका सामान घरमें नहीं है, तब तक किसान, कम्मी, कारीगर अकाल आदिके चंगुलमें पड़कर बुरी मौत मरनेसे कैसे बचाए जा सकते? जहाँगीरके वक़्त (१६३० ई०) सत्तासिया अकालने दक्षिणी भारत और गुजरातमें क्या ग़जब ढाया, लोगोंपर क्या-क्या बीती, यह समय सुन्दर कविके आँख देखे वर्णनसे मालूम होगा। इस अकालमें मनुष्यकी साधारण मानवता ही नहीं खो गई थी, बल्कि आदमी माँ, बहिन, बेटी, भाई, बाप सबके सम्बन्धको सबके सम्मानको ताक़में रखकर केवल अपने शरीरको बचानेकी कोशिश करता था। मरते इतने थे कि मुर्दोंका हटाना मुश्किल था। १६४२में बरमासे मणिपुरके रास्ते जो भारतीय भाग कर आए, उनकी अवस्थाको हमारे एक मित्रकी भ्रातृ-वधू बतला रही थीं—"चलनेमें असमर्थ या बीमार पड़ जानेपर लोग अपने भाइयों और पुत्रोंको भी वहीं जंगलमें छोड़-कर चल देते थे, हाँ उनके पास एक अच्छी दलील थी—यहाँ रहकर खुद भी

मर जानेके सिवा हम अपने बंधुकी कोई सहायता नहीं कर सकते। भूखे-प्यासे अपने शरीरको ले चलनेमें असमर्थ लोग अपने दुध-मुँहे बच्चोंको रास्तेके जंगली पेड़ोंपर टाँगकर चल देते थे। ऐसे बच्चे एक दो नहीं, सैकड़ों हमने अपनी आँखों देखे।" उस पुरातन कालके युद्धोंमें भी जब भगदड़ होती होगी, तो लोगोंकी अवस्था इससे बेहतर नहीं रहती होगी। सत्तर फ़ीसदी जनताकी आर्थिक-अवस्था निश्चय ही इतनी हीन थी, कि किसी अकाल, बाढ़ या दूसरी आफ़त आने पर लाखोंकी संख्यामें मरनेके सिवा उनके लिए कोई चारा नहीं था।

हमने उस समयके बहुसंख्यक समाजका यहाँ अतिरंजित चित्र नहीं खींचा है, वस्तुतः उस समयके जीवनकी जो आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सामग्री जहाँ-तहाँ बिखरी हुई हमें प्राप्त है, उससे हम यह छोड़ दूसरे निष्कर्षपर नहीं पहुँच सकते।

(३) **कवि जनताकी यातनापर चुप क्यों?**—हमारे इन कवियोंके सामने वे पशु-तुल्य दास-दासी और उनके ऊपर होते पाशविक अत्याचार मौजूद थे। पद-पदपर अपमानित, त्रस्त, पीड़ित, किसान, कम्मी, कारीगर जनता भी उनके सामने मौजूद थी। अकाल महामारी, युद्ध और बाढ़की दारुण-यातना हृदय-द्रावक दृश्य भी उन्होंने आँखोंसे देखे होंगे, फिर भी इन कवियोंकी कृतियोंमें उनके बारेमें इतनी चुप्पी क्यों? सोचे होंगे, अकाल, बाढ़, युद्ध, महामारी सब भगवान्‌के भेजे हुए हैं—लोगोंके पुर्बिले कर्मका यह फल है; इसलिए क्रौंच-मिथुनमेंसे एकके बधसे तड़प उठनेवाली कविकी आत्माको उधर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं। शायद ऐसा सोचकर इन कवियोंके बारेमें आप कोई कठोर निर्णय सुनाने लगें; लेकिन यह उचित नहीं होगा। जिस परिस्थितिके कारण कवियोंको यह मौन धारण करना पड़ा, उस परिस्थितिपर भी आपको ध्यान देना होगा। यदि कमाऊ जनताकी सारी यातनाओंके असली कारणको वह चाहे न भी बतलाते और सिर्फ़ लोगोंकी इन यातनाओंका नग्न चित्र खींच देते तो उससे रेशम और रतनसे ढँका अमीरोंका भोगमय-जीवन नग्न हो उठता; दोनोंकी तुलना होने लगती और फिर जनताके कितने ही लोग वैसे समाजसे क्षुब्ध हो उठते; जिसका परिणाम अवश्य अमीरोंके लिए अच्छा नहीं होता। इसलिए

आपको समझना होगा कि क्रौंच-मिथुनमेंसे एकके वधके लिए कविका आँसू बहाना जितना आसान था, उतना उस कालके बहुसंख्यक समाजकी विपदाओंका वर्णन करना आसान नहीं था। यदि कोई आदमी तत्कालीन भोगी समाजके विरुद्ध लिखनेके लिए अपनी कवि-प्रतिभाका कुछ भी दुरुपयोग करता, तो वह केवल पुरोहितोंके धर्म-दण्डका ही भागी नहीं होता, बल्कि उसके सरपर पड़ता क्रूर राज-दण्ड—छिपकर हत्या, भयंकर शारीरिक यातना, सीधे शूली, देश और समाजसे निष्कासन और अपमान। इन दण्डोंको सामने रखकर जब आप इन कवियोंकी चुप्पीको देखेंगे, तो मालूम होगा कि उनके वैसा करनेके लिए प्रबल कारण मौजूद थे। उस वक़्त अखबार नहीं थे और न देश-देशान्तरोंके उदार-मना पुरुषोंमें सहानुभूति पैदा करनेका वैसा कोई साधन था कि गोर्कीके कठोर दंडके लिए सारी दुनियामें तहलका मचने लगता। यही नहीं, कवियोंने अपनी काव्य-प्रतिभाकी जो करामात दिखलाई है, उसका बचा-खुचा अंश भी शायद राजा-पुरोहित-सेठकी कोपाग्निसे न बच पाता। कवि अपने स्थूल शरीर और कीर्त्ति-शरीर दोनों हीसे नष्ट होनेका भय सोच यदि मौन रहा, तो उसके विरुद्ध किसी कठोर फ़ैसलेके देनेका हमें अधिकार नहीं है।

३. राजनीतिक अवस्था

हर देशकी राजनीतिक अवस्था उसकी आर्थिक अवस्थाके अनुसार ही होती है; बल्कि राजनीति कहते ही हैं आर्थिक ढाँचे—आर्थिक स्वार्थोंकी रक्षाके लिए तैयार किये गये फ़ौलादी शिकंजे—को। उन पाँच शताब्दियोंमें साधारण जनताकी आर्थिक अवस्था कैसी थी, उसके ऊपर कितने अत्याचार और उत्पीड़न होते थे, इसे हम बतला आए हैं। हम देख चुके हैं कि जनता किस तरहसे मूक और निरीह बनी हुई थी। राजा सर्वशक्तिमान "परमेश्वर" बन गया था और उसकी निरंकुशताके रोकनेका कोई उपाय बहुसंख्यक जनताके पास नहीं था। लेकिन भारतीय जनता सदासे ही ऐसी नहीं थी। बुद्ध के समय (ई० पू० पाँचवीं सदी-में) भारतके कितने ही भू-भागोंपर लिच्छिवियोंकी तरहके शक्तिशाली प्रजा-तंत्र थे। यूनानियों और शकोंके कालमें भी यौधेयों जैसे प्रजातंत्रोंने अपने

अस्तित्वको ही नहीं बनाये रखा, बल्कि विदेशियोंके शासनको नष्टकर देनेमें इन्हीं-का सबसे पहिला और सबसे अधिक हाथ था। चौथी शताब्दीके अंतमें गुप्तोंकी विजय तो एक तरहसे खून लगाकर शहीद बननी थी। इन प्रजातंत्रोंमें जन-स्वतंत्रता थी, हाँ उतनी ही जितनी धनी-ग़रीब वर्गवाले समाजमें संभव हो सकती है। इन गणों (प्रजातंत्रों)की जन-स्वतंत्रताको देखकर राजाओंको भी अपने राज्यमें "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" बननेकी हिम्मत नहीं होती थी। ४०० ई०के आस-पास चंद्रगुप्त विक्रमादित्यने यौधेय-गणके उच्छेदके साथ भारतसे चिरकालके लिए जन-तंत्रताका उच्छेद कर दिया। इसमें शक नहीं कि गणोंके विनाशमें उनके भीतरकी आर्थिक विषमता, अल्पशक्ति भी कारण थी। तो भी जनताके इस स्वतंत्र शासनके उच्छेद करनेवाले चंद्रगुप्त विक्रमादित्यको क्षमा नहीं किया जा सकता। इस उच्छेदने भारतपर क्या प्रभाव डाला यह इसीसे समझमें आ सकता है, कि वर्त्तमान शताब्दीके आरम्भमें जब इति-हासवेत्ताओं और पुरातत्त्वज्ञोंने भारतके पुराने प्रजातंत्रोंके संबंधमें साहित्यिक और मुद्रा-संबंधी प्रमाण ढूंढ़ निकाले; तो उसकी ओर एक बार हमारे शिक्षित भी आँख मलकर आश्चर्यसे देखने लगे। उनको विश्वास नहीं होता था। कहाँ भारत और फिर वहाँ एथेन्स जैसा प्रजातंत्र—यह हो ही नहीं सकता। यदि बौद्धोंके कुछ पुराने ग्रन्थों तक ही प्रमाण सीमित होते, तो शायद उनको क्षेपक और बाहरी प्रभाव कहकर टाल दिया जाता, मगर ईसाके पहिलेकी शताब्दियों-से लेकर ईसवी चौथी सदी तकके ठोस सिक्कोंसे कैसे इनकार कर दिया जाये? तो भी यह ध्यान रखनेकी बात है कि इन प्रजातंत्रोंके प्रति सारे पुराण-कारों, धर्मशास्त्ररचयिताओं और पीछेके कवियोंकी चुप्पी खास कारणोंसे थी। वह अपने प्रयत्नमें कितने सफल हुए, यह तो प्रजातंत्रोंके बारेमें सदाके लिए हमारा अनभिज्ञ बन जाना ही साबित करता है। पिछली शताब्दियोंकी बात छोड़िये, आज भी जब कि हमारे शिक्षित जनतंत्रताका नाम लेकर विदेशी शासनके हटानेकी बात कर रहे हैं; तब भी किसी लिच्छिवि या यौधेय प्रजातंत्रके स्मरण-महोत्सव या कीर्त्ति-स्तंभकी बात नहीं की जाती। यदि क्रियात्मक प्रस्ताव आता है, तो सर्वगण-उच्छेत्ता चंद्रगुप्त विक्रमादित्यके लिए कीर्त्ति-स्तंभ स्थापित

करनेका। हम समझते हैं, यह प्रयत्न किसी भोलेपनके कारण नहीं है, बल्कि उसके भीतर बहुत गूढ़ अर्थ छिपा हुआ है।

हमारे कुछ भाई कह उठेंगे, कि भारतकी जनतंत्रता कभी खतम नहीं हुई। वह तो गाँवोंकी पंचायतोंके रूपमें मौजूद रही और इन पंचायतोंको अंग्रेजी शासनने नष्ट किया। लेकिन विक्रमादित्योंने हमारे गावोंकी जनतंत्रताको जनताकी आजादीके लिए नहीं छोड़ा था। वह जानते थे कि सात लाख गाँव, एक दूसरेसे असंबद्ध सर्वथा स्वतंत्र प्रजातंत्र, किसी निरंकुश शक्तिका मुक़ाबिला नहीं कर सकते। इसीलिए उन्होंने रस्सीके रेशोंको बिखेर दिया, धाराको बूँदोंमें बाँट दिया और इस प्रकार ये ग्राम-प्रजातंत्र निरंकुश शासकोंके बड़े कामकी चीज़ बन गए। जनताकी इस बिखरी शक्तिकी बेबसीने सदियोंके कड़ुवे तजर्बेके बाद तुलसीदाससे कहलवाया "कोउ नृप होइ हमैं का हानी; चेरी छाँड़ि ना होउब रानी।"

अब राजा "परम स्वतंत्र न सिर पर कोऊ" बन गए। उनके ऊपर असली अन्नदाताओंका कोई अंकुश न रहा। उनकी निरंकुशतापर यदि कभी कोई दबाव पड़ता था, तो सामन्तोंकी सदा बनी रहती आपसी खटपट का। सरहपा जिस वक़्त अपने दोहोंको बना रहा था, उसीके आस-पास बिहारमें वह आखिरी घटना घटी, जिसमें प्रजाने एक गुमनाम-वंशके बहादुर व्यक्ति गोपालको अपना शासक चुना। इसके बाद फिर भारतीय इतिहासमें ऐसी कोई घटना देखनेमें नहीं आती। हाँ, तो सामन्तोंके ऊपर एक अंकुश आपसी खटपट थी और दूसरा था बाहरी आक्रमण। हमारे इस कालके आरंभ हीमें अरब, सिंध (७१२ ई०) और मुल्तान (७१३)पर अधिकार जमा लेते हैं और वह भू-भाग हिन्दुस्तानसे बिल्कुल अलग कर लिया जाता है। पीछे ग्यारहवीं सदीके आरंभके साथ ही महमूद ग़ज़नवी (९९७-१०३० ई०)के हमले होने लगते हैं। शायद इन अरब और तुर्क हमलोंने भारतीय नरेन्द्रोंको संयमका कुछ पाठ जरूर पढ़ाया होगा। धर्मको भी राजाओंपर भारी अंकुश बतलाया जाता है; लेकिन राजाओंके टुकड़खोर पुरोहित और महंथ उनपर कितना अंकुश रख सकते हैं, यह आसानीसे समझा जा सकता है; खासकर जब कि उनके पीछे साधारण जनता जैसी कोई

शक्ति सहायता देनेके लिए मौजूद नहीं हो। जन-शक्तिको तो बल्कि पूरी तरह कुचलनेमें राजाके बाद पुरोहितों और महंथोंका ही सबसे अधिक हाथ रहा है। उन्होंने भगवान् और ऋषियों-मुनियोंके नामपर धर्मकी नयी व्यवस्थाएँ गढ़कर जन-शक्ति और जन-चेतनाको बिल्कुल खतम कर दिया। अब उनका राजा पृथ्वीपर विष्णुका अंश था और सारे विलास तथा उत्पीड़न पहले जन्मके कर्मके सुफल थे। धर्माचार्य यदि कुछ अंकुश रख सकते थे, तो शायद भक्ष्या-भक्ष्यपर।

बाहरका खतरा दिखलाई देनेपर जरूर देशके हर्त्ता-कर्त्ता लोग कुछ करनेके लिए मजबूर होते थे, लेकिन छठीं सदीमें हूणोंको परास्तकर भारत कुछ दिनोंके लिए निश्चिन्त हो गया था। ७१२ ई०में अरबोंकी सिन्ध-विजयने फिर खतरेकी घंटी बजाई। इसके लिए जरूरी था, कि देशका अधिकसे अधिक भाग एक शासन-सूत्रमें आ अपनी सैनिक-शक्तिको खूब मजबूत करे। इसके लिए आठवीं सदीसे लेकर अगली सदियोंमें जो प्रयत्न हुए, वह हमारे सामने कन्नौज, मान्यखेट और कभी-कभी पालोंकी प्रभुता या चक्रवर्त्तीत्वके रूपमें आये।

(१) **कन्नौज**—कन्नौजने मौखरियों, हर्षवर्धन और उसके सेनापति भंडीके वंशके प्रबल और विशाल राज्योंका प्रायः तीन सौ सालों (५५०-८१५) तक राजधानी रहनेके कारण उसी तरह एक अत्यन्त सम्माननीय स्थान प्राप्त कर लिया था, जिस तरह मुस्लिम-कालमें दिल्लीने जिस वक्त सिंध और पंजाबपर काले बादल मँडला रहे थे, उस वक्त कन्नौजका भंडी-वंश निर्बल और निकम्मा हो रहा था। कन्नौजके पीछे एक समृद्ध देशकी माया और प्राचीन वैभव था, वह आस-पासके सामन्तोंको आकृष्ट कर रहा था। हर्षवर्धनके साम्राज्यके टुकड़े-टुकड़े होनेपर जो अलग-अलग राज्य क़ायम हुए थे, उनमें बिहार-बंगालके पाल और गुजरात-मालवाके प्रतिहार मुख्य थे। दोनों ही कन्नौजके मालिक बनना चाहते थे। वह कन्नौजके शासक इन्द्रायुध और चक्रायुधमेंसे एकको गुड़िया बनाकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। प्रतिहार वत्सराज (७८३) और गौड़ेश्वर धर्मपाल (७७०-८०६) इसके लिए अपनी सेनाओंके साथ कन्नौज तक दौड़े। वह आपसमें लड़कर किसी स्थायी फ़ैसलेपर पहुँचना ही चाहते थे कि

सुदूर-दक्षिणसे राष्ट्रकूट ध्रुव (७८०-९४) आ धमका और उसीका पलड़ा भारी रहा। इसीलिए ध्रुवरायकी यात्राका एक सुफल हमारे महान् कवि स्वयंभू मालूम होते हैं। वह जो ध्रुवरायके किसी आमात्य रयडा धनंजयके साथ दक्षिण गए और वहीं उन्होंने अपनी अद्भुत अनमोल कृतियाँ रचीं। पाल, राष्ट्र-कूट और प्रतिहार तीनों कन्नौजपर दाँत लगाये थे। कन्नौजकी शक्ति ही बाहरी शत्रुओंसे उत्तरी भारत—अतएव सारे भारत—की रक्षा कर सकती थी। सौभाग्य समझिए कि अरब-तलवार सिंधकी धारमें पहुँचकर ठंडी पड़ गई, नहीं तो आठवीं सदीमें उत्तरी भारतकी राजनीतिक अवस्था उसके लिए बड़ी अनुकूल थी।

कन्नौज नगरी एक ऐसी स्वयंवर-कन्या थी, जिसे राष्ट्रकूट, प्रतिहार और पाल तीनों ब्याहना चाहते थे; लेकिन स्वयंवर-कन्या सौत बनकर नहीं रहना चाहती थी। अब तीनों उम्मेदवारोंको फ़ैसला करना था—कौन अपना देश छोड़ कान्य-कुब्ज जानेके लिए तैयार है। प्रतिहार नागभट्टने फ़ैसला किया, वह कन्नौजका स्वामी बन गया, बाक़ी दोनों मुँह ताकते रह गए। तबसे क़रीब-क़रीब महमूदके हमले तक कन्नौज उत्तरी भारत और सारे भारतके लिए जबर्दस्त ढाल बना रहा।

(२) **राष्ट्रकूट**—हर्षवर्धनको दक्षिणी भारतकी दिग्विजयसे खाली हाथ लौटानेके लिए मजबूर करनेवाले पुलकेशीके चालुक्य-वंशको खतमकर राष्ट्र-कूटोंने अपनी जबर्दस्त सत्ता उसी समय (७५३) स्थापित की, जब कि पूरबमें गोपाल पाल-वंशकी नींव रख रहा था। ७५३ ई०से ९७३ ई०की प्रायः दो सदियों तक राष्ट्रकूट-वंशी वल्लभराज भारतके सबसे बलवान् राजा रहे। नर्मदासे कृष्णा और कभी-कभी कांची तक उनका विशाल राज्य फैला हुआ था और सुदूर-दक्षिण रामेश्वर ही नहीं, कभी-कभी तो सिंहल भी उनकी आज्ञा-को मानता था। कितनी ही बार उनके घोड़ोंकी टाप यमुना और गंगाके द्वाबे (अंतर्वेद)में प्रतिध्वनित हुई थी। कितनी ही बार उनके सैनिक युक्त-प्रान्तके दुर्गोंमें मालिक बनकर बैठते थे।

(३) **पाल**—गोपाल और धर्मपालका जिक्र अभी कर चुके हैं। धर्मपाल बंगाल-बिहारसे संतुष्ट न रह कन्नौज तक हाथ फैला रहा था, इसे हम बतला

चुके हैं। धर्मपाल असफल रहा। उसका पुत्र देवपाल (८१५-३४) भी उत्तर-का चक्रवर्त्ती बनना चाहा, मगर अन्तमें जयमाला नागभट्टके गलेमें पड़ी, यह बतला चुके हैं। नवीं-दसवीं सदीमें यही तीनों भारतकी प्रधान शक्तियां थीं। देशमें और भी कितने ही राज-वंश थे, लेकिन वह इन्हीं तीनोंमेंसे किसी एकके आधीन रहते थे। गौड़ चक्रवर्त्ती-क्षेत्रने हमें ८४ सिद्धोंके रूपमें पुरानी हिन्दी (अपभ्रंश)के कवि दिए। पाल-वंश बौद्धधर्मानुयायी था, इसलिए लोक-भाषासे उसे थोड़ा-बहुत अनुराग था और वहां संस्कृत देश-भाषाके साहित्यका गला घोंटनेकी क्षमता नहीं रखती थी।

राष्ट्रकूट चक्रवर्त्ती-क्षेत्रने भी प्राकृतके कितने ही कवियों तथा स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे हमारी भाषाके सर्व्वोच्च कवियोंको यदि पैदा न किया हो, तो कमसे कम उन्हें आश्रय जरूर दिया। जैन होनेसे राष्ट्रकूट-राजा देश-भाषाके प्रति अधिक उदार विचार रखते थे।

कान्य-कुब्ज चक्रवर्त्ती-क्षेत्र यद्यपि वह क्षेत्र था, जिसके ही भीतर अपभ्रंश-का अपना मूल-क्षेत्र था : किन्तु वहां हम सदा (तुलसीबाबा तक) संस्कृतको ही सर्वेसर्वा रहते देखते हैं। शायद इसमें ब्राह्मणों और ब्राह्मण-धर्मकी प्रधानता कारण थी, वह नहीं चाहते थे कि संस्कृतसे दस-पांच हाथ नीचे भी किसी दूसरी भाषाको स्थान मिले। बहुत संभव है, स्वयंभू अवधी भाषा-क्षेत्रके थे और पुष्प-दन्त यौधेय (हरियाना, दिल्ली)-क्षेत्रके; इस प्रकार दोनों ही कान्यकुब्ज चक्र-वर्त्ती-क्षेत्रके थे, लेकिन उनकी पूछ अपने दरबारमें नहीं बल्कि दूर जाकर दक्षिणापथमें हुई। अपने दर्बारमें तो राजशेखर और श्रीहर्ष जैसे संस्कृतके महाकवियोंकी ही एकमात्र पूछ थी।

नवीं शताब्दीसे प्रायः दो शताब्दियोंके लिए राष्ट्रकूट और प्रतिहार दो जबर्दस्त शक्तियां तैयार हो गई हैं, जो पश्चिमी खतरेको रोकनेकी काफ़ी क्षमता रखती थीं। बल्कि राष्ट्रकूटोंको इसमें कुछ अधिक सुभीता था। उनकी तीन तरफ़ समुद्रकी खाईं थी, डर था तो सिर्फ़ उत्तर-पश्चिममें गुजरातकी ओर से। अरबोंने एकाध मर्त्तबे कोशिश भी की, लेकिन बीकानेरका रेगिस्तान और अरब समुद्र आसान रास्ते नहीं थे। ऊपरसे राष्ट्रकूटोंका सैनिक-बल बहुत मजबूत था।

प्रतिहारोंपर उत्तरी भारतकी रक्षाका सबसे अधिक भार था। जब तक उन्होंने इस कर्त्तव्यको पूरा किया, तब तक वह अचल रहे, लेकिन जैसे ही राज्यपाल (१०१८)ने महमूदके सामने सर झुकाया, वैसे ही प्रतिहार-वंशका सितारा डूबने लगा, और उसके आधीनके चन्देल (कालिंजर) कलचुरी (त्रिपुरी) तथा चौहान (सांभर, अजमेर) स्वतंत्र होने लगे। प्रतिहार फिर कुछ दिनों तक मुर्दा अगोरते रहे, क्योंकि उनके प्रबल सामन्त आपसी झगड़ेके कारण कन्नौजके बारेमें कोई फ़ैसला नहीं कर सकते थे। लेकिन, इस डाँवाडोल अवस्थामें कन्नौज सदाके लिए नहीं रह सकता था।

१०८० में गहड़वार चंद्रदेवने कन्नौजपर हाथ साफ किया। यद्यपि गहड़वार वंशको गंगा-यमुनाके बीचका बहुत ही गुंजान और उर्वर प्रदेश मिला और इस प्रकार वह औरोंकी अपेक्षा अधिक बलवान रहा, तो भी उसे प्रतिहार-वंश जैसा बल नहीं प्राप्त हो सका। चौहान, चंदेल, और कलचुरी अपने बलको कन्नौजसे मिलाकर बाहरी शक्तिसे मुकाबला करनेके लिए तैयार नहीं थे। तो भी चंद्र देवके पौत्र गोविन्दचंद्रके (१०९३-११३४) समय गहड़वार-वंश उत्तरी भारतका सबसे अधिक बलशाली राज्य था। गोविन्दचंद्रके पौत्र जयचंद्र (११७०-९३) के वक्त गहड़वार शक्ति निर्बल हो चुकी थी। उस वक्त चंदेल परमर्दी (११६७-१२०२) काफी शक्तिशाली था। लेकिन कलचुरी, चौहान या चंदेलों-की कितनी भी प्रबल शक्ति हो, उनमें किसीके लिए संभव नहीं था, कि प्रतिहारों-के चक्रवर्त्ती-क्षेत्र को फिरसे जीवित करके बाहरी आक्रमणको रोके।

दसवीं सदीका अंत होते-होते उत्तरी भारतमें पालों, गहड़वारों, चालुक्यों, चंदेलों और चौहानोंके अतिरिक्त गुजरात और मालवाके दो और स्वतंत्र राज्य बन चुके थे। गुर्जर-सोलंकी (चालुक्य) तो बहुत कुछ कन्नौजके पतनसे अस्तित्व-में आये। मालवाके परमार राष्ट्रकूटोंके विनाश (९७४)के फल-स्वरूप स्वतंत्र हो गये। ग्यारहवीं-बारहवीं सदीमें अब उत्तरी भारतकी शक्ति अधिक छिन्न-भिन्न हो चुकी थी, वहाँ सात स्वतंत्र दर्बार थे। कोई एक बड़ी शक्तिके आधीन रहकर काम करनेके लिए तैयार नहीं था।

देशभाषाकी दृष्टिसे देखनेसे पाल अब भी सिद्ध-कवियोंका सम्मान करते

थे। गहड़वार-दर्बारमें भी अवश्य कुछ लोक-साहित्यका मान था, जैसा कि काशी-श्वर-संबंधी कविताओं तथा स्वयं जयचन्दके महामंत्री विद्याधरकी स्फुट कविताओंसे मालूम होता है। कलचुरी कर्णके दर्बारमें भी बब्बर और दूसरे कितने ही कवियोंका सम्मान होता दिखलाई पड़ता है। कालिंजरका चन्देल-दर्बार शायद इस बारेमें सबसे पिछड़ा हुआ था। कनकामर मुनि, संभव है, इन्हींके बुन्देलखण्डके हों, मगर उनकी कविताओंको आश्रय देने का श्रेय चन्देल दर्बारको नहीं मिल सकता।

मुंज (९७४-७५) और भोज (१०१०-५६) चचा-भतीजे संस्कृत-प्राकृतके साथ देशी-भाषाके भी प्रेमी थे और उनकी धाराने अवश्य कितने ही अपभ्रंश कवियोंका स्वागत किया होगा, यद्यपि हमारे पास तक उनकी कृतियाँ बहुत थोड़ी पहुँची हैं। चौहान-दर्बारका कवि सिर्फ चन्द बरदाई हमारे सम्मुख है। यद्यपि उसकी रचना "पृथ्वीराज रासो"की जो प्रति आज उपलब्ध है, वह बहुत विकृत तथा मूलसे चार सदियों बाद की है। हमने उसके कुछ नमूने यहाँ सिर्फ इसी ख्यालसे दिये हैं, कि चन्दकी कविताका कुछ अंश इसमें मौजूद है। उसकी भाषामें खूब मनमानीकी गई है, इसमें संदेह नहीं।

गुर्जर-चालुक्य-क्षेत्र (९६१-१२५७) यही नहीं कि दिल्ली-कन्नौजके काफी पीछे तक स्वतंत्र रहा, बल्कि इसने अपभ्रंश कवियोंको सबसे अधिक पैदा किया। पैदा करनेसे भी ज्यादा उसने जो बड़ा काम किया, वह है अपभ्रंश-कृतियोंका रक्षा करना। शायद दर्बारके जैन होने तथा जैन नागरिकोंके भाषा-प्रेमके कारण ऐसा हो सका।

हमारे इस साहित्यिक युगकी राजनीतिक पृष्ठभूमिकी ओर व्यापक दृष्टिसे देखनेपर मालूम होगा, कि पहले शतक अर्थात सातवीं-आठवीं सदीमें बाहरी शत्रु अभी उतने प्रबल न थे। नवीं-दसवीं सदीमें हमारा राजनीतिक-संगठन इतना विस्तुत और मजबूत था कि कोई उसका मुकाबला करके सफलताकी आशा नहीं कर सकता था। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दीमें शक्ति आधे दर्जन टुकड़ोंमें बँट गई। और यह था विदेशी आक्रमणकारियोंको न्यौता देना।

तत्कालीन कविताओंमें हमें तीन बातोंकी छाप मिलती है——रहस्यवाद या आध्यात्मिक भूल-भुलैया, निराशावाद और युद्धवाद या वीररस। ये तीनों ही

काव्य-भावनाएँ उस वक्तके शासक-समाजकी आवश्यकताके लिए बिल्कुल उपयुक्त थीं। उस वक्तके सामन्त बच्चेको तलवारका चरणामृत दिखलावटी नहीं पिलाया जाता था, बल्कि दरअसल उसे बचपनसे ही मरने-मारनेकी शिक्षा दी जाती थी। मौतसे खेल करनेके लिए वह हर वक्त तैयार रहता था। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदियोंके कवियोंने भी अपने आश्रय-दाताओंकी बड़ी-बड़ी वीरताओंका वर्णन किया, लेकिन वह अधिकांश थोथी चापलूसी है, यह हमें मालूम है। हमारी इन पाँच सदियोंमें सामन्त वस्तुतः निर्भय वीर होते थे। उनके देश-विजयोंके बारेमें कवि अतिशयोक्ति भले ही कर सकता है, लेकिन शरीरपर तीरों और तलवारोंके घावोंके चिह्नोंके बारेमें अतिरंजनकी जरूरत नहीं थी। ऐसे समाजके लिए वीर-रसकी कविताएँ बिल्कुल स्वाभाविक हैं।

युद्ध एक पासा है, जो कभी चित्त भी पड़ सकता है, कभी पट भी। असफल सामन्तके लिए निराशा आवश्यक है, लेकिन निराशा हर वक्त आदमीके दिलको जलाया करती है, इसलिए सब कुछ भूल जानेके लिए आध्यात्मिक भूल-भुलैया या रहस्यवाद भी उतना ही आवश्यक है। प्रभु-वर्गको छोड़ बाकी अस्सी फीसदी जनताके लिए तो निराशावाद बिल्कुल स्वाभाविक है। आध्यात्मिक भूल-भुलैयासे फायदा उठानेवाले साधारण जनतामें शायद ही कोई थे। हाँ, सिद्धोंने सरल जन-भाषामें अपनी कवितायें लिखकर उनके भीतर घुसनेकी कोशिश की। सिद्धोंके बारेमें यहाँ एक बात स्मरण रखनेकी है——उनकी कवितामें रहस्यवाद है मगर निराशावाद उससे छू नहीं गया है। वह कायाको मल-मूत्र-पूर्ण गन्दी चीज नहीं बल्कि तीर्थकी तरह पवित्र मानते हैं, सब तरहके सांसारिक भोगोंको छोड़ने नहीं ग्रहण करनेकी शिक्षा देते हैं। शायद इसमें उनका क्षणिकवादी दर्शन कारण रहा हो। संसारकी सभी वस्तुएँ क्षण-क्षण बदलती रहती हैं, उनमें संयोग-वियोग होता रहता है, लेकिन जगत्‌की सारभूत यह क्षणिकता बुरी नहीं है, इसीसे जगत्‌का वैचित्र्य, जगत्‌का सौन्दर्य्य कायम है। अतएव क्षणिक होनेसे जगत् उपेक्षणीय नहीं है।

ग्यारहवीं-बारहवीं सदीमें महमूद गजनवीके सोमनाथ और बनारस तकके आक्रमणोंके बाद भी उत्तरी भारत कई राज्योंमें बँटा ही रहा। सातों दर्बार आपसमें लड़ते ही रहते, फिर वहाँ आशावाद कहाँ संभव था? अभी सामन्ती

वीरता मौजूद थी, तलवार झनझनाती रहती थी, लेकिन अपनी बिखरी ताकत देखकर निराशावाद उन्हें अपनी ओर खींच रहा था।

(४) **इस्लाम भारतका अभिन्न अंग**—हम पहिले कह चुके हैं, कि जिस वक्त हिन्दीके आदि कवि सरहपा अपनी कविताएँ रच रहे थे, उससे आधी शताब्दी पहिले ही (७१२-१३) सिंध और मुल्तान हिन्दुओंके हाथसे चले गए। तबसे दसवीं सदी तक इस्लामिक राज्य बहुत आगे नहीं बढ़ पाया। अभी काबुलपर भी हिन्दू ही शासन कर रहे थे। लेकिन ग्यारहवींके शुरू हीमें काबुल ही नहीं लाहौर भी हिन्दुओंके हाथसे निकल गया। मुस्लिम-राज्य-स्थापना भारतके इतिहासमें एक बहुत भारी घटना थी। अभी तक जितने भी विदेशी आक्रमणकारी भारतमें आए थे, वह भारतीय संस्कृतिको स्वीकार कर—हाँ उसमें कुछ अपनी ओरसे दे करके भी—हजारों जात-पातोंमें बिखरे भारतीय जन-समुद्रमें मिलते गये। लेकिन अब जिस संस्कृति और धर्मसे वास्ता पड़ा, वह काफी सबल था। उसे हजम करनेकी ताकत ब्राह्मणोंके जीर्ण-शीर्ण ढाँचेमें नहीं थी। हमारे युगसे आगे हिन्दी-कविताका सूफी-युग (चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी) इस बातका साफ सबूत है, कि मुसलमान सूफियोंने हिन्दी-साहित्य और उसकी जनतापर काफी प्रभाव डाला, लेकिन इस्लामने भारतपर अधिकार करके सिर्फ आध्यात्मिक भूल-भुलैयाके कुछ पाठ ही नहीं पढ़ाये, बल्कि कुछ सामाजिक गुत्थियोंको भी हल किया।

'संदेश-रासक'के रचयिता कवि अब्दुर्रहमान (१०१० ई०)का जुलाहा-वंश दसवीं सदीके अंतसे पहिले ही मुसलमान हो चुका था। इस्लाम जब भारतके दूसरे प्रदेशोंमें फैला, तो वहाँपर भी हम प्रमुख शिल्पी जातियोंको बड़ी खुशीसे इस्लाम स्वीकार करते देखते हैं। कपड़े बनानेवाले कारीगर सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक जो इस्लाममें दाखिल हो गये, उनकी संख्या भारतीय मुसलमानोंमें आज यदि दो-तिहाई नहीं तो आधीसे ज्यादा जरूर है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। हम जानते हैं, कपड़ेका व्यवसाय रोमनकालसे अंग्रेजी राज्यके स्थापित हो जाने तककी बीस सदियोंमें हमारे देशका बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यवसाय रहा, वह देशकी आमदनीका एक बहुत जबर्दस्त जरिया था। फिर कपड़े बनाने-

वाले कारीगर हिन्दू-धर्मसे इतने रूठ क्यों गये ? उनकी कारीगरीकी बड़ी माँग थी, वह दास नहीं थे, पैसेके लिए बाजारमें बिकनेकी उन्हें जरूरत न थी, अब्दुर्रहमानकी सुंदर कवितासे पता लगेगा, कि वह निरे निरक्षर गँवार भी नहीं थे। जो कारीगर सूक्ष्म मलमल, उसके ऊपर बेल-बूटे, बनारसी किम्खाब और उसपरकी अद्भुत चित्रकारी करनेमें सिद्धहस्त हों, वह शिक्षा-संस्कृतिसे बिल्कुल शून्य हो ही नहीं सकते। लेकिन हिन्दुओंकी जाति-प्रथा जिसे बौद्ध और जैन भी व्यवहार रूपमें स्वीकार कर चुके थे—इन शिल्पी-जातियोंको शूद्र बनाकर उनपर सामाजिक अत्याचार करनेके लिए ऊपरी जातियोंको अधिकार देती थी। कोई आश्चर्य नहीं यदि आत्म-सम्मान रखनेवाले पटकार इस्लाम स्वीकार करनेमें अपनी अर्धदासताका अन्त समझने लगे, और वह एक-एक करके नहीं बल्कि श्रेणी (Guild)-रूपेण इस्लामके झण्डेके नीचे चले गये। अरब तथा बाहरसे आनेवाली दूसरी मुसलमान जातियाँ अभी हिन्दुओंकी जाति-प्रथासे प्रभावित नहीं हुई थीं। इसलिए उस समय सहस्राब्दियोंसे पीड़ित इन हिन्दू-जातियोंको हिंदुत्व छोड़ इस्लाममें जाते ही दमघोटू अन्धेरी कोठरीसे खुले प्रकाश, खुली हवामें साँस लेते जैसा मालूम होता था। हिन्दू यह बात नहीं कर सकते थे। इस्लामने आरंभिक शताब्दियोंमें इस कामको बड़ी तत्परतासे किया, लेकिन जैसे-जैसे बड़ी जातियोंके हिन्दू इस्लाममें दाखिल होने लगे; वैसे ही वैसे इस्लामकी वह क्रान्तिकारी भावना नष्ट होती गई और वहाँ भी ऊँच-नीचका बीज बोया जाने लगा।

बारहवीं सदीके अंतमें दिल्ली और कन्नौज भी इस्लामी झण्डेके नीचे चले गये थे। अब हिन्दू सामन्त एक-एक करके आत्म-समर्पण करनेके लिए कालकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महमूद और कितने ही दूसरे मुस्लिम विजेताओंने हिन्दुओंके मन्दिरोंपर भी प्रहार किया; लेकिन जैसा कि हम कह आये हैं, वह इतनी मेहनत सिर्फ पत्थरोंके तोड़नेके लिए नहीं किया करते थे। वह जाते थे, महन्तों और पुजारियों द्वारा वहाँ जमा की हुई अपार मायाको लूटने। इससे यह लाभ जरूर हुआ कि मंदिरों और देवताओंकी हजारों बरससे स्थापित महिमा बहुत घट गई। कोई ताज्जुब नहीं, यदि दिल्ली-विजयके बाद तीन सदियों तक हिन्दू सन्त भी

मूर्त्तियों और देवताओंके पीछे लट्ठ लेकर पड़ गये और चारों ओर निर्गुणवादकी दुंदभी बजने लगी। इस ध्वंस लीलाने कुछ फायदेका भी काम किया और पुरोहितों-महन्तोंके प्रभावको कुछ हल्का किया, यद्यपि वह उतना नहीं कर सकी, जितना कि ईरान और अफगानिस्तानमें, शायद यदि सारा हिन्दुस्तान इस्लामके अन्दर चला गया होता, तो यहाँकी सैकड़ों समस्यायें खतम हो गई होतीं। मुमकिन है उस वक्त हमारे साहित्य-कलाको और भी क्षति हुई होती और एक बार ईरानकी तरह मुसलमान बने भारतके जातीयता-प्रेमियोंको भी झुंझलाना पड़ता।

सिद्ध-युगकी अन्तिम—बारहवीं-तेरहवीं—सदीमें उत्तरी भारतकी राजनीतिक अवस्था अधिक डाँवाडोल थी। यद्यपि मालवा और गुजरात अपनी स्वतंत्रताको बचाए हुए थे, मगर वह भी भविष्यके लिए निश्चिन्त नहीं थे। ऐसे कालमें भी महाकवियोंका होना असंभव नहीं है, लेकिन यदि महाकवि अपने पैरोंको धरतीपर रखते तब न। आसमानी नायिका बनाते वक्त उनका स्वप्न बीच-बीचमें पृथ्वीकी विकलताके कारण भग्न हो जाता; इसलिए उनका सृजन भी पूर्ण नहीं भग्न ही हो सकता है। इस कालमें हमें लक्खण तथा दूसरे ऐसे ही छोटे-छोटे कवि मिलते हैं। मुसलमान शरणागतकी रक्षाके लिए रणथम्भोरके राणा हम्मीरने हिन्दू-मुसलमान धर्मका ख्याल न करके जिस तरह अपने सर्वस्वकी बाजी लगाई, उसने कुछ महाकवियोंको जरूर प्रेरणा दी; बाकी कवि बस छोटे-छोटे सामन्तों और सेठोंकी प्रशंसाके पुल बाँधनेमें ही अपनी सारी शक्ति खर्च करते रहे।

४. धार्मिक अवस्था

पहिलेके वर्णनमें जहाँ-तहाँ धर्मके बारेमें भी हम कुछ कह आये हैं, लेकिन वहाँ हमने उनका सिर्फ सामान्यरूपेण जिक्र किया। हमारे इस युगके कवियों-में बौद्ध, जैन, हिन्दू और मुसल्मान चारों धर्मके माननेवाले हैं; इसलिए यहाँ उनके बारेमें कुछ और कहनेकी अवश्यकता है।

मानव-समाजके विकासमें धर्म बहुत पीछे आया है, इसे हम दूसरे स्थानपर

बतला आये हैं। जिस वक्त मनुष्यमें धनी-गरीबका भेद नहीं हुआ था, क्योंकि अभी उसके पास धन-उत्पादन और लड़नेके हथियार बहुत दुर्बल—पत्थर, सींग, लकड़ीके थे; उस वक्त इन धर्मोंकी आवश्यकता नहीं थी। ब्राह्मणों, बौद्धों तथा जैनोंकी देव-माला अपने पुराने रूपमें राजसत्ता नहीं पितृसत्ताका अनुकरण करती है। वेदोंके पुराने देवताओंमें किसी एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका पता नहीं लगता, लेकिन जैसे ही दुनियामें "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" पैदा हुए, वैसे ही सर्वशक्तिमान् ईश्वर भी आ धमका। गुप्तोंके निरंकुश राजतंत्रने सर्वशक्तिमान् ईश्वर—विष्णु—के महत्त्वको बहुत बढ़ाया। यद्यपि बौद्ध और जैन सृष्टिकर्त्ता सर्वशक्तिमान् ईश्वरको नहीं मानते थे। तो भी वह स्थापित समाज-व्यवस्थाके लिए खतरनाक नहीं थे। प्रवाहण जैवलिके समाज-पोषक सामन्त-समर्थक पुनर्जन्मके सिद्धान्तको स्वीकारकर उन्होंने पहिले ही अपने कार्य-क्षेत्रको सीमित कर लिया था। और अब तो वह ब्राह्मणोंके जाति-पाँति, ज्योतिष, सामुद्रिक सबको मानने लगे थे। जिस वक्त ईसाके पहिलेकी दो-तीन सदियोंमें यवन, शक, आभीर, गुर्जर आदि जातियाँ बाहरसे हिन्दुस्तानमें घुस रही थीं, उस वक्त बौद्धोंका ही पलड़ा भारी था; क्योंकि उन्होंने इन जातियोंको समाजमें समानताका स्थान देकर स्वागत किया था। ब्राह्मण इस बलाको बूझ नहीं पाये, वह अभी सबको "म्लेच्छ" "म्लेच्छ" कह तिरस्कार करते थे; लेकिन जब देखा कि ये आगंतुक म्लेच्छ धर्ममें श्रद्धालु बनकर मिनान्दर और कनिष्ककी तरह मठों और मन्दिरोंको सोनेसे पाट देते हैं; तो वह भी सोचनेके लिए मजबूर हुए। यद्यपि वह देरसे होशमें आये, मगर उनका हथियार सबसे जबर्दस्त निकला। बौद्ध आगंतुक जातियोंको सम्मानपूर्ण किन्तु समान स्थान देते थे। ब्राह्मणोंने सम्मानपूर्ण ही नहीं बल्कि बहुत ऊँचा स्थान—सिर्फ अपनेसे एक सीढ़ी नीचे—दिया, पीछे उन्हें आबूके अग्निकुण्डसे निकली क्षत्रिय-जातियाँ कहा गया। आबूके अग्निकुण्ड और उससे आदमियोंकी बात भले ही बिलकुल झूठी है, मगर ब्राह्मणोंने आगन्तुक म्लेच्छ-जातियोंको क्षत्रिय बनाया, इसमें कोई सन्देह नहीं। और इस प्रकार सामन्ती भारतने चिरकालके लिए ब्राह्मणोंके प्रभावको स्वीकार किया।

(१) **बौद्ध धर्म**—ईसाकी पहिली तीन-चार शताब्दियोंमें जब ये आगंतुक

क्षत्रिय बनाए जा रहे थे, उसी वक्त बौद्ध धर्म निहत्था कर दिया गया। बौद्ध अब भारतकी किसी सामाजिक समस्याका अपने पास कोई हल नहीं रखते थे, अब उन्हें अपनी पुरानी कमाईको बैठकर खाना था। सामन्त पूरी तौरसे ब्राह्मणोंके हाथमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे चले गये थे। बौद्ध कभी-कभी दिङ्नाग और धर्मकीर्तिके प्रौढ़-दर्शनको सामने रखकर लोगोंकी आँखोंमें चकाचौंध पैदा करना चाहते थे; कभी योग-समाधि, तंतर-मंतर डाकिनी-साकिनीके चमत्कारसे लोगोंको अपनी ओर खींचना चाहते थे और कभी सिद्धोंके विचित्र जीवन और लोक-भाषाकी कविताओंको भी इस कामके लिए इस्तेमाल करते थे; मगर यह सब हवामें तीर चलाना था। अब भी बहुसंख्यक जनताकी कितनी ही समस्यायें सामने थीं; लेकिन बौद्धोंके मस्तिष्क और हथियार कुंठित हो चुके थे। उन्होंने चलते-चलाते हमारी भाषाकी कितनी ही सेवा जरूर की। अफसोस है कि उनकी कविताओंका बहुत कम अंश हमारे पास बच रहा। उनकी सैकड़ों छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तकें ग्यारहवीं-बारहवीं सदीमें किये तिब्बती भाषाके अनुवादोंमें मौजूद हैं, मगर उससे भी अधिक संख्या उन पुस्तकोंकी रही होगी, जो शुद्ध सांसारिक दृष्टिसे लिखी गई थीं, अतएव वह भारतसे बाहर नहीं ले जाई गईं, और बौद्ध धर्मके साथ वह यहीं नष्ट हो गईं।

बौद्ध धर्म चलाचली पर था, उसकी भीतरी कितनी ही कमजोरियाँ उसके हितचिन्तकोंको मालूम होने लगी थीं, तो भी सबसे बड़ी कमजोरी—सामाजिक समस्यासे हाथ खींच लेना—की ओर उनका ध्यान नहीं गया। दूसरे धार्मिक पंथोंकी तरह बौद्ध धर्ममें भी ब्रह्मचर्य और भिक्षु-जीवनपर बहुत जोर दिया गया था, लेकिन बारह शताब्दियोंके तजुर्बेने बतला दिया कि वह ढोंगके सिवाय और कुछ नहीं है। आदमी आहारकी तरह काम-भोगमें भी दूसरे पशुओंसे बहुत भिन्नता नहीं रखता। मठोंके अप्राकृतिक-जीवनमें जो बहुत-सी बुराइयाँ बहुत भारी परिमाणमें घुस आयी थीं, उन्हें देखकर कुछ विचारकोंने सोचा, हमें इस ढोंगको हटाना चाहिए और मनुष्यको सहज-स्वाभाविक जीवनपर लाना चाहिए। इन बातोंको वह खुलकर नहीं कह सकते थे, क्योंकि खुलकर कहनेपर पन्थ और भक्त ही नहीं सारे बाहरी समाजका विरोध इतना

जबर्दस्त होता, कि उन्हें अपना अस्तित्व भी कायम रखना मुश्किल हो जाता। उन्होंने छिप करके एक सीमित क्षेत्रमें अपने विचारोंका प्रचार करना शुरू किया। मुक्त यौन-संबंधके पोषक चक्र-संवर आदि देवता, उनके मंत्र और पूजा-प्रकार तैयार किये। गुह्य-समाज एकत्रित होने लगे, जहाँ स्त्री-पुरुषोंको मद्य-मैथुनकी पूरी स्वतंत्रता दी गयी। लेकिन जल्दी ही यह सब काम सहज, स्वाभाविक नहीं अस्वाभाविक रूपमें होने लगा। सरहपाके वचनोंसे जान पड़ता है, कि वह भोग-स्वातंत्र्यको अस्वाभाविकता या अतिमें नहीं ले जाना चाहता था। वह इस बातका समर्थक था, कि सहज मानवकी जो सहज आवश्यकताएँ हैं, उन्हें सहज रूपसे पूरा होने देना चाहिए। उसने मंतर-तंतर, देवी-देवतापर भी ठोकर लगाए हैं। मगर जान पड़ता है, भीतरी-बाहरी विरोध बहुत जबर्दस्त था, सहज-मार्गसे पाखंड-मार्ग पकड़ना अधिक आसान था, इसलिए सरहपाका सहज-यान, तन्तर-मन्तर, भूत-प्रेत, देवी-देवता-संबंधी हजारों मिथ्या-विश्वासों और ढोंगोंके पैदा करनेका कारण बना। ये सारे मिथ्या-विश्वास, सारी दिव्य-शक्तियाँ महमूद और मुहम्मदबिन-बख्तियारके सामने थोथी निकलीं और तारा, कुरुकुल्ला, लोकेश्वर और मंजुश्रीके मन्दिरों और मठोंमें हजार-हजार बरसकी जमा हुई अपार संपत्ति अपने मालिकों और पुजारियोंके साथ ध्वस्त हो गयी। बौद्ध भिक्षुओंके रहनेके लिए जब न कोई विहार रहा, न उनके संरक्षक और पोषक सेठ-सामन्त पहिली अवस्थामें रहे, न साधारण जनताका विश्वास पूर्ववत् रहा, तो उन्हें भारतमें दिन काटना मुश्किल होने लगा। पश्चिमकी धरती तो उनके हाथसे पहिले ही निकल चुकी थी; लेकिन उत्तर (तिब्बत), पूरब (बर्मा, चीन) और दक्खिन (सिंहल)में अब भी उनके स्वागत करनेवाले मौजूद थे। इस प्रकार बचे-खुचे बौद्ध भिक्षु—बौद्ध गृहस्थोंके अगुआ—बाहर चले गये। भिक्षुओंके अभावमें गृहस्थ बौद्ध धर्मको भूलने लगे, और जिसकी जिधर सींग समाई, उधर चले गए। इस प्रकार नालन्दा, विक्रमशिलाके ध्वंसके बाद पाँच ही छ पीढ़ियोंमें बौद्ध-धर्म नाम-शेष रह गया।

(२) जैन धर्म—सामन्तोंपर जैन धर्मका पुराने समयमें क्या प्रभाव पड़ा था, इसके समर्थनके लिए काफी प्रमाण नहीं मिलते। राष्ट्रकूट (७५३-९७)

और गुर्जर-सोलंकी (६६१-१२५७) राजाओंका जैन धर्मपर बहुत अनुराग था, लेकिन लड़ाकू सामन्तोंके इस अनुरागमें पहिला ही कदम तो यह था, कि बेचारी अहिंसा ताक पर रख दी गई। जैन गृहस्थ ही नहीं जैन मुनि (हेमचन्द्र) भी तलवारकी महिमा गाने लगे भला दिग्विजयोंके जमानेमें अहिंसाको कैसे लेकर चला जा सकता था। बौद्ध धर्मकी तरह जैन धर्म भी जाति-पाँति विरोधी था, लेकिन हमारे युगमें वह भी जाति-पाँतिको वैसे ही मानने लगा था, जैसे ब्राह्मण। इतना ही नहीं हमारे एक जैन कवि मुनिने तो जैन गृहस्थोंको उपदेश दिया है, कि वह अपनी लड़कीको अजैन घरमें न दें। भीतर भिन्न-भिन्न मतोंके रखनेपर भी जो अब तक शादी-ब्याह हो सकता था, उसे भी बन्द कर दिया गया, चलो छुट्टी मिली। जैन धर्ममें सृष्टिकर्त्ता ईश्वर नहीं माना जाता, लेकिन अब तो स्वयं महावीरके नामके साथ परमेश्वर लगाया जाने लगा। जैन गृहस्थ और दूसरे लोगोंके लिए पारस-मणि परमेश्वर-शब्द मिल गया। परमेश्वरसे मिन्नत भी मानी जाने लगी। परमेश्वर-शब्द काफी था, साधारण लोग उसीमें सृष्टिकर्त्ता-विधाता सब समझ लेते थे, आगे बालकी खाल खींचनेकी उन्हें जरूरत नहीं थी।

सामन्तोंने जैन धर्मको अपनाकर भी कितना निबाहा, यह आपने देख लिया। हाँ, व्यापार करनेवाली जातियाँ ज्यादा कट्टर बनीं और आज भी जैनोंमें अधिकांश वैश्य ही मिलते हैं। उन्होंने अहिंसाको जरूर कुछ ज्यादा गंभीरताके साथ स्वीकार किया। पश्चिममें भी बनिया-वर्ग जीव-दयाकी ओर बहुत खिचता है, यद्यपि उसकी दया है—

"जाननहारा जानिया, बनिया तेरी बान।
बिनु छाने लोहू पिवै, पानी पीवै छान॥"

इसे जैन धर्मकी सफलता कह लीजिए। मगर इस सफलताने हानि कितनी पहुँचाई? पोरवाल, ओसवाल, अग्रवाल, श्रीमाल, आदि जातियाँ मूलतः यौधेय-आर्जुनायन आदि गणोंकी वह वीर-क्षत्रिय जातियाँ थीं जिन्होंने किसी समय यवनों, शकों, गुप्तोंके दाँत खट्टे किये और भारतमें जनतंत्रताके प्रदीपको शताब्दियों तक जलाये रखा। अब सिंहोंके नख-दाँत तोड़ दिये गए और वे

बकरी बनकर सूद खाने और तराजू तोलनेमें लग गये; उन्हें तीर-तलवारकी जरूरत नहीं रह गई। सवाल हो सकता है, क्षत्रियसे वैश्य होने—ब्राह्मणी व्यवस्थाके अनुसार एक सीढ़ी नीचे गिरने—के लिए ये क्षत्रिय तैयार कैसे हो गए? हम इसके बारेमें इतना ही कह सकते हैं "व्यापारे वसति लक्ष्मी", अथवा कुछ पीढ़ियों[1] तक अपनी स्वतंत्रताके लिए तलवार चलाकर देख लिया, कि राज-तंत्रके इतने बड़े सैनिक-संगठनके सामने उनका तलवार हिलाना फजूल है। अब वह क्षत्रियकी जगह नगर-सेठ बने। व्यापार खूब चमका। करोड़ों रुपये लगाकर देलवाड़ा जैसे अनगिनत मंदिर बने, परम-त्यागियों—पात्र और वस्त्र तक भी न रखनेवाले यतियों—का जैन धर्म सोने-हीरेकी राशिसे जगमग-जगमग करने लगा। लेकिन, इस नये सभ्य जैन समाजमें बेचारे निर्ग्रन्थों—नग्न साधुओं-की आफत आयी। सम्भ्रान्त परिवारोंके पुत्र मुनि बन नंगे-मादरजाद रहनेसे हिचकिचाने लगे और गृहस्थ भी अपने मुनियोंको इस रूपमें देखनेसे संकोच करने लगे। अब वस्त्रधारी श्वेतांबरोंका पलड़ा भारी हो चला; लेकिन वस्त्र ही तक भले घरोंके लड़के सन्तोष कैसे कर सकते थे? सवाल उठ खड़ा हुआ, चैत्य-वासी (बस्तीसे बाहर मठोंमें रहनेवाले) और बस्ती-वासीका। लेकिन कुछ ही समय बाद यह भी सवाल व्यर्थ हो गया, और जैन मुनि बस्ती-वास ही नहीं दरबार-वास तक करने लगे।

इस युगमें तंत्र-मंत्र और भैरवी-चक्र या गुप्त यौन-स्वातंत्र्यका बहुत जोर था। बौद्ध और ब्राह्मण दोनों ही इसमें होड़ लगाए हुए थे। भूत-प्रेत, जादू-मन्तर और देवी-देवता-वादमें जैन भी किसीके पीछे नहीं थे, रहा सवाल वाम-मार्गका, शायद उसका उतना जोर नहीं हुआ, लेकिन वह बिल्कुल नहीं था, यह भी नहीं कहा जा सकता। आखिर चक्रेश्वरी देवी वहाँ भी विराजमान हुईं, और हमारे मुनि कवि भी निर्वाण-कामिनीके आलिंगनका खूब गीत गाने लगे,

---

[1] जोहियार (भावलपुर)के जोहियों तथा मेवोंने मुस्लिम काल तक अपनी तलवार नहीं छोड़ी।

जिससे उसी दिशाका सूक्ष्म संकेत मिलता है।

जैनोंने अपभ्रंश-साहित्यकी रचना और उसकी सुरक्षामें सबसे अधिक काम किया। वह ब्राह्मणोंकी तरह संस्कृतके अंधभक्त भी नहीं थे, क्योंकि वशिष्ठ, विश्वामित्रकी भाँति उनके मुनियोंने संस्कृतमें ही नहीं प्राकृतमें अपने मूलग्रंथ लिखे थे। व्यापारी होनेसे बही-खाता तथा मातृभाषा लिखने-पढ़नेका ज्ञान होना उनके लिए बहुत जरूरी था। ब्राह्मणोंकी समाज-व्यवस्थाके साथ वह बँधे हुए थे। ब्राह्मणोंके महाभारत, पुराण और कथा-वार्त्ताका हर तरफसे प्रभाव पड़ना जरूरी था, क्योंकि वह समुद्रमें बूँदकी तरह थे। इस प्रकार जैन धार्मिक नेताओंके लिए यह जरूरी हो पड़ा, कि अपने भक्तोंको ब्राह्मणोंका ग्रास बननेसे बचानेके लिए अपने स्वतंत्र कथा-पुराण तैयार करें। व्यापारीसे यह आशा नहीं रक्खी जा सकती कि वह धर्म जाननेके लिए कठिन-कठिन भाषाएँ सीखता फिरेगा। अतएव जैनोंने देश-भाषामें कथा-साहित्यकी सृष्टि की, जिसके कारण स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे अनमोल अद्वितीय कविरत्न हमें मिले। उस साहित्यकी रक्षाके लिए हम और हमारी अगली पीढ़ियाँ उन जैन नर-नारियोंकी हमेशा कृतज्ञ रहेंगी, जिन्होंने इन अमूल्य निधियोंको नष्ट होनेसे बचाया। याद रखिये, इन अमूल्य निधियोंमें सिर्फ जैनोंके ही ग्रन्थ नहीं बल्कि अब्दुर्रहमानके "संदेश रासक" जैसे ग्रन्थ भी हैं।

(३) **ब्राह्मण**—हम कह चुके हैं कि ईसवी सनके शुरू होनेके बाद ही ब्राह्मणोंका पलड़ा भारी हो गया। हाँ, उन्होंने सिर्फ सामन्त-वर्गकी म्लेच्छ और आर्यकी युद्धाग्निकी भीतरी समस्याको ही अग्नि-कुण्डवाले क्षत्रिय बनाकर हल किया था। लेकिन समाजके हर्त्ता-कर्त्ता तो आखिर सामन्त थे। उन्हें जो कुछ मिलना-जुलना था, वह इन्हीं सामन्तोंसे। बाकी भेड़ोंको भरमाना उनका काम था, जिसमें कि ब्राह्मणोंके सिरजे ईश्वरकी निरंकुशताकी तरह राजाओंकी निरंकुशताके खिलाफ भेड़ें कोई तूफान न खड़ा करें। सामन्त (राजा)-समाज और ब्राह्मणों—मेरा मतलब धार्मिक नेताओं और पुरोहितोंसे है—का हमेशा चोली-दामनका साथ रहा है। ब्राह्मणोंपर सामन्त जितना विश्वास कर सकता था, उतना वह अपनी जातिके व्यक्तिपर भी नहीं कर सकता था। किसी

सामंत-वंशी (क्षत्रिय)को राजके प्रधान-मंत्री जैसे बड़े पदको देकर कोई राजा अपने सिंहासनको खतरेमें डाल कैसे सकता था ? बिम्बसार (५०० ई० पू०)के ब्राह्मण प्रधान-मंत्री वर्षकारसे लेकर सदा ही हिन्दू-राजाओंके प्रधान-मंत्री ब्राह्मण होते रहे। पुष्पमित्र और पेशवा जैसे दो-एक ही अपवाद हैं, जब कि ब्राह्मणोंने नमक-हरामी की हो। वह कभी सिंहासनपर बैठनेकी कामना नहीं करते थे, इसलिए प्रधान-मंत्रीका पद यदि ब्राह्मणोंके लिए सदा सुरक्षित रहता हो, तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है।

और ब्राह्मण घाटेमें भी नहीं थे। शुकनासका ऐश्वर्य तारापीडसे कम न था। प्रधान-मंत्रीके महलकी सजावट और अन्तःपुरकी रौनक राजाओंके हरमसे कम न थी। ब्राह्मणोंने जो भारतीय जनतंत्रताके हल्केसे हल्के चिह्नको भी न रहने देनेकी हर तरहसे कोशिश की; उसके लिए उनका स्वार्थ मजबूर करता था। प्रधान-मंत्री और मंत्री ही नहीं दूसरे ब्राह्मणोंके लिए भी सामन्त हर तरहसे पूरी भोग-साधना जुटाते थे। चन्द्रदेवने १०९३ ई०में हाथमें कुश लेकर एक ही बार कटेहली (बनारस)के सारे परगने (पत्तला)को ब्राह्मणोंको दान दे दिया; ११०० ई०में फिर उसने बृहदन्हवरथ पत्तलाको दान किया। राष्ट्रकूट, पाल तथा दूसरे राजवंश भी ब्राह्मणोंके प्रति ऐसी ही उदारता दिखाते रहे। विश्वामित्र-वशिष्ठ-भरद्वाजके समयमें भी ब्राह्मणोंका जीवन भोग-शून्य नहीं था, फिर हमारे इस कालके बारेमें पूछना ही क्या ? ब्राह्मणोंके मंदिरों-पर किस तरह मुक्त-हस्त हो धन खर्च किया जाता था, इसे देखना हो, तो एलौराके कैलाशको देख लीजिए—एक अद्भुत, विशाल शिवालय पहाड़ काट-कर निकाल लिया गया है।

हम कह चुके हैं, कि वाम-मार्गमें ब्राह्मण भी बौद्धोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर खड़े थे। मन्तर-तन्तरकी बात तो खैर आँखमें धूल झोंकनेकी नीतिके कारण हो सकती है, लेकिन चक्र-पूजा। यौन-स्वातंत्र्यकी उन्हें क्या जरूरत थी ? आखिर ब्राह्मण एकपत्नि-व्रत नहीं थे, संपत्तिके अनुसार वह चाहे जितने ब्याह कर सकते थे। दासियोंके रखनेमें भी उनके लिए कोई सीमा न थी। बौद्ध भिक्षु तो बेचारे जबर्दस्तीके ब्रह्मचर्यके फन्देको किसी तरह ढीला करना

चाहते थे, जिसकी कि ब्राह्मणोंको जरूरत नहीं थी। हाँ, हो सकता है, मद्य-पानके विरुद्ध जो कड़ाइयाँ पीछेके स्मृतिकारोंने कर दी थीं, उनसे मुक्त होनेके लिए इन्होंने चक्रका आश्रय लिया। मीन-मांस उस युगके ब्राह्मणोंमें वर्जित था ही नहीं और मुद्रा—हाथकी अँगुलियोंको टेढ़ी-मेढ़ी करना—के लिए चक्रकी शरण लेनेकी जरूरत नहीं थी। इस प्रकार मुख्य कारण मद्य रहा होगा और स्त्रीके बारेमें उन्होंने "अधिकस्याधिकं फलं" समझ लिया होगा।

ब्राह्मणोंने सीधे सेवा करके ही सामन्तोंका उपकार नहीं किया, बल्कि उन्होंने उनके फायदेके वास्ते साधारण जनताकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करनेके लिए खूब हन-हन करके हथियार चलाए। खानेकी छुआछूतमें खूब तरक्की की और "आठ कनौजिया नव चूल्हा" करके उसे अपने घरसे शुरू किया। उस वक्त भारतके जो व्यापारी अरब जाते थे, उनके बारेमें एक अरब लेखक (अल्वरूनी)ने लिखा है—वे हमारे (मुसल्मानोंके) ही हाथका खाना खानेसे परहेज नहीं करते, बल्कि आपसमें भी एक दूसरेका छुआ नहीं खाते।" बहुत-सी नीच कही जानेवाली जातियोंके प्रति तो ब्राह्मणोंकी व्यवस्था बहुत क्रूर थी। कितनी क्रूर थी इसका अन्दाजा कुछ-कुछ आपको लग सकता है, यदि परम अद्वैतवादी शंकराचार्यकी जन्मभूमि मलबारके पंचमोंकी बीसवीं शताब्दीकी अवस्थाका आपको थोड़ा-सा परिचय हो। उस युगके नगरोंकी बहुतसी सड़कें उनके लिए वर्जित थीं; कितनी ही सड़कोंपर थूकनेके लिए उन्हें अपने साथ पुरवा रखना पड़ता था। लेकिन ब्राह्मणोंकी एक और भी व्यवस्था थी—"स्त्री-रत्नं दुष्कुलादपि", इसलिए श्रोत्रिय ब्राह्मण भी शूद्रा सुंदरीसे पारशव[1] सन्तान पैदा करनेका पूरा अधिकार रखता था।

ब्राह्मणोंने मिथ्या-विश्वासोंको फैलाने, वयस्क मानवताको बच्चा बनानेके लिए पुराणोंकी संख्या और कलेवरको इसी कालमें खूब बढ़ाया। बुद्धि रखनेवालोंपर यह हथियार नहीं चलता, इसलिए इसी युगमें बुद्धिको भूल-

---

[1] शूद्रा स्त्रीमें ब्राह्मणका पुत्र।

भुलैयामें डालनेके लिए शंकर (७८८-८२०) श्री हर्ष (११८० ई०) जैसे दार्शनिकोंने "मुँहमें राम बगलमें छूरी" वाला अद्वैतवाद पैदा किया।

इस कालमें जातीय बिखरावको ब्राह्मणोंने चरम-सीमापर पहुँचाया। अभी तक जातियोंके लिए भाषा या प्रान्तोंका भेद नहीं था, मगर अब ब्राह्मणोंने कनौजिया आदि बिल्कुल अलग-अलग ब्राह्मण जातियाँ तैयार कीं और एक जातिमें भी गोविन्दचंद्र-जयचन्द्र (१११४-९३)के कालमें सरयू-पारियोंमें पंक्ति (उच्चतम) ब्राह्मण और बल्लालसेन (११५८-७९)के समय बंगालमें "कुलीन" ब्राह्मणके नामसे और नये-नये टुकड़े किये गये। दंडीके कुम्हार-ब्राह्मण जहाँ भारतके किसी भी प्रान्तमें जाकर स्वच्छन्दतापूर्वक रोटी-बेटी कर सकते थे, वहाँ अब रास्ता चारों ओरसे बन्द था। ब्राह्मणोंकी व्यवस्थाने देश-रक्षाके कामके लिए क्या-क्या किया? स्त्रियोंके लिए तो युद्धमें कोई स्थान था ही नहीं। ब्राह्मण-देवता युद्ध-सेवासे मुक्त थे। वैश्यका काम था डेढ़ा-सवाई करना। शूद्रोंकी हजार जातियाँ?—उन्हें हथियार लेकर अपनी पाँतिमें लड़नेको कौन क्षत्रिय इजाजत देता। लड़नेका काम था सिर्फ क्षत्रिय-पुरुषोंका, और उनके सामने भी युद्ध करनेके लिए कोई बड़ा आदर्श नहीं था, सिर्फ नमक-हलाली और इसके बाद सामन्तका भय रह गया था। सामन्तके भयसे या "हम मालिकका नमक खाते हैं" इस ख्यालसे लड़नेवाले योद्धा, किस श्रेणीके होंगे, इसे आप खुद समझ लें। आप कहेंगे, इस युगमें अरबों और तुर्कोंसे युद्ध छिड़ता रहता था, जिसमें योद्धाके दिलमें हिन्दू-धर्मकी रक्षाका भी ख्याल आ सकता था। हम इसे मानते हैं, लेकिन कुछ ही हद तक। क्योंकि मुसल्मान सामन्तकी सेनामें सिर्फ मुसल्मान ही मुसल्मान और हिन्दू सामन्तकी सेनामें सिर्फ हिन्दू ही हिन्दू सैनिक रहे, इसका कोई नियम नहीं था। अक्सर दोनों हीकी सेनायें मिली-जुली होती थीं।

(४) इस्लाम—इस्लामकी इस युगमें क्या अवस्था थी, इसका जिक्र हम पहले कर चुके हैं। अभी सदियोंकी मानसिक और शारीरिक दासताओंको तोड़नेकी उसमें हिम्मत और क्षमता थी। साथ ही अरबी खलीफा (उमैया और अब्बासी) कोई संकीर्ण विचारवाले धर्मान्ध शासक नहीं थे। इस्लामकी

पहिली सदीमें चाहे कुछ तोड़-फोड़ हुआ हो, मगर बादमें दुनियाकी सभी संस्कृतिओं और उनकी देनोंके मुसल्मान शासक जबर्दस्त कदरदान संरक्षक थे। अफलातूँ, अरस्तू और दूसरे यूनानी दार्शनिकों—साइंस-वेत्ताओंका पता भी नहीं लगता, यदि बगदादके खलीफोंके समय अनुवाद और टीकाओं द्वारा उनकी रक्षा न की गई होती। उस समय भारतसे भी कितने ही विद्वान बड़े सम्मानपूर्वक बगदाद बुलाये गए थे, जिन्होंने भारतीय दर्शन, वैद्यक, गणित और ज्योतिषके बहुतसे ग्रन्थोंके अरबी अनुवाद करनेमें सहायता की थी। मुस्लिम अरबोंने हिन्दुस्तानी अंकोंको स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि उन्हींके द्वारा वह सारे युरोपमें फैला।

अब्दुर्रहमानकी कवितामें जो बिल्कुल भारतीय आत्मा बोल रही है वह बनावटी बात नहीं थी। अब्दुर्रहमानने देवताका मंगलाचरण करते वक्त अपने ग्रंथमें अपनेको मुसल्मान भक्त साबित किया है। ग्यारहवीं शताब्दीसे मुस्लिम और हिन्दू सामन्तोंमें राजनीतिक शक्तिको हथियानेके लिए जो भीषण संघर्ष शुरू हुए, उसीके प्रोपेगण्डामें हिन्दू और इस्लाम धर्म घसीटे जाने लगे, जैसे कि आज हॉलिफेक्स और चर्चिल जैसे कट्टर साम्राज्यवादी ईसाई-धर्मको घसीट रहे हैं। यह देशका दुर्भाग्य था कि सामन्तोंके इस झूठे प्रोपेगण्डाका शिकार साधारण जनता भी होती थी और उसने कितने ही समय अपनेको अन्धा सिद्ध किया।

जिस वक्त सामन्त अपने स्वार्थके लिए धर्मकी दुहाई देकर कटुताका बीज बो रहे थे, उसी समय सरल-हृदय मानवता-प्रेमी कुछ दूसरे भी पुरुष हुए थे, जो सामन्तोंकी चालसे क्षुब्ध थे और अपनी शक्ति भर दोनों संस्कृतियों और धर्मोंमें भाई-चारा स्थापित करनेकी कोशिश करते थे। हाँ, वह संख्या और साधन दोनोंमें कमजोर थे। सूफी महात्माओंकी संख्या कभी अधिक नहीं रही और वह जिस तसव्वुफ और अद्वैतका प्रचार करते थे, वह साधारण जनताकी पहुँचसे बाहरकी बात थी। साधारण जनताके समझने और लाभकी बातको लेकर यदि वह कुछ करना चाहते, तो उनकी हालत भी वही हुई होती, जो कि

साम्यवादी सैयद मुहम्मद मेंहदी जौनपुरी[1] की हुई। सामन्तोंका हथियार सीधा सांसारिक भोगका प्रलोभन था, जब कि दोनों संस्कृतियोंमें समन्वय स्थापित करनेवालोंका हथियार था, अधिकतर परलोकवाद और मानवकी सहज सहृदयतासे अपील करना।

तेरहवीं और बादकी भी दो-तीन सदियोंमें हमें यदि खुसरोको छोड़कर कोई मुस्लिम कवि नहीं दिखलाई पड़ता, तो इसका यह मतलब नहीं कि करोड़ों भारतीय मुसंल्मान बनते ही कवि-हृदयसे बिल्कुल बंचित हो गए। हिन्दुस्तानकी खाकसे पैदा हुए सभी मुसल्मानोंके लिए अरबी-फारसीका पंडित होना सम्भव नहीं था। अब्दुर्रहमान जैसे कितने ही कवियोंने अपनी भाषामें मानव-समाजकी भिन्न-भिन्न अन्तर्वेदनाओंको लेकर कविताकी होगी। कुछको उन्होंने कागजपर भी लिखा होगा; मगर उनको हम तक पहुँचानेके लिए सहायक नहीं मिले। सुल्तानी दर्बारमें विदेशी भाषाओंकी तूती बोल रही थी। मुस्लिम सामन्तोंके पुस्तकालयोंमें हिन्दुस्तानी लिपि और हिन्दुस्तानी भाषामें लिखी गई कविताएँ पचास-पचास पीढ़ी तक कैसे सुरक्षित रह सकती थीं। उधर हिन्दू सामन्तोंके यहाँ जब स्वयंभू जैसे प्रथम श्रेणीके कवि भी जैन होनेके कारण भुला दिए जा सकते हैं, तो मुसल्मान कविके बारेमें पूछना ही क्या है। यह वजह है जो अब्दुर्रहमान (१०१०)से कुतबन (१४९३) तककी प्रायः पाँच सदियोंमें हम किसी मुसल्मान कविकी रचनाका पता नहीं पाते। रचनाएँ काफी रही होंगी, लेकिन परिस्थितियाँ उनके जीवित रहनेके अनुकूल नहीं थीं। उन्हें एक ओर "हिन्दी-गन्दी" समझा जाता था और दूसरी ओर म्लेच्छ कविकी कृति।

५. सांस्कृतिक अवस्था

संस्कृति एक बहुत ही व्यापक शब्द है। यहाँ इस युगकी चित्रकला, मूर्त्तिकला, वास्तुकला, संगीतकलाके बारेमें ही दो-चार शब्द हम कहना चाहते हैं। पाँचवीं-छठीं

---

[1] देखो "मानव-समाज"

सदी भारतीय कलाके मध्याह्नका युग था। सातवीं सदी तक पूर्व-अर्जित मान बना रहा। आठवीं-नवीं सदीमें कुछ ह्रास जरूर होने लगा, लेकिन पतन पूरी तौरसे दसवीं सदीमें दिखलाई पड़ता है। खास करके यह बात चित्र और मूर्त्ति-कलाके बारेमें बहुत देखी जाती है। दसवीं शताब्दी और उसके बादकी मूर्त्तियाँ बिल्कुल ही बदसूरत और भावशून्य हैं। वैसे तो तीर्थंकरकी मूर्त्तियोंको बनानेमें पहिलेसे भी कलाकार बेगार-सी टालते दीख पड़ते थे। पाँचवीं, छठीं, सातवीं सदीकी कुछ बुद्ध मूर्त्तियाँ बड़ी सुन्दर हैं, मगर आठवीं सदीके बाद तो बुद्ध और तीर्थंकरोंकी मूर्त्तियाँ निरी पाषाण-सी रह गई हैं। हाँ, बोधिसत्त्वों और ताराकी मूर्त्तियाँ नवीं-दसवीं सदीमें उतनी बुरी नहीं देख पड़ती, बल्कि कोई-कोई तो बहुत सुन्दर हैं, खास करके कुर्किहारकी आठवीं-नवीं सदीकी कितनी ही पीतलकी मूर्त्तियाँ बहुत सुन्दर हैं। दसवीं, ग्यारहवीं सदीके कुछ चित्रपट तिब्बतमें मौजूद हैं। लदाख और स्पितिके बौद्ध मठोंमें कुछ भित्ति-चित्र भी बहुत अच्छे हैं। लेकिन दसवीं-ग्यारहवीं सदीके जो चित्र जैन और बौद्ध ताल-पोथियों-पर मिले हैं, वे जरूर भद्दे हैं। जान पड़ता है नवीं सदीके बाद अपवाद रूपसे ही कोई-कोई अच्छे चित्रकार और मूर्त्तिकार रह गये। कला जितनी दूर तक अव-नत हो चुकी थी और जिस तरहके भद्दे नमूनोंको तैयार किया जा रहा था, उसे देखनेसे महमूदके आक्रमणके बाद—खासकर बारहवीं सदीके बाद—से जो चित्र-मूर्त्तिकलाकी ओरसे उदासीनता बर्त्ती जाने लगी, वह अनुचित नहीं थी। वास्तुशिल्प और खासकर पत्थरोंकी नक्काशी बारहवीं शताब्दीमें उतनी बुरी न थी। देलवाड़ाके जैन मंदिरोंमें संगमर्मरपर खुदे कमल मधुच्छत्र बहुत सुन्दर हैं, यद्यपि उनमें अलंकरणकी मात्रा जरूरतसे ज्यादा दीख पड़ती है, जिससे गुप्तकालीन सादे सौम्य सौन्दर्यकी उसमें कमी है। तो भी, संगमर्मरको मोम या मक्खनकी तरह अपनी छिन्नियोंसे काट-काटकर कलाकारने जो कौशल दिखाया है, वह सराहनीय है। लेकिन उसी पत्थरमें जो मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं, उनसे विश्वास ही नहीं होता, कि उतने सुन्दर कमल और मधुच्छत्र बनानेवाले हाथ इतनी भद्दी मूर्त्तियाँ भी बना सकते हैं। बारहवीं सदीके बाद तो एक तरह चित्र और मूर्त्तिकलाका दिवाला ही निकल जाता है।

इस युगमें संगीतकी ओर भी ध्यान दिया गया था। आजकलकी कितनी ही राग-रागिनियोंका वर्गीकरण और नामकरण अपभ्रंश-साहित्यके आरंभके साथ होता है। नृत्य और संगीतकी ओर यद्यपि सामन्त-वर्ग बहुत ध्यान देता था और सामन्त-कन्याओंकी शिक्षामें वह अनिवार्य विषय था; लेकिन अब राजकुमारियाँ दंडीके समयकी तरह अपने कौशलका प्रदर्शन खुले आम नहीं कर सकती थीं। खुले आम नृत्य-संगीतकी जिम्मेवारी अब केवल वेश्याओंपर रह गई थी।

यद्यपि हमारे युगमें कालिंजरमें "प्रबोध-चंद्रोदय" जैसे कुछ नाटक लिखे गए, मगर जान पड़ता है, अब नाटकोंका समय बीत चुका था। जहाँ नाटकके लिए जबर्दस्त प्रेरणा स्वाभाविक मानव-जीवन था, वहाँ अब वेदान्त और दर्शन अपने ध्यान-ज्ञान और राग-द्वेष आदिके रूपमें नाटकोंके लिए पात्र देने लगे, फिर वह नाटक कैसा होगा, यह आप खुद समझ सकते हैं।

सामन्तोंकी विलासिताने कुछ नई कलाओंकी भी सृष्टि की। स्वयंभूने राष्ट्रकूट ध्रुव और उसके उत्तराधिकारीके जल-क्रीड़ा-मण्डपमें जो देखा-सुना था, उसीका वर्णन अपने रामायणमें जल-क्रीड़ाके रूपमें किया। उस समय सामन्तोंके स्नान-कुण्ड, स्नान-मण्डप उसके खंभे और दीवारोंके अलंकृत करनेमें जंगम और स्थावर रत्नोंका व्यय दिल खोल कर किया जाता था। सामन्तोंकी कलाका प्रधान उद्देश्य होता ही था कामोद्दीपन। वस्तुतः सामन्तोंके जीवनका आदर्श ही था—खाओ, पिओ, मौज करो। धर्म, दर्शन सारे उसके लिए दिखावे और जब तब मन बहलावकी चीज थे।

६. साहित्यिक अवस्था

हमारा यह साहित्य-युग उस वक्त आरंभ होता है, जब कि बाण और हर्षवर्धनको रंगमंच छोड़े बहुत देर नहीं हुई थी। कवियोंमें अश्वघोष, भास, कालिदास, दण्डी भवभूति, और बाणकी कृतियाँ बहुत चावसे पढ़ी जाती हैं। स्वयंभूने इन पुराने कवियोंके प्रति अपनी कृतज्ञता साफ प्रकट की है। सिद्धोंमेंसे भी सरहपा, तिलोपा, शान्तिपा जैसे कितने ही संस्कृतके बड़े-बड़े पंडित थे; हाँ, जब

वे भाषा-कविता लिखने बैठते, तो अपने संस्कृत-भाषाके ज्ञानको भूल जाते थे। तभी वह इतनी सरल भाषामें लिखनेमें सफल हुए।

कविता और कविको सदा आश्रयकी जरुरत होती है। वह युग सामन्तोंका था। जिस काव्य और कविको सामन्त-वर्गका आश्रय प्राप्त था, वह आर्थिक लाभके तौर पर ही सफल नहीं होता, बल्कि वह चिरस्थायी होनेका अधिकार रखता था। हर युगकी तरह उस समय भी साधारण जनताकी रुचिको पूर्ण करनेके लिए कविताएँ बनती थीं। मगर उनके चिरस्थायी होनेके मार्गमें बहुत सी बाधाएँ थीं। यद्यपि स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे कवि अत्यन्त असाधारण कवि थे, मगर उनके लिए सामन्ती दर्बारोंमें वह भी सुभीता नहीं था, जो कि किसी थर्ड-क्लास संस्कृतके विद्वानका होता था। पुष्पदन्तने तो इसीलिए बल्कि झुँझलाकर कह भी दिया कि जिस वक्त प्रभुवर्गकी यह हालत है, उस वक्त हमारे जैसोंके लिए जंगलमें गुमनाम मारे-मारे फिरते रहना ही अच्छा है। इसीलिए पुष्पदन्तने सामन्तोंके चमर और अभिषेक जलको सज्जनताको धो-बहानेवाला ठहराया। उत्तर-कुरु वैसे भी एक वर्गहीन सुजल, सुफल, सुखी देशके तौरपर प्रसिद्ध था, मगर पुष्पदन्तके पहिले हीसे कवि लोग उसे भूल गए थे। पुष्पदन्तने "न दास न कोउ राज" "मानव दिव्य", "अगर्वं सुभव्य, समानहिं सर्वं" कहकर "अहो कुरु-भूमि निशंसय स्वर्ग" कहा, इससे भी जान पड़ता है कि देशभाषाके प्रतिभाशाली कवियोंको कितनी प्रतिकूल स्थितिमें रहना पड़ता था। स्वयंभू जैसे महान् कविको भी किसी बड़े दर्बारमें स्थान न पा एक गुमनामसे अधिकारी धनंजय, रयडाके आश्रयमें रहकर जिन्दगी गुजार देना भी उसी बातको पुष्ट करता है। अभी चक्रवर्त्ती लोग संस्कृत और थोड़ा-बहुत प्राकृत—जो कि अब मृत-भाषा बन चुकी थी—पर ही ज्यादा निगाह रखते थे। शायद वह समझते थे, कि देशी-भाषामें गुंथी उनकी कीर्त्ति-माला चन्द ही दिनोंमें कुम्हला जाएगी, अमर कीर्त्ति तो संस्कृत काव्यों द्वारा ही मिल सकती है, इसीलिए उन्हें अपभ्रंश कवियोंकी ओर ज्यादा ध्यान देनेकी जरूरत नहीं थी।

सिद्धोंके लिए इस बारेमें कोई दिक्कत नहीं थी। उन्हें किसी दर्बारके

आश्रयकी उतनी जरूरत नहीं थी, जितनी कि दर्बारको। जल्द सुला देनेवाली उनकी मीठी गोलियोंका जनतापर बहुत प्रभाव था—विचित्र जीवनके कारण दिव्य चमत्कारके कारण, अथवा ज्ञान-विज्ञानके कारण कह लीजिए; राजा सिद्धोंकी पूजा-अर्चामें सबसे आगे रहना चाहते थे। शान्ति पा या रत्नाकर शान्तिको गौड़ नरेश उसी तरह आँखोंपर रखनेके लिए तैयार थे, जैसे मालव-दर्बार या सिंहलेश्वर।

(१) **सिद्धोंकी कविता**—शायद कविताके रूढ़ि-बद्ध संकीर्ण लक्षणको लेने-पर कबीरकी तरह सिद्धोंकी कविता भी कविता न गिनी जाए या कमसे कम अच्छी कविता न समझी जाए; लेकिन लाखों नर-नारियोंको उनमें रस, एक तरह-की आत्म-तृप्ति मिलती थी और आज भी उस तरहकी मनोवृत्ति रखनेवाले कितने ही पाठकोंको वह उतनी ही रुचिकर मालूम होती है; इसलिए उन्हें कविता मानना ही पड़ेगा। यह ठीक है, उनकी भाषा सीधी-सादी है समझनेमें बहुत सुगम है, लेकिन यह कविताका कोई दोष नहीं। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए, कि सिद्धोंकी सीधी-सादी भाषाको भी लोगोंने खींचातानी करके दृष्टकूट बना उनकी भाषाको "सन्ध्या-भाषा" बना डाला, और फिर तो वह उतनी ही दुर्बोध और क्लिष्ट हो गयी, जितना कि श्रीहर्षका "नैषध" या माघका "शिशुपाल-वध"।

हम बतला चुके हैं, आदिम सिद्ध किस तरह कृत्रिम बहु-निर्बन्ध-पूर्ण जीवनको सहज-जीवनका रूप देना चाहते थे और इसके लिए समाजके चौधरियोंकी कितनी ही रूढ़ियोंको वह तोड़-फेंकना चाहते थे। उनका उद्देश्य कभी नहीं था कि लोग सहज-जीवन बितानेके लिए अँधेरी कोठरियों और "गुह्य-समाजों"का आश्रय लें। वह इस बातमें सफल नहीं हुए और उनका सहज-यान भी सामन्त-समाजका एक दूसरा कोढ़ बनकर रह गया। उनके आशावादको भी आगे बढ़नेका अवसर नहीं मिला। हाँ, अलख-निरंजनका जो राग उन्होंने गाया, वह चिरकालके लिए अपना असर छोड़ गया। यद्यपि सिद्धोंके अलख-निरंजनसे राम-रहीम या ईश्वर-परमेश्वरसे कोई संबंध नहीं था। वह तो पंडितों और रूढ़िवादियोंके शास्त्र, वेद, पोथी-पत्रेसे न जाने जा सकनेवाले—अ-लख, विशुद्ध सत्य—को बतलाता

था, जो कि वस्तुतः बौद्धोंके निर्वाणका ही विशेषण है। लेकिन पीछेके चेलों—कबीर नानकसे लेकर राधास्वामी दयाल तक—ने उसका और ही अर्थ लगाकर लोगोंको मुक्तिकी ओर नहीं दिमागी गुलामीकी ओर ढकेला।

सिद्ध पुरानी रूढ़ियों, पुराने पाखण्डोंके बहुत विरोधी थे। आदिम सिद्धोंने तो सरहकी तरह अपने बड़े सम्मान और सुखी जीवनकी भी पर्वाह नहीं की। सरह किसी वक़्त नालन्दाके एक बड़े प्रतिष्ठित पंडित थे। मगर जब उन्हें वहाँका जीवन दमघोंटू लगने लगा, तो उन्होंने सब कुछको लात मारा, भिक्षुओंका बाना छोड़ा, अपनी (ब्राह्मण) नहीं किसी दूसरी छोटी जातिकी तरुणीको लेकर खुल्लमखुल्ला सहजयानका रास्ता पकड़ा। सरहने सिर्फ़ दूसरे ही पन्थोंके पाखण्डोंका खण्डन नहीं किया, बल्कि बौद्धोंको भी नहीं छोड़ा। इस बातका अनुकरण पीछेके सन्तोंमें भी पाया जाता है, लेकिन अपने पन्थ और मतको बचाकर। यद्यपि ये पुराने सिद्ध किसी पाखण्डको फैलाना नहीं चाहते थे, लेकिन पीछे उन्हींके नामपर कितने ही मंत्र-तंत्र और पाखण्ड चल पड़े। सिद्धोंने सुख-दुख और दुनियाकी सभी समस्याओंको केवल व्यक्तिके रूपमें देखा। उन्हें ख्यालमें भी नहीं आया, कि समाजकी बुराइयोंको सामाजिक रूपसे ही दूर करनेपर सफलता मिल सकती है। लेकिन जैसा कि हमने पहिले लिखा है, सिद्धोंको निराशावाद छू नहीं गया था। वह निराशावाद, योग-वैराग्यसे लोगोंका पिण्ड छुड़ाना चाहते थे और उन्होंने मरनेके पीछे मिलनेवाले निर्वाणके पीछे भागनेवाले लोगोंकेलिए इसी संसारमें स्वाभाविक भोगमय जीवन बितानेका आदर्श उपस्थित किया। सिद्धोंने आत्मावलंबनको यद्यपि पसन्द किया, मगर साथ ही गुरुकी महिमाको उन्होंने इतना बढ़ाया, कि पीछे वही अन्धेरगरदीका एक भारी साधन बन गया। सिद्धोंके बाद जैन रहस्यवादी कवि, कबीर, दादू, राधास्वामी सबने गुरुकी अनन्य भक्तिका राग अलापा।

सिद्धोंकी कवितामें अधिकतर सहजयान और रहस्यवाद ही मिलता है। जिनकी सामन्त-समाजको कभी-कभी जरूरत पड़ती थी, उनको आवश्यकता ऐसे काव्योंकी थी, जिनमें शृंगार और वीररसका जोर हो।

(२) **शृंगार और वीररस**—उस समयके सामन्त-जीवनका उद्देश्य था

चाहे जैसे भी हो दुनियाका आनन्द खूब डट करके लेना। ऐसा कहनेसे आचारके नियमोंके विरुद्ध जानेकी ज़रूरत नहीं है; क्योंकि पुरोहित और महन्त अपने मालिकोंकी रुचिके अनुसार हर वक़्त नये धर्मशास्त्र और नये आचार-नियम बनानेके लिए तैयार थे। हाँ, भोग निष्कंटक नहीं हो सकता था। हर वक़्त एक सामन्तको दूसरे सामन्तसे ही खतरा नहीं था, बल्कि खुद अपने भाई-बहिनोंसे भय लगा रहता था। यदि ज़रा भी चूके, कि भोग और जान दोनोंसे हाथ धोना पड़ा। इसीलिए सामन्तोंको भोगके लिए पूरी क़ीमत अदा करनेको तैयार रहना पड़ता था। स्वयंभू और पुष्पदन्तने सामन्त-जीवनके इन दोनों पहलुओं—भोग भोगना और मृत्युको तृणवत् समझना—का सुन्दर चित्रण किया है, इतना सुन्दर चित्रण पीछेके काव्योंमें हमें नहीं मिलता। सामन्तको मृत्युकी कोई पर्वाह नहीं थी, न मृत्युके बादकी। विजय हुई तो उसके चरणोंमें सारे भोग पड़े हैं। हाँ, यदि कभी पराजयका मुँह देखना पड़ा, तब या तो सरहपाके पास जाना पड़ता या किसी अपने कविसे निराशावादकी बात सुन सन्तोष करना पड़ता। स्वयंभू और पुष्पदन्तने पराजित सामन्तोंके लिए काफ़ी सन्देश छोड़े हैं।

हेमचन्द्रके संगृहीत एक पदमें "बापकी भूमड़ी" (पितृ-भूमि)के लिए सर्वस्व-उत्सर्ग करनेकी जो भावना दर्शायी गई है, उसे देखकर हमारे कितने ही पाठक शायद उछल पड़ें। लेकिन यह बापकी भूमड़ी साधारण जनताके ख्यालसे नहीं कही गई। यह सामन्तोंकी अपने हाथसे निकल गई बापकी भूमड़ी—निरंकुश राज—को फिरसे लौटानेके लिए आदेश है। अस्सी फ़ीसदी जनता और भविष्यकी सारी पीढ़ियोंके सुख और स्वार्थका वहाँ कोई ख्याल नहीं था।

तब और पीछेके भी कवि सन्देश देते हैं—काया नरक, संसार तुच्छ, कोई किसीका नहीं। यह कोई उच्च भावनाका परिचायक नहीं है। चूँकि उनके जीवनके कुछ महीने या कुछ बरस दुखमें कटे और जिस दुखका कारण भी बहुत कुछ समाजकी विषमनीति है, जिसे कि हटानेसे बहुतसे दुखोंके कारण खतम हो सकते हैं। लेकिन कविने अपने उस थोड़े समयके दुखको इतना बड़ा करके देखा कि उसे आनेवाली हज़ारों पीढ़ीके सुख-दुखका कुछ भी ख्याल

नहीं आया। एक जीवनके सुख-दुखसे आनेवाली अगनित पीढ़ियोंका सुख-दुख परिमाणमें कहीं अधिक है, लेकिन जो उसका न ख्यालकर सिर्फ़ अपने हीको सब कुछ समझ लेता है, क्या यह उसकी अत्यन्त निम्न कोटिकी स्वार्थान्धिता नहीं है? हमारे कवियोंने व्यक्तिके सामाजिक कर्त्तव्यकी ओर ध्यान नहीं दिया। उसका कारण था, वही सामन्त-समाज, जिसके हाथमें सारे समाजकी नकेल थी और जो व्यक्तिगत आनन्दको ही सर्वोपरि चीज़ समझता था। हमारे आजके भी कवि जब ऐसी ग़लती कर बैठते हैं, तो इन पुराने कवियोंको दोष देनेकी क्या ज़रूरत। वस्तुतः कवियोंने अत्यन्त संदिग्ध परलोकवाद और वैयक्तिक निराशावादपर जितना ज़ोर दिया, उससे ज्यादा उन्हें चाहिए था, अपनी आगेवाली पीढ़ियोंके मुँहकी ओर देखना—जो पीढ़ियाँ कि संदिग्ध और काल्पनिक नहीं बिल्कुल वास्तविक हैं, यह बात खुद उन्हें अपना अस्तित्व बतला देता। केवल अपने लिए अनन्तजीवनकी मिथ्या आशाकी वेदीपर उन्होंने आनेवाली पीढ़ियोंके वास्तविक अनन्त-जीवनकी बलि चढ़ा देनेमें ज़रा भी आनाकानी नहीं की।

(३) **कुछ कवियोंका मूल्यांकन**—(क) **स्वयंभू**—हमारे इसी युगमें नहीं हिन्दी-कविताके पाँचों युगों (१—सिद्ध-सामन्त-युग, २—सूफ़ी-युग, ३—भक्त-युग, ४—दर्बारी-युग, ५—नवजागरण-युग)के जितने कवियोंको हमने यहाँ संग्रहीत किया है, उनमें यह निस्संकोच कहा जा सकता है, कि स्वयंभू सबसे बड़ा कवि था। वस्तुतः वह भारतके एक दर्जन अमर कवियोंमेंसे एक था। आश्चर्य और क्रोध दोनों होता है कि लोगोंने कैसे ऐसे महान् कविको भुला देना चाहा। स्वयंभूके रामायण और महाभारत (या कृष्ण-चरित्र) दोनों ही विशाल-काव्य हैं। उनके विशाल आकारको देखकर सन्देह हो सकता है कि कविने कितनी जगह काव्य-शरीरको जैसे-कैसे भी फुलानेकी कोशिश की होगी, मगर ऐसा प्रयत्न सिर्फ़ वहीं देखनेमें आता है, जहाँ अपने सहधर्मियोंकी ज़बर्दस्तीके कारण वह जैन-धर्मकी कितनी ही नीरस रूढ़ियोंको बखाननेके लिए मजबूर होता है—ठीक वैसे ही जैसे कुशल चित्रकार और मूर्त्तिकार तीर्थंकरोंकी मूर्त्ति बनानेमें बेगार टालने लगते। हम समझते

हैं कि ऐसे बेगारवाले अंश कविके कविता-कलेवरके अभिन्न अंग नहीं हैं। उनके हटा देनेसे न कथानककी शृंखला ही टूटती है और न रसधारा ही।

यद्यपि स्वयंभू बाणसे "घनघनऊ" या समास उधार लेनेकी बात कहता है, लेकिन हर्षचरित और कादंबरीके विकट समासोंका स्वयंभूमें पता नहीं लगता। स्वयंभूकी भाषाका प्रवाह बिल्कुल स्वाभाविक है। उसने खामख्वाह दुरूहता लानेकी कहीं कोशिश नहीं की। पद्य-स्वर बड़े ही कर्णप्रिय हैं। शब्द बिल्कुल नपे-तुले हैं, और रस-परिपाक तो बराबर ऊपर और और ऊपर उठता जाता है। उसका कवि-कौशल कितना श्रेष्ठ है, यह इसीसे मालूम होगा कि मैंने रामायणसे शृंगार, वीर, वीभत्स, आदिके उदाहरणोंको जब जमा किया, तो ग्रन्थके कलेवरके बढ़ जानेके भयसे उनमेंसे एक ही एकको देना चाहा, मगर फिरसे पढ़नेपर मालूम हुआ, कि स्वयंभूके वर्णनमें हर जगह नवीनता है, इसलिए एकसे अधिक उद्धरण देनेके लिए मजबूर होना पड़ा।

स्वयंभूने प्रकृतिका बहुत गहरा अध्ययन किया है, यह हमारे दिये हुए उद्धरणोंसे मालूम होगा। समुद्र और कितने ही अन्य स्थलों, प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन करनेमें वह अद्वितीय है। और सामन्त समाजके वर्णनमें उसकी किसीसे तुलना नहीं की जा सकती। किसी एक सुन्दरीके सौन्दर्यको जितना अच्छी तरह उसने चित्रित किया है, वह तो किया ही है, लेकिन सुन्दरियोंके सामूहिक सौंदर्यका वर्णन करनेमें उसने कमाल कर दिया है। चित्रकारकी भाँति कविके सामने भी कोई साकार नमूना रहना चाहिए। स्वयंभूने राष्ट्रकूटोंके रनिवास और उनके आमोद-प्रमोदको नज़दीकसे देखा था। वहाँ परदा बिल्कुल नहीं था, इसलिए और सुविधा थी। उसी सौन्दर्यको उसने रावण और अयोध्याके रनिवासोंके सौन्दर्यके रूपमें चित्रित किया है।

विलाप-चित्रणमें भी उसने बड़ी सफलता प्राप्त की है। रावणके मरनेपर मन्दोदरी और विभीषणके विलाप सिर्फ़ पाठकके नेत्रोंको ही सिक्त नहीं कर देते, बल्कि उसका मन मन्दोदरी और विभीषण तथा मृत रावणके गम्भीर और उदात्त भावोंकी दाद देता है।

सामन्ती युगमें स्त्रियोंका अधिकार ही क्या हो सकता है? तो भी सिद्ध-

युग, तथा बादकी शताब्दियोंकी अपेक्षा उनकी अवस्था कुछ बेहतर जरूर थी। स्वयंभूने सीताका जो रूप रावणको जवाब देते और अग्नि-परीक्षाके समय चित्रित किया है, पीछे उसका कहीं पता नहीं लगता।

मालूम होता है, तुलसी बाबाने स्वयंभू-रामायणको जरूर देखा होगा, फिर आश्चर्य है कि उन्होंने स्वयंभूकी सीताकी एकाध किरण भी अपनी सीतामें क्यों नहीं डाल दिया। तुलसी बाबाने स्वयंभू-रामायणको देखा था, मेरी इस बातपर आपत्ति हो सकती है, लेकिन मैं समझता हूँ कि तुलसी बाबाने "क्वचिदन्यतोपि"से स्वयंभू-रामायणकी ओर ही संकेत किया है। आखिर नाना पुराण निगम आगम और रामायणके बाद ब्राह्मणोंका कौनसा ग्रंन्थ बाक़ी रह जाता है, जिसमें रामकी कथा आई है। "क्वचिदन्यतोपि"से तुलसी बाबाका मतलब है, ब्राह्मणोंके साहित्यसे बाहर "कहीं अन्यत्रसे भी" और अन्यत्र इस जैन ग्रन्थमें रामकथा बड़े सुन्दर रूपमें मौजूद है। जिस सोरों या शूकरक्षेत्रमें गोस्वामी जीने रामकी कथा सुनी, उसी सोरोंमें जैन-घरोंमें स्वयंभू रामायण पढ़ा जाता था। राम-भक्त रामानन्दी साधु रामके पीछे जिस प्रकार पड़े थे, उससे यह बिल्कुल सम्भव है कि उन्हें जैनोंके यहाँ इस रामायणका पता लग गया हो। यह यद्यपि गोस्वामी जीसे आठ सौ बरस पहले बना था किन्तु तद्भव शब्दोंके प्राचुर्य तथा लेखकों-वाचकोंके जब-तबके शब्द-सुधारके कारण अभी आसानीसे समझमें आ सकता था। जो उद्धरण हमने यहाँ दिये हैं, उनमेंसे कितनोंका प्रभाव रामचरितमानसके कई स्थलोंपर दिखलाई पड़ेगा। इसका यह हरगिज़ मतलब नहीं, कि गोसाईंजीने भाव वहाँसे चुराया, या उनकी प्रतिभा सिर्फ़ नक़ल करनेकी थी; गोस्वामी जीकी काव्य-प्रतिभा स्वतः महान् है। उसे पहलेकी प्रतिभाओंका वैसे ही सहारा मिला होगा, जैसे हरेक बालकको अपने पूर्वजोंकी कृतियोंकी सहायतासे अपने ज्ञानका विस्तार करना पड़ता है।

(ख) **पुष्पदन्त**—पुष्पदन्तका नम्बर स्वयंभूके बाद आता है, किन्तु इस युगके बाक़ी कवियोंमें उसका स्थान बहुत ऊँचा है। पुष्पदन्तकी उपाधियोंमें अभिमान-मेरु बिल्कुल यथार्थ मालूम होता है। मंत्री भरतको इस फक्कड़

कविकी बहुत नाजबरदारी करनी पड़ी होगी। अमीरोंके लिए तो उसने पहले ही कह दिया था "चमरानिलही उड़ेउ गुणाइँ"। "अभिषेक धोंयउ-सुज-नत्तननाय।" कृष्णराजके दर्बारमें पुष्पदन्त कभी अपने मनसे गया होगा, इसमें सन्देह ही मालूम होता है। पुष्पदन्तने विरहका वर्णन बड़ा सुन्दर किया है और ग़रीबीका भी। अमीरोंके विलासको छोड़कर तो वह महाकाव्यको लिख ही नहीं सकता था, इसलिए वह तो जरूरी ही था; मगर सामन्तोंकी संक्षिप्त किन्तु अतिकठोर आलोचना की है कुछ ही शताब्दियों पहले अपनी प्रजातंत्रीय स्वतंत्रतासे वंचित मगर अब भी जब-तब लड़ती रहनेवाली यौधेयकी भूमिका इतना आकर्षक वर्णन और अन्तमें उत्तर-कुरुकी धनी-ग़रीब-रहित दास-राजा-शून्य दिव्य-मानववाली भूमिकी भारी तारीफ़ बतलाती है कि पुष्पदन्तका व्यक्तित्व किसी दूसरी ही तरहका था, जिसके लिए उस कालकी परिस्थिति अनुकूल नहीं थी।

(ग) **दो कलिकाल-सर्वज्ञ**—हमारे इस युगमें दो "कलिकाल-सर्वज्ञ" भी हैं। सिद्ध शान्तिपा या रत्नाकरशान्ति (१००० ई०) भारतके शायद सर्व-प्रथम "कलिकाल-सर्वज्ञ" थे। गौड़ नृपतिके राजगुरु और विक्रमशिलाके प्रधान होनेसे भी मालूम हो सकता है, कि वह अपने समयके असाधारण पण्डित थे। शान्तिपाके कुछ दर्शन और एक छन्दःशास्त्र "छन्दो-रत्नाकर" ग्रन्थ अब भी बच रहे हैं। दूसरे कलिकाल-सर्वज्ञ हैं आचार्य हेमचन्द्रसूरि (१०८८-११७९)। इनके संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। अपनी मातृभाषामें उन्होंने कोई स्वतंत्र काव्य रचा था, इसकी कम सम्भावना है। लेकिन अपने व्याकरण 'छन्दोनुशासन' और "देशी-नाममाला" (कोष) द्वारा जो सेवा उन्होंने हमारी भाषाकी की है, वह स्मरणीय है। अपने व्याकरण और छन्दोनुशासनमें उदाहरणके तौरपर उन्होंने अपभ्रंशके बड़े सुन्दर-सुन्दर सैकड़ों पद्य उद्धृत किये हैं, जिससे मालूम होता है कि वह इस भाषाको लम्बी नाकवाले पंडितोंकी तरह उपेक्षणीय नहीं समझते थे।

(घ) **कवि अब्दुर्रहमान**—अब्दुर्रहमान हिन्दीका प्रथम मुस्लिम कवि है। (उसकी) भाषा और कलासे मालूम होता है कि कविकी वाणी खूब मँजी

हुई है। मधुर शब्दोंके चुनाव तथा सरल और प्रवाहयुक्त भाषा लिखनेमें अब्दुर्रहमानने बड़ी सफलता प्राप्त की है। अफ़सोस है कि इतने सुन्दर कविकी इतनी कम कविता हमें प्राप्त है। वह भी लुप्त हो गई होती, अगर किसी जैन-पुस्तक-भंडारने रक्षा न की होती। मंगलाचरणकी कुछ पंक्तियोंको छोड़कर इसकी कवितामें धर्म कहीं छू नहीं गया। कविके वास्तविक कालके बारेमें हमें कुछ नहीं मालूम, लेकिन जान पड़ता है कविकी जन्म-भूमि मुलतानके महमूदके हाथमें जानेसे पहले अब्दुर्रहमान मौजूद थे।

(४) कवियोंकी अमर कीर्त्ति

कवियोंने संसार तुच्छ, कोई किसीका नहीं, काया नरक आदि बातोंका प्रचार करके सामन्तोंका ही हित किया, साधारण जनता और आगे आनेवाली पीढ़ीका तो इससे घोर अहित हुआ। उन्होंने उत्पीड़ित प्रजाका पक्ष लेना तो दूर, उनके कष्टों तथा कारणोंके चित्रण करनेका भी प्रयास नहीं किया—इत्यादि-इत्यादि कितने ही दोष उनके ऊपर लगाए जा सकते हैं; लेकिन इसकी जिम्मेवारी बहुत कुछ तत्कालीन परिस्थिति और समाजपर है, इस बातका अपने पुराने महान् कवियोंके संबंधमें कोई फ़ैसला देते वक़्त हमें हमेशा ख्याल रखना होगा। सबसे बड़ी बात यह है, कि दोष भी तभी तक लोग देखेंगे, जब तक हमारी दुनिया नई नहीं बनती, इसकी सारी गंदगियाँ दूर नहीं हो जातीं। एक बार जहाँ हमारे समाजका कलेवर बदला, कि कवियोंकी महिमा सिर्फ़ उनके कवित्वके कारण होगी। रामके हाथों मुक्ति पानेवालोंका जब हमारे देशमें नाम भी नहीं रह जाएगा, तब भी तुलसीकी क़द्र होगी। स्वयंभूके धर्म (जैन)का अस्तित्व भी न रहनेपर स्वयंभू नास्तिक भारतका महान् कवि रहेगा। उसकी वाणीमें हमेशा यह शक्ति बनी रहेगी कि कहीं अपने पाठकोंको हर्षोत्फुल्ल कर दे, कहीं शरीरको रोमांचित बना दे और कहीं आँखोंको भीगनेके लिए मजबूर कर दे। सनातन-तुलामें नापनेपर हमारे कवियोंका सम्मान शताब्दियोंके बीतनेके साथ अधिक और अधिक बढ़ता जाएगा। जिस वक़्त शत-प्रतिशत जनता शिक्षित और संस्कृत होगी, जिस वक़्त कलाकी निष्पक्ष परखका मान

और ऊँचा होगा, उस वक़्त हमारे कवियोंका कीर्त्ति-कलेवर, उनका आसन और ऊँचा होगा।

कालने बड़ी बेदर्दीसे हमारे पुराने कवियोंकी छँटाई की है। जाने कितने उच्च काव्योंसे आज हम वंचित हैं। लेकिन इस छँटाईके बाद जो कुछ हमारे पास बचकर चला आया है, उसकी क़द्र और रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। ऐसा करके ही हम अपने पूर्वजोंका उत्तराधिकारी होनेका दावा कर सकते हैं।

हम चाहते हैं कि आदिसे लेकर आज तकके सभी महान् कवियोंकी कृतियोंको पाठकोंके सामने इस तरह रखा जाए, जिसमें वह काव्य-रसका अच्छी तरह आस्वादन कर सकें, कवियोंके मुखसे तत्कालीन समाजकी आप-बीती जान सकें और कवि-परंपराने किस तरह आनेवाली पीढ़ियोंको प्रेरणा और सहायता दी, इसे भी अच्छी तरह समझ सकें। हमारे संग्रहका पाँच युगोंवाला वर्त्तमान प्रयास सिर्फ़ बीचवाला भाग है जो चार खंडोंमें समाप्त होगा। बीसवीं सदीके कवियोंका संग्रह पाँचवाँ खण्ड होगा और वेदसे लेकर पीछे तकके संस्कृत-पाली-प्राकृत कवियोंका सूक्ति-संग्रह एक अलग खण्ड। उस खण्डमें छायासे काम नहीं चलेगा और मूल-भाषाका देना भी बेकार होगा, लेकिन हम चाहेंगे कि अनुवाद पद्य-बद्ध हों और जहाँ तक हो सके उन्हीं छन्दोंमें; लेकिन यह काम कवि ही कर सकते हैं। यदि ऐसे कवि उसे अपने हाथमें लेना चाहेंगे, तो हम सहर्ष उनकी यथायोग्य सहायता करेंगे।

प्रयाग
१४-८-४४

राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

६ : तेरहवीं सदी

[१]

१—सिद्ध-सामन्त-युग

(७६०—१३०० ई०)

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-युग

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

काल—७६० ई० (गोपाल-धर्मपाल ७५०-७०-८०६ ई०)। देश—मगध (नालंदा)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (६)। कृतियाँ[1]—कायकोष-अमृत-वज्रगीति, चित्तकोष-अज-वज्रगीति, डाकिनी-गुह्य-वज्रगीति, दोहाकोष-

१—दोहा[2]

(१) रहस्यवाद

अलिओ ! धम्म-महासुह पइसइ। लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ ॥२॥
मन्तह मन्ते सन्ति ण होइ। पडिलभित्ति की उट्ठिउ होइ ॥६॥
तरुफल-दरिसण णउ अग्घाइ। वेज्ज देक्खि की रोग पलाइ ॥७॥
जाव ण आप जणिज्जइ, ताव ण सिस्स करेइ।
अन्धाँ अन्ध कढाव तिम, वेण्ण 'वि कूव पडेइ ॥८॥ —दोहाकोष[2]
सङ्क-पास तोडहु गुरु-वअणे[*]। ण सुनइ सो णउ दीसइ णअणे[*] ॥३॥
पवण वहन्ते णउ सो हल्लइ। जलण जलन्ते णउ सो डज्झइ ॥४॥
घण वरिसन्ते णउ सो तिम्मइ। ण उवज्जहि णउ खअहि पइस्सइ ॥५॥
णउ तं वाअहि गुरु कहइ, णउ तं बुज्झइ सीस।
सहजामिअ-रसु सअल जगु, कासु कहिज्जइ कीस ॥९॥
सअ-संवित्ती तत्तफलु, सरहापाअ भणन्ति।
जो मण-गोअर पाविअइ, सो परमत्थ ण होन्ति ॥१०॥
—सरहपादीय दोहा ७, ८

---

[1] देखो मेरी "पुरातत्त्व-निबंधावलि" पृ० १६६ [2] The Journal of the

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-युग (७६०-१३०० ई०)

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

उपदेशगीति, दोहाकोष, तत्त्वोपदेश-शिखर-दोहाकोष, भावनाफल-दृष्टिचर्या-दोहाकोष, वसन्ततिलक-दोहाकोष, चर्यागीति-दोहाकोष, महामुद्रोपदेश-दोहाकोष, सरहपाद-गीतिका।

१—दोहा

(१) रहस्यवाद

अलिओ ! धर्ममहासुख प्रविशइ। नोन जिमी पानिहिं विलिज्जइ ॥२॥
मंत्रहिं मंत्रे शान्ति न होइ। प्रतिलब्धी का उत्थित होइ ॥६॥
तरुफल-दर्शन नाहि अघाइ। वैद्यहिं देखि कि रोग पराइ ॥७॥

जबलों आप न जानिये, तबलों सिख न करेइ।
अन्धा काढे अन्ध तिमि, दोउहिं कूप पडेइ ॥८॥ —दोहाकोष

शंक-पाश तोड़हु गुरु-वचने। न सुनइ सो नहिं दीसइ नयने ॥३॥
पवन वहन्ते ना सो हिल्लइ। ज्वलन जलन्ते ना सो डहियइ ॥४॥
घन बरसन्ते ना सो भीजइ। न उपजै न क्षयहिं पईसइ ॥५॥

ना सो वाचहिं गुरु कहइ, ना सो बूझइ शिष्य।
सहजामृत-रस सकल जग, कासु कहीजै कस्य ॥६॥
स्वक-संवित्ती तत्त्व-फल, सरहापाद भनन्ति।
जो मन-गोचर पाइअइ, सो परमार्थ न होन्ति ॥१०॥

—दोहा ७,८

Department of Letters, Calcutta University, Vol. XXVIII

(२) पाखंड-खंडन

बम्हणहि म जाणन्त हि भेउ। ऍवइ पढ़िअउ ए चउबेउ ॥१॥
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त। घरहीं बइसी अग्गि हुणन्त॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमें। अक्खि डहाविअ कडुएँ धूयें ॥२॥
ऍकदण्डि त्रिदण्डी भअवाँ वेसें। विणुआ होंइअइ हंस-उएसें।
मिच्छेहाँ जग वाहिअ भुल्लें। धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लें ॥३॥
अइरिएहिँ उद्दूलिअ छारें। सीस सु बाहिअ ए जडभारें॥
घरही वइसी दीवा जाली। कोणहिँ वइसी घण्डा चाली ॥४॥
अक्खि णिवेसी आसण बन्धी। कण्णेहिँ खुसखुसाइ जण धन्धी॥
रण्डी-मुण्डी अण्ण 'वि वेसें। दिक्खिज्जइ दक्खिण-उद्देसें ॥५॥
दीहणक्ख जइ मलिणे वेसें। णग्गल होइ उपाडिअ केसें॥
खवणेहि जाण-विडंविअ वेसें। अप्पण वाहिअ मोक्ख-उवेसे ॥६॥
जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह।
लोम उपाडण अत्थि सिद्धि, ता जुवइ-णिअम्बह ॥७॥
पिच्छी गहणे दिट्ठ मोक्ख, ता मोरह चमरह।
उञ्छ-भोअणें होइ जाण, ता करिह तुरङ्गह ॥८॥
सरह भणइ खवणाण मोक्ख, मह्ु किम्पि न भावइ।
तत्त-रहिअ काआ ण ताव, पर केवल साहइ ॥९॥
चेल्लु भिक्खु जे थविर उदेसें। बन्देहिँ आ पव्वज्जिउ-वेसें॥
कोइ सुतण्त बक्खाण बइट्ठो। कोवि चिण्ते कर सोसइ डिट्ठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता बेकार

जो जसु जेण होइ सन्तुट्ठों। मोक्ख कि लब्भइ झाण पविट्ठो॥
किन्तह दीवें किं तह णेवेज्जें। किन्तह किज्जइ मंतह सेव्वे ॥१४॥

(२) पाखंड-खंडन

ब्राह्मणहिँ ना जानन्ता भेद । यों ही पढ़ेँउ ये चारो वेद ॥१॥
माटि पानि कुश लिये पढ़न्त । घरही बइठी अग्नि होमन्त ॥
कार्य विना ही हुतवह होमेँ । आँखि डहावै कडुये धूयेँ ॥२॥
ऍकदण्डि त्रिदण्डी भगवा वेसे । ना होइहि विनु हंस-उपदेशे ॥
मिथ्यहि जग बाहेऊ भूले । धर्म-अधर्म न जानेँउ तुल्येँ ॥३॥
आचरियेहिँ लपेटी छारा । सीसहिँ ढोअत ये जट-भारा ॥
घरहीँ वइसे दीपक वारी । कोनहिँ वइसे घंटा चाली ॥४॥
आँखि निवेशी आसन बाँधा । कर्णे खुसखुसाय जन मन्दा ॥
रंडी-मुंडी अन्यहुँ भेसेँ । देखीयत दच्छिना-उदेसेँ ॥५॥
दीर्घनखा जो मलिने भेसे । नंगा होइ उपाडिय केशे ॥
क्षपणक ज्ञान-विडंबित भेसे । अपना बाहर मोक्ष गवेषे ॥६॥

यदि नंगाये होइ मुक्ति, तो शुनक-शृगालहुँ ।
लोम उपाटे होइ सिद्धि, तो युवति-नितम्बहुँ ॥७॥

पिच्छि गहे देखेँउ जोँ मोक्ष, तो मोरहु चमरहुँ ।
उञ्छ-भोजने होइ ज्ञान, तो करिहु तुरंगहुँ ॥८॥

सरह भनै क्षपणकी मोक्ष, मोहिँ तनिक न भावइ ।
तत्त्व-रहित काया न ताप, पर केवल साधइ ॥९॥

चेला भिक्षु जेँ स्थविर-उदेसे । वन्दहि आ प्रव्रजिता-वेसेँ ।
कोँइ स्वतंत्र व्याख्यानेँ बईठो । कोँइ चिन्ता करि शोषइ दीठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता बेकार

जो जाँसु जेन होइ सन्तुष्टो । मोक्ष कि लभियइ ध्यान-प्रविष्टो ॥
की तेहिँ दीपेहिँ की नैवेद्ये । की हि कीजियइ मन्त्रहँ सेवे ॥१४॥

किन्तह तित्थ तपोवण जाई । मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाई ॥१५॥
छाड़हुरे आलीका बन्धा । सो मुंचहु जो अच्छहु धन्धा ॥
तसु परिआणे अण्ण ण कोई । अवरें गणे सव्व'वी सोई ॥१६॥
सोवि पढ़िज्जइ सोवि गुणिज्जइ । सत्थ-पुराणे वक्खाणिज्जइ ॥
णहि सो दिट्ठि जो ताउ ण लक्खइ । एक्कें वर गुरु-पाअे पेक्खइ ॥१७॥
झाण-हीण पव्वज्जे रहिअउ । घरहिं वसन्ते भज्जे सहिअउ ।
जइ भिँड़ि विसअ रमन्त ण मुच्चइ । सरह भणइ परिआण कि मुच्चइ ॥१९॥
जइ पच्चक्ख कि झाणे कीअअ । जइ परोक्ख अंधार म धीअअ ॥
सरहें णित्ते कड्ढिउ राव । सहज सहाव ण भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जल्लइ मरइ उवज्जइ बज्झइ । तल्लइ परममहासुह सिज्झइ ॥
सरहे गहण गुहिर मग कहिआ । पसू-लोअ निव्वहि जिम रहिआ ॥२१॥
झाण-रहिअ की कीअइ झाणें । जो अवाअ तहि काह वखाणें ॥
भव मुद्दे सअलहि जग बाहिउ । णिअ सहाव णउ केण' वि साहिउ ॥२२॥
मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण । सव्व' वि रे बढ़ ! बिब्भम-कारण ॥
असमल चित्त म झाणें खरडह । सुह अच्छन्त म अप्पणु झगड़ह ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

खाअन्त पिअन्ते सुहहिं रमन्ते । णित्त पुण्णु चक्का'वि भरन्ते ॥
अइस धँम्म सिज्झइ परलोअह । णाह पाए दलीउ भअलोअह ॥२४॥

जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह पवेस ।
तहि वढ़ !! चित्त विसाम करु, सरहें कहिअ उएस ॥२५॥
आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिब्बाण ।
एँहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥२७॥

सअ-संवित्ति म करहु रें धन्धा । भावाभाव सुगति रे बन्धा ॥
णिअ, मण मुणहुरें णिउणें जोई । जिम जल जलहिं मिलन्ते सोई ॥३२॥

की तेहि तीर्थं तपोवन जाई । मोक्ष कि लभियहि पानि नहाई ॥१५॥
छाड़हु रे अलीका बन्धा । सो मुंचहु जो आछै मन्दा ।
तसु परि-ज्ञाने अन्य न कोई । अपरे गने सर्वं ही सोई ॥१६॥
सोइ पढ़िज्जइ सोइ गुणिज्जइ । शास्त्र-पुराणे वक्खानिज्जइ ।
नहि सो दीख जों तब ना लक्खई । एकहिँ वर गुरु-पादें पेखई ॥१७॥
ध्यानहीन प्रव्रज्या - रहितउ । घरहिं बसन्ते भार्या-सहितउ ॥
यदि दृढ़ विषय-रती ना मुंचइ । सरह भणइ परि-ज्ञान कि मुंचइ ॥१६॥
यदि प्रत्यक्ष कि ध्याने कीजिय । यदि परोक्ष अंधारमें ध्याइय ।
सरहेंहि नित्ये काढिउ राव । सहज स्वभाव न भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जरइ मरइ उपजइ बध्यायइ । तहँ लय होइ महासुख सिध्यइ ।
सरहें गहन गह्वर मग कहिया । पशू-लोक निर्बोध जिमि रहिया ॥२१॥
ध्यान-रहित की कीजै ध्याने । जो अवाक् तेहि, काहि बखाने ।
भव-मुद्रहि जग सकल बहायउ । निज स्वभाव ना काहुहि साधेउ ॥२२॥
मंत्र न तंत्र न ध्येय न धारण । सर्वहु मूढ़ रें ! विभ्रम-कारण ।
निर्मल चित्त न ध्याने खींचहु । शुभ अछते न आपन झगड़हु ॥२३॥

(५) भोगमेँ निर्वाण

खाते पीते सुखहिं रमन्ते । नित्य पूर्णं चक्रहू भरन्ते ।
अइस धर्मं सिध्यइ परलोका । नाथ पाइ दलिया भयलोका ॥२४॥
जहँ मन पवन न संचरइ, रवि-शशि नाहिं प्रवेश ।
तहँ मुढ़ ! चित्त विश्राम करु, सरह कहेंउ उपदेश ॥२५॥
आदि न अंत न मध्य नहि, नहि भव नहि निर्वाण ।
एँहु सो परममहासुख, नहि पर नहि अप्पान ॥२७॥
स्वक-संवित्ति न करहु रें मंदा । भावाभाव सुगति रे बंधा ।
निज मन ध्यायहु निपुणे योगी । जिमि जल जलहि मिलंते सोई ॥

पढ़में जइ आभास विसुद्धो । चाहते चाहते दिट्ठि णिरुद्धो ॥
एसें जइ आयास विकालो । णिअ मण दोस ण बुज्झइ बालो ॥३४॥
मूल-रहिअ जो चिन्तइ तत्त । गुरु-उवएसे एत्त-विअत्त ॥
सरह भणइ बढ़ ! जाणहु चंगे । चित्त-रूअ संसारह भंगे ॥३७॥
णिअ मण सब्बे सोहिअ जब्बे । गुरु-गुण हिअए पइसइ तब्बे ॥
एवँ मणे मुणि सरहें गाहिउ । तन्त मन्त णउ एक्क'वि चाहिउ ॥३६॥
जब्बे मण अत्थमण जाइ, तणु तुट्टइ बंधण ।
तब्बे समरस सहजे, वज्जइ सुद्द ण बम्हण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एत्थु सें सुरसरि जमुणा, एत्थ सें गंगा साअरु ।
एत्थु पआग बणारसि, एत्थु सें चन्द दिवाअरु ॥४७॥
खेत्तु-पीठ-उपपीठ, एत्थु मइँ भमइ परिट्ठओं ।
देहा-सरिसअ तित्थ, मइँ सुह अण्ण ण दिट्ठओं ॥४८॥
सण्ड-पुअणि-दल-कमल-गन्ध केसर वरणालें ।
छड्डहु वेणिम ण करहु सोसँण लग्गहु बढ ! आलें ॥४६॥
काय तित्थ खअ जाइ, पुच्छह कुल ईणओ ।
बम्ह-बिट्ठु तेलोअ, सअल जाहि णिलीणओ ॥५०॥
बुद्धि विणासइ मण मरइ, जहि तुट्टइ अहिमाण ।
स माआमअ परम फलु, तहिं कि बज्झइ झाण ॥५३॥
भवहि उअज्जइ खअहि णिवज्जइ । भाव-रहिअ पुणु काहि उवज्जइ ॥
विण्ण-विवज्जिइ जोऊ वज्जइ । अच्छह सिरि गुरुणाह कहिज्जइ ॥५४॥
देक्खहु सुणहु परीसहु खाहु । जिग्घहु कमहुं बइठ्-उट्ठाहु ॥
आल - माल व्यवहारे पेल्लह । मण छड़ एक्काकार म चल्लह ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उवएसे अमिअ-रसु, धाव ण पीअउ जेहि ।
बहु-सत्थत्थ-मरुत्थलहिँ, तिसिए मरिअउ तेहि ॥५६॥

प्रथमे यदि आकाश विशुद्धा । देखत देखत दृष्टि निरुद्धा ॥
ऐसे यदि आयास विकालो । निज मन दोषहिं बूझ न बालो ॥३४॥
मूल-रहित जो चिन्तइ तत्त्व । गुरु-उपदेशे अस्तं-व्यस्त ॥
सरह भनै मुढ़ ! जानहु चंगा । चित्त-रूप संसारहु भंगा ॥३७॥
निज मन सव्वै शोधिय जव्वै । गुरु-गुण हृदये पइसइ तव्वै ॥
ऐस समुझि मन सरहे गाहेँउ । तंत्र-मंत्र नहिं एकहु चाहेउ ॥३६॥
जव्वै मन अस्तमन जाइ, तन टूटइ बंधन ।
तव्वै समरस सहजे, कहियइ शूद्र न ब्राह्मण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एहिँ सों सुरसरि जमुना, एहिँ सो गंगासागर ।
एहिँ प्रयाग वाराणसी, एहिँ सो चंद्र-दिवाकर ॥४७॥
क्षेत्र-पीठ-उपपीठ, एहीँ मैं भ्रमउँ वाहिरा ।
देहा सदृशा तीर्थ, नहीं मैं अन्यहिं देखा ॥४८॥
वन-पद्मिनि-दल-कमल-गंध-केसर-वर-नाले ।
छाड़हु द्वैतहि न करहु शोषण, मूढ़ ! न लागहु आरे ॥४९॥
काय तीर्थ क्षय जाय, पूछहु कुलहीनहँ ।
ब्रह्म-विष्णु त्रैलोक्य, सकलहिं निलीन जहँ ॥५०॥
वृद्धि विनासै मन मरै, जहँ टूटै अभिमान ।
सो मायामय परम-फल, तहँ की बाँधिय ध्यान ॥५३॥
भवहीँ उपजै क्षयहि विनाशै । भाव-रहित पुनि का उत्पादै ॥
द्वैत-विवर्जित योगहुँ वर्जै । ऐसो श्रीगुरुनाथ कहीजै ॥५४॥
देखहु सुनहू छूवहु खाहु । सूँघहु भ्रमहु वइठु उट्ठाहु ॥
क्रय-विक्रय व्यवहारे पेल्लहु । मन छाडहु ऐँक-कार न चल्लहु ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उपदेशे अमृत-रस, धाइ न पीयेँउ जेहि ।
बहु-शास्त्रार्थ-मरुस्थलहिं, तृषितै मरेँऊ तेहि ॥५६॥

चित्ताचित्ति'वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु ।
गुरु-वअणें दिढ भत्ति करु, होइ जइ सहज उलालु ॥५७॥
अक्खर वण्ण परमगुण रहिजे । भणइ ण जाणइ एमइ कहिजे ॥
सो परमेसरु कासु कहिज्जइ । सुरअ-कुमारी जीम पड़िज्जइ ॥५८॥
भावाभावे जो परिहीणो । तहिं जग सअलासेस बिलीणो ॥
जब्वे तहँ मण णिच्चल थक्कइ । तब्वे भव-संसारह मुक्कइ ॥५९॥
जाव ण अप्पहिं पर परिआणसि । ताव कि देहाणुत्तर पावसि ॥
एमइ कहिजे भन्ति ण कब्वा । अप्पहिं अप्पा बुज्झसि तब्वा ॥६०॥
घरें अच्छई बाहिरे पुच्छइ । पइ देक्खइ पड़िवेसी पुच्छइ ॥
सरह भणइ बढ़ ! जाणउ अप्पा । णउ सो धेअ ण धारण-जप्पा ॥६२॥
विसअ रमन्त ण विसअें बिलिप्पइ । ऊअर हरइ ण पाणी छिप्पइ ॥
एमइ जोई मूल सरन्तो । विसहिं ण बाहइ विसअ रमन्तो ॥६४॥
अणिमिस-लोअण चित्त णिरोहें । पवण णिरूहइ सिरि-गुरु-बोहें ॥
पवण बहइ सो णिच्चलु जब्बें । जोई कालु करइ कि रें तब्बें ॥६६॥
पण्डिअ सअल सत्थ वक्खाणइ । देहहिं बुद्ध वसन्त ण जाणइ ॥
अवणागमण ण तेण विखण्डिअ । तो'वि णिलज्ज भणइ हँउ पण्डिअ ॥६८॥
जीवन्तह जो णउ जरइ, सो अजरामर होइ ।
गुरु-उवएसें विमल-मइ, सो पर धण्णा कोइ ॥६९॥
विसअ-विसुद्धें णउ रमइ, केवल सुण्ण चरेइ ।
उड्डी बोहिअ-काउ जिम, पलुटिअ तह'बि पड़ेइ ॥७०॥
विसआसत्ति म बन्ध करु, अरें बढ़ ! सरहें वुत्त ।
मीण-पअङ्गम-करि-भभर, पेक्खह हरिणहँ जुत्त ॥७१॥
जत्त'वि चित्तह विप्फुरइ, तत्त'वि णाह सरुअ ।
अण्ण तरंग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरुअ ॥७२॥
जत्त'बि पइसइ जलहिं जलु, तत्तइ समरस होइ ।
दोस-गुणाअर चित्त तह, बढ़ ! परिवक्खण कोइ ॥७४॥

चित्त अचित्तहिं परिहरहु, तिमि होवहु जिमि बाल।
गुरु-वचने दृढ़ भक्ति करु, ज्यों होइ सहज उलास ॥५७॥

अक्षर वर्ण परम गुण रहिए। भनइ न जानइ अइसे कहिये॥
सो परमेश्वर कासों कहिए। सुरत-कुमारी जिमि पतिऐहे ॥५८॥
भावाभावहिं जो परिहीना। तहँ जग सकलाशेष विलीना॥
जब्बै तहँ मन निश्चल थाकै। तब्बै भव-संसारहँ मुंचै ॥५९॥
जौ लों ना आपुहिं परि-जानै। तौ लों कि देह अनुत्तर पावै॥
ऐसेहि कहिये भ्रान्ति न कब्बै। आपुहि आपा बूझसि तब्बै ॥६०॥
घरे आछतें बाहर पूछै। पति देखई पडोसी पूछै॥
सरह भनै मुढ़! जानहु आपा। नहिं सो ध्येय न धारण जापा ॥६२॥
विषय रमन्त न विषय विलिपै। पदुम हरइ ना पानी भीजैं॥
ऐसेहि योगी मूल बुझन्तो। विषय बहै ना विषय रमन्तो ॥६४॥
अनिमिष-लोचन चित्त निरोधे। पवन निरोधै श्री-गुरु-बोधे॥
पवन बहै सो निश्चल जब्बै। योगी काल करै कि रे तब्बै ॥६६॥
पंडित सकल शास्त्र वक्खानै। देहहिं बुद्ध वसंत न जानै॥
अवना-गवन न तेहिं विखंडित। तोपि निलज्ज भनै हौं पंडित ॥६८॥

जीवन्तो जो ना जरै, सो अजरामर होइ।
गुरु-उपदेसे विमल मति, सो पर धन्या कोइ ॥६९॥

विषय विसुद्धे ना रमै, केवल शून्य चरेइ।
उड़िया बोहित-काक जिमि, पलटिय तैंहहि पड़ेइ ॥७०॥

विषयासक्ति न बन्ध करु, अरे मुढ़! सरहे उक्त।
मीन-पतंगम-करि-भ्रमर, पेखहु हरिनहु युक्त ॥७१॥

जहँवाँ चित्ता विस्फुरै, तहँवै नाहि स्वरूप।
अन्य तरंग कि अन्य जल, भव-सम ख-सम स्वरूप ॥७२॥

जहवाँ पइसै जलहिं जल, तहँवा समरस होइ।
दोष-गुणाकर चित्त तहँ, मुढ़! परिवीक्ष न कोइ ॥७४॥

सुण्णहिँ सङ्ग म करहि तुहु, जहिँ तहिँ सम चिन्तस्स ।
तिल-तुस-मत्त'बि सल्लता, बेअणु करइ अवस्स ॥७५॥
सब्ब रूअ तहिँ ख-सम करिज्जइ । ख-सम-सहावें मण'बि धरिज्जइ ॥
सो'वी मणु तहि अमणु करिज्जइ । सहज-सहावें सो परु रज्जइ ॥७७॥
घरें-घरें कहिअइ सोज्झु कहाणा । णउ परि सुणिअइ महसुह ठाणा ॥
सरह भणइ जग चित्तें वाहिअ । सो अचित्त णउ केण'वि गाहिअ ॥७८॥
एक्कु देव बहु आगम दीसइ । अप्पणु इच्छें फुड पड़िहासइ ॥७९॥
अप्पणु णाहो अण्ण' वि रुद्धो । घरें-घरें सोअ सिधन्त पसिद्धो ॥
एक्कु खाइ अवर अण्ण 'वि पोड़इ । वाहिँर गइ भत्तारह लोड़इ ॥८०॥
आवँत ण दिस्सइ जन्त णहि, अच्छन्त ण मुणिअइ ।
णित्तरंग परमेसुरु, णिक्कलङ्क धारिज्जइ ॥८१॥
सोहइ चित्त णिरालं दिण्णा । अउण-रूअ मा देखह भिण्णा ॥
काअ-वाअ-मणु जाव ण भिज्जइ । सहज सहावें ताव ण रज्जइ ॥८३॥
घरवइ खज्ज- घरणिअहि, जहिँ देसहि अविआर ।
माइएँ तहि की ऊबरइ, बिसरिअ जोइणि चार ॥८४॥
घरवइ खज्जइ सहजे रज्जइ, किज्जइ राअ-विराअ ॥
णिअ पास बइट्ठी चित्ते भट्ठी, जोइणि महु पड़िहाअ ॥८५॥

(८) सहज संयम

इअ दिवस णिसहि अहीणमइ, तिहू जासु णिमाण ।
सो चित्त सिद्धी जोइणि, सहज संवरु जाण ॥८७॥
अक्खर वाढ़ा सअल जगु, णाहि णिरक्खर कोइ ।
ताव सें अक्खर घोलिआ, जाव णिरक्खर होइ ॥८८॥
जिम बाहिर तिम अब्भन्तरु । चउदह भुवणे ठिअउ णिरन्तरु ॥
असरिर काहें सरीरहि लुक्को । जो तहि जाणइ सो तहि मुक्को ॥८९॥
रूअणें सअल'बि जोंहि णउ गाहइ । कुन्दुरु खणहि महासुहें साहइ ॥
जिम तिसिओ मिअ-तिसिणे धावइ । मरइ सोंसहिँ णभ-जलु कहिँ पावइ ॥९१॥

शून्यहिं संग न करहुँ तैं, जहँ तहँ सम चिन्तेहि।
तिल-तुष-मात्रउ शल्यता, वेदन करइ अवश्य ॥७५॥
सर्व रूप तहँ ख-सम करीजै। ख-सम स्वभावे मनहुँ धरीजै॥
सो भी मन तहँ अ-मन करीजै। सहज स्वभावे सो **पर** कीजै ॥७७॥
घरें घरें कहियत सोझ कहाना। नहिं पर सुनियत महसुख थाना॥
सरह भनै जग चित्तें बहाई। सो अचित्त ना केंहुहि गहाई ॥७८॥
एक देव बहु आगम दीसै। आपन इच्छें स्फुट परिभासै ॥७९॥
आपन नाथा अन्यहु रुद्धा। घरें घरें सोंइ सिद्धान्त प्रसिद्धा॥
एक खाइ अरु अन्यहिँ फोड़ै। बाहर जाइ भतारें लोड़ै ॥८०॥
अवत न दीसै जात नाहिँ, होवत नहिँ जानीजै।
निस्तरंग परमेस्वर, निष्कलंक धारीजै ॥८१॥
सोहैं चित्त ललाटे दिन्ना। अपन रूप ना देखहु भिन्ना॥
काय-वाक्-मन जौ ना भाँगै। सहज-स्वभावे तौ ना राजै ॥८३॥
घरनी खाइस घरपतिहिँ, जहँ देशे अविचार।
मारिय तह की ऊबरै, विसरिय योगिनि चार ॥८४॥
घरपति खाइअ सहजै राजै, कीजै राग-विराग।
निज पास बइट्ठी चित्ते भ्रष्टी, योगिनि मधु प्रतिभास ॥८५॥

(८) सहज संयम

इमि दिवस निशहिँ अभिमानै, त्रिभुवन जाँसु निर्माण।
सो चित सिद्धा योगिनी, सहज संबरा जान ॥८७॥
अक्षर बाढ़ा सकल जग, नाहिं निरक्षर कोइ।
तौलौं अक्षर घोलिया, जौ लों निरक्षर होइ ॥८८॥
जिमि बाहर तिमि अभ्यन्तर। चौदह भुवने थितउ निरंतर॥
अशरिर कोंई शरीरे लूकेउ। जो तेंहिँ जानेंउ सो तहँ मुंचेउ ॥८९॥
रूपणें सकलउ जो ना गहियै। कुंदुरु क्षणहिँ महासुख साधै॥
जिमि तृषितो मृगतृष्णे धावै। मरें सोखहि, नभ-जल कहँ पावै ॥९१॥

कन्ध-भूअ-आअत्तण इन्दिअ-विसअ-विआर अप हुअ ।
णउ णउ दोहाच्छंदेण, कहवि किम्पि गोप्पु ॥९२॥
पण्डिअ लोअहु खमहु मह्, एत्थु ण किअइ विअप्पु ।
जो गुरु बअणे मइ सुअउ, तहि कि कहमि सु गोप्पु ॥९३॥

(९) कमल-कुलिश (वाममार्ग) साधना

कमल-कुलिस बे'बि मज्झ ठिउ, जो सो सुरअ-विलास ।
को न रमइ णह तिहुअणहिं, कस्स ण पूरइ आस ॥९४॥
खण-उवाअ सुह अहवा, अहवा वेण्णि'वि सो'बि ।
गुरु-प्पसाएँ पुराण जइ, विरला जाणइ कोबि ॥९५॥
गम्भीरह उआहरणें, णउ पर णउ अप्पाण ।
सहजाणन्द चउट्ठ खण, णिअ-संवेअण जाण ॥९६॥
घोरेंन्धारे चन्दमणि, जिम उज्जोअ करेइ ।
परम-महासुह एक्कु खणें, दुरिआसेस करेइ ॥९७॥
दुक्ख-दिवाअर अत्थगउ, उवइ तराबइ सुक्क ।
ठिअ-णिम्माणें णिम्मिअउ, तेण'बि मण्डल-चक्क ॥९८॥
चित्तहि चित्त णिहालु बढ़ ! सअल विमुच्च कुदिट्ठि ।
परममहासुहें सोज्झ परु, तसु आअत्ता सिद्धि ॥९९॥
मुक्कउ चित्त-गयंद करु, एत्थ विअप्प ण पुच्छ ।
गअण-गिरी-णइ-जल पिअउ, तहिँ तड़ वसउ सइच्छ ॥१००॥
विसअ-गएँन्दे करें गहिअ, जिम मारइ पड़िहाइ ।
जोई कवड़ीआर जिम, तिम तहों णिस्सरि जाइ ॥१०१॥
जो भव सो णिव्वाण खलु, सो उण मण्णहु अण्ण ।
एक्क सहावें विरहिअ, णिम्मल मइँ पड़िवण्ण ॥१०२॥
घरहि म थक्कु म जाहि वणें, जहि तहि मण परिआण ।
सअलु णिरन्तर बोहि-ठिअ, कहिँ भव कहिँ णिव्वाण ॥१०३॥

स्कन्ध-भूत-आयतन-इन्द्री-विषय-विचार आप हुब।
नव-नव दोहा-छन्देहिं, कहब किछु गोप्य ॥९२॥
पंडित लोगो क्षमहु मोहि, एहु न कियहु विकल्प।
जो गुरु-वचने मैं सुनेँउ, तेहि किमि कहब सुगोप्य ॥९३॥

(९) कमल-कुलिश (बाममार्ग) साधना

कमल-कुलिश दोउ मध्य थित, जो सो सुरत-विलास।
को तेँहिं रमै न त्रिभुवने, कासु न पूरै आस ॥९४॥
क्षण-उपाय सुख अथवा, अथवा दोऊ सोइ।
गुरु-प्रसादे पुण्य यदि, विरला जानै कोइ ॥९५॥
गम्भीरेँहि उदाँहरणे, ना पर ना अप्पान।
सहजानन्द चतुर्थ क्षण, निज-संवेदन जान ॥९६॥
घोर अन्हारे चन्द्रमणि, जिमि उद्योत करेइ।
परम-महासुख एक क्षण, दुरित-अशेष करेइ ॥९७॥
दुःख-दिवाकर अस्त गउ, उयेँउ तारपति शुक्र।
स्थित निर्माणे निर्मियउ, तेहिहिं मण्डल-चक्र ॥९८॥
चित्रहिं चित्र निहार मुढ़ ! सकल विमुंच कुदृष्टि।
परम-महासुखे सोध पर, तासु हाथ मों सिद्धि ॥९९॥
मुक्तउ चित्त गयंद करु, एहि विकल्प ना पूछ।
गगन-गिरी-नदि-जल पियहु, तहँ तट वसै स्व-इच्छ ॥१००॥
विषय-गयन्दे कर गही, जिमि मारै प्रतिभास।
योगी कैडीकार जिमि, तिमि तहँ निस्सरि जाइ ॥१०१॥
जो भव सो निर्वाणहू, सो पुनि मानहु अन्य।
एक स्वभावे विरहिता, निर्मल मैं प्रतिपन्न ॥१०२॥
घरहि न रहु ना जाहु वन, जहँ तहँ मन परि-जान।
सकल निरंतर बोधि थित, कहँ भव कहँ निर्वाण ॥१०३॥

ऍहु सो अप्पा ऍहु परु, जो परिभावइ कों'वि ।
ते विणु बन्धे बेट्ठि किउ, अप्प-विमुक्कउ तों'वि ॥१०५॥
पर-अप्पाण म भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।
ऍहु सो णिम्मल परमपउ, चित्त सहावे सुद्ध ॥१०६॥
अद्दअ-चित्त-तरूअरह, गउ तिहुँवणें वित्थार ।
करुणा फुल्ली फल धरइ, णाउ परत्त उआर ॥१०७॥
सुण्णा तरूवर फुल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त ।
अण्णा भोअ परत्त फलु, एहु सों'क्ख परु चित्त ॥१०८॥
सुण्ण तरूवर णिक्करुण, जहि पुणु मूल ण साह ।
तहि अलमूला जो करइ, तसु पडिभिज्जइ बाह ॥१०९॥
ऍक्कें बीं' ऍक्के'वि तरु, तें कारणें फल ऍक्क ।
ए अभिण्ण जो मुणइ सो, भव-णिव्वाण-विमुक्क ॥११०॥
जो अत्थी अणठीअउ, सो जइ जाइ णिरास ।
खण्णु सरावें भिक्ख वरु, त्यजहू ए गिहवास ॥१११॥
पर-उआर ण कीअऊ, अत्थि ण दीअउ दाण ।
ऍहु संसारे कवणु फलु, बरु छड्डहु अप्पाण ॥११२॥
—दोहाकोष पृ० ८-२३

२–गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गुंजरी)

अपणे रचि रचि भव निव्वाणा, मिच्छें लोअ बँधावइ अपणा ।
अक्खें ण जाणहु अचिन्त जोई, जाम-मरण भव कइसन होई ॥
जइसो जाम मरण 'वी तइसो, जीवँतें मइलें णाहि विशेशो ।
जा एथु जामा मरणें विशंका, सों करउ रस-रसानें रे कंखा ॥
जो सचराचर तिअस भमन्ति । जे अजरामर किम्प न होन्ति ।
जामे काम कि कामे जाम । सरह भणइ अचिन्त सो धाम ॥२॥

एँहु सो आपा एहु पर, जो परिभावै कोइ।
सो विनु बंधे बँध गयउ, आपु विमुक्तउ तोपि ॥१०५॥
पर-आपन ना भ्रान्ति करु, सकल निरंतर बुद्ध।
एँहु सो निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ॥१०६॥
अद्वय-चित्त-तरूवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार।
करुणा फूली फल धरइ, ना परत्र उपकार ॥१०७॥
शून्य तरूवर फूलेँऊ, करुणा विविध विचित्र।
अन्या भोग परत्र फल, एँहू सौख्य परचित्त ॥१०८॥
शून्य तरूवर निष्करुण, जेँहि पुनि मूल न शाख।
तहँ अलमूला जो करै, तासुइ भाँगै वाह ॥१०९॥
एक्कै एक्के ही तरु, ते कारण फल एक।
एँहु अभिज्ञता करै सो, भव-निर्वाण-विमुक्त ॥११०॥
जो अर्थी अनर्थीअऊ, सो यदि जाइ निराश।
खंड शरावे भिक्षहू, छाड़हु एँहु गृहवास ॥१११॥
पर-उपकार न कीयेँऊ, अर्थि न दीजेँउ दान।
एहि संसारे कवन फल, वरु छाँडहु अप्पान ॥११२॥
—दोहाकोष पृ० ८—२३

२—गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गुंजरी)

अपनें रचि-रचि भव-निर्वाणा, मिथ्यै लोक बँधावै अपना।
मैं ना जानहुँ अचिन्त योगी, जन्म मरण भव कैसन होई॥
जैसो जन्म-मरणहू तैसो, जीवन मरणे नाहिँ विशेषो।
जो यह जन्म-मरण वीशंका, सो कर स्वर्ण-रसायन कांछा॥
सो सचराचर त्रिदश भ्रमन्ति, ते अजरामर किमि ना होंति।
जन्महिँ कर्म कि कर्महिँ जन्म, सरह भनै अचित सो धर्म ॥२॥

(२) सहज-मार्ग

(राग देशाख)

नाद न विन्दु न रवि-शशि-मण्डल , चीअ राअ - सहावे मूकल ।
उजु रे उजु छड़ि मा लेहु वंक , निअड़ि बोहि मा जाहु रें लंक ॥
हाथेर कंकण मा लेंहु दप्पण , अपणे आपा बूझतु निअ-मण ।
पार - उआरें सोई मजिई , दुज्जण-संगे अवसरि जाई ॥
वाम - दहिण जो खाल-बिखाला , सरह भणइ बप ! उजु वट भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काअ नावडि खान्टि मण केडुआल । सद् गुरु वअणे धर पतवाल ॥
चीअ थिर करि धरहु रें नाई । अण्ण उपाए पार न जाई ॥
नौवहि नौका टानअ गुणे । निर्मलि सहजे जाउ ण आणें ॥
बाटत भअ खान्ट 'बी बलआ । भव-उल्लोलें सब्ब वि' बलिआ ॥
कूल लई खरें सोन्तें उजाअ । सरहा भणइ गअणें समाअ ॥

(राग मालशी)

सुण्णे हो बिदारिअ रे निअ 'मण तोहोंरु दोसे ।
गुरु-वअण विहारें रें थाकिब तइं पुत ! कइसे ॥
एकट हु भवई गअणा ।
वंगे जाया नीलेसि पारे, भागेंल तों होंर विणाणा ।
अबाभुअ भव-मोह रे दीसइ पर अप्पाणा ।
ए जग जल-बिबाकारे सहजें सूण 'अपाणा ॥
अमिअ अच्छन्तें विस गीलेसि रे चिअं पर रस अप्पा ।
घरें परें का बुज्झीले मारि खइब मइ दुठ कुंडवां ॥
सरह भणइ वर सून गोंहाली की मो दूठ बलन्दें ।
एक्केले जग नाशिअ रे विहरहु छन्दें ॥३९॥

—चर्या पद[1]

[1] Caryapadas. J.D.L. Cal. vol. XXX, pp. 1—156

(२) सहज-मार्ग

(राग बैशाख)

नाद न विन्दु न रवि-शशि-मण्डल। चित्ता राग स्वभावे मुंचल।
ऋजु रे ऋजु छाड़ि ना लेहु बंक। नियरें बोधि न जाहु रें लंक॥
हाथेइ कंकण ना लेहु दर्पण। अपने आपा बूझहु निज मन॥
पारे - वारे सोँई मादई, दुर्जन - संगे अवसर जाई॥
वाम दहिन जो खाल-विखाला, सरह भनै बाँप! ऋजु बाटें भइला॥३२॥

(राग भैरवी)

काय नावडी नीकी मन केडुवाल[1]। सद्गुरु वचने धरु पतवार॥
चित्तै थिर करु धरु रे नाई। अन्य उपाये पार न जाई॥
नाविक नौकहिं खींच गुनेहि। मेली सहजे जानु न आनहिं॥
बाटे भय बड़ ही बलवा। भव-उल्लोले सर्वउ कम्पा॥
कूल लेइ खर स्रोतें बहाय। सरह भनै गगनहीं समाय॥

(राग मालशी)

शून्य हो! विदारिउ निज मन तोहरे दोषे।
गुरु-वचन विहारे रे रहिबे तैं पुत! कइसे॥
एकटहु होई गगना।
बंके जाइ लीलेसि पारे, भाँगल तोँहर विज्ञाना।
अद्भुत भव-मोह रे दीसइ पर अप्पाना॥
ए जग जल-विंवाकार सहजे शून्य अपाना।
अमृत अछतै विष गिलेसि रे चित्त पर रस आपा।
घरे परे का बूझीले मारि खाइब मैं दुष्ट कुटुंवा॥
सरह भनै वर शून्य गोँहारी की मोँर दुष्ट बलद्दे।
एकले जग नाशेँउ रे विहरहु छन्दे॥३९॥

—चर्यापद[1]

---

[1] पतवार

§ २. शबरपा

काल—८८० ई० (धर्मपाल-७७०-८०६)। देश—विक्रमशिला (भागलपुर)। कुल—क्षत्रिय, सिद्ध (५)। कृतियाँ—चित्तगुह्यगम्भीरार्थ-

(रहस्यवाद)

(गीत—राग वलाड्डि)

ऊचा ऊचा पावत तहिं बसइ सबरी बाली।
मोरंगि पिच्छ परिहिण शबरी गीवत गुंजरि-माली ॥
उमत शबरो पागल शबरो मा कर गुली-गुहाडा।
तोहोंरि णिअ घरिणी नामे सहज-सुन्दरी ॥
नाना तरुवर मौंउलिल रे गअणत लागेंलि डाली।
एकेलि सबरी ए वण हिंडइ कर्ण कुंडल वज्रधारी ॥
तिअ-धाउ खाट पडिला सबरो महासुहे सेज छाइली।
सबर भुजंग नैरामणि दारी पेक्ख राति पोहाइली ॥
चिअ तांबोला महासुंहे कापुर खाई।
सुन-नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाई ॥
गुरु-वाक-पुंजिआ धनु णिअ-मण वाणे।
एके शर सन्धाने विन्धह विन्धह परम-णिवाणे ॥
उमत सबरो गुरुआ रोषे गिरिवर-सिहरे संधी।
पइसन्ते सबरो लोडिब कइसे ॥२८॥

—चर्यापद

§ २. शबरपा

गीति, महामुद्रा-वज्रगीति, शून्यतादृष्टि, षडंगयोग, सहज-संवर-स्वाधिष्ठान, सहजोपदेश-स्वाधिष्ठान ।

(रहस्यवाद)

(गीत—राग वलाड्डि)

ऊँचा ऊँचा पर्वत, तँह वसै शबरी बाली ।
मोर-पिच्छ पहिरले शबरी ग्रीवा गुंजा-माली ॥
उन्मत शबरो पागल शबरो ना करु गुली-गुहाड़ा ।
तोँहार निज घरनी नामे सहज-सुन्दरी ॥
नाना तरुवर मौरिल रे गगन ते लागल डारी ।
एकली शबरी यहि बन हीँड़ै कर्ण कुंडल वज्रधारी ॥
त्रिधातु-खाटे पडल शबरो महाँसुखेँ सेज छाइल ।
शबर भुजंग निरात्मा दारी पेखत राति विताइल ॥
चित्त तांबूला महासुख कपूर खाई ।
शून्य-नैरात्मा कंठे लेई महासुखे राति विताई ॥
गुरु-वाक-पुंज धनुष निज-मन वाणे ।
एँक शर संधाने विंधहु परम-निर्वाणे ॥
उन्मत शबरा गुरुआ रोषे गिरिवर-शिखरे साँधी ।
पइठत शबरहिँ लौटाइब कैसे ॥२८॥

—चर्यापद

§ ३. स्वयंभूदेव

कविराज। काल—७९० ई० (ध्रुव धारावर्ष ७८०-९४ ई०)। देश—कोसल (? मध्यदेश)। कुल—ब्राह्मण (?) कवि माउरदेव और पद्मिनीके

१—आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

बुह-यण सयंभु पईं विण्णवइ। महु सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ ॥
वायरणु कयाइ ण जाणियउ[1]। णउ वित्ति-सुत्त वक्खाणियउ ॥
णा णिसुणिउ पंच महाय कव्वु। णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सव्वु ॥
णउ बुज्झिउ पिंगल-पच्छारु। णउ **भामह-दंडिय** 'लंकारु ॥
वेंवेंसाय तो 'वि णउ परिहरमि। वरि रयडा वुत्तु कव्वु करमि ॥

---

[1] ९२ संधियाँ या प्रायः १२००० श्लोक स्वयंभूने रचे। आगे ९३—१०८वीं संधितक त्रिभुवन स्वयंभूने रचा। कथा ९२ तकमें ही पूरी हो जाती है।

[2] ८३वीं संधि तक स्वयंभूने रचा। कथा यहीं पूरी हो जाती है, तो भी त्रिभुवन स्वयंभू ने ७ संधियाँ और जोड़ी हैं। स्वयंभू-रामायणकी सबसे पुरानी प्रति भंडारकर इन्स्टीटयुट (पूना)में है। यह गोपाचल (ग्वालियर) में १५६४ ई० (संवत् १५२१ ज्येष्ठ सुदी १० बुधवार) को लिखकर समाप्त की गई। दूसरी प्रति जयपुरमें मिली है। इस प्रकार पहिली प्रति गोस्वामी तुलसीदासके देहान्त १६२३ ई० (संवत् १६८०) से ५९ वर्ष पहिले लिखी गई थी। तुलसीकृत रामायणकी भाँति यह रामायण भी चौपाई (पज्झडिया) में है, और आठ-आठ पाँतियों (अर्धालियों)के बाद दोहा या किसी दूसरे छन्दमें घत्ता (विश्राम) मिलता है। स्वयंभूके उक्त दोनों ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

[3] इच्छानुसार ह्रस्वको दीर्घ करके पढ़िये ह्रस्वचिन्ह ˘ है।

§३. स्वंयभू*

पुत्र, आदित्यदेवीके पति, त्रिभुवन स्वयंभूके पिता। कृतियाँ—हरिवंशपुराण[१], रामायण (पउमचरिउ[२]), और स्वयंभू-छन्द।

१—आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

बुध-जन स्वयंभु तोँहि वीनवई। मोँहि सरिसउ अन्य नाहि कुकवी॥
व्याकरण किछू ना जानियऊ। ना वृत्ति-सूत्र बक्खानियऊ॥
ना सुनेउँ पाँच महान् काव्य। ना भरत न लक्षण छन्द सर्व॥
ना बूझेउँ पिंगल-प्रस्तारा। ना भामह - दंडि - अलंकारा॥
व्यवसाय तऊ ना परिहरऊँ। वरु रयडा कहेँउ काव्य करऊँ॥

---

*बाण (हर्ष ६०६–४८ ई०) और रविषेण (६७६ ई०)के नाम स्वयंभूने अपने ग्रंथमें लिये हैं; उधर पुष्पदंत (९५९–७२ ई०)ने स्वयंभूका नाम लिया है; इस प्रकार स्वयंभू ६७६ और ९५९के बीचमें हुये। वह रयडा (राजश्रेष्ठी ?) धनंजयके आश्रित थे और उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू वंदइ (वंदक)के आश्रित। वंदइका ज्येष्ठ पुत्र गोविंद था। हमारे कवि (स्वयंभू)के नाम, श्रीपाल और धवलइय भी परिचित थे। किंतु उनमें कोई नाम प्रसिद्ध नहीं है। रामायणकी २०वीं संधिमें उन्होंने "धुवराय राय व तइय भुअ-प्पणत्तिणत्तीसु याणुपायेण" पदमें ध्रुव-राज नामक किसी राजाका नाम दिया है। राष्ट्रकूटोंमें तीन ध्रुव हुये हैं, जिनमें एक महान् विजेता ध्रुव धारावर्ष (७८०-९४ ई०)था, दो उसके पुत्रसे होने वाली गुर्जर-शाखामें हुये, तो भी वह ८६७ ई०से पहिले हुये थे। ध्रुव धारावर्ष सेनाके साथ कन्नोज आया था। जान पड़ता है, उसीके अमात्य रयडाके साथ स्वयंभू दक्षिण गये। ध्रुव धारावर्षके पुत्र इंद्रकी गुर्जर (खेडा) शाखामें दो ध्रुव थे—ध्रुव (प्रथम) धारावर्ष ८३०–३५, और ध्रुव (द्वितीय) ८६७ ई०।

सामाण भास छुड मा विहडउ । छुडु आगम-जुत्ति किंपि घडउ ॥
छुडु होंति सुहासिय-वयणाइँ । गामेल्ल - भास परिहरणाइँ ॥
ऍहु सज्जण लोयहु किउ विणउ । जं अबुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥
जं एवंवि रूसइ कोवि खलु । तहों हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ॥
घत्ता। पिसुणें किं अब्भत्थिएण, जसु कोवि ण रुच्चइ ।
किं छण-इन्दु मरुग्गहे, ण कंपंतु विमुच्चइ ॥३॥

—रामायण १।३

इय एत्थ पउमचरिए **धणजयासिय सयंभु** एव कए ॥

—रामायण (अन्त)

आइच्चएवि पडिमोवमाएँ, आइच्च नामा ए ।
वीअम उज्झा-कंडं सयंभु-घरिणीएँ लेहावियं ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुज्झु जं, तं निसुणहु रामायण ।....
जएँ लोयहु सुयणहु पंडियाहु । सद्दत्थ - सत्थ - परिचंडियाहु ॥
किं चित्तइ गेह्लवि सक्कियाइँ । वासेण वि जाइँ न रंजियाइँ ॥
तो कवणु गहणु अम्हारिसेहिँ । वायरण - विहूणहिँ आरिसेहिँ ॥
कइ अत्थि अणेअ-भेअ भरिया । जे सुयण सहासहिँ आयरिया ।
हँउ किं वि न जाणमि मुक्खु मणे । णिय-बुद्धि पयासिय तो वि जणे ॥
जं सयलें वि तिहुवणें वित्थरिउ । आरंभिउ पुणु राहव-चरिउ ॥

—रामायण २३।१

तहिँ अवसरि सरसइ धीरवइ । "करि कव्वु दिण्ण मइँ विमल मइ" ॥
इंदेण समप्पिउ वायरणु । रसु **भरहें** वासे वित्थरणु ॥
पिंगलें ण छन्द - पय - पत्थारु । **भम्महँ-दंडिणिहि** अलंकारु ॥
वाणेण समप्पिउ घणघणउ । तं अक्खर-डंबर घण-घणउ ॥
हरिसेणिं पाणिउ णित्तणउ । अवरेहिँ मि कइहिँ कइत्तणउ ॥

—हरिवंशपुराण १

सामान्य भाष यदि ना गढऊँ। यदि आगम-युक्ति किछू गढऊँ॥
यदि होइँ सुभाषित वचनाइँ। ग्रामीण - भाष - परिहरणाइँ॥
ऍहु सज्जन-लोगहँ का विनऊ। जो अबुधि प्रदर्शोंउँ आपनऊ॥
जो ऐसेंउ रूसै कोइ खला। तो हाथ-उछाला लेउ छल॥
घत्ता। पिशुनहिं का अभ्यर्थना, जासु किछू ना रूचई।
का पूर्णेन्दु मरुद् ग्रहें, हिं कंपंतो विमुच्चई॥३॥

—रामायण १।३

एहु इहँ पद्म-चरिते, धनंजयाश्रित स्वयंभुये हिं किये।

—रामायण (अन्त)

आदित्यदेवि देवि-प्रतिमा आदित्यदेवीहिं।
द्वितिय अयोंध्याकांडहिं लिखेंउ स्वयंभु-घरनीहिं॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुद्धे जो। सोंई सुनहु **रामायण**।
यदि लोग सुजन पंडित अहें। शब्दार्थ-शास्त्र परिचित अहें॥
की चित्तेहिं ग्रहण न सक्कियाइँ। वासे हूँ होंहि न रंजियाइँ॥
तो कौन ग्रहण हमरे सदृशहि। व्याकरण - विहून एतादृशहिं॥
कवि अहे अनेक-भेद-भरिया। जे सुजन स्वभाषहिं आचरिया॥
हौं किछुअ न जानउँ मूर्ख-मने। निज बुद्धि प्रकासेउँ तोउ जने॥
जो सकलेहिं त्रिभुवनें विस्तरिऊ। आरंभेंउ पुनि राघव-चरिऊ॥

—रामायण २३।१

तेंहि अवसर सरसति विरजाती। "करु काव्य, दियो मैं विमलमति॥"
इन्द्रेहि समर्पेउ व्याकरणा। रस **भरत** सु-वासहिं विस्तरणा॥
पिंगलेंहिं छन्द - पद - प्रस्तारा। **भामह** **दंडिनेहि** अलंकारा॥
वाणेंहिं समर्पेउ घनघनऊ। सो अक्षर - डंवर घन - घनऊ॥
हरिसेनने पानिउ आपनऊ। अवरेंहिं कवियेंहिं कवित्वनऊ॥

—हरिवंशपुराण १

छव्वरिसाइँ तिमासा एयारस वासरा सयंभुस्स ।
वाणवइ संधि करणे, वोलिणो इत्तिओ कालो ॥
दियहाहियस्स वारे दसमी-दियहम्मि मूल-णक्खत्ते ।
एयारसम्मि चंदे उत्तरकंडं समाढत्तं ॥
—हरिवंशपुराण ६२।३, ४

भद्दमासे विणासिय-भवकलि । हुउ परिपुण्ण चउद्दिसि णिम्मलि ॥
—हरिवंशपुराण (अंत)

धुवराय व्वतइय लु अप्पठत्ति-णत्ती सु याणु पाढेण
णामेण सामि अव्वा सयंभु-घरिणी महासत्ता ॥
—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्खर - वास - जलोह - मणोहर । सुयलंकार -छंद-मच्छोहर ॥
दीह-समास-पवाहा-वंकिय । सक्कय-पायय-पुलिणा-लंकिय ॥
देसी-भासा-उभय-तडुज्जल । कवि-दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ॥
अत्थ-बहल-कल्लोला णिट्ठिय । आसा-सय-सम-ऊह-परिट्ठिय ॥
राम-कहा सरि एँह सोंहती ।................
—रामायण १

२—ऋतु और काल-वर्णन

(१) पावस

सीय स-लक्खण दासरहि, तरुवर-मूले परिट्ठिय जावेंहिं ।
पसरइ सुकइहि कव्वु जिह, मेह-जालु गयणंगणे तावेंहिं ॥
पसरइ जेम बुद्धि बहु-जाणहों । पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहों ॥
पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहों । पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहों ॥
पसरइ जेम कित्ति जगणाहहों । पसरइ जेंम चिंता धणहीणहों ॥
पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहों । पसरइ जेम किलेसु णिहीणहु ॥

छै वर्ष तिमास इग्यारह वासरा स्वयंभूको ।
बानवे संधि रचने हि, बोलियउ एत्तनो कालो ॥
दिवसाधिप को वार, दशमी दिवस मूल-नक्षत्रे ।
ग्यारहवें चंद्र(मासे) उत्तरकांड समाप्त भवो ॥
—हरिवंशपुराण

भादौं मास विनाशित भव कलि, हुअ परिपूर्ण चऊंदस निर्मलें ।
—हरिवंशपुराण (अन्त)

ध्रुव राजा........................
नामेन स्वामि.......स्वयंभुघरिनी महासत्त्वा ॥
—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्षर - वास - जलोघ - मनोहर । सु - अलंकार - छंद - मत्स्योघर ॥
दीर्घसमास-प्रवाहहिं वंकित । संस्कृत-प्राकृत-पुलिनालंकृत ॥
देशी भाषा दोउ-तट उज्ज्वल । कवि-दुष्कर-घन-शब्द-शिलातल ॥
अर्थ-बहुल कल्लोलहिं सज्जित । आशा-शत-सम-ओघ-समर्पित ॥
राम-कथा सरि एहु सोहंती ।..................
रामायण १

२—ऋतु और काल-वर्णन

(१) पावस

सीय स-लक्ष्मण दाशरथि, तरुवर-मूले बैठेंउ जबहीं ।
पसरै सुकविहिं काव्य जिमि, मेघ-जाल गगनंगणे तबहीं ॥
पसरै जिमि बुद्धी बहु-ज्ञानहँ । पसरै जिमि पापा पापिष्टहँ ।
पसरै जिमि धर्मा धर्मिष्टहँ । पसरै जिमि ज्योत्स्ना मृगवाहहँ ॥
पसरै जिमि कीर्ती जगनाथहँ । पसरै जिमि चिन्ता धनहीनहँ ॥
पसरै जिमि कीर्त्ती सुकुलीनहँ । पसरै जिमि किलेश निहीनहँ ॥

पसरइ जेम सद्दु सुर-तूरहों। पसरइ जेम रासि णहें सूरहों ॥
पसरइ जेम दवग्गि वणंतरे। पसरिउ मेह-जालु तह अंबरे ॥
तड़ि तड़-तड़इ पड़इ घणु गज्जइ। जाणइ रामहों सरणु पवज्जइ।
घत्ता। अमर महद्धणु गहिय करें, मेह-गइन्दे चडिवि जस-लुद्धउ।
उप्परि गिंभ णराहिवहों, पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥१॥
जे पाउस-णरिन्दु गल-गज्जिउ। धूली रउ गिंभेण विसज्जिउ ॥
गंपिणु मेह विंदि आलग्गउ। तड़ि करवालु पहारेंहिं भग्गउ ॥
जं 'वि वरम्मुहु चलिउ विसालउ। उट्ठिउ हणु-हणंतु उण्हालउ ॥
धग-धग-धग-धगंतु उद्धाइउ। हस-हस-हस-हसंतु संपाइउ ॥
जल-जल-जल-जलंतु पयलंतउ। जालावलि-फुलिंग मेल्लंतउ ॥
धूमावलि-धय-दंड ब्भेप्पिणु। वर-वाउल्लि-खग्ग कड्ढेप्पिणु ॥
झड़-झड़-झड़-झड़ंतु पहरंतउ। तरुवर-रिउ भड-थड-भज्जंतउ ॥
मेह-महग्गय-घड विहडंतउ। जं उण्हालउ दिट्ठु भिड़ंतउ ॥
पाउस-राउ ताव संपत्तउ। जल-कल्लोल-संति पयडंतउ।
घत्ता। धणु अप्फालिउ पाउसेण, तडि-टंकार-फार दरिसंतउ।
चोइवि जलहर-हत्थि-हड, णीर सरासणि मुक्क तुरंतउ ॥२॥
जल-वांणासणें घायहिं घाइउ। गिण्हु णराहिउ रणें विणिवाइउ।
दद्दुर रडेंवि लग्ग णं सज्जण। णं णच्चंति मोर खल-दुज्जण ॥
णं पूरंत सरिउ अक्कंदें। णं कइ किलकिलन्ति आणन्दें।
णं परहुय विमुक्क उग्घोसें। णं वरहिण लवंति परिओसें।
णं सरवर वहु अंसु-जलोल्लिय। णं गिरिवर हरिसें गंजोल्लिय।
णं उण्हविय दवग्गि विओएँ। णं णच्चिय महि विविह-विणोएं।
णं अत्थविउ दिवायर दुक्खें। णं पइसरइ रयणि सइं सोक्खें।
रत्तपत्त-तरु-पवणाकंपिय। केण 'वि काहेउ गिंभुऊ जंपिय।
घत्ता। तेहएँ कालें भयाउरयें, विण्णि 'वि वासुएव वलएव।
तरुवर-मूलें स-सीय थिय, जोग लयेविणु मुणिवर जेंव ॥३०॥

—रामायण २८।१-३

पसरै जिमि शब्दा सुर-तूर्यहूँ । पसरै जिमि राशि नभें सूरहूँ ॥
पसरै जिमि दावाग्नि वनांतरें । पसरेंउ मेघ-जाल तिमि अंबरें ॥
तड़ि तड़-तड़ै पड़ै घन गरजै । जानकि रामहुँ शरणहिँ व्रजै ॥
घत्ता । अमर महाधनु गहि करैं, मेघ गयंदे चढ़ेंउ यशलुब्धा ।
ग्रीष्म नराधिप कहूँ ऊपर, पावस-राज केर दल सज्जा ॥१॥
जनु पावस-नरेन्द्र गल-गर्जेउ । धूली-रज ग्रीष्मेहि विसर्जेउ ॥
जंपिय मेघवृन्द आ-लागेउ । तड़ि करवाल प्रहारेहिँ भागेउ ।
जनु हि पराङ्-मुख चलेंउ विशाला । उट्ठेंउ हनहनंत ऊष्णाला ।
धग-धग-धगंत उद्-धायउ । हस-हसँ-हस-हसन्त संजायउ ।
ज्वल-ज्वल-ज्वल-ज्वलंत प्रचलंता । ज्वालावलि फुलिंग मेलंता ।
धूमावलि-ध्वज-दंड उठायेउ । वर-बादली खड्ग कढ़ायेउ ।
झड़-झड़-झड़-झड़ंत प्रहरंता । तरुवर-रिपु भट-ठट भज्जंता ।
मेघ महागज-घट विघटंता । जनु उष्णाला दीख भिडंता ।
पावस-राय तबहि आयंता । जल-कल्लोल शांति प्रकटंता ।
घत्ता । धनु फरकायेउ पावसहि, तडि टंकार फार दरसंता ।
प्रेरिय जलधर-हस्ति-घट, तीर शरासन मोचु तुरंता ॥२॥
जल-बाणासने घातहि धायेउ । ग्रीष्म नराधिप रणेहि निपातेउ ।
दादुर रटन लागु जनु सज्जन । जनु नाचई मोर खल-दुर्जन ।
जनु पूरहि सरिता आक्रंदे । जनु कपि किलकिलंति आनन्दे ।
जनु परभृत विमोचु उद्घोषे । जनु वर्हिन लपंति परदोषे ।
जनु सरवर बहु-अश्रु-जलोल्लित । जनु गिरिवर हर्षे गंजोल्लित ।
जनु ऊषमिय दवाग्नि वियोगें । जनु नाचिय महि विविधि-विनोदे ।
जनु अस्तमेउ दिवाकर दुःखे । जनु पइसे रजनी सति सौख्ये ।
रक्तपत्र-तरु-पवना-कंपिय । केंहेंहि कहेउ ग्रीष्मऊ जल्पिय ।
घत्ता । तेहेंहि कालें भयातुरे, दोउहि वासुदेव बलदेव ।
तरुवर-मूलें स-सीय चित, जोग लइय मुनिवर जेम ॥३॥
—रामायण २८ ।१-३

(२) वसंत

कुव्वर-णयरु पराइय जावेंहि । फागुण-मासु पवोलिउ तावेंहि ।
पइठु वसंत-राउ आणंदें । कोइल-कलयलु मंगल-सद्दें ।
अलि-मिहुणेंहिँ वंदिणेंहिँ पढ़न्तेंहि । वरहिण वावणेहि णंच्चंतेहिँ ।
अंदोला-सय-तोरणवारेंहिँ । ढुक्कु वसंतु अणेय-पयारेंहिँ ।
कत्थइ चूअ-वण इ पल्लवियइँ । णव-किसलय-फल-फुल्लु 'ब्भवियइँ ।
कत्थइ गिरि-सिहरहिँ विच्छायइँ । खल-मुँह इव मसि-वण्णइँ जायइँ ।
कत्थइ माहव-मासहों मेइणि । पिय-विरहेण 'व सूसइ कामिणि ।
कत्थइ गिज्जइ-वज्जइ मंदलु । णर-मिहुणेहिँ पणच्चिउ गोंदलु ।
तं तहों णयरहों उत्तर-पासेंहिँ । जण-मण-हरु जोयण-उद्देसेहिँ ।
दिट्ठु वसंत-तिलउ उज्जाणु । सज्जण-हियउँ जेम अपमाणु ।
—रामायण २६।५

णं दीसर-पइ सारएँ सारएँ । माहव-मासु णाइ हक्कारइ ।
सासय-सिव सं पावणें पावणें । दरिसावियउ फग्गुणे फग्गुणें ।
णव-फल-पारिपक्काणणें काणणें । कुसुमिय साहारएँ साहारएँ ।
रिद्धि गयक्कोक्कणयहि कणयहों । हंस ब्भंसिये कु-वलएँ कुवलएँ ।
महुयर महु मज्जंतएँ जंतएँ । कोइल वासंतएँ वासंतए ।
कीर-वंदि उट्ठंतए-ठंतए । मलयाणिलें आवंतएँ वंतएँ ।
मधुवरि-पडिसंल्लावएँ लावएँ । जहि णवि तित्तिरयहों तित्तिरएँ ।
णाउ ण णावइ किंसुइ किंसुइ । जहि वसेण गय-गाहहों गाहहों ।
तहि तणु तप्पइ सीयहें सीयहें ।
घत्ता—अच्छउ सामण्णे केणवि अण्णो, जहि अइमुत्तउ रइ करइ ।
तं जण-मण-मज्जावणों, सच्छ-सहावणु को महुमासु ण संभरइ ॥१॥
कत्थइ अंगारय-संकासउ । रेहइ तंविरु फुल्ल पलासउ ।
णं दावाणलु आउ गवेसउ । "को मइ दड्ढ ण दड्ढु पएसउ" ।

(२) वसंत

कुव्वर नगर पहूँचेउ जव्वहिं । फागुन-मास प्रवोलेउ तव्वहिं ।
पइसु वसंत-राव आनन्दे । कोइल-कलकल मंगल-शब्दे ।
अलि-मिथुनेँहि वंदीहि पढ़न्तेँहिं । बर्हिन वामनेहिं नाचंतेहि ।
अन्दोलित-शत-तोरणवारेहिँ । ढुक्कु वसंत अनेक-प्रकारहिं ।
कहि कहिँ चूत-वनहिँ पल्लवितहिँ । नव-किसलय-फल फूलु' द्रूवितहिँ ।
कहिँ कहिँ गिरिशिखरा वि-च्छाया । खल-मुख इव मसिवर्णहिँ लाया ।
कहिँ कहिँ माधव-मासहिँ मेदिनि । प्रिय-विरहेँहिँ जनु श्वसही कामिनि ।
कहिँ कहिँ गावैं वाजैं मांदर । नर-मिथुनेहिँ प्रनाचेँउ गोँदल ।
सो तेहिँ नगरहें उत्तर-पासेँ । जन-मनहर योजन-उद्देशेँ ।
दीख वसंत-तिलक उद्याना । सज्जन हियहिँ यथा अप्रमाणा ।
—रामायण २६।५

जनु दीवस-पति धीरेइँ धीरे । माधव-मास न्याइँ हंकारे ।
शाश्वत-शिव इव पावन-पावन । दरसायऊ फागुने फा-गुन ।
नव-फल-परिपक्वानन कानन । कुसुमेँउ सहकारे-सहकारे ।
ऋद्धि गयेउ कोकनद करकहें । हंसा हँसे कुवलय कु-वलय ।
मधुकर मधु मज्जंते यांते । कोकिल वासंतेँ वासंतेँ ।
कीर-वंदि उट्ठंते ठंते । मलयानिल आवंते-वंते ।
मधुकरि प्रतिसंलापैं लापैं । जहँ नव-तीतरयेँ तीतरये ।
नाम न नावैं किंशुकि किं-सुकि । जँह वशेहि गजनाथहँ नाथहँ ।
तहँ तनु तप्पैं सीतहँ शीते ।
घत्ता—आछेउ सामान्ये कौनहुँ अन्ये, जहँ अतिमुक्तउ रति करइ ।
जन-मन-मज्जावन, स्वच्छ-सुहावन, को मधु-मास न आदरइ ॥१॥
कहिँ कहिँ अंगारक-संकाशा । राजैं तामरु फुल्ल पलाशा ।
जनु दावानल आइ गवेषा । "को मैं दाहु न दाहु प्रदेशा" ।

कत्थवि माहविए णिय-मंदिरु। यंतु णिवारिउ तं इंदिंदिरु।
ऊसरु ऊसरुतहु अपवित्तउ। अण्णएँ णव पुप्फवइऍच्छित्तउ।
कत्थइ मूय-कुसुम-मंजरियउ। णाइ वसंत वड़ायउ धरियउ।
कत्थइ पवण-हयइ पुण्णायइ। णं जगें उत्थल्लिया पुण्णायइ।
कत्थइ अहिणवाइ भमरउलइ। थियइ वसंत-सिरिहे णं कुरुलइ।
फणसइ अवुह-मुहा इव जड्डइ। सिरि-हलाइ सिरिहल इव वड्डइ।
—रामायण ७१।१-२

(२) संध्या-वर्णन

उवहसइ संझाराउ सुह-बंधुरु। विद्दुमयाहरु मोत्तिय-दंतुरु।
छिवइ'व मत्थउ मेरु-महीहरु। तुज्झुवि मज्झुवि कवणु पईहरु।
जं चंद-कंत-सलिलाहिसित्तु। अहिसेय-पणालु'व फुसिय चित्तु।
जं विद्दुम-मरगय-कंतिआहि। थिउ गयणु'व सुरधणु-पंतिआहि।
जं इंदणील-माला-मसीऍं। आलिहइ वंदि भित्तीऍं तीए।
जहि पोमराय-पह तणु विहाइ। थिउ अहिणव-संझाराउ णाइ।
जहि सूरकंति खेइज्जमाणु। गउ उत्तर-येसहों णाइ भाणु।
जहि चंद-कंति मणि-चंदियाउ। णव-यंद-ब्भासें चंदियाउ।
अच्छरिउ कुमार चवंति येव। वहु चंदी-हूयउ गयणु केम।
पिक्खेप्पिणु मुत्ता-हल-णिहाय। गिरि-णिज्झर भणेवि धुवत्ति पाय।
—रामायण ७२।३

३. भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अवहत्थे'वि खल-यणु णिरवसेसु। पहिलउ णिरु वण्णमि मगह-देसु।
जहिं पक्क-कलम-कमलिणि णिसण्णु। अलहंत तरणि थेरव विसण्णु।

कहिँ कहिँ माधविया निज मंदिर । जोउ निवारेउ इंदिंदिरू ।
ऊसर ऊस ऋतुहुँ अपवित्रा । अन्ये नव पुष्पवतिएँ क्षिप्तउ ।
कहिँ कहिँ मूक कुसुम-मंजरिया । न्याइँ वसंत वडापउ धरिया ।
कहिँ कहिँ पवनाहत पुन्नागा । जनु जग ऊछल्लेँउ पुं-नागा ।
कहिँ कहिँ अभिनव-भ्रमर-कुलाऊ । रहेँउ वसंत-सिरिहि इव कुरुलउ ।
पनसा अवुध-मुखा इव जड्डा । सिरि-फल सिरिफलाहि इव बड्डा ।
—रामायण

(२) संध्या-वर्णन

उपहसै संध्या-राग सुख-बंधुर । विद्रुमक-अधर, मौक्तिक-दंतुर ।
छुवइ इव मस्तक मेरु-महीधर । तुम्हँरेँउ हमरेँउ कवन पतीधर ।
जनु चंद्रकान्त सलिलाभिषिक्त । अभिषेक-प्रणालि 'व स्पृशित-चित्त ।
जनु विद्रुम-मरकत-कांतियाहि । रहु गगन इव सुरधनु-पंक्तियाहि ।
जनु इंद्रनील-माला-मसीहि । आलिखइ बन्द भित्तीहि ताहि ।
जहँ पद्मराग-प्रभ-तनु विभाहि । रहु अभिनव-संध्या-राग न्याइँ ।
जहँ सूर्यकांति क्षीइज्जमान । गउ उत्तर-देसहिं न्याइं भानु ।
जहँ चंद्रकांतमणि-चंद्रियाव । नव-चंद्राभासे चंद्रिकाव ।
अँचरजेँउ कुमार च्यवंत एव । बहु चंद्रीभूतउ गगन केम ।
पेखियवउ मुक्ताफल-निभाय । गिरि-निर्भर भनि धोवंत पाय ।
—रामायण ७२।३

३—भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अपभ्रंशेँउ खल-जन-अनवशेष । पहिलेँउ मैं वर्णउँ **मगह-देश** ।
जहँ पक्व कलम-कमलिनि निषण्ण । अलभंत तरणि थिरवहिँ विषण्ण ।

जहिँ सुय-पंतिउ सुपरिट्ठिआउ । णं वणसिरि-मरगय-कंठियाउ ।
जहिँ उच्छु-वणइ पवणाहयाइँ । कंपंति'व पीलणभय-गयाइ ।
जहिँ णंदण-वणइँ मणोहराहँ । णच्चंति'व चल-पल्लव-कराइँ ।
जहिँ फाडिम-वयणइँ दाड़िमाइँ । णज्जंति ताइ णं कइ-मुहाइँ ।
जहिँ महुयर-पंतिउ सुंदराउ । केअइ-केसर-रय-धूसराउ ।
जहिँ दक्खा-मंडव परियलंति । पुणु पंथिय रस-सलिलइँ पियंति ।

—रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता । तहिँ पट्टणु णामें रायगिहु, धण-कणय-समिद्धउ ।
णं पुहइएँ णव-जोव्वणाइ, सिरि-सेहरु आइद्धउ ।।४।।
चउ गोअरु-त्ति पायार-वन्तु । हँस इव मुत्ताहल-धवल-दन्तु ।
णच्चइ'व मरुद्धुय-धय-करग्गु । धर इव णिवडंतउ गयण-मग्गु ।
सूलग्ग-भिण्णु देउल-सिहरु । कण इव पारावय-सद्द-गहिरु ।
घुम्मइ'व गऍहि मयभिंभलेहिँ । उड्डइ'व तुरंगहि चंचलेहिँ ।
ण्हाइ'व ससिकंत-जलोयरेहिँ । पणवइ'व तार-मेहल-हरेहिँ ।
पक्खलइ'व नेउर-णिय-लएहिँ । विफ्फुरइ'व कुंडल-युयलएहिँ ।
किलकिलइ 'व सव्व-जणोच्छवेण । गज्जइ इव मुख-भेरी-रवेण ।
गायइ 'व अलाव-णिमुच्छणोहिँ । पुरवइ 'व धम्मु धण-कंचणेहिँ ।

—रामायण १।५४-५

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता । गयणंगणें थिएण, विज्जाहर-पवर णरिन्दहों ।
णाइ स-णिच्छरेण, अवलोइउ णयरु महिंदहों ।।१।।
चउ-दुवारु चउ-गोअरु चउ-पायारु-पंडरं । गयण-लग्ग पवणाहय-धयमालाउरं पुरं ।
गिरि-महिन्द-सिहरे रमाउले । रिद्धि-विद्धि-धण-धण्ण-संकुले ।
तं णिएवि हणुयेण चिंतियं । सुरपुरं किमिदेण घत्तियं ।

—रामायण ४६।१-२

जहँ शुक-पंक्तिउ सुपरि-स्थिताव । जनु वन-श्री-मरकत-कंठियाव ।
जहँ इक्षु-वना पवनाहता । कंपत इव पेलन-भय-भीता ।
जहँ नंदन-वने मनोहरा । नाचत इव चल-पल्लव-करा ।
जहँ फाटे वदन दाडिमा । दीखत से बे जनु कपि-मुखा ।
जहँ मधुकर-पंक्तिउ सुंदराईं । केतकि-केसर-रज-धूसराईं ।
जहँ दाखा-मंडप परिचलहीं । पुनि पंथिक रस-सलिलहि पियहीं ।

—रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता। तहँ पत्तन नामा राजगृह, धन-कनक-समृद्धउ ।
जनु पुहुमिहिं नवयौवन-श्री-शेखर आदेशितऊ ।।
चौगोपुर चौप्राकार-वन्त । हँस इव मुक्ताफल धवल-दन्त ।
नाचत 'व मरुत-धुत-ध्वज-कराग्र । धारा इव पड़तो गगन-मार्ग ।
शूलाग्र विंधे उ देवल-शिखर । क्वण इव पारावत शब्द-गहिर ।
धूंवत इव मद-विह्वल-गजेहिं । ऊड़त इव तुरगेंहिं चंचलेहिं ।
न्हावत शशिकांत-जलोदरेहिं । प्रणमति 'व तार-मेखल-धरेहिं ।
प्रस्खलइ 'व नूपुर-निजलयेहिं । विस्फुरइ 'व कुंडल-जुगलऐहि ।
किलकिलति 'व सर्व-जनोत्सवेन । गर्जति 'व मुरज-भेरी-रवेन ।
गायति 'व अलापा-मूर्छनेहिं । पूरति 'व धर्म-धन-कांचनेंहि ।

—रामायण

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता। गंगनांगणे स्थितउ, विद्याधर-प्रवर-नरेन्द्रहु ।
न्याइँ स-निश्चरहिं, अवलोकेउ नगर-महेन्द्रकहु ।
चौद्वार चौगोपुर चौप्राकार पांडुरं । गगन लाग पवनाहत-ध्वजमालाकुलं पुरं ।
गिरि-महेन्द्र-शिखरे रमाकुलं । ऋद्धि-वृद्धि-धनधान्य-संकुलं ।
ताहि देखि हनुमंत चिंतयेउ । सुरपुर किमि इन्द्र धरत्तियउँ ।

—रामायण ४६।१-२

(ग) दधिमुख-नगर

मण-गमणेण तेण णहें जंते। दहिमुह-णयरु दिट्ठु हणुवंते।
दिट्ठु राम-सीमा चउपासेंहि। धरिउ णाइ पुर-रिणिय सहासेंहि।
जहि पफुल्लियाइँ उज्जाणइ। वट्टइ[1] णं तित्थयर-पुराणइ।
जहि ण कयावि तलायइ सुक्कइ। णं सीयलइ सुट्ठु पर-दुक्खइ।
जहि वाविउ वित्थय-सोवाणउ। णं कुगइ[2]व हेट्ठा-मुह-गमणउ।
जहि पायार ण केणवि लंघिय। जिण-उवएस णाइ गुरु-लंघिय।
जहि देउलइ धवल-पुंडरियइँ। पोत्था वायरणइ -बहु-चरियहँ।
जहि मंदिरइँ स-तोरणबारइँ। णं सम-सरणइँ सहपरिवारइँ।
जहि भुव-णेत्त-सुत्त दरिसावण। हरि-हर-बम्हेहि जेहा आवण।
जहि वर-वेसउ तिणयण-भूवउ। पवन-भुयंग-सतहि अणुहूअउ।
जहि गयणत्थ-वसह हर हरसइ। राम-तिलोयण जेहा गहवइ।
घत्ता—तहि पट्टणें बहु उवमह भरिअएँ, णं जगें सुकइ-कव्वि वित्थरियएँ।
सहइ स-परियणु दहिमुहि-राणउ, णं सुरवइ सुरपुरहों पहाणउ ॥१॥

रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

णिद्दलिय भुअंग-विसग्गि मुक्कु। मुक्कंत ण वर-सायरहु ढुक्कु[2]।
ढुक्कंतेंहि वहल फुलिंग घित्त। ७ण सिप्पि-संख-संपुड-पलित्त।
धग-धग-धगंति मुत्ता-हलाइँ। कढ़-कढ-कढ़ंति सायर - जलाइँ।
हस-हस-हसन्ति पुलिणंतराइँ। जल-जल-जलन्ति भुवणंतराइँ।

—रामायण २७।५

संचल्लेउ राहव साहणेण। संघट्टिउ वाहणु वाहणेण।
थोवंतरे दिट्ठु महासमुद्दु। सुंसुयर-मयर-जलयर-रउद्दु।
मच्छोहरु-णक्क-गोहु घोरु। कल्लोलावंतु तरंग-थोरु।

---

[1] बाटै, बाडै, बाय [2] देख्यो (व्रज और बुंदेली)

(ग) दधिमुख-नगर

मनकी गतिसों सो नभ जंता। दधिमुख नगर देखु हनुमंता।
देखु अराम-सीम चौपासें हिं। धरेंउ जनू पुर-रणित सहासहिं।
जहँ प्रफफुल्लिताउ उद्याना। बाटैं[1] जनु तीर्थंकर[2]-पुराणा।
जहँ न कदापि तलावा सूखहिं। जनु शीतलत सुष्ट पर-दुःखहिं।
जहँ वापी विस्तृत-सोपाना। जनु कुगती हेठे-मुँह जाना।
जहँ प्राकार न कोऊ लंघेंउ। जिन-उपदेश न्याइँ दुर्लंघेंउ।
जहँ देवलहिं धवल-पुंडरिका। पोथी बाँचै औ बहु-चरिता।
जहँ मंदिरा स-तोरणवारा। जनु शम-शरणा सह-परिवारा।
जहँ भुव-नेत्र-सूत्र-दरसावन। हरि-हर-ब्रह्मा जैसो आवन।
जहँ वर-वेश्या त्रिनयन-भूता। प्रवर-भुजंग[3]-शतेंहिं अनुभूता।
जहँ गगनस्थ वृषभ हर हरषति। राम-त्रिलोचन सरिसो गृहपति।
घत्ता। सो पत्तन बहु-उपमा-भरिया, जनु जग सुकवि-काव्य विस्तरिया।
रहै स-परिजन दशमुख राना। जनु सुरपति सुरपुरहिं प्रधाना॥

—रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

निर्दलेंउ भुजंग विसर्ग मोचु। मोचत जनु वर-सागरहिं ढूकु[4]।
ढूकत हि बहु स्फुलिंग क्षिप्त। घन-सीप-शंख-संपुट-प्रलिप्त।
धग-धग-धगंत मुक्ताफला। कड-कड-कडंत सागर-जला।
हस-हस-हसंत पुलिनांतरा। ज्वल-ज्वल-ज्वलंत भुवनांतरा।

—रामायण २७।५

संचल्लेंउ राघव साधन-सँग। संघट्टेंउ वाहन वाहन-सँग।
थोडान्तरे देखु महासमुद्र। सूँस अवर मकर-जलचरें हिं रौद्र।
मत्स्योधर-नाका-गोह-घोर। कल्लोलावंत तरंग-जोर।[5]

---

[1] हैं [2] पथप्रवर्त्तक महावीर [3] वेश्यालम्पट [4] देखु [5] थोर

वेला वड्ढंतउ दुहुदुहंतु। फेणुज्जल-तोय तुषार दिंतु।
तहों अवरें पयट्टउ राम-सेण्णु। णं मेह्-जालु णहयलें णिसण्णु।

—रामायण ५६।६

घत्ता। मण-गमणेंहिँ गयणि पयट्टेहि, लक्खिउ लवण-समुद्दु किह।
महि-मंडयहों णह्-यल-रक्खसेण, फाडेंउ जठर-पयेसु जिह।२

दीसइ रयणायरु रयण-वाहु। विण्णु'व सवारि छंदु 'व सगाहु।
अत्थहु सुहि'व हत्थि'व करालु। भंडारिउ'व्व बहु-रयण-पालु।
सूहव-पुरिसो'व्व सलोण-सीलु। सुग्गीउ'व पयडिय इंद-लीलु।
जिण-सुव चक्कवइ'व कियव सेलु। मज्झाणु'व उप्परि चड़िय वेलु।
तवसि'व परिपालिय समय-सारु[1]। दुज्जण पुरिसो'व्व सहाव-खारु।
णिद्धण आलाउ'व अप्पमाणु। जोइसु'व मीण-कक्कडय-थाणु।
महकव्व-णिबंधु'व सद्द्-गहिरु। चामीयर'व सइय-पीय-मयरु।
तहि जलणिहिउ लंघंतएहि। वोहित्थइ दिट्ठइ जंतएहि।
सीह्-बडइ लंबिय इलाइँ। महरिसि चित्ताइँ'व अविचलाइँ।

—रामायण ६६।२-३

(४) नदी (गोदावरी)-वर्णन

थोवंतरे मच्छुत्थल्ल देंति। गोला-णइ दिट्ठ समुव्वहंति।
सुंसुअ घोरग्घुरु-घुरु-हुरंति। करि-मय-रड्डोहिय डुहु-डुहंति।
डिंडीर-संड-मंडलिउ दिंति। दद्दुर यरडिय दुरु-दुरु-दुरंति।
कल्लोलुल्लोहिउ उव्वहंति। उग्घोस-घोस घव-घव-घवंति।
पडिखलण-वलण खल-खल-खलंति। खल-खलिय खडक्कि भडक्क देंति।
ससि-संख-कुंद-धवलो झरेण। कारंडुड्डाविय डंवरेण।

---

[1] आचारव्रत

बेलहिँ बर्धंतउ दुह-दुहंत । फेनु-'ज्ज्वल तोय-तुषार देंत ।
तेँहि ऊपर पहुँचेँउ राम-सेन । जनु मेघजाल नभ-तलेँ निषण्ण ।
—रामायण ५६।९

घत्ता । मन-गतिहि गगनेँ चलंतउ, लक्खेउ लवण-समुद्र किमि ।
महि-मंडल नभ-तल राक्षसेँहिँ, फाड़ेँउ जठर-प्रदेश जिमि ।।

दीसइ रत्नाकर रतन-चारु । विष्णु'व सवारि छंदि'व सगाथ ।
अर्थहु सुख इव हस्ति'व कराल । भंडारी इव बहु-रतन-पाल ।

सु-भव[1] पुरुष इव सलोन-शील । सुग्रीवि'व प्रकटेँउ इन्द्र-नील ।
जिनसुत चक्रवर्ति'व कियेँउ शैल । मध्यान्हि'व ऊपर चढ़ेँउ बेल ।

तपसी इव पालेँउ समय-सार । दुर्जन-पुरुष इव स्वभाव-खार ।
निर्धन-अलाप इव अ-प्रमाण । जोतिसि 'व मीन-कर्कटक-थान ।

महकव्य-निबँध इव शब्द-गहिर । चामीकरि'व शयित-पीत-मकर ।
तहँ जलनिधिहू लंघंतयेहु । वोहितऊ देखेँउ जांतएहु ।

सिंह-वटहिँ लंबित-फलाउ । महऋषि-चित्ता इव अविचलाउ ।
—रामायण ६९।२-३

(४) नदी-वर्णन

थोडांतरे मच्छ-उछल्ल देंत । गोदा-नदि देखु समा-वहंत ।
सूँसउ घोरा घुर-घुर-घुरंत । करि-मद-रड्डोहित डुहु-डुहुंत ।

हिंडीर-खंड मंडलिउ देंत । दादुर-ध्वनियहु दुर-दुर-दुरंत ।
कल्लोलु-'ल्लोहित उद्वहंत । उद्घोष घोष घव्-घव्-घवंति ।

प्रतिखलन-वलन खल-खल-खलंत । खल-खलिउ खडक्कि भटक्कि देंत ।
शशि-शंख-कुंद-धवला भरेण । कारंडव 'डायउ डंबरेण ।

---

[1] सुजात

घत्ता । फेणावलि वंकिय-वलयालंकिय, णं महि बहुअहे तणिया ।
जल-णिहि भत्तारहों मोंत्तिय हारहों, वाह पसारिय दाहिणिया ।।३।।
—रामायण ३१।३

(५) वन-वर्णन

तहि तेहएँ सुंदरें सुप्पवहे । आरण्ण-महग्गय-जुत्त-रहे ।
धुर लक्खणु रहवरें दासरहि । सुर-लीलएँ पुणु विहरंत महिं ।
तं कण्ह-वण्ण-णइ मुएँ विगया । वण कहिमि णिहालिय मत्तगया ।
कत्थवि पंचाणण गिरि-गुहेहिं । मुत्तावलि विक्खिरंति णहेहिं ।
कत्थवि उड्डाविय सउण-सया । णं अडविहें उड्डे विणण-गया ।
कत्थवि कलाव णच्चंति वणे । णावइ णट्टावा जुयइ-जणे ।
कत्थइ हरिणइँ भय-भीयाइं । संसारहों जिह पावइ याइँ ।
कत्थवि णाणा-विह रुक्ख-राइँ । णं महि-कुल-बहुअहि रोमराइँ ।
—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि (अयोध्या)-प्रशंसा

धूवंत धवल-धय वड-पउरु । पिय पेक्खु अउज्झाउरि णयरु ।
घत्ता । किर जम्मभूमि जणणीय सम, अण्णु विहूसिय जिणवरेहि ।
पुरि वंदिय सिर सयंभुव करेंहि, जणय-तणय-हरि-हलहरेहि[1] ।।२।।
—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनूमानकी लंकासे अयोध्याकी यात्रा—

घत्ता । मणगमणेहिँ गयणें पयट्टेहि, लक्खिउ लवण-समुद्दु किह ।...
अण्णुवि थोवंतरु जंतएहि, तिहिमि णिहालिउ गिरि-मलउ ।
जो लवली-वलहो चंदण सरहो, दाहिण-पवणहों थाम लउ ।।३।।

---

[1] राम-लक्ष्मण

घत्ता । फेणावलि-वंकिम वलयालंकृत, जनु महि-वधुअहि-तनिया ।[1]
जलनिधि भत्तारह् मौक्तिकहारहँ, बाँह् पसारिय दाहिनिया ॥
—रामायण ३१।३

(५) वन-वर्णन

तँह तेहिहि सुंदर सु-प्रभो । आरण्य महागज-युक्त रहो ।
धुर लक्ष्मण रथवरेँ दाशरथी । सुर-लीलहिँ पुनि विहरंत मही ।
सो कृष्ण-वेण-नदि मृग-सहिता । वन कहउँ निहारिय मत्तगजा ।
कहिँ कहिँ पंचानन गिरि-गुहाहिँ । मुक्तावलियहिँ विकिरंत नभहिँ ।
कहिँ कहिँ उड्डायेँउ शकुन-शता । जनु अटविहि उड्डु वियद-गता ।
कहिँ कहिँ कलापि नाचंत वने । न्याईँ नाट्या वा युवति-जने ।
कहिँ कहिँ हरिना भय-भीताइँ । संसारह्ु जिमि पापहि जाइं ।
कहिँ कहिँ नानाविध वृक्षराजि । जनु महि-कुलवधुवहि रोमराजि ।
—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि-प्रशंसा

धूवंत धवल-ध्वज वट-प्रवरू । प्रियेँ ! पेखु अयोध्यापुरि नगरू ।
घत्ता । फुरु जन्म-भूमि जननीहिँ सम, आन विभूषित जिनवरेहिँ ।
पुरि वंदि सिर स्वयंभू करेहि, जनकतनय-हरि-हलधरेहिँ ।
—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनूमान्‌की लंका-अयोध्या

घत्ता । मन वेगेँहिँ गगनेँ चलंतो, लखेँउ लवण-समुद्र जिमि । . . . . .
अवरो थोडं' तरे जातो, तहँहिँ निहारेँउ गिरि-मलयो ।
जो लवली वलहो चंदन-सरहो[2], दक्षिण पवन विस्तार लियो ।

---

[1] तनी=वाली   [2] बेँत

जहि जुवइ-पउरु पारज्जियाइँ। रत्तुप्पल-कयलिय-वण थियाइँ।
कामिणि-गइ छाया-मंसियाइँ। जहि हंस-वलइ आवासियाइँ।
कर-करयल-ऊहामिय मणाइ। जहि मालइ-कंकेल्ली-वणाइँ।
जहि वयण-णयण-पह घल्लियाइ। कमलिंदीवरइ समल्लियाइ।
जहि महुरवाणि-अवहत्थिआइं। कोइल-कुलाइँ कसणइ थियाइँ।
भउहावलि-छाया-वंकियाइँ। जहि णिंब-दलइ कडुअइ कियाइँ।
जहि चिहुर-भार ऊहामियाइ। बरहिण-कुलाइँ रोवावियाइँ।
तं मलउ मुएँवि विहरंति जाव। दाहिण-महुरएँ आसण्ण ताव।

घत्ता। **किक्किंध**-महागिरि लक्खियउ, तुंग-सिहरु कोडावणउ।
छुड रमिअहें पुहइ-विलासणिहें, उर-पयेसु णंग सव्वणउ॥४॥

जहि इंदणील-कर-भिज्जमाणु। ससि थाइ जुण्ण-दप्पणु-समाणु।
जहि पउमराय-कर-तेय-पिंडु। रत्तुप्पल-सण्णिहु होइ चंदु।
जहि मरगय-खाणिवि विप्फुरंति। ससिबिंबु भिसिणि पत्तुवकरंति।
तं मेल्लें विरह-सुच्छल्लिय-गत्त। णिविसद्धें सरि **कावेरि** पत्त।
जालइय विहंजेंवि णरवरेहि। महकव्व-कहा इव कइ-वरेहि।
सामिय-आणा इव किंकरेहि। तित्थंकर-वाणि'व गणहरेहि।
सिव-सासयमोत्ति'व हेउयेहि। बरसद्दुप्पत्ति'व वाउएहि।
पुणु दिट्ठु महानद **तुंगभद्द**। करि-मयर-मच्छ-कच्छय-रउद्द।

घत्ता। असहंते वण-दव-पवण-झड, दसह-किरण-दिवायरहों।
णं संज्झें सुट्ठु ति साएण, जीहें पसारिय सायरहों॥५॥

पुणु दिट्ठु पवाहिणि **कण्णवेण्ण**। किविणत्थ-पडत्ति'व महि-णिसण्ण।
णं इंदणील-कंठिय-धरेण। दक्खविय समुद्दहों आयरेण।
पुणु सरि**भीम**-जलोह फार। जा सेउण देसहों अमिय-धार।
पुणु **गोला**-णइ मंथर-पवाह। संभेण पसारिय णाइ वाह।

---

[१] **तीर्थंकर महावीरके प्रथम प्रमुख शिष्य**

जहँ युवति-प्रवर पाराजिताइँ। रक्तोत्पल-कदली-वन थिताइँ।
कामिनिगति-छाया-मर्षिताइँ। जहँ हंस-यूथ आवासिताइँ।
कर-करतल ईहामृग-मनाइँ। जहँ मालति-कंकेल्ली-वनाइँ।
जहँ वदन-नयन-प्रभ फेंकियाइँ। कमलि-'दीवरहु समेलियाइँ।
जहँ मधुर-वाणि अपहस्तिताइँ[१]। कोकिल-कुलाइँ कृष्णा थिताइँ।
भौंहावलि-छाया-वंकिमाइँ। जहँ निंब-पत्र कटुका कियाइँ।
जहँ चिकुर-भार ईहामृगाइँ। बर्हिण-कुलाइँ रोवाइताइँ।
सो मलय-भूमि विहरंत जौ। दक्षिण-मथुरहिँ आसन्न तौ।
घत्ता। किष्किंध-महागिरि लखियहू, तुंग-शिखर क्रोडावनऊ।
यदि रम्यहि पुहुमि-विलासिनिहीँ, उरप्रदेश अनंग सवंनऊ॥३४॥
जहँ इन्द्रनील-कर-भिद्यमान। शशि रहै जीर्ण-दर्पण-समान।
जहँ पद्मराग-कर-तेज-पिंड। रक्तोत्पल-सदृश होइ चंद।
जहँ मरकत-खानिहि विस्फुरंति। शशिबिंब भिसिहिँ प्रत्युपकरंति।
सो छाडि विरह-सुच्छलिय-गात्र। निमिषार्धें सरि **कावेरि** प्राप्त।
ज्वालयित विभंगेहु नरवरेहिँ। महकाव्य-कथा सों कविवरेहि।
स्वामी-आज्ञा सों किंकरेहिँ। तीर्थंकर-वाणि सों गणधरेहिँ।
शिव-शाश्वत मोति सों हेतुएहिँ। वर शब्दु-'त्पत्ति सों वायुएहिँ।
पुनि देखु महानदि **तुंगभद्र**। करि-मकर-मच्छ-कच्छप-रउद्र।
घत्ता। असहंतो वन-दव-पवन झड, दुसह किरण-दिवाकरहू।
जनु संध्यहि सुठि तृषितयहि, जीभ पसारेंउ सागरेहिँ॥५॥
पुनि देखु प्रवाहिणि **कृष्णवेण्य**। कृपिणार्थ-प्रवृत्ति'व महि-निषण्ण।
जनु इंद्रनील कंठे धरेहिँ। देखिविय समुद्रहु आकरेहिँ।
पुनि सरि **भीम** जलोघ फार। जो सेतुन देसहु अमृधार।
पुनि **गोदा** नदि मंथर-प्रवाह। संभेहिँ पसारेंउ नारि-बाँह।

---

[१] **पराजित**

पुणु वेण्णि **पाइण्हिउ** वाहिणीउ। णं कुडिल-सहावउ कामिणीउ।
पुणु **तापि** महाणइ सुप्पवाह। सज्जण-मत्तिव्व अलद्धथाह।
थोवंतरालें पुणु **विंभु** थाइ। सीमंतउ पि हिमिहितणउ णाइ।
पुणु **रेवा** णइ हणुवंत एहि। साणिंदिय रोसव संगएहि।
किं विंभहों पासिउ उवहि चारु। जो सविसु किविणु अभंव खारु।
तं णिसुणेवि सीय-सहोयरेण। विम्मच्छिय णहयल-गोयरेण।
घत्ता। जं **विंभु** मुएँवि गय सायरहों, मा रूसहि **रेवा**-णइहें।
णिल्लोणु मुयइ सलोणु सरइ, णिय-सहाउ यहु तिय मइहें ॥६॥
साणम्मय दूरवरेण चत्त। पुण **उज्जयणें** णिविसेण पत्त।
जहि जणवउ सधणु महग्घणो'व्व। रामो वरिवच्छलु लक्खणोव्व।
गुणवंतउ धणु कर-संगहो'व्व। अमुणिय-कर-सिरं-तणु वम्महो'व्व।
साविउ महिल'व्व **उज्जेणि** मुक्क। पुणु पारियत्त **मालवु** ढुक्कु।
जो धण्णालंकिउ णर-वइ'व्व। उच्छहणु कुसुम-सरु रइवइ'व्व।
तं मेल्लेंवि **जउणा** णइ पवण्ण। जा अलय[1]-जलय-गव-लालि-वण्ण।
जा कसिण भुयंगि'व विसहों भरिय। कज्जल-रेहा-वण धरणिएँ धरिय।
थोवंतरें जल-णिम्मल-तरंग। ससि-संख-सम-प्पह दिट्ठु **गंग**।
घत्ता। अम्हहँ विहि गरुवउ कवणु जइ, जुज्झि वि आयं मच्छरेण।
हिमवंतहों णं अवहरिविणिया, धय-वडाइँ रयणायरेण ॥७॥
थोवंतरें तिहि मि **अउज्झ** दिट्ठु। णं सिद्धिपुरिहि सिद्धव पइट्ठु।
जहि मिहुणइ आरंभिय रयाइ। पंथिय इव उव्वाइय पयाइ।
पाहुण इव अवरुंडण-मणाइ। गिरिवर-गत्ता इव सव्व णाइ।
अविचल-रज्जा इव सुकरणाइ। रिसि-उल इव भाण-परायणाइ।
धणुहर इव गुण-मेल्लिय सराइँ। अहोंरत्ता इव पहराउराइ।.......
घत्ता। महि-मंदरु-सायरु जावणहू, जाव दिसइ महणइ जलइ।
तउ होंति ताव जिणकेराइ, पुण्ण पवित्तइ मंगलइ ॥८॥
—रामायण ६९।३-८

---

[1] **मूंगा**

पुनि दोउ **पयस्विनि** वाहिनीहुँ । जनु कुटिल-स्वभावउ कामिनीहुँ ।
पुनि **तापि** महानदि-सुप्रवाह । सज्जन-मैत्री 'व अलब्ध-थाह ।
थोडंतराले पुनि **विंध्य** जाइ । सीमंतहूँ हिमकेरि न्याइँ ।
पुनि **रेवा** नदि हनुमंत आव । सानंदिउ रोषउ संगतेहि ।
कीँ विंध्यहु पासे उदधि चारु । जो सबहुँ कृपण झाँपेउ खारु ।
सो सुनि सीय-सहोदरेन । विमरशेँउ नभतल-गोचरेन ।
घत्ता । जो विंध्यभुमिहुँ गउ सागरहु, ना रुसइ **रेवा** नदिहि ।
निर्लवण मुंचइ सलवण सरइ, निज स्वभाव स्त्रीमयहि ॥६॥
सा **नर्मद** दूरतरेण त्यक्त । पुनि **उज्जयिनी** निमिषेण प्राप्त ।
जहँ जनपद सघन महार्घ इव । रामोपरि वत्सल लक्ष्मण इव ।
गुणवंतउ घन कर-संग्रह इव । अमुनिय-कर-शिर तनु मन्मथ इव ।
शापित महिलि'व **उज्जयन** मुंचु । पुनि पारियात्र **मालवहिँ** ढूकु ।
जो धान्यालंकृत नरपति इव । उत्सहन कुसुम-शर रतिपति इव ।
सो छाडिय **जमुना** नदी पहुँच । जो अलक[1]-जलक गो लाल-वर्ण ।
जो कृष्णभुजंगि'व विष-भरिया । कज्जल-रेखा-वन धरनि धरिया ।
थोडंतरे जल-निर्मल-तरंग । शशि-शंख-समप्रभ देखु **गंग** ।
घत्ता । हमरो सम गरुओ कौन, यदि जूझिव बहु-मत्सरहीँ ।
हिमवंतहु जनु अपहरण किय, ध्वजपताक रतनाकरहीँ ॥७॥
थोडंतरे तहँहि **अयोध्य** दृष्ट । जनु सिद्धिपुरिहि सिद्धप प्रविष्ट ।
जहँ मिथुनइ आरंभेँउ रजाइँ । पंथिक इव उट्ठाइय पदाइँ ।
पाहुन इव आलिंगन-मनाइँ । गिरिवर-गात्रा इ सर्व न्याइँ ।
अविचल राज्या इव सु-करणाइँ । ऋषि-कुल इव भांड-परायणाइँ ।
धनुधर इव गुणेँ मेले'उ शराइँ । अहोँरात्रा इव प्रहरावराइँ ।........
घत्ता । महि-मंदर-सागर आवनहूँ, जौ लौं दीसइ महनदि जलइँ ।
ता होंति तौ लौं जिनकेरइ, पुण्य-पवित्र मंगलइ ॥८॥
—रामायण ६९।३-८

---

[1] **मूँगा**

(ख) **रामकी लंकासे अयोध्या-यात्रा—**

गउ लंक विहीसणु मिच्चबलु। सोलहउसे दिवसें पयट्टु बलु।
स-बिमाणु स-साहणु गयण-वहे। दावंतु णिवाणइ पिअय महे।
एहु सुंदर दीसइ मयरहरु। एहु **मलय**-धराहरु सुरहि-तरु।
किक्किंध-महिवहो इह सयल। इह तुलिय कुमारें **कोडिसिल**।
हउँ लक्खणु एण पहेण गय। एत्तहि खर-दूसण-तिसिर हय।
इह संबु कुमारहों खुडिउ सिरु। इह फेडिउ रिसि-उवसग्गु चिरु।
इह सो उद्देसु णिअच्छियउ। जिय मोंम जणणु जहि अच्छियउ।
एहु देसु असेसु विचारु चरिउ। अइवीर णराहिउ जंहि धरिउ।
घत्ता। तं सुंदरियउ जियंत उरु, जहि वण बाल समावडिय।
लक्खिज्जइ लक्खण पायवहो, अहिणव वेल्लि णाइ चडिय ॥१६॥
रामउरि एह गुण-गारविय। जा पूयण जक्खें कारविय।
एहु अरुणु गामु कविलहों तणउ। जहि गल-थल्लाविउ अप्पणउ।
एहु दीसइ सुंदरि! **विंझ**-इरि। जहि वस किउ बालि-खिल्लु वइरि।
वइदेहि! एउ **कुब्बर**-णयरु। कल्लाण-माल जहि जाउ णरु।
एहु **दसउरु** जहि लक्खणु भमिउ। सीहोयर सीह समरि दमिउ....
दीसइ सव्वु सुवण्णु भउ। णिब्भविउ विहीसणि णं णवउ।
धूवंत धवल-धय-वड-पउरु। पिय! पेक्खु **अउज्झाउरि** णयरु।

—रामायण ७८।१९-२०

४—सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

लहु[१] भोयणु आणहि सुंदरउ। जं सरस-सलोणउ जेहें सुरउ।
तं णिसुणेंवि वेवि संचल्लिउ। णं **सुरसरि-जउणा** उत्थल्लिउ।

---

[१] तुरंत

(ख) **लंका-अयोध्या**

गयउ **लंक** विभीषण-मित्र-वल। सोलहवें दिवस प्रवृत्त बल।
स-विमान स-सेना गगनपथी। दर्शंत निवानइ प्रियकांक्षी।
ऍहु सुंदर दीसइ मकरघरु। एहु **मलय**-धराधर सुरभि-तरु।
किष्किन्ध महेन्द्रहु एहु सकला। एहिँ ठायउ कुमारें कोटि-शिला।
हौं लक्ष्मण जेहि पथहिँ गयउँ। ऍहिठँव खर-दूषण त्रिशिर हतेंउँ।
एहिँ शांव कुमारहु खुटेंउ शिरू। एहिँ नाशेंउ ऋषि-उपसर्ग चिरू।
ऍहिँ सोई देश निरीक्षियऊ। जित मोमजनन जहँ अच्छियऊ[१]।
एहु देश अशेष विचार चरेंऊं। अतिवीर नराधिप जहँ धरेंऊ।
घत्ता। सो सुंदरियउ जयंतपुरु, जहँ वनपाल आइ पडिया।
लखहु ऍह लक्ष्मण पादपहु, अभिनव वेइल-जस चढिया ॥१॥
रामपुरि एह गुण-गौरविया। जा पूजन यक्षहिँ कारविया।
एहु अरुण-ग्राम कपिलहु-तनऊ[२]। जहँ फेंक दियेंउ मैं आपनऊ।
एहु दीसइ सुंदरि ! विंध्यगिरी। जहँ वश किउ वालखिल्य वैरी।
वैदेहि ! एहु **कुव्वर**-नगरू। कल्याण-माल जहँ जनेंउ नरू।
एहु **दशपुर** जहँ लक्ष्मण भ्रमेंऊ। सिंहोदर सिंह समरें दमेंऊ।
दीसइ सर्व सुवर्ण भवऊ। निर्मियेंउ विभीषण जनु नवऊ।
धूवंत धवल-ध्वज-पट-प्रवरू। प्रिये ! **अयोध्यापुरि** नगरू।

—रामायण

४—सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

लघु[३] भोजन आनहिँ सुंदरऊ। जो सरस-सलोनउ जिमि सुरऊ।
सो सुनिकर दोऊ संचलियउ। जनु **सुरसरि-जमुना** उच्छलियउ।

---

[१] आछे=हैं [२] केरउ [३] तुरंत

रद्धु एक्कु लहु लेविणु आइउ । णं सुरसरि-लच्छिउ विक्खाइउ ।
वड्ढिउ भोयणु मोयण-सज्जइ । अच्छइ पच्छइ लहयइ पेज्जइ ।
सक्कर-खंडेंहि पायस-पयसेंहि । लड्डुव-लावण-गुल-इक्खु-रसेंहि ।
मंडा-सोयवत्ति घीअउरेंहि । मुग्ग-सूप णाणाविह कूरेंहि ।
सालणएहि विवण्ण-विचित्तेंहि । माइणि मायंदेहि विचित्तेंहिं ।
अल्लय-पिप्पलि-मिरिआ-मलयहि । लावण-मालूरेंहि कोमलयहि ।
चिब्भिडिया[1]-कणेर-वासुत्तिहि । पेउव-पप्पडेहि सुपहुत्तेंहि ।
केलय-णालिकेर-जंवीरिहि । करभर-करविंदेहि करीरिहि ।
तिम्मणेहि णाणाविह-वण्णेंहि । साउव-भज्जिय-खट्टावण्णेंहि ।
अण्णु वि खंड-सोल्ल-गुल-सोल्लिहि । वडवा-इंगणेहि कारेल्लेंहि ।
विंजणेहि स-महिय-दहि-खीरिहि । सिहरणि-चूय-वत्ति-सोवीरिहि ।
घत्ता । अच्छउ एवउ मुह-रसिउ, अविअण्हउ उल्हावणउ किह ।
जहि जि लहिज्जइ तहि जि तहि, गुलियारउ जिणवर-वयणु जिह ।।११।।
—रामायण ५०।११

(२) नारी-सौंदर्य

(क) सीता—

हरि पहरंतु पसंसिउ जावेंहिं । जाणइ-णयण कडक्खिय तावेंहिं ।
सुकइ-सुकब्ब-सुसंधि सु-संधिय । सुपय-सुवयण-सुसद्द-सुवद्धिय ।
थिर-कलहंस-गमण गइ-मंथर । किस-मज्झारें णियंवें सुवित्थर ।
रोमावलि मयरहरुत्तिण्णी । णं पिंपिलि - रिंछोलि बिलिण्णी ।
अहिणव-हुंडूपिंड-पीणत्थण । णं मयगल-उर-खंभणिसुंभण ।
रेहइ वयण-कमलु अकलंकउ । णं माणस-सर विअसिउ पंकउ ।
सुललिय-लोयणु ललिय-पसण्णहं । णं वरइत्त मिलिय वर-कण्णहं ।
घोलइ पुट्ठिहि वेणि महाइणि । चंदण-लयहिं ललइ णं णायणि ।
घत्ता । किं वहु जंपिएण तिहिं भुयणिहिं जं जं चंगउ ।
तं तं मेलवेवि णं, दइवें णिम्मिउ अंगउ ।।३।।
—रामायण ३८।३

---

[1] कँकड़ी

राँधु एक लघु लेके आयउ। जनु सुरसरि-लक्ष्मी विखरायउ।
परसेँउ भोजन मोदन-सज्जइ। चर्व्यइ चोष्यइ लेह्यइ पेयइ।
शक्कर-खंडेहिँ पायस-पयसेहिँ। लड्डू-लवण गोल-इक्षुरसेहिँ।
मंडा-सोय वत्ति घेवरहीँ[2]। मूँगसूप नाना-विधि गुड़हीँ[3]।
सालन एहू वर्णविचित्रा। माइन माकंदहीँ विचित्रा।
अदरक-पीपरि-मिरिचा-मलयहिँ। लावण-कइथईहि कोमलयहिँ।
चिरभटिका[1] कनेर-वासुत्तेहिँ। पेउब पापडही सुबहूतहिँ।
केला-नारिकेल-जंबीरा। करभर-करविंदा कारीरा।
तेँवनही नानाविध वर्णहि। स्वादू भजिया-खट्टावनहिँ।
अन्यउ खंड-सोल गुड-सोली। वडवा-इंकनारु कारेली।
व्यंजनहीँ स-भैँस-दधि-खीरहिँ। शिखरण-अम्मावट-सौवीरहिँ।
घत्ता। रहहेँऊं एहू मुख-रसिक, अवितृष्णा ललचाव किमि।
जहँहि लेइये तहँहि तहँ, मीठो जिनवर-वचन जिमि ॥११॥
—रामायण ५०।११

(२) नारी-सौंदर्य

(क) सीता—
हरि प्रहरंत प्रशंसेँउ जब्वेँ। जानकि नयन कटाक्षेँउ तब्वेँ।
सुकवि-सुकाव्य सुसंधि संधिया। सुपद-सुवचन-सुशब्द, सुबंधिय।
थिर-कलहंस-गमन गतिमंथर। कृश मंझारेँ नितंब सुविस्तर।
रोमावली मकरघर तीनी। जनु पिपीलिका पंक्ति-विलीनी।
अभिनव हूड-पिंड पीनस्तन। जनु मदकल[5]-उरु-खंभ-निजीतन।
राजै वदन-कमल अकलंकउ। जनु मानससर विकसेँउ पंकज।
सुललित-लोचन ललित-प्रसन्ना। जनु वरियात मिलेँउ वर-कन्या।
डोलै पीठिहिँ वेणि महाइनि। चंदन-लतहिँ ललै जनु नागिनि।
घत्ता। का वहु जल्पनेहिँ तिहु भुवनहिँ जो जो चंगा।
सो सो मिलाईया जनु दैवेँ निरमेँउ अंगा ॥३॥
—रामायण ३८।३

---

[1] **ककड़ी**   [2] **सेवईं**   [3] **भात**   [4] **मट्ठा**   [5] **हाथी**

संचल्लें **विंझ** पह्णाणयेण । लक्खिज्जइ जाणइ राणयेण ।
पप्फुल्लिय धवलकमल-वयणा । इंदीवर-दल-दीहर-णयणा ।
तणु मज्झें णियंबें वच्छें गरुआ । जं णयण कडक्खिय जणय-सुया ।
उम्मायण मयणहिँ मोयणेहिँ । वाणेंहि संदीवण-सोसणेहिँ ।
आइम्मिय सल्लिउ मुच्छियउ । पुणु दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छियउ ।
कर मोडइ अंगु वलइ हसइ । असरसइ ससइ पुणु णीससइ ।
घत्ता । मयरद्धय-सर-जज्जरिय-तणु, पहु येम पजंपिउ कुइयमणु ।
वलिवंडऍण वसि वणवसहुं, उद्दाले विआणहु यासु महु ॥
—रामायण २७।३

(ख) मंदोदरी—

घत्ता । सहसत्ति दिट्ठु मंदोयरिए, दिट्ठिऍं चल-भउहालइ ।
दूरहों जें समाहउ वच्छयले, णं णीलुप्पल-मालइ ॥२॥
दीसइ तेण वि सहसत्ति वाल । णं भसले अहिणव-कुसुममाल ।
दीसंत चलण-णेउर रसंत । णं महुर-राव वंदिण पठंत ।
दीसइ णियंब-मेहल-समग्ग । णं कामएव-अत्थाण-मग्ग ।
दीसइ रोमावलि छुडु चडंति । णं कसण-वाल-सप्पिणि ललंति ।
दीसंति सिहिणि[1] उवसोह देंत । णं उरयलु भिंदिवि हत्थि-दंत ।
दीसइ पप्फुल्लिय वयण-कमलु । णीसासामोवासत्त-भसलु ।
दीसइ सुणा(सु)अणुहुव[2] सगंधु । णं णयण-जलहों किउ सेयउबंधु ।
दीसइ णिट्ठलु[3]-सिरु चिहुर-छण्णु । ससि-विंबु व णव-जलहर-णिमण्णु ।
घत्ता । परिभमइ दिट्ठि तहों तहि जि तहिँ, अण्णहि कहिं मि ण थक्कइ ।
रस-लंपडु महुयर-पंति जिम, केयइँ मुइवि ण सक्कइ ॥३॥
—रामायण १०।२-३

---

[1] सिहिण—पूनावाली प्रति का पाठभेद [2] य—पूना [3] णिडालु—पूना

संचल्लें उ विध्या पथनयेहिँ। लक्खिज्जै जानकि रामएहिँ।
प्रफ्फुल्लित-धवल-कमल-वदनी । इंदीवर-दल-दीरघ-नयनी।
माँझे क्षीण नितंब-वक्ष गरुआ। जो नयन कटाक्षिय जनकसुता।
उन्मादन मदनहिं मोदनेहिँ। वाणें हिँ सँदीपन-शोषणेहिँ।
आक्रमिया सालिय मूर्छियऊ। पुनि "दुःख दुःख" उन्मूर्छियऊ।
कर मोड़ै अंग कँपै हसई। आश्वसै श्वसै पुनि निःश्वसई।

घत्ता। मकरध्वज-शर-जर्जरित-तनु, प्रभु ईमि प्रजल्प्यें उ कुपित-मना।
बलवंतएँ मवसं वन वसहू, उद्दारे जानहु यासु (?) ममा ॥३॥

—रामायण २९।३

(ख) मंदोदरी

घत्ता। सहसा दृष्ट मंदोदरिए, दृष्टिहि चल-भौंहा-लई।
दूरहुँ हि धारें उ वक्षतले, जनु नीलोत्पल-मालई ॥२॥

दीसइ तेहिहिँ सहसा हि बाल। जनु भ्रमरे अभिनव-कुसुममाल।
दीसंत चरण-नूपुर रसंत। जनु मधुर-राव बंदिन पठंत।
दीसइ नितंब-मेखल-समग्र। जनु कामदेव-दर्बार-मार्ग।
दीसइ रोमावलि छुड[1] चढंति। जनु कृष्ण-बाल-सर्पिणि ललंति।
दीसंत स्तनहू शोभ देंत। जनु उर-तल भिदें उ हस्तिदंत।
दीसइ प्रफ्फुल्लित वदन-कमल। निश्वासामोदासक्त-भ्रमर।
दीसइ सुनास अनुभुत-सुगंध। जनु नयन-जलधि कियें उ सेतुबंध।
दीसइ निस्तर शिर चिकुर-छन्न। शशि-बिबि ब नव-जलधर-निमग्न।

घत्ता। परिभ्रमै दृष्टि तहि तहँहि तहीँ, अन्यहि कहहिँ न थक्कई।[2]
रस-लंपट मधुकर-पंक्ति जिमि, केतकि भूमि न सक्कई ॥३॥

—रामायण १०।२-३

---

[1] तुरंत [2] ठहरती, बंगला—थाक

तहि अवसरें आइय मंदोयरि । सीहहों पासि'व सीह-किसोयरि ।
वर-गणियारि'व लीला-गामिणि । पिय माहवियें वि महुरालाविणि ।
सारंगि'व विप्फारिय-णयणी । सत्तावी संजोयण-वयणी ।
कलहंसि 'व थिर-मंथर-गमणी । लच्छि 'व तिय तू वेंजू रवणी ।
अहयो भाणि हि अणुहर-भाणी । जिह सा तिह एहवि पउ[१] राणी ।
जिह सा तिह एह वि सुमणोहर । जिह सा तिह एह वि पयसुंदर ।
जिह सा तिह एह वि जिण-सासणें । जिह सा तिह एह वि ण कुसासणें ।
घत्ता । किं वहु जंपिएण उवमिज्जइ काहें किसोयरि ।
णिय-पडिछंदइ णा थिय, सइं जेंणाइँ मंदोयरि ।।४।।

—रामायण ४१।४

(ग) रावण-रनिवास—

.......................। संचल्लिय मंदोयरि राणी ।
ताइ समाणु स-डोरु स-णेउरु । संचल्लिउ सयलु 'वि अंतेउरु ।
जं पप्फुल्लिय पंकय-णयणउ । जं कुवलय-दल-दीहर-णयणउ ।
जं सुरवर-करि-मंथर-गमणउ । जं पर-णरवर-मण-जूरणवउ ।
जं सुंदरु सोहग्गु 'ग्घवियउ । जं पीणत्थण-भारें णमियउ ।
जं मणहरु तणु-मज्झु सरीरउ । जं उरयट्ठणियं गंभीरउ ।
जं णेउर-रव घणु झंकारउ । जं रंधोलिय मोत्तिय-हारउ ।
जं कंची-कलाव-पब्भारउ । जं विब्भम-भूभंगु-वियारउ ।
घत्ता । तं तेहउ रावणकेरउ, अंतेउरु संचल्लियउ ।
णं सभमरु माणस-सरहें रें, कमलिणि-वणु पप्फुल्लियउ ।

—रामायण ४०।११

तहिँ पइसंतेंहि दिट्ठु स-णेउरु । रावण-केरउ इट्ठंतेउरु ।
चिहुरेहि सिहंडि-उलंबु भाइ । कुरुलेहिँ इदिंदिर-विंदु णाइ ।

---

[१] पट्ट, प्रधान

तेहि अवसर आइय मंदोदरि। सिंह-पासें जनु सिंह-कृशोदरि।
वर-गयंदि जिमि लीलागामिनि। प्रिय-माधवियहिं मधुरालापिनि।
सारंगी इव फारिय-नयनी। सत्ताईस-संयोजक-वदनी।
कलहंसि'व थिर-मंथर-गमनी। लक्ष्मी इव या रूपारमणी।
अभया भाणी अनुहर-भाणी। जेहिं सा तेहिंहि सो पटरानी।
जेहिं सा तेहिं ऐसहि सुमनोहर। जेहिं सा तेहिं ऐसहि पदसुंदर।
जेहि सा तेहिं ऐसहि जित-शासन। जेहिं सा तेहि ऐसहिं न कुशासन।
घत्ता। का वहु जल्पनेहिं उपमिज्जै, कैस कृशोदरी।
निज प्रतिबिंवउ ना ठिय, स्वयं न्याइं मंदोदरी ॥४॥

—रामायण ४१।४

(ग) रावण-रनिवास—

. . . . । संचल्लिय मंदोदरि रानी।
ताहि स-मान स-डोर स-नूपुर। संचल्लेंउ सकलहु अन्तःपुर।
जो प्रप्फुल्लिय पंकज-नयनउ। जो कुवलयदल-दीरघ-नयनउ।
जो सुर-बर-करि-मंथर-गमनउ। जो पर-नरवर-मन-भूरनउ।
जो सुंदर-सौभाग्य-अर्च्यवयउ। जो पीनस्तन-भारे नमिअउ।
जो मन-हर तनु-मध्य शरीरउ। जो उरोज स्तनियउ गंभीरउ।
जो नूपुर-रव-घन-झंकारउ। जो संडोलिय मुक्ता-हारउ।
जो कांची-कलाप प्राग्-भारउ। जो विभ्रम-भ्रूभंग-विकारउ।
घत्ता। सो तेंहु रावणकेरउ, अंतःपुर संचल्लियउ।
जनु सभ्रमर मानससरहिं, कमलिनि-वन प्रप्फुल्लियउ।

—रामायण ४०।११

तहँ पइसंतहि देखु स-नूपुर। रावण-केरउ इष्ट्-अंतःपुर।
चिकुरेहिं शिखंडि-कुल मनहुँ भाय। कुटिलेहिं[1] इंदीवर-वृन्द न्याइँ।

---

[1] **कुटिलन-प्रकाशैं**

भउहेहिँ अणंग-धणु-लइ वनं'व । णयणिहि णीलुप्पल-काणणं 'व ।
मुह-बिंबेँहि मय-लंछण-बलं 'व । कल-वाणिहि कल-कोइल-कुलं 'व ।
कोमल-बाहेँहिँ लयाहरं 'व । पाणिहि रत्तुप्पल-सरवरं 'व ।
णक्खेँहि केअइ-सूई-थलं 'व । सिहिणेँहि सुवण्ण-घड-मंडलं 'व ।
सोहग्गेँ वम्मह-साहणं 'व । रोमावलि णाइणि-परियणं 'व ।
तिवलिहि अणंगपुरि–खाइयं 'व । गुज्झेहि मयण-मज्जण-हरं 'व ।
उरुएहि तरुण-केली-वणं 'व । चलणग्गेहि पल्लव-काणणं 'व ।
घत्ता । हंस-उलु 'व गइएहि, कुंजर-जूहु 'व वर-लीलहि ।
चाव-बलु 'व गुणेहि, छण-ससिबिंबु 'व सयल-कलहि ।।५।।
—रामायण ७२।५

(घ) अयोध्याका रनिवास—

किं चलण-तलग्गइ कोमलाइ । णं णं अहिणव-रत्तुप्पलाइ ।
किं ऊरु परोप्परु भिण्ण-तेय । णं णं वर-रंभा-खंभ येय ।
किं कणय-दोरु धोलइ विसालु । णं णं अहिरयण-णिहाण-पालु ।
किं तिवलिउ जठर पद धाविआउ । णं णं कामउरिहि खाइँआउ ।
किं रोमावलि घण-कसण एह । णं णं मयणाणल-धूम-लेह ।
किं णव-थण, णं णं कणय-कलस । किं कर णं णं पारोह-सरिस ।
किं आयंबिर-करयल चलंति । णं णं असोय-पल्लव ललंति ।
किं आणणु, णं णं चंद-बिंब । किं अहरउ णं णं पक्क-बिंबु ।
किं दसणावलिउ स-मुत्तियाउ । णं णं मल्लिय कलियउइ भाउ ।
किं गंड-वास णं दंति-दाण । किं लोयण, णं णं कामबाण ।
किं भउह इमाउ परिट्ठियाउ । णं णं बम्मह-धणु-लट्ठियाउ ।
किं कण्णा कुंडल-हरण एय । णं णं रवि-ससि-विप्फुरिय-तेय ।
किं भालउ, णं णं ससहरद्धु । किं सिरु, णं णं अलि-उल-णिबद्धु ।
—रामायण ६९।२१

भौंहेंहिँ अनंग-धनु लता-वन इव । नयनहिँ नीलोत्पल-कानन इव ।
मुख-बिंबेहिँ मृगलांछन-बल इव । कल-वाणिहिँ कल-कोकिल-कुल इव ।
कोमल-बाहेहिँ (काम-) लताघर इव । पाणिहिँ रक्तोत्पल-सरवर इव ।
नखहीँ केतकी-सूचि-थल इव । स्तनहीँ सुवर्णघट-मंडल-इव ।
सौभाग्ये मन्मथ-सेना इव । रोमावलि नागिनि-परिजन इव ।
त्रिवलीहिँ अनंगपुरी-खाईँ इव । गुह्येहिँ मदन-मज्जन-गृह इव ।
उरुएहिँ तरुण-कदलीवन इव । चरणाग्रेंहिँ पल्लव-कानन इव ।
घत्ता । हंसकुल इव गतिएहिँ, कुंजर-जूथ इव वर-लीलहिँ ।
चाप-बल इव गुणेहिँ, क्षण-शशिबिंब इव सकल-कलेहिँ ॥५॥
—रामायण ७२।५

(घ) अयोध्याका रनिवास—

की चरण-तलाग्रा कोमला । जनु जनु अभिनव-रक्तोत्पला ।
की ऊरु परस्पर-भिन्न-तेज । जनु जनु वर-रंभा-खंभ एह ।
की कनकडोरि डोलइ विशाल । जनु जनु अहि रतन-निधान-पाल ।
की त्रिवली जठर'परि धाइया । जनु जनु कामपुरिहि खाईया ।
की रोमावलि घन-कृष्ण एह । जनु जनु मदनानल-धूम-लेख ।
की नव-थन, जनु जनु कनक-कलश । की कर, जनु जनु प्रारोह-सरिस ।
की आलंबित-करतल चलंति । जनु जनु अशोक-पल्लव ललंति ।
की आनन, जनु जनु चंद्रबिंब । की अधरउ, जनु जनु पक्व-बिंब ।
की दशनावलिउ स-मौक्तिकाउ । जनु जनु मल्लिक-कलियहीं भाउ ।
की गंडपास जनु दन्ति-दान । की लोचन, जनु जनु काम-बाण ।
की भौंहा एह परिस्थिताउ । जनु जनु मन्मथ-धनु-यष्टियाउ ।
की कर्ण कुंडलाभरण एह । जनु जनु रवि-शशि विस्फुरित-तेज ।
की भालउ, जनु जनु शशधरार्ध । की शिर, जनु जनु अलि-कुल-निबद्ध ।
—रामायण ६६।२१

(ङ) भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ—

घत्ता। तहों वणहों मज्झे हणुवंतेण, सीय णिहालिय दुम्मणिया।
णं गयण-मग्गेउ मेल्लिय, चंदलेह-बीयहें तणिया ॥७॥

सहिय सहासहि परिअरिय, णं वणदेवय अवयरिय।
तिण-मेंत्तुवि णवलक्खणु जाहें, णिब्बण्णिज्जइ काइं तहें॥
वर-पय-तलेंहिं पउणारएहिं। **सिंघलणहें**हि दिहि गारएहि।
उच्चंगुलिऐंहि **बेंडल्लिएहि**। बड्डुल्लिऐं गुप्फेंहि **गोलए**[1]हि।
वर-पोट्टरिएहि **मायंदियें**हि। **सिरिपव्वय**-तणिऐंहि मंडियेहि।
ऊरुअ-जुयले **णिप्पालएण**। कडिमंडलेण **करहाडएण**।
वरसोणिय **कंची**-केरियाऐं। तणु-णाहिएण गंभीरियाऐं।
सुललिय-पुट्ठिऐं **सीवारियाऐं**। पिंडत्थणिअऐं **एलउलियाऐं**।
वच्छयले **मज्झिमएस**एण। भुअ-सिहरें **पच्छिमएस**एण।
वारमईकेरेंहि बाहुलेहि। **सिंधव** मणिबंधहि बट्टुलेहि।
माणग्गीवेंहि **कच्छाणु**णेहिं। उट्ठउडेहि **कोंकणिय**हि-तणेहि।
दसणावलियए **कण्णाडियए**। जीहऐं को **रोहणवाडियए**।
णासउडें तुंग **विसयत**णेहिं। गंभीरएहि वर-लोयणेहिं।
भउहाजुएण **उज्जेणएण**। भालेण विचित्त **उडाणएण**।
कासियहि कवोलेहि पुज्जयेहि। कण्णेहि मि **कण्णाउज्जयें**हि।
काविलेंहिं केस-विसेसएण। विणएण **विदाहिण-एस**एण।
घत्ता। अह किं बहुणा वित्थरेण, अण्णिवि इणणें सुंदरि-मइण।
एक्केकीवत्थु लएप्पिणु, णावइ घडिय पयावइण ॥८॥

—रामायण ४९।८

दिव्वेहि णाणा-पयारेहि पुप्फेहि। रत्तुप्पलं-दीवरंभोय-पुप्फेहि।
अइउत्तया-सोय-पुण्णाय-णाएहि। सयवत्तिया-मालई-पारिजाएहि।

---

[1] गोलक देश

(ङ) भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ—

घत्ता। तहँ वनहि मध्ये हनुमंतउ, सीय निहारेँउ दुर्मनिया।
जनु गगन-मार्गे उन्मीलित, चंद्रलेख दुतियह-तनिया ॥७॥
सखिय सहस्रेहि परिवारिय, जनु वनदेवी अवतरिया।
तृण-मात्रहु नव-लक्षण जाहि, निर्वर्णिये काइँ ताहि॥
वर-पद-तलेहिँ पद्मार-एहिँ। **सिंहलिनिएँहिँ** दिशि-गौरवेहिँ।
उच्चांगुलीहि वैपुल्यएहिँ। बाडल्लिए गुल्फेँहिँ गोलएहिँ।
वर-पेट्ट-एहिँ माकंदिएहिँ। **श्रीपर्वत**-केरिहिँ मंडितेहिँ।
ऊरुअ-जुगलेँ **नेपालयेहिँ**। कटिमंडलेइ **करहाटिकेहिँ**।
वरश्रोणिय **कांची**-केरियाँ। सूक्ष्म-नाभिकेहि गंभीरियाँ।
सुललित-पृष्ठिय **शिवारियेहिँ**। पिंड-स्तनियइ **एलकुलियइ**।
वक्ष-तले **मध्यम-देशिया**। भुज-शिखरे **पच्छिम-देशिया**।
द्वारवती-केरइ बाहुयहिँ। **सिंधविय** वर्त्तुल-मणिबंधहिँ।
मान-ग्रीवहिँ **कच्छाणनिया**। ओठउडे[1] **कोँकणि**-तनिया।
दशनावलिहिँ **कन्नाडिया**। जीभहिँ **रोहण-वाडिया**।
नासउडे **तुंग-विषय**-तनिया। गंभीरिया वरलोचनिया।
भौंहा-युगेइ **उज्जेनिया**। भालेहँ विचित्र **ओडियानिया**।
काशिया कपोलेहिँ पुंजकेहिँ। कर्णहिँ हि **कनउज्जकेहिँ**।
केश-विशेषकेहिँ **काबिलिया**। विनयेहि हि **दक्षिण**-देशिया।
घत्ता। अरु का बहु-विस्तारेहिँ, अन्यान्येहिँ सुंदरिमयी।
एक-एक वस्तु लेइके, जनु गढेँउ प्रजापति।

—रामायण ४९।८

दिव्येहिँ नाना-प्रकारेहिं पुष्पेहिँ। रक्तोत्पलें-दीवर-भोज-पुष्पेहिँ।
अतिमुक्तका-शोक-पुन्नाग-नागेहिँ। शतपत्रिका-मालति-पारिजातेहिँ।

---

[1] उड—कोमलालाप में

कणिया (र)-कणवीर-मंदार-कुंदेहि । विअइल्ल-वर-तिलय-वउलेहि मंदेहि ।
सिंधूर-वंधूक-कोरंट-कुज्जेहि । दमणेण मरुएण पिक्का-तिसंज्झेहि ।
एवं च मालाहि अण्णण्ण-रूवाहि । **कण्णाडियाहि**'व्व सरसार-भूयाहि ।
आहीरियाहि'व्व वायाल-भसलाहि । **वलाडियाहि**' व्व मुह-वण्ण-कुसलाहि ।
सोरट्ठियाहि'व्व सव्वंग-मउआहि । **मालविणिआहि** 'व्व मज्झारछउआहि ।
मरहट्ठियाहि'व्व उद्दाम-वायाहि । गीयज्झुणीहि'व्व अण्णण्ण-छायाहि ।

—रामायण ७१।६

(३) जल-क्रीडा

घत्ता । तहि सर-णह-यले स-स-कलत्त वेवि हरि-हलहरा ।
रोहिणि[1]-रण्णहि णं परमिय चंद-दिवायरा ॥१४॥
तहि तेहएँ सरें सलिले तरंतइँ । संचरंति चामीयर-जंतइँ ।
णाइ विमाणइ सग्गहों पडियइँ । वण्ण-विचित्त-रयण-वेयडियइँ ।
णत्थि रयणु जहि जंतु ण घडियउ । णत्थि जंतु जहि मिहुणु ण चडिअउ ।
णत्थि मिहुणु जहि णेहु ण वड्ढिय । णत्थि णेहु जहि सुरउ ण वड्ढिउ ।
तहि नर-नारि-जुवइ जल कीडइ । कीडंताइ ण्हंति सुरलीलइ ।
सलिलु करग्गह आप्फालंतइँ । मुरय-वज्ज-धायव दरिसंतहँ ।
खलियहि वलियहि अहिणव-गेयहि । बद्धइ सुरयक्खित्तिय तेयहिँ ।
छंदेहिँ तालिहिँ वहुलय-भंगेहि । करुणुच्छेत्तिहि णाणा भंगेहिँ ।
घत्ता । चोक्खु स-रागउ, सिंगार-हार-दरिसावणु ।
पुप्फ-रज्जु-ज्झुवंत, जलकीडणउ सलक्खणु ॥१५॥
जलें जय-जय सद्दें ण्हाय णर । पुणु णिग्गय-हल सारंग-धर ।

—रामायण २६।१४-१६

सल्लविसल्ला-सुंदरि सीयहिँ । वज्जयण्ण-सीहोयर-धीऍहिँ ।
घत्ता । वुच्चइ भरह णराहिवइ, सर-मज्झे तरंत-तरंताइँ ।
देवर थोडि वारवरिअच्छहुं, जल-कील-करंताइँ ॥१०॥

---

[1] नक्षत्र

कर्णकार-कर्णवीर-मंदार-कुंदेहिँ । बेईल-वरतिलक-वकुलेहिँ मंद्रेहिँ ।
सिंधूर-बंधूक-कोरंट-कच्चेहिँ । दवनेहिँ मरुएहिँ पिक्का-तिसंध्येहिँ ।
ऐसेहि मालाहिँ अन्यान्य-रूपाहिँ । **कन्नाडियहिँ** इव सरसार-भूताहिँ ।
आहीरियाँहि'व वाचाल-भसला[1]हिँ । **वाराडियाहिँ**'व मुखवर्ण-कुशलाहिँ ।
सौराष्ट्रियाहिँ'व सर्वांग-मृदुकाहि । **मालविणियाहिँ**'व कटिमध्यँ सूक्ष्माहि ।
मरहट्ठियाहिँ'व उद्दाम-वाचाहिँ । गीत-ध्वनिहिँ इव अन्यान्य-छायाहिँ ।

—रामायण ७१।९

(३) जलक्रीडा

घत्ता । तहँ सर-नभ-तले स्वस्व-कलत्रेहिँ हरि-हलधरा[2] ।
रोहिणि रानिहिँ जनु प्र-रमेँउ चंद्र-दिवाकरा ।।१४।।
तहँ तेहि हि सर सलिल तरंता । संचरहीँ चामीकर-यंत्रा ।
नारि-विमाना स्वर्गहँ पड़िया । वर्ण-विचित्र-रत्न-वीजडिया ।
नाहि रतन जहिँ जंतु न गढ़ियउ । नाहि जंतु जहिँ मिथुन[3] न चढियउ ।
नाहि मिथुन जँह नेह न बढियउ । नाहि नेह जँह सुरत न बढियउ ।
तहँ नर-नारि-युवति जलक्रीडैँ। क्रीडंती नहाइँ सुरलीलैँ ।
सलिल कराग्रहिँ उच्छालन्तैँ । मुरज-वाद्य थापा दरसन्तैँ ।
स्खलितहिँ वलितहिँ अभिनव-गीतेहिँ । बद्धैँ सुरत-समन्वित तेजहिँ ।
छन्देहिँ तालहिँ वहुलय-भंगहिँ । करुण-ोत्क्षेपी नाना-भंगहिँ ।
घत्ता । चक्षु सरागउ शृंगार-हार-दरसावन ।
पुष्परज्जु युध्यंत, जलक्रीडनउ सलखावन ।।१५।।
जले जय-जय-शब्देहिँ नहाएँ नर । पुनि निकसे हल-सारंगधर ।

—रामायण २६।१४-१६

सल्लविसल्ला सुंदरि सीतहिँ । वज्रकर्ण-सिंहोदर-वीतहिँ ।
घत्ता । बोलै भरत नराधिप, सर-मध्येँ तरंत-तरंताई ।
देवर थोडिबार रहउ, जलक्रीड करंताई ।।१०।।

---

[1] भ्रमर [2] हरि=लक्ष्मण, हलधर=राम [3] जोड़ा

तं पडिवण्णु पइट्ठु महासरु। जल-कीडहें 'वि अचलु परमेसरु[1]।
लग्गउ सुंदरीउ चउ-पासेहि। गाढालिंगण-चुंवण-हासेंहि।
हेला-हाव-भाव-विण्णासेहिँ। किलिकिंचिय विच्छित्ति-विलासेहिँ।
मोट्टाविय कुट्टमिय वियारेहि। विब्भम वरविव्वोक-पयारेहिँ।
तो वि ण खुहिउ भरहु सहसुट्ठिउ। अविचलु णं गिरि-मेरु परिट्ठिउ।
अच्छइ जाव तीरें सुह-दंसणु। ताव महागउ-तिजग-विहीसणु।
णिय आलाण-खंभु उप्पाडेवि। मंदिर सयइ अणेयइ पाडेवि।
परिभमंतु गउ तं जें महासरु। जलकीलइ जहि भरहु णरेसरु।
—रामायण ७९।११

(४) प्रेम (काम)-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीयहें देह-रिद्धि पावंतिहें। येक्कु दिवसु दप्पणु जोयंतिहें।
पडिमाछलेंण महाभयगारउ। आरिस वेस णिहालिय णारउ।
जणय-तणय सहसत्ति पणट्ठी। सीहागमणें कुरंगि'व दिट्ठी।
"हा हा माऍं" भणंतिहिँ सहियहिँ। कैलयलु कियउ भग्ग गह-गहियहिँ।
अमरिस कुज्झइय किंकर। उक्खय'व क्खरवाल भयंकर।
मिलिवि तेहि-कहँ कहमि ण मारिउ। लेवि अद्धचंदेंहिँ णीसारिउ।
घत्ता। गउ सव राहउ देवरिसि, पडे पडिम लिहेवि सीयहें तणिया।
दरिसाविय भामंडलहों वि, सजुत्ति णाइ-णर धारणिया ॥८॥
दिट्ठु जं जें पडपडिम कुमारें। पंचहि सरहि विद्धुणं मारें।
सुसिय वयणु घुम्मइय णिडालउ। वलिय अंगु मोडिय भुयडालउ।
बद्ध केसु परकोडिय वच्छउ। दरिसाविय दस कामावत्थउ।
चिंत पढम थाणंतरें लग्गइ। वीयएँ पिय-मुह-दंसणु मग्गइ।

---

[1] राजा।

सो प्रतिपन्न पइसु महासर । जलक्रीडहिँहि अचल परमेश्वर ।
लागीँ सुंदरी उ चौपासेहिँ । गाढालिंगन-चुंबन-हासेहिँ ।
हेला-हाव-भाव-विन्यासेहिँ । किलकिंचित-विक्षिप्ति-विलासेहिँ ।
मोट्टावन-कुट्टमन-विकारेहिँ । विभ्रम-वरबिब्वोक-प्रकारेहिँ ।
तोउ न क्षुभेँउ भरत भट उट्ठेउ । अविचल जनु गिरि मेरु परिट्-ठिउ ।
जौ लोँ रहै तीर शुभ-दर्शन । तौ लोँ महगज-त्रिजग-बिभीषण ।
निज बंधान-खंभ उप्पाडिय । मंदिर-शतहिँ अनेकहिँ पातिय ।
परिभ्रमंत गउ तेँहिहिँ महासर । जलक्रीडैँ जहँ भरत-नरेश्वर ।
—रामायण ७६।११

(४) प्रेम-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीता देह ऋद्धि पावंतिह । एक दिवस दर्पण जोयंतिह ।
प्रतिमा छलेँइ महाभयकारू । ऐसो वेस निहारेँउ न्यारू ।
जनकतनयाँ सहसाही भागी । सिंहागमनेँ कुरँगिँव लागी ।
"हा हा माइ" भनंतिहिँ सखियहिँ । कलकल कियेँउ, भागु गहिगहियहिँ ।
आमरखी कोधेऊ ! किंकर । उत्क्षिप इव करवाल भयंकर ।
मिलब तेहि कहँ कहउँ न मारिउ । लेवि अर्धचंद्रेँहि निस्सारिउ ।
घत्ता । गउ सव राघव-देव-ऋषि, पटेँ प्रतिम लिखब सीता-तनिया[1] ।
दरसायेँउ भामंडलहुँ, युक्ति नारि-नर धारणिया ॥८॥
देखु जोहि प्रति-प्रतिम कुमारा । पंचहिँ शरहि बेधु जन मारा ।
सुखेँउ वदन घूमिया ललाटउ । कँपेउ अँग मोडेँउ भुजडालउ ।
बँधेँउ केश मरोड़िय वक्षा । दरसायेँउ दश कामावस्था ।
चित्त प्रथम स्थानंतरेँ लागै । दुसरे प्रियमुख-दर्शन माँगै ।

---

[1] सीताकेर

तइयएँ ससइ दीह-णीसासें। कणइ चउत्थइ कर-विण्णासें।
पंचम डाहें अंगु ण वुच्चइ। छट्ठइ मुहहों ण काइ विरुच्चइ।
सत्तमि थाणे ण गासु लइज्जइ। अट्ठमे गमणू माएहिँ भिज्जइ।
णवमएँ पाण-संदेहहों ढुक्कइ। दसमएँ मरइ ण केम वि चुक्कइ।
घत्ता। कहिउ णरिंदहों किंकरिहिँ, पहु दुक्करु जीवइ पुत्तु तउ।
हा तेहिँ वि कण्णहु कारणेंण, सो दसमी कामावत्थ गउ ॥६॥

—रामायण २१।८-६

लक्खिउ लक्खणु लक्खण-भरियउ। णं पच्चक्खु मयणु अवयरियउ।
भू उणियवि सुर-भवणाणंदहों। मणु उल्लोलेंहिँ जाइ णरेंदहों।
मयण-सरसणें धरें वि ण सक्किउ। वम्महों दस ठाणेहि पढुक्कउ।
पहिलइ कहुवि समाणु ण बोल्लइ। वीयएँ गुरु णीसासु पमेल्लइ।
तइयए सयलु अंगु परितप्पइ। चउथइ णं करवत्तेंहि कप्पइ।
पंचमें पुणु पुणु पासेइज्जइ। छट्ठएँ बार-वार मुच्छिज्जइ।
सत्तमे जलुवि जलद्दु ण भावइ। अट्ठमें मरण-लील दरिसावइ।
णवमएँ पाण पडंत ण वेअइँ। दसमएँ सिरु छिज्जंतु ण चेयइ।
घत्ता। एम वियंभिउ कुसुमाउहु, दसहेंमि थाणेहिँ।
तं अच्छरिउ जं मुक्कु, कुमारु ण पाणेहिँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-विओएँ दुम्मणिया, अंसु-जलोल्लिय-लोयणिया।
मोंक्कल केस कवोलु भुआ, दिट्ठ विसंठुल जणय-सुया ॥
जाणइ-वयण-कमलु अलहंतिउ। मुहु ण देंति फुल्लंधुय पंतिउ।
हणइँ तो वि ण करंति णिवारिउँ। करयलेहि लग्गंति णिरारिउँ।
एँव सिलीमुहु सा निज्जंती। अण्णु विओय-सोय-संतत्ती।
वणें अच्छंति दिट्ठ परमेसरि। सेस सरिहि मज्झेण सुरसरि।

तिसरे श्वसै दीर्घ-निःश्वासै। कँदै चतुर्थे करविन्यासैं।
पंचम दाहै अंग, न बोलइ। छठयें मुखहिं न काहुहि देखइ।
सतयें थान न ग्रास लईजै। अठयें गमनोन्मादे भिज्जै।
नवयें प्राणसँदेहहु ढूकै। दसयें मरब न कथमपि चूकै।

घत्ता। कहेँउ नरेन्द्रहिँ किंकरिन्ह, प्रभु! दुष्कर जीवै पुत्र तव।
हा ताहिहिँ कन्यहिँ कारणे, सो दसई कामावस्थ गउ ॥६॥

—रामायण २१।८-९

लखेँऊ लक्ष्मण लक्षण-भरिया। जनु प्रत्यक्ष मदन अवतरिया।
भू आनेउ सुरभवनानंदहु। मन उल्लोलेहिँ जाइ नरेंद्रहु।
मदन शरासनें धरब न शक्येउ। मन्मथ दश थानेहिँ प्रढूकेँउ।
पहिले काहुहि सँग ना बोलै। दूजेँहिँ बड निःश्वास प्रमेलै।
तीजे सकल अंग परितप्पै। चौथे जनु तरवारहिँ कँपै।
पंचयें पुनि पुनि प्रासादिज्जै। छठयें वार-वार मूर्छिज्जै।
सतयें जलहु जलार्दं न भावै। अठयें मरण-लीलाँ दरसावै।
नवयें प्राण पतंत न वेदै। दसयें शिर छेदंत न चेतै।

घत्ता। इमि विजृंभेँउ कुसुमायुध, दसहुहिँ थानहँ।
सो अचरज जो छूट, न प्राण कुमारकहँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-वियोगे दुर्मनिया, अश्रु जलोल्लित-लोचनिया।
मुक्तहु केश कपोलें भुजा, देखु विसंस्थुल जनकसुता ॥
जानकि-वदन-कमल अलभंतिउ। मुख न देति फुल्ल'न्धुक-पंक्तिउ।
हनैँ तो उ न करंति निवारेँउ। करतलेँहीँ लागंति निरालेँउ।
ऐस शिलीमुख सासनयंता। अन्यें वियोग-शोक-संतप्ता।
वनें वसंति दीखु परमेश्वरि। शेष सरिहिँ मध्ये (जनु) सुरसरि।

हरिसिउ अंजणेउ इत्थंतरे। धण्णउ एक्कु रामु भुवणंतरे।
जो तिय एह आसि माणंतउ। रावणु सइ जि मरइ अलहंतउ।
णिरलंकार जों होंती सोहइ। जइ मंडिय तो तिहुयणु मोहइ।
सीयहों तणउ रूउ वण्णेप्पिणु। अप्पहु णहें पच्छण्णु करेप्पिणु।
घत्ता। जो पेसिउ राहवचंदेण, सो घत्तिउ अंगुत्थलउ।
उच्छंगि पडिउ वइदेहिहे, णावइ हरिसहों पोट्टलउ ॥६॥. . .
लक्खिय सीया एवि किह। वियसिय सरिया होइ जिह।
णं मय-लंछण ससि-जोण्हा इव। तित्ति-विरहिय गिम्ह-तण्हा इव।
णिव्वियार-जिणवर-पडिमा इव। रइविहि विण्णाणिय-घडिया इव।
अभय-करच्छज्जीव-दया इव। अहिणव-कोमल-वण्ण-लया इव।
स-पउहर पाउस-सोहा इव। अविचल सव्वंसह वसुहा इव।
कंति-समुज्जल-तडिमाला इव। सुट्ठु सलोण उयहि-वेला इव।
णिम्मल-कित्ति व रामहों केरी। तिहुयणुमिवि परिट्ठिय सेरी।
—रामायण ४६।६, १२

(६) मिलन (सीता-राम)

"अहों अहों परमेसर दासरहि। पच्छएँ लंकाउरि पईसरहि।
मिलि ताव भडारा[1] जाणइहे। तरु दुत्तरु विरह-महाणइहे।
चडु ति-जग-विहूसण-कुंभ-यले। मय-परिमल-मेलाविय भसले"।
घत्ता। तं णिसुणेंवि हलहरु-चक्कहरु, सीयहें पासें समुच्चलिया।
अहिसेय-समएँ सिरिदेवयहो, दिग्गय विण्णि णाइ मिलिया ॥६॥
वइदेहि दिट्ठ हरि-हलहरेहि। णं चंद-लेह विहि-जलहरेहि।
णं सरय-लच्छि पंकय-सरेहिँ। णं पुण्णएँ विहि पक्खंतरेहिँ।
णं सुरसरि हिम-गिरि-सागरेहिँ। णं णह-सिरि चंद-दिवायरेहिँ।
परिपुण्ण-मणोरह जाणईहि। तर इव लायण्ण-महाणईहि।

---

[1] राजा, स्वामी

हरषेँउ आंजनेय ऐँहि अवसरेँ। धन्यउ एक राम भुवनंतरेँ।
जो तिय एहु अहै मानंतिउ। रावण मरै सतिहिँ अलभंतउ।
निरलंकार होति जो सोहै। यदि मंडित तो त्रिभुवन मोहै।
सीयहिँ केर रूप वर्णेविउ। आपुहूँ नभेँ प्रच्छन्न करेविउ।
घत्ता। जो प्रेषेँउ राघवचंद्रेण, सो डारेँउ अंगुट्टि लिऊ।
उत्संगेँ पडिउ वैदेहिकहूँ, मानो हर्षहूँ पोट्टलिऊ॥६॥
लक्खेउ सीत ऐसु किमि। विकसिउ सरिता होइ जिमि।
जनु मृणलांछन शशि ज्योत्स्ना इव। तृप्ति-विरहित ग्रीष्म-तृष्णा इव।
निर्विकार जिनवर-प्रतिमा इव। रतिपतिहिँ जनु निज गडिया इव।
अभयकर् अच्छ जीवदया इव। अभिनव-कोमल-वर्णलता इव।
स-पयधर पावस-शोभा इव। अविचल सर्वसह वसुधा इव।
कांति-समुज्ज्वल तडिमाला इव। सुट्ठि सलोन उदधि-बेला इव।
निर्मल कीर्त्ति इव रामहिँ केरी। त्रिभुवनहूँहि परिस्थिय सेरी।

—रामायण ४६।६,१२

(६) मिलन (सीता-राम)

"अहोँ अहोँ परमेश्वर! दाशरथी। पाछे लंकापुरी पइसैही।
मिलु तव भट्टारक[1] जानकिहीँ। तरु दुस्तर विरह-महानदिहीँ।
चढु त्रिजग-विभूषण कुंभतले। मद-परिमल मेलायेँउ भसले[2]"।
घत्ता। सो सुनियहि हलधर-चक्रधरु, सीतहिँ पास समुच्-चलिया।
अभिषेक समय श्रीदेवियहूँ, दोँउ दिग्गज न्याईँ आमिलिया॥
वैदेहि दीख हरि-हलधरेहिँ। जनु चंद्रलेख विधु-जलधरेहिँ।
जनु शरद-लक्ष्मि पंकज-सरेहिँ। जनु पूर्णो विधु पक्षांतरेहिँ।
जनु सुरसरि हिमगिरि सागरेहिँ। जनु नभश्री चंद्र-दिवाकरेहिँ।
परिपूर्ण-मनोरथ जानकीहिँ। तरेँ इव लावण्य-महानदीहिँ।

---

[1] राजा [2] भ्रमर

णिय-णयण-सरासणि संध इव । पिउ पगुण-गुणेहिँ णिबंध इव ।
जस-कद्दमें णं जगु लिप इव । हत्थिंसु पवाहें सिप्प इव ।
विज्जे इव करयल-पल्लवेहिँ । अंच्चे इव णहकुसुमेंहि णवेहिँ ।
पइसर इव हियएँ हलाउहहों । कर इव उज्जोउ दिसामुहहों ।
घत्ता । मेहलियं[1] मिलंतहों रहुवइहें, सुहु उप्पण्णउ जेत्तडउ ।
इंदहो इंदत्तणु णत्ताहो, होंज्जण होंज्जवें तेत्तडउ ॥७॥
सकलत्तउ लक्खणु पणय-सिरु । पभणइ जलहर-गंभीर-गिरु ।
"जं किउ खर-दूसण-तिसर-वहु । जं हंसदीवें जिउ हंसरहु ।
जं सत्ति पडिच्छिय समर-मुहे । जं लग्गु विसल्ल करंवुरुहे ।
जं रणें उप्पण्णु चक्करयणु । जं णिहिउ वलुद्धरु दहवयणु ।
तं देवि ! पसाएं तउतणेंण । कुलु धवलिउ जाइ सइत्तणेंण" ।
अहिवायणु किउ लक्खणेण जिह । सुग्गीव-पमुह-णरवरहिँ तिह ।
सयलवि णिय-णिय वाहणेंहिँ थिय । पर-पुर-पवेस-सामग्गि किय ।
जय-मंगल-तूरइ ताडियाइँ । रिउ-घरिणिहिँ चित्तइ पाडियाइँ ।
—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—"हले हलें सीएँ सीएँ किं मूढ़ी । अच्छहि दुक्खें महण्णवें छूढ़ी ।....
हलें हलें सीएँ ! सीएँ ! महि भुंजहिँ । माणुस-जम्महों अणहुंजहिँ ।
घत्ता । पिउ इच्छहि पट्टु पडिच्छहिँ, जइ सब्भावें हसिउ पईं ।
तो लइ मह एवि पसाहणु, अब्भत्थिय एत्तउ उ मइ" ॥१३॥
तं णिसुणेवि वयदेहि सुया । पभणइ पुलय-विसट्ट भुआ ।

---

[1] महिला=मेहरी

निज-नयन-शरासनें संध इव । प्रिय-प्रगुण-गुणेहिँ निबंध इव ।
यश-कर्दमें जनु जग लेप इव । हँसियेउ प्रवाहे सीप इव ।
विद्या इव करतल-पल्लवेहिँ । अर्चं इव नखकुसुमेँहिँ नवेहिँ ।
प्रतिसर इव हियइ हलायुधहँ । कर इव उज्जोतु निशा-मुखहँ ।
घत्ता । मेहरिहिँ मिलंते रघुपतिहिँ, सुख उत्पन्नउ जेत्तनऊ ।
इन्द्रहँ इन्द्रत्व-प्राप्ति समये, हुयउ न होइहि तेत्तनऊ ॥७॥
स-कलत्रउ लक्ष्मण प्रणत-शिरा । प्रभनै जलधर-गंभीर-गिरा ।
"जो किउ खर-दूषण-त्रिशिर-वधा । जो हंसद्वीपें जितु हंसरथा ।
जो शक्ति प्रतीच्छेउ समर-मुखे । जो लाग विशल्य करंबुरुहे ।
जो रणें उत्पन्न चक्ररतना । जो निधिउ बलुद्धर दशवदना ।
सो देवि ! प्रसादें तवतनऊ[1] । कुल धवलेँउ जाइ सतित्वनऊ" ।
अभिवादन किउ लक्ष्मणेँहिँ यथा । सुग्रीव प्रमुख-नरवरेहिँ तथा ।
सकलेँहिँ निज-निज वाहनें थितउ । पर-पुर-प्रवेश-सामग्रि[2] कियउ ।
जयमंगल-तूर्या ताड़िया । रिपु-घरिणिहिँ चित्ता पाडिया ।
—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—"हले हले[3] सीते सीते ! का मूढि । रहहि दुःख-महार्णवे छूटि ।
हले हले सीते सीते ! महि भोगहु । मानुष-जन्महँ फल अनु-भोगहु ।
घत्ता । प्रिय इच्छहिँ पट्ट प्रतीच्छहु, यदि सद्भावें हसिउ तैं ।
तो लेहु मम एहु प्रसाधन, अभ्यर्थेउँ एत्तना मैं" ॥१२॥
सो सुनिया वैदेह-सुता । प्रभणइ पुलक-विसृष्टभुजा ।

---

[1] तवकेरहु　　[2] जमावड़ा　　[3] रे रे

सीता—"सच्चउ इच्छमि दहवयणु।............
इच्छमि जइ महु मुहु ण णिहालइ।............
जइ पुणु णयणानंदणहों, ण समप्पिय रहुणंदणहों।
ता हउँ इच्छमि एउ हले, पुरि खिप्पंती उयहि-जले।....
इच्छमि णंदण-वणु मज्जंतउ। इच्छमि पट्टणु पयलहों जंतउ।
इच्छमि दहमुह-तरु छिज्जंतउ। तिलु तिलु राम-सरेंहि भिज्जंतउ।
इच्छमि दस'वि सिरइ णिवडंतइं। सरें हंसाहय इव सयवत्तइं।
इच्छमि अंतेउरु रोवंतउ। केस-विसंथुलु धाह मुअंतउ।
इच्छमि छिज्जंतिय धय-चिंधइं। इच्छमि णच्चंताइं कवंधइं।
इच्छमि धूमं धारिज्जंतइं। चउदिसु सुहड चियाइं बलंतइं।
जं जं इच्छमि तं तं सच्चउ। णं तो करमिज्जइ हलें पच्चउ"।

—रामायण ४१।१५

(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसल-णयरें पराइय जावेहिं। दिणमणि गउ अत्थवणहों तावेहिं।
जत्थहों पियमेण णिव्वासिय। तहों उववणहों मज्भें आवासिय।
कहवि विहाणु भाणु णहि उग्गउ। अहिमुहु सज्जण-लोउ समागउ।
कंतहितणिय कंति पेक्खेप्पिणु। पभणइ पोमणाहु विहसेप्पिणु।
"जइ वि कुलग्गयाउ णिरवज्जउ। महिलउ होंति सुट्ठु णिल्लज्जउ।
दरदाविय कडक्ख-विक्खेवउ। कुडिलमइउ बड्ढिय अवलेवउ।
बाहिर धिट्ठउ गुण-परिहीणउ। किह सयखंडु ण जंति तिहीणउ।
णउ गणंति णिय-कुलु मइलंतउ। तिहुयणें अयस-पडहु वज्जंतउ।
अंगु समोडें[1]वि धिद्धिक्कारहों। वयणु णिएंति केम भत्तारहों"।
सीय ण भीय सइत्तण गव्वें। बलें'वि पवोल्लिय मच्छर गव्वें।
"पुरिस-णिहीण होंति गुणवंति'वि। तियहें ण पत्तिज्जंति मरंति'वि।

---

[1] समेटे

सीता—साँचे इच्छउँ दशवदनू।....।
इच्छउँ यदि मम मुख न निहारै।
यदि पुनि नयनानंदनहिँ, न समर्पेँउ रघुनंदनहिँ।
तो हौँ इच्छउँ एहु हले, पुरि फेँकंती उदधि-जले।......
इच्छउँ नन्दन-वन मज्जंता। इच्छउँ पट्टन पातल जंता।
इच्छउँ दशमुख-तरु छिद्यंता। तिल-तिल राम-शरेँहिँ भिद्यन्ता।
इच्छउँ दसहु शिरा निपतंता। सरेँ हंसाहत इव शत्पत्रा।
इच्छउँ अन्तःपुर रोवंती। केश-विसंस्थुल ढाह भरंती।
इच्छउँ छिद्यंता ध्वज-चिन्हा। इच्छउँ नाचंता काबंधा।
इच्छउँ धूमा धारिज्जंता। चौदिशि सुहडी चिता बलंता।
जो जो इच्छउँ सो सो साँचय। जनु तो करऊँ मैँ फलेँ प्रत्यय।
—रामायण ४६।१५

(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसलनगरे पहुँचेउ जब्बहिँ। दिनमणि गउ अस्तमनउ तब्बहिँ।
जहँवा प्रियतमेहिँ निर्वासिय। तँहि उपवनहि माँझ आवासिय।
कहव विहान भानु ना उग्गउ। अभिमुख सज्जन लोग समागउ।
कांतहि-केरि कांति पेखियबी। प्रभणै पद्मनाभ विहसियबी।
"यदपि कुलग्रताउ निरवद्या। महिलउ होहिँ सुधू[1] निर्लज्जा।
तनिक दाबेँ कटाक्ष-विक्षेपउ। कुटिलमयिउ बाढिय अवलेपउ।
बाहर डीठउ गुण-परिहीना। किमि शतखंड न जांति त्रिहीनउ।
नहि गणहीं निजकुल मइलंता। त्रिभुवनेँ अयश-पटह बाजंता।
अंग समोडेँहु धिक्धिक्कारहँ। वदन नियंति केम भर्तारहँ"।
सीय न भीत सतीत्वहि गर्वेँ। बलेँहु प्रबोल्लेँउ मत्सर-गर्वेँ।
"पुरुषा हीन होहिँ गुणवंतउ। तियहिँ न पतियायहीँ मरंतिउ।

---

[1] केवल

घत्ता । खडुलक्-कडु सलिलु वहंतें यहों, पउराणियहें कुलग्गयहें ।
रयणायरु खारइ देंतउ, तों वि ण थक्कइ णं णेम्मयहें ॥८॥

साणु ण केणवि जणेण गणिज्जइ । गंगा णइहें तंजें ण्हाइज्जइ ।
ससि स-कलंकु तहि जें पह णिम्मल । कालउ मेहु तहि जें तडि[1] उज्जल ।
उवलु अपुज्ज ण केणवि छिप्पइ । ताहि पडिम चंदणें ण विलिप्पइ ।
धुज्जइ पाउ पंकुजइ लग्गइ । कमल-माल पुणु जिणहों बलग्गइ ।
दीवउ होइ सहावें कालउ । वट्टि सिहऍं मंडिज्जइ आलउ ।
णर-णारिहि एवड्डउ अंतरु । मरणें वि वेल्लि ण मेल्लइ तरुवर ।
एह पइ कवण बोल्ल पारंभिय । सइ वडाय मइ अज्जु समुब्भिय ।
तुहु पेक्खंतु अच्छु वीसत्थउ । डहउ जलणु जइ डहिवि समत्थउ ।

घत्ता । किं किज्जइ अण्णइ दिव्वें, जेण विसुज्झहों महु मणहों ।
जिह कणय-लोलि डाहुत्तर, अच्छमि मज्झें उ आसणहों" ॥९॥

—रामायण ८३।७-९

५—सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

परबलें दिट्ठऍं राहव-वीरु पयट्टउ । रइ रण-रहसेण उरे सण्णाहु विसट्टउ ।
सो राहव पहरण-हत्थाऍं । दणुवइ णिद्दलण-समत्थाऍं ।
दीहर-मेहल-गुप्पंताए । चंदण-कद्दमें खुप्पंताए ।
विच्छोइय मणहर कंताए । किय-माया सुग्गीवें ताए ।
रण-रहसुद्धूसिय-गत्ताए । अप्फालिय वज्जावत्ताए ।
आवीलिय तोणा-जुयलाए । किंकिणि ललंत बल-मुहलाए ।
कंकण-णिवद्ध करकमलाए । वित्थिण्णुण्णय वच्छयलाए ।
कुंडल-मंडिय-गंडयलाए । चूडामणि-चुंविय-भालाए ।
भासुल-मुलिआरुल-वयणाए । रत्तुप्पल-सण्णिह-णयणाए ।
जं सेंन - सण्णद्धऍं दिट्ठाए । तं लक्खणे वि आलुद्धाए ।

—रामायण ६०।१

---

[1] तडित्, बिजली

घत्ता। खडखड सलिल वहंतियहु, पटरानियह कुलग्रयहु।
रतनाकर खारइ देंतउ, तोपि न थाकै जनु निर्मंथे ॥८॥
सोउ न कोइहँ जनेहिँ गणीजै। गंगानदिहिँ सोउ नहईजै।
शशि सकलंक ताह प्रभाँ निर्मल। कालउ मेघ ताह तडि उज्वल।
उपल अपूज्य न कोउँ छूवई। तेहि प्रतिमा चंदन लेपइ।
धोइयें पाव पंक यदि लागै। कमल-माल पुनि जिनहु समर्पै।
दीपउ होहि स्वभावे कालउ। बाति शिखहिँ मंडिज्जै आलउ।
नर-नारिहीँ एवडउ[1] अंतर। मरतेँउ बेलि न मेलै[2] तरुवर।
एहु तैँ कवन बोलि प्रारंभिउ। सति बड़ाइ मैँ आज समुज्झिउ।
तुहु देखंत होहु विस्वस्ता। दहउ ज्वलन यदि दहन-समर्था।
घत्ता। का कीजै दूसर दिव्येहिँ[3], जातें विशुद्धइ मम मना।
जिमि कणक-लोलें दाहुत्तर, रहहुँ माँझेहु आसना ॥९॥
—रामायण ८३।१-९

५—सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

पर बले दीख राघववीर। रवि रण लसेहिँ उर सन्नाह निबद्धउ।
सो राघव प्रहरण-हस्ताऊ। दनुपति-निर्दलन-समर्थाऊ।
दीरघ-मेखल गोप्यंताऊ। चंदन-कर्दमें लेप्यंताऊ।
वीछोहिउ मनहर-कान्ताहीँ। कृत-माया सुग्रीवें ताहीँ।
रण-रभसेँहि बूसित गात्राए। आस्फालिय वैयावर्त्याए।
आ-धारेँउ तूणी-जुगलाए। किंकिणि-ललंत बल-मुखराए।
कंकण-निबद्ध-करकमलाए। विस्तीर्णु-व्रत-वक्षतलाए।
कुंडल - मंडित - गंडतलाए। चूडामणि - चुंबित - भालाए।
भासुर - पुलकाकुल - वदनाए। रक्तोत्पल - सन्निभ - नयनाए।
जो सेन-सनद्धा-दीखाए। सो लक्ष्मणेँहू आलुब्धाए।
—रामायण ६०।१

---

[1] एतना [2] छाड़े [3] आगके गोले आदिसे सतीत्व परीक्षा

(२) देश-विजय

(देशोंके नाम)

पइजारूढु णराहिउ जावेंहिं । साहणु[1] मिलिउ असेसु'वि तावेंहिं ।
लेहु लिहेप्पिणु जग-विक्खायहों । तुरिउ विसज्जिउ महिहर-रायहो ।
अग्गएँ घित्तु वद्धलं पिक्खुव । हरिणक्खरहिँ लीण णं डिक्खुव ।
सुंदरु पत्तु वंतु वरसाहु'व । णाव वहुल सरि गंगपवाहु'व ।
दिट्ठु राय तहिँ आय अणंतवि । सल्ल-विसल्ल-सीह-विक्कंतवि ।
दुज्जय-अजय-विजय-जय-जय मुहुँ । णर-सद्दूल-विउल गय-गय मुहुँ ।
रुद्दवच्छ-महिवच्छ-महद्धय । चंदण-चंदोयर-गरु(ड)द्धय ।
केसर-मारि-चंड-जमहंटा । कोंकण-मलएँ-पंडिया-'णट्टा ।
गुज्जर-गंग-वंग-भंगाला । पइविय-पारियत्त-पंचाला ।
सिंधव-कामरूव-गंभीरा । तज्जिय-पारसीय-परतीरा ।
मरु-कण्णाड-लाड-जालंधर । टक्क-हीर-कीर-खस-बब्बर ।
अवरवि जे ऍक्केक्क-पहाणा । ....

—रामायण ३०।२

घत्ता । जे अल मलवल पबल-वले, हरि-वल-वलेहि साहिया ।
ते णरवइ लवणंकुसेहिँ, सवसि करेप्पिणु साहिय ॥५॥

खस-सब्बर-बब्बर-ढक्क-कीर । कउवेर-कुरव-सोंडीर-वीर ।
तुंगं-'ग-वंग-कन्होज्ज-भोट्ट । जालंधर-जवणा-जाण-जट्ट ।
कंमीरो-'सीणर-कामरुव । ताइय-पारस-काहार-सूव ।
णेपाल-धट्ट-हिंडीव-'तिसर । केरल-काहल-कइलास-वसिर ।
गंधार-मगह-मद्दा-हिवावि । सक-सू सेण-मरु-पत्थिवावि ।
एयवि अवरवि किय वस-विहेय । पल्लट्ट पडीवासेहि लेय ।

—रामायण ८२।६

---

[1] साधन=सेना

(२) देश-विजय

(देशोंके नाम)

परि-आरूढ नराधिप जव्वहिँ। साधन[1] मिलेँउ अशेषउ तव्वहिँ।
लेख लिएवउ जग-विख्यातहु। तुरत विसजउ महिधर-रायहु।
आगे लियउ वद्धलं पेखुँव। हरिणाक्षरहिँ लीन जनु डिक्खुँव।
सुंदर पात्रवंत वर साधुँव। नाव-बहुल सरि गंग-प्रवाहुँव।
दीख राय तहँ आय अनंतउ। सल्ल-विसल्ल-सिंह-विक्रांतउ।
दुर्जय-अजय-विजय-जय-जय मुख। नर-शार्दूल-विपुलगज-गजमुख।
रुद्रवत्स-महिवत्स-महाध्वज। चंदन-चंदोदर-गरुडध्वज।
केसर-मारि-चंड-यमघंटा। कोंकण-मलय-पंडिया-'नट्टा।
गुर्जर-गंग-वंग-भंगाला। पइविय-पारियात्र-पंचाला।
सिंधव-कामरूप-गंभीरा। ताजिक-पारसीक-परतीरा।
मरु-कर्नाट-लाट-जालंधर। टक्क-अहीर-कीर-खस-बर्बर।
अवरहु जे ऐँक-एक प्रधाना। ....।

—रामायण ३०।२

घत्ता। जे अलमत बल प्रवलबलेँ, हरिवल बलेहिँ साधिया।
ते नरपति (हूँ) लव-कुशेहिँ, स्ववश करीय प्रसाधिया ॥५॥

खस-सर्वर-वर्वर-ढक्क-कीर। कौबेर-कुरव-शौंडीर-वीर।
तुंग-'ङ्ग-वंग-कंबोज-भोट्ट। जालंधर-यवना-जान-जट्ट।
कश्मीर-उशीनर-कामरूप। ताजिक-पारस-काहार-सूव।
नेपाल-घट्ट-हिंदिव तिसरा। केरल-कोहल-कैलाश-वशिर।
गंधार-मगह-मद्र-आहिवाउ। शक-शूरसेन-मरु-पार्थिवाउ।
एतउ अवरउ किउ वश-विधेय। पलटेँउ प्रतीवासेहिँ लेय।

—रामायण ८२।६

---

[1] **रण-साधन, सेना**

(३) योधाओंकी उमंगें

अण्णेक्क सुहड सण्णद्ध केवि। णिय कंतहु आलिंगणु करेवि।
अण्णेकहु धण तंबोलु देइ। अण्णेक्क समप्पिउ पिउ ण लेइ।
मइ कन्तें समाणें चउदलेहिं। हयपण्णेंहि रहवर-पोप्फलेहिं।
णर-वर संचूरिय-चुण्णएण। रिउ-जयसिरि-बहुअएँ दिण्णएण।
अण्णेकहों जाइँ सुकंत देइ। ऊहुल्लइँ फुल्लइँ नतरु लेइ[1]।
ण समिच्छमि हँउ तुहु लेहि भज्जें। एत्तिउ सिरु णिवडइ सामि-कज्जें।
अण्णेक्कहों धण-भूसणइँ देइ। अण्णेक्कु तंपि तिण-समु गणेइ।
किं गंधें किं चंदण-रसेण। मइ अंगु पसाहेव्वउ जसेण।
घत्ता। अण्णेक्कहों धण अप्पाहइ, हिम-ससिकंत-समुज्जलइँ।
करिकुंभइ णाह दलेप्पिणु, आणेज्जहि मोत्ताहलइँ॥३॥

—रामायण ५६।२-३

केवि जस-लुद्ध। सण्णद्ध-कोह। केवि सुमित्त-पुत्त। सुकलत्त-चत्त-मोह।
केवि णीसरंति वीर[2]। भूधर'व्व तुंगधीर।
सायर'व्व अप्पमाण। कुंजर'व्व दिण्णदाण।
केसरि'व्व उद्धकेस। चत्त-सव्व-जीवियास।
केवि सामि-भत्ति-वंत। मच्छिरग्गि-पज्जलंत।
केवि आहवे अभंग। कुंकुमं पसाहि-अंग।
केवि सूर साहिमाणि। सत्ति-सूल-चक्कपाणि।
केवि गीढ वारुणत्थ। तोण-वाण-चाव-हत्थ।
कुद्ध लुद्ध-जुद्ध केवि। णिग्गयासु सण्णहेवि।

—रामायण ५९।२

---

[1] नरु नलेइ—पूना [2] हेलादुवई-छंद

(२) योधाओंकी उमंगें

अन्नेक[1] सुभट सन्नद्ध कोइ। निज कंतहँ आलिगन करेइ।
अन्नेकहु धनि तांबूल देहिँ। अन्नेक समर्पेंउ पिय न लेहिँ।
मैं कंत समाने चउदलेहिँ। हय पर्णेहिँ रथवर-श्रीफलेहिँ।
नरवर संचूरित-चूर्णकेहिँ। रिपु-जयश्री-वधुअइ दिन्नकेहिँ।
अन्नेकहु जाइँ सुकंत देइ। ऊहुल्लैं फुल्लैं नर न लेइँ।
नहि इच्छउँ हउँ तुहु लेइ भाज्यें। ईहउ शिर निपतै स्वामिकार्यें।
अन्नेकहँ धन-भूषणैं देइ। अन्नेक सोउ तृणसम गनेइ।
का गंधहिँ का चंदन-रसहीँ। मैं अंग प्रसाधेबउँ यशेहिँ।

घत्ता। अन्नेकहु धन आपानही, हिम-शशिकांत-समुज्वलईं
करिकुंभइँ नाथ ! दलेबिय, आनीजै मुक्ताफलईं ॥२॥

—रामायण ५६।२-३

कोइ यशलुब्ध। सन्नद्ध-क्रोध। कोइ सुमित्र-पुत्र। सुकलत्र त्यक्तमोह।
कोइ निःसरंति वीर। भूधर इव तुंगधीर।
सागर इव अप्रमाण। कुंजर इव दिन्न-दान।
केसरि इव ऊर्ध्व-केश। त्यक्त-सर्व-जिविताश।
कोइ स्वामि-भक्तिमंत। मत्सराग्नि-प्रज्वलंत।
कोइ आहवे अभंग। कुंकुमे प्रसाधित-आंग।
कोइ शूर साभिमानि। शक्ति-शूल-चक्र-पाणि।
कोइ गीढ-वारुणास्त्र। तूण-वाण-चाप-हस्त।
क्रुद्ध लुब्ध-युद्ध कोइ। निर्गत-असु सन्नहेइ।

—रामायण ५६।२

---

[1] अनेक

(४) पत्नीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

घत्ता[1]। कोइ पधाइउ हणु हणु सद्दें, परिहइ कोइ कवउ आणंदें।
रण-रसियहों रोमंचुब्भिण्णहों, उरें सण्णाहु ण माइउ अण्णहों ॥२॥
पभणइ कावि "कंत ! करि-कुंभे जेत्तडाइँ। मुत्ताहलाइँ लेवि महु आणेज्जहि तेत्तडाइँ"।
कावि कंत-चिधइ अप्पाहइँ। कावि कंत णिय-कंतु पसाहइँ।
कावि कंत-मुह यंति करावइँ। कावि कंत दप्पणु दरिसावइँ।
कावि कंत पिय-णयणइ अंजइँ। कावि कंत रण-तिलउ पउंजइ।
कावि कंत स-वियारउ जंपइ। कावि कंत तंबोलु समप्पइ।
कावि कंत-बिबाहर लग्गइ। कावि कंत आलिंगणु मग्गइ।
कावि कंत ण गणेइ णिवारिउ। सुरयारंभु करेइ णिरारिउ।
कावि कंत-सिरें बंधइ फुल्लइँ। वत्थइ परिहावई अमुल्लइ।
कावि कंत आहरणइ ढोयइँ। कावि कंत परमुहइ पजोयइँ।
घत्ता। कहवि अंगे रोसहु ण माइय, पिय रण-वहुअएँ सहुँई संगइया[2]।
जइ तुहु तहें अणुराइउ वट्टइ, तो महुँ ण हवय देवि पयट्टइ ॥३॥
पभणइ कोवि "वीरु जइ चवहि एव भज्जे। तो वरें तहें जे देमि जा जुत्त सामिकज्जे।"
कोवि भणइ "गयगंडवलग्गइ। आणवि मुत्ताहलइँ धयग्गइँ।"
कोवि भणइ "णउ लेमि पसाहणु। जाव ण भंजमि राहव-साहणु।"
कोवि भणइ "मुहवित्ति ण इच्छमि। जाव ण सुहड छडक्क पडिच्छमि।
कोवि भणइ "ण णिहालमि दप्पणु। जाव ण रणि विणिवाइउ लक्खणु।"
कोवि भणइ "णउ अंक्खिउ अंजमि। जाव ण सुरवहु-जण-मण-रंजमि।". . . .
कोवि भणइ "णउ सुरउ समाणमि। जाव ण भडहु कुलक्खउ आणमि।"
कोवि भणइ "धणि फुल्ल ण बंधवि। जाव ण रणें सर धोरणि संधवि"।
घत्ता। कोवि भणइ "धणें णउ आलिंगमि, जाव ण दंति-दंत आलिंगमि"।
कोवि करवि ण वित्ति आहारहों, जाव ण दिण्ण सीय दहवयणहों ॥४॥

---

[1] तोमर-छंद [2] सट्टइ-चाहिये

(४) पत्नीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

घत्ता । कोइ प्रधायउ हन-हन शब्दें, परिहरि कोउ कवहुँ आनंद्दे ।
रणरसिया रोमांचु-छिन्नहँ । उरें सन्नाह न आयउ अन्यहँ ।।२।।
प्रभणै कोइ "कंत ! करिकुंभें जेत्तनाइँ । मुक्ताफलाइँ लेबि आनीजै तेत्तनाइँ ।"
कोइ कंत चिन्हाईं पूजै । कोइ कंत निज-कंत प्रसाधै ।
कोइ कंत-मुख धोंवन करावै । कोइ कंत दर्पण दरसावै ।
कोइ कंत-प्रिय-नयनहिँ अंजे । कोइ कंत रणतिलक प्रयोगै ।
कोइ कंत सविकारउ जल्पै । कोइ कंत तांबूल समर्पै ।
कोइ कंत-बिबाधर लागै । कोइ कंत आलिंगन माँगै ।
कोइ कंत न गनेइ निवारिउ । सुरतारंभ करेइ निरारिउ[१] ।
कोइ कंत शिरें बाँधै फूलहिँ । वस्त्रहिँ पहिरावै अनमोलहिँ ।
कोइ कंत आभरणहिँ योजै । कोइ कंत परमुखहिँ प्रयोगै ।
घत्ता । "कहवि अंगें रोसहु न भाइय, प्रिय रण-वधु-संग ईर्ष्याइय ।
यदि तुहुँ तहँ अनुरागिय वट्टै[२], तो मम न हवैं[३] देवि प्र-वट्टै ।।३।।
प्रभनै कोइ "वीर ! यदि बोलु एव भार्ये । तो वरु तेहिहि देउँ जो युक्त स्वामि-कार्ये ।"
कोइ भनै "गजगंड विलग्नहिँ । आनबि मुक्ताफलहिँ ध्वजाग्रहिँ ।"
कोइ भनै "ना लेहुँ प्रसाधन । जौ लों न भंजउँ राघव-साधन ।"
कोइ भनै "मुखवृत्ति न इच्छउँ । जौ लौं न सुभट-छडक्क प्रतीच्छउँ ।
कोइ भनै "न निहारौं दर्पण । जौ लौं न रण विनिपातौं लक्ष्मण ।"
कोइ भनै "ना आँखिहुँ अंजौं । जौ लौं न सुर-वधुजन-मन रंजौं ।
कोइ भनै "न सुरति सम्मानौं । जौ लों न भटहँ कुल-क्षय आनौं ।
कोइ भनै "धनि ! फूल न बाँधव । जौ लों न रणें सर पाँती साँधब ।"
घत्ता । कोइ भनै "धनि ! ना आलिगौं, जौ लों न दंति-दंत आलिंगौं ।"
कोइ "करवि न वृत्ति आहारहु, जौ लों न दीन सीय दशवदनहुँ ।।४।।

---

[१] अत्यंत	[२] बाटै (काशी)=है	[३] हौवे (काशी)=है

गरुअ पउ-हरीए अच्चंत णेहिणीए । रणें पइसंतु कोवि सिक्खविउ गेहिणीए ।
णाह णाह ! समरंगणें काले । तूर भेरि-दडि-संख-रव-भाले ।
उत्थरंत वर वीर समुद्दे । सीह-णाय णर-णाय-रउद्दे ।
मत्त-हत्थि गल-गज्जिय सद्दे । अब्भिडिज्ज पर राहवचंदे ।
कावि णारि परिहासइ एमं । तेम जुज्झु णवि लज्जमि जेवं ।
कावि णारि पडिवोहइ णाहं । भग्गमाणें पइँ जीवमि णाहं ।
कावि णारि पडिचुंवणु देइ । कोवि वीरु अवहेरि[1] करेइ ।
कंतें कंतें मइ मंदु लएवी । कित्ति-वहुय रणें परिचुंवेवी ।
कावि णाहि णवकारु करेइ । कोवि वीरु रणें-दिक्ख लएइ ।

—रामायण ५६।३-५

थोवंतरु जाव परिभमइ । सहुँ कंतएँ कोवि वीरु चवइ ।
सुंदरि ! मृगणयणे ! मरालगइ ! तं पहु पसाउ किं वीसरइ ।
तं पेसणु तऊ लग्गियउँ । तंजीविउ दाणु अमग्गियउँ ।
तं उच्चासणु मणें वेयडिउ । तं मत्तगइंदें-खंधें चडिउ ।
तं मेहलु तं कंठाहरणु । तं चेलिउँ तं जें समालहणु ।
तं फुल्लु सहत्थें तं तंबोलु । तं असणु स-भरियलु कच्चोलु ।
तं चीरु भारु चामीयरहो । अवरवि पसाय लंकेसरहो ।
एयहुँ जसु एक्कइ णावडइ । सो सत्तमि णरयण्णवें पडइ ।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेक्खु पेक्खु आवंतउ साहणु । गलगज्जंत महग्गय-वाहणु ।
पेक्खु पेक्खु हिंसंत तुरंगम । णहयलें विउलें भवंति विहंगम ।
पेक्खु पेक्खु चिंघइ धूयंतइँ । रह-चक्कइँ महियलें खुप्पंतइँ ।
पेक्खु पेक्खु कड्ढिय असिवत्तइँ । धाणुक्किय फारक्किय पत्तइँ ।

---

[1] तिरस्कार

गरुअ पदवरियि अत्यन्त स्नेहनियहिँ । रणेँ पइसंत कोइ सिखायउ गेहिनियहिँ ।
"नाथ नाथ ! समरंगण काले । तूर्य-भेरि-ढँडि-शँख-रव-माले ।
उत्तरंत वरवीर समुद्रे । सिंहनाद नरनाद रउद्रे ।
मत्त-हस्ति-गलगजित शब्दे । आभिडिया पर राघवचंदे ।"
कोइ नारि परिहासै एवं । "तिमि जूझौ नहि लज्जउँ येवं ।"
कोइ नारि प्रतिबोधै नाथहँ । "भागंते तोहिं जीवउँ ना हउँ ।
कोइ नारि प्रतिचुंबन देई । कोई भी अवधीर[1] करेई ।
"कंत कंत ! मैं मृदू लपेवी । कीर्त्ति-वधुअ रणेँ परिचुंबेवी ।"
कोइ नाहिँ नमकार करेई । कोइ वीर रण-दीक्ष लएई ।

—रामायण ५९।३-५

थोडंतर यावत् परिभ्रमई । कांतासोँ कोइ वीरा कहई ।
"सुंदरि ! मृगनयने ! मरालगति । सो प्रभु-प्रसाद का बीसरइ ।
सो प्रेषण[2] तऊ लागेऊँ । सो जीवित-दान अमांगेऊँ ।
सो उच्चासन मन बीजडऊ । तेंहि मत्तगयंद-स्कन्धें चढिऊँ ।
सो मेहरि सो कंठाभरणू । सो चोलिउ सोँउ संम-गलभनू ।
सो फूल स्वहत्थेँ सो तमूल । सो अशन सम्परिदल[3] कट्टोर ।
सो चीर भार चामीकरहू । अवरौ प्रसाद लंकेश्वरहू ।
एतहुँ यश एकइ ना वडई । सो सतवेँ नरकार्णव पडई ।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेखु पेखु आवंतउ सावन[4] । गलगर्जत महागज-वाहन ।
पेखु पेखु हिनहिनत तुरंगम । नभतलेँ विपुल भवंति विहंगम ।
पेखु पेखु चिन्हा कंपंता । रथचक्का महितलहिँ खनंता ।
पेखु पेखु काढ़िय असिपत्रा । धानुष्केँहिँ फरकायो पत्रा ।

---

[1] तिरस्कार [2] आज्ञा [3] थाली [4] सेना

पेक्खु पेक्खु वज्जंतइ तूरइँ। णाणा-विह निनाय-गंभीरइँ।
गलगज्जंत धणुह-टंकारउँ। सुहड विमोक्क पोक्कहक्कारउँ।
पेक्खु पेक्खु सय-संख रसंता। णाइ स दुक्खउ सयणँ रुअंता।
पेक्खु पेक्खु पचलंतउ णरवइ। गह चक्कहहोँ मज्झेँ सणि णावइ।
दसउर-'णाहु णिहालइँ जावेँहिँ। सयलु' वि सेण्णु पराइउ तावेँहिँ।

—रामायण २५।४

घंटा-टंकार-मणोहराइँ। उड्डंत मत्त-महुयर-सराइँ।
ससि-सूर-कंत-कर-णिब्भराइँ। बहु-इंद-णील-किय-सेहराइँ।
पवलय-माला रंखोलिराइ। मरगय-रिछोलिएँ सोहिराइँ।
मणि-पोमराय-वण्णुज्जलाइँ। वेडुज्ज-वज्ज-पह-णिम्मलाइँ।
मुत्ता-हल-माला धवलियाइँ। किंकिण-घग्घर-सर-मुहलियाइँ।
धूवंत धवल-धुय-धय-वडाइँ। वज्जंत संख-सय-संघडाइँ।
सुग्गीवेँ रयणुज्जोइयाइँ। विहि विण्णि विमाणइ ढोइयाइँ।

—रामायण ५६।४

(६) सैनिक बाजे

पडु-पडह-संख-भेरी-रवेण। कंसाल-ताल-दडिरउ रवेण।
कोलाहल काहल-णीसणेण। वड्ढीअ मुउंदा मीसणेण।
धंमुक्क करउ-टिविला-रवेण। झल्लरि-रुंजा-डमरुअ-करेण।
पडिढक्क-हुडुक्का-वज्जिरेण। घुम्मंत-मत्त-गय-गज्जिरेंण।
तंडविय-कण्ण-विहुणिय-सिरेण। गुमु-गुमु-गुमंत इंदीवरेण।
पक्खरिय तुरय पवणुज्झडेण। धूवंत-धवल-धय-धूवडेण।
मण-गमणा मेल्लिय संदणेण। जम-वरुण-कुवेर-विमद्दणेण।
वंदिण जयकारु'ग्घोसिरेण। सुर-वहुअ-सत्थ-परितोसणेण।

घत्ता। सहु सेण्णेँ सहइ दसाणणु णीसरिउ।
छण-चंदु'व तारा णियरेँ परियरिउ॥१॥

—रामायण ६३।१

---

[१] मालवा का दशपुर

पेखु पेखु वाजंता तूरइँ। नानाविध निनाद-गंभीरइँ।
गलगर्जंत धनुष-टंकारा। सुभट बिमोचु पुक्क हुंकारा।
पेखु पेखु शतशंख रसंता। न्याइँ स्वदुःखउ स्वजन रुदंता।
पेखु पेखु प्रचलंतउ नरपति। ग्रह-चक्रहु माँझे स निशापति।
दशपुर-नाथ निहारेँउ जब्बैँ। सकलहु सैन्य पराइउ तब्बैँ।

—रामायण २५।४

घंटा-टंकार मनोहराइँ। उड्डुंत मत्त-मधुकर-स्वराइँ।
शशि-सूर-कांत-कर-निर्भराइँ। बहु-इन्द्रनील-कृत-शेखराइँ।
प्रवलय-माला रंखोलिराइ[1]। मरकत-पक्तीहीँ सोहराइँ।
मणि-पद्मराग-वर्णोज्ज्वलाइँ। वैदूर्य-वज्र-प्रभ-निर्मलाइँ।
मुक्ता-फल-माला-धवलिताइँ। किंकिणि घर्घर स्वर मुखरिताइँ।
कंपंत धवल-धुत-ध्वज-वडाइँ। बाजंत शंख-शत-संघटाइँ।
सुग्रीवेँ रतनोद्योतिताइँ। विधि दोउ विमानइँ ढोइयाइँ।

—रामायण ५६।४

(६) सैनिक बाजे

पटु पटह-शंख-भेरी-रवेहिँ। कंसाल-ताल-दडिरव-रवेहिँ।
कोलाहल काहल-निःस्वनेहिँ। बड्ढीय मृदंगा मिश्रणेहिँ।
धंमुक्क-करड-टिबिला-रवेहिँ। भल्लरि-रुंजा-डमरू-करेहिँ।
प्रतिढक्क-हुडुक्का बाजिरेहिँ। घूमंत मत्तगज-गर्जिरेहिँ।
तांडविय कर्ण-विधुनित-शिरेहिँ। गुम-गुम-गुमंत इंदीवरेहिँ।
पाखरिय तुरग-पवनोज्झटेहिँ। धुन्वंत-धवल-ध्वज-धूवटेहिँ।
मनगमना छोडी स्यंदनेहिँ। यम-वरुण-कुबेर-विमर्दनेहिँ।
वंदिन जयकारु-द्घोषणेहिँ। सुर-वधुग्र-सार्थ-परितोषणेहिँ।

घत्ता। सबसेनहिँ सह दशानन नीसरिऊ।
क्षण-चंदि'व तारा-निकरे परिचरिऊ ॥१॥

—रामायण ६३।१

---

[1] सांकल

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहन[1] का युद्ध—

पच्छइ मेहवाहणो गहिय-पहरणे णिग्गउ तुरंतो।
णं जुग-खय-सणिच्छरो भरिय-मच्छरो अहर-विप्फुरंतो।
सो'वि पधाइउ रहवरें चडियउ। णं केसरि-किसोरु णिव्वडियउ।
संचल्लइए तोयदवाहणें। तूरइ हयइ असेस'वि साहणे।
संणज्झंति केवि रयणीयर। वर-तोणीर-बाण-धणु-धर-कर।
केंवि तिक्खर-खग्ग-'क्खय-हत्था। केवि गुरुहु ऊणमिया-मत्था।
केवि चडिय हिंसंत-तुरंगेंहिं। केवि रसंत-मत्त-मायंगेंहिं।
केवि रहेंहि केंवि सिविया-जाणेहिं। केवि परिट्ठिय-पवर-विमाणेंहिं।
पुच्छिउ णियय-सारही, "अहो महारही।
दिढइँ जाइँ जाइँ, कहि कित्तियहँ।
अत्थइ रणहों समत्थइ, रहिहें चडावियइँ।"

(हथियारोंकी शक्तिकी तुलना—)

तो एत्थंतरि पभणइ सारहिँ। "अत्थइँ अत्थि देव ! जइ पहरहिँ।
चक्कइ पंच सत्त वर-वायइँ। दस असिवरइँ अणिट्ठिय गावइँ।
बारह भस पण्णारह मोग्गर। सोलह लउडि दंड रणें दुद्धर।
बीस फरसु चउवीस तिसूलइँ। कोंतइ तीस सत्तु-पडिकूलइँ।
घण पणतीस चाउ वसुणंदा। चाल पंचास तीस अद्धंदा।
सेल्लइ सट्ठि खुरुप्पइँ सत्तरि। अण्णइँ कणय-चडिय चउहत्तरि।
असीति सत्तिउ णवइ भुसंढउ। जाउ दिवे दिवें रण-रसि-यट्ठिउ।
सउ णारायहुँ जं परिमाणमि। अण्णहि पुणु परिमाणु ण जाणमि।
घत्ता। बारह णियलइँ सोलह, विज्जउ रह चडिअउ।
जेहि धरिज्जइ समरंगणि, इंदु' वि भिडिअउ॥५॥

—रामायण ५३।४-५

---

[1] मेघनाद

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहनका युद्ध—

पाछेइँ मेघवाहन गहिय-प्रहरणा निर्गतउ तुरंता।
जनु युग-क्षय शनिश्चर, भरिय-मत्सर अधर-विस्फुरंता।
सोउ प्रधायउ रथवर चढियउ। जनु केसरि-किशोर नीबड़ियउ।
संचलतेइँ तोयदवाहनें। तूर्यहिँ हयहिँ अशेषहु साधनें।
सन्नाहंति कोँइ रजनीचर। वरतूणीर-बाण-धनु-वर-कर।
कोँइ तीखर-खड्गु-'ग्रत-हत्था। कोइ गुरुहिँ अवनामिय-मत्था।
कोइ चढिय हिनहिनत तुरंगेहिँ। कोइ रसंत मत्त-मातंगेहिँ।
कोइ रथेहिँ कोँइ शिविका-यानेहिँ। कोइ बैठे प्रवर-विमानेहिँ।
पूछेँउ निजय-सारथी, "अहो महारथी !
दृढे जाइँ जाइँ, कहु केत्तियइँ।
अर्थइ रणहु समर्थं, रथिहिँ चढावियइँ।

हथियारोंकी शक्तिकी तुलना

तो एहीँ विच प्रभणेँ सारथी। "अर्थें अहै देव ! यदि प्रहरहिँ।
चक्रैँ पाँच सात वर-वायहिँ[1]। दश असि-वरहिँ अनिष्ठित गावैँ।
बारह भष पन्नारह मुद्गर। सोलह लउरि-दंड रणेँ दुर्धर।
बीस परशु चौबीस त्रिशूलहिं। कुंतहिँ तीस शत्रु-प्रतिकूलहिँ।
घन पैंतीस चाप वसुनेद्रा। चाल पचास तीस अर्धदा।
सेलहि साठ क्षुरप्रहिँ सत्तर। अन्यहिँ कनक-चढ़िय चौहत्तरि।
अस्सी शक्तिहि नवे भुसुंडिउ। जाउ दिने दिन रण-रसिकस्थिउ।
सौ नाराचौँ जो परिमाणौँ। अन्येहिँ पुनि परिमाण न जानऊँ।
घत्ता। बारह निगडहिँ सोरह विद्या रथ चढियउ।
जेँहि धरिये समरंगणे, इन्द्रहुँ भिडियउ ॥५॥

—रामायण ५३।४-५

---

[1] हथियार

(ख) मेघवाहन और हनूमान्‌का युद्ध—

एक्कल्लउ सुहडु अणंत-वलु। पप्फुल्लु तोवि तहों मुह-कमलु।
परि-सक्कइ थक्कइ उल्ललइ। हक्कारइ पहरइ दणु दलइ।
आरोक्कइ ढुक्कइ उत्थरइ। परिडंभइ[1] रुंभइ वित्थरइ।
णवि छिज्जइ भिज्जइ पहरणेहिं। जिह जिणु संसारहों कारणेहिं।
हणुयहों पासेंहि परिभमइ बलु। णं मंदल-कोडिहि उयहि-जलु।
घत्ता। धरेंवि ण सक्कइ बलु सयलु 'वि उक्खय-पहरणु।
मारुहें पासेंहि परिभमइ मंदरहों णाइ तारायणु ॥६॥
धाइउ पवणणंदणो दणु-विमद्दणो वलहों पुलइ-अंगो।
हउ-रहु रह-वरेण गउ गय-वरेण, तुरएण वर-तुरंगो॥
सुहडें सुहडु कवंध कवंधें। छत्तें छत्तु चिंधुहउ चिंधें।
बाणें बाणु चाउ वर-चावें। खग्गें खग्गु अणिट्ठिय-गव्वें।
चक्कईं चक्कु तिसूल तिसूलें। मोग्गर मोग्गरेण हुलिहूलें।
कणएँण कणउ मुसलु वर-मुसलें। कोंते कोंतु रणंगणें कुसलें।
सेल्लें सेल्लु खुरुप्पु खुरुप्पें। फलिहि फलिहु गयावि गय-रुप्पें।
जंतें जंतु एंतु पडिखलियउ। बलु उज्जाणु जेण दरमलियउ।
णासइ सयलु'ण्णाविय मत्थउ। णिग्गइ दुण्णि तुरंगु णिरुत्थउ।
विवरामुहुउ हल्लिय-वयणउ। भग्गमडप्फरु मउलिय-णयणउ।
घत्ता। वियलिय-पहरणु णासंतु णिए' वि णिय-साहणु।
रह-वरु वाहेंवि थिउ अग्गएँ, तोयदवाहणु ॥७॥
रावण-राम-किंकरा रणे भयंकरा, भिडिय विप्फुरंता।
बिउ सुग्गीव-राहवा विजय-लाह-वाणाइँ हणु भणंता॥
बेवि पयंड बेवि विज्जा-हर। वेंण्णि'वि अक्खय-तोण-धणुह-कर।
वेंण्णि'वि वियउ-वच्छ पुलइय-भुअ। वेण्णि'वि अंजण-मंदोयरि-सुअ।

---

[1] परिअंभइ

(ख) मेघवाहन और हनूमान्‌का युद्ध—

एकल्लउ सुभट अनंतबलू। प्रप्फुल्ल तोउ तसु मुख-कमलू।
परि-शक्कै थाकै उल्ललई। हक्कारै प्रहरै दनु-दलई।
आ-रोकै ढूकै उल्ललई। परि-रुंधै रुंधै विस्तरई।
नहि छिंदै भिंदै प्रहरणेहिँ। जिमि जिन संसारह कारणेहिँ।
हनुमत्-पासेँहिँ परिभ्रमै बलू। जनु मंदर-कोटिहिँ उदधि-जलू।
घत्ता। धरेँव न सक्कै बल सकलहु उक्खाड-प्रहरण।
मारुति-पासेँहिँ परिभमै मंदर-कोटि'व तारागण ॥६॥
धायेँउ पवननंदनो दनु-विमर्दनो। बलवत् पुलकित-अंगो।
हय-रथ रथवरेहिँ गयेँउ गजवरेहिँ तुरगेहिं वरतुरंगा।
सुभटेहिँ सुभट कवंध कवंधेहिँ। छत्रेँ छत्र चिन्हहऊँ चिन्हा[1]।
बाणेँ बाण चाप वर-चापेँ। खड्गेँ खड्ग अनिष्ठित[2]-गर्वेँ।
चक्रहिँ चक्र त्रिशूल त्रिशूलेँ। मुद्गर मुद्गरेहिँ हुलिहूलेँ।
कनकेहिँ कनक मुसल वर-मुसलेँ। कुंतेँ कुंत रणंगण कुसलेँ।
सेलेँ सेल क्षुरप्र क्षुरप्रेँ। फरिहिँ फरिहु गजाहु गज-रूपेँ।
यंत्रेँ यंत्र आवत प्रतिस्खलियेँउ। बल उद्यान येन दरमलियेँउ।
नाशै सकल नवाइया मत्थउ। निर्गत दोउ तुरंग-निरर्थउ।
विवर-मुखाहू हालिय-वदनहु। भग्न-'भिमान मुकुलिया-नयनहु।
घत्ता। विचलिउ प्रहरण नाशंत निजहु निज-साधन।
रथवर वाहहु रहु आगे, तोयदवाहन ॥७॥
रावण-राम-किंकरा रण-भयंकरा, भिडेँउ विस्फुरंता।
सुग्रीव-राघव-विजल लाभवाणा हन भनंता ॥
दोउ प्रचंड दोउ विद्याधर। दोऊ अक्षय-तूण-धनुष-कर।
दोऊ विकट-वक्ष पुलकित-भुज। दोऊ अंजन-मंदोदरि-सुत।

---

[1] ध्वज [2] अनंत, असमाप्त

वेण्णि'वि पवण-दसाणण-णंदण । वेण्णि'वि दुद्दम-दाणव-मद्दण ।
वेण्णि'वि पहरण-परवल-चड्डिय । वेण्णि'वि जय-सिरि-वहुअवरुंडिय ।
वेण्णि'वि राहव-रावण पक्खिय । वेण्णि'वि सुर-वहु-णयण-कडक्खिय ।
वेण्णि'वि समर-सएँहिं जसवंता । वेण्णि'वि पहु-सम्माण-सरंता ।
वेण्णि'वि वीर-धीर भय-चत्ता । वेण्णि'वि परम-जिणिदहों भत्ता ।
वेण्णि'वि अतुल-मल्ल रण-दुद्धर । वेण्णि'वि रत्त-णेत्त-फुरिया-हर ।
घत्ता । विहिमि महाहउ जो असुर-सुरेंदहि दीसइ ।
राहव-रावणहों से तेहउ दुक्खरु होसइ ॥८॥

—रामायण ५३।६-८

भिडिअइ वे'वि सेण्णइँ आउ जुज्झु घोरु ।
कुंडल-कडय-मउडणिवडंत कणय-डोरु ।
हण-हण-हणंकारु महारउद्दु । छण-छण-छणंतु गुण-पिंछ-सद्द ।
कर-कर-करंतु कोयंड-पवरु । थर-थर-थरंतु णाराय-णियरु ।
खण-खण-खणंतु तिक्खग्ग खग्गु । हिलि-हिलि-हिलंतु हय-चंचलग्गु ।
गुलु-गुलु-गुलंत गयवर विसालु । "हणु-हणु" भणंतु णर-वर-विसालु[1] ।
पोप्फस-वसणे गत्तत्त-मालु । धावंत कलेवर सव-करालु ।
झल-झल-झलंतु सोणिय-पवाहु । छिज्जंत चलण तुट्टंत वाहु ।
णिवडंत सीसु णच्चंत रुंड । ऊणल्ल तुरय-धय-छत्त-दंड ।
तेंहि तेहएँ रणें रण-भर-समत्थु । राहव-किंकरु वर-वारणत्थु ।
घत्ता । सीहद्धउ चवल सीह-संदणे चडियउ ।
संतावणु सुहुमारिव्वें अब्भिडिउ ॥३॥
वेण्णि'वि सीह-संदणा वेण्णि'वि सीह-चिंधा ।
वेण्णि'वि चाव-करमला वे'वि जगें पसिद्धा ।

---

[1] णरवर वमालु

दोऊ पवन-दशानन-नंदन । दोऊ दुर्दम-दानव-मर्दन ।
दोऊ प्रहरण परबल-चढिया । दोऊ जयश्री-वधु आलिंगिया ।
दोऊ राघव-रावण-पक्षिय । दोऊ सुरवधु-नयन-कटाक्षिय ।
दोऊ समर-शतेहिँ यशवंता । दोऊ प्रभु-सम्मान स्मरंता ।
दोऊ वीर-धीर भय-त्यक्ता । दोऊ परम-जिनेंद्रह भक्ता ।
दोऊ अतुल-मल्ल रण-दुर्धर । दोऊ रक्तनेत्र स्फुरिताधर ।

घत्ता । दोउँहि महाहव जो असुर-सुरेंद्रहिँ दीसै ।
राघव-रावणँह सो, वैसे दुष्कर होषै[1] ॥८॥

—रामायण ५३।६-८

भिडिया दोऊ सेन आव युद्ध घोर ।
कुंडल-कटक मुकुट निपतंत कणक-डोर ॥
हन-हन-हनंकार महा-रउद्र । छन-छन-छनंत गुण-पिच्छ-शब्द ।
कर-कर-करंत कोदंड-प्रवर । थर-थर-थरंत नाराच-निकर ।
खन-खन-खनंत तीक्ष्णाग्र खड्ग । हिलि-हिलि-हिलंत हय-चंचलाग्र ।
गुलु-गुलु-गुलंत गजवर-विशाल । "हन हन" भनंत नरवर-विशाल ।
फुप्फुस वसने गात्रान्त-माल । धावंत कलेवर शव-कराल ।
झल-झल-झलंत शोणित-प्रवाह । छिद्यंत चरण तुट्यंत बाँह ।
निपतंत शीश नाचंत रुंड । फिक्कंत तुरग-ध्वज-छत्र-दंड ।
तँह तेहि रणे रणधर-समर्थ । राघव-किंकर वर-वारणास्त्र ।

घत्ता । सिंहध्वज चपल सिंह-स्यंदन चढियउ ।
संतापन सुखमारी इव भिडियउ ।

दोऊ सिंहस्यंदना दोऊ सिंहचिन्हा ।
दोऊ चाप-करतला दोऊ जग-प्रसिद्धा ।

---

[1] होखै (काशी)

वेण्णि[1]'वि जस-लुद्ध विरुद्ध कुद्ध । वेण्णि'वि वंसुज्जल कुल-विसुद्ध ।
वेण्णि'वि सुर-वहु-आणंद-जणण । वेण्णि'वि सत्तुत्तम सत्तु-हणण ।
वेण्णि'वि रण-धुर-धोरिय महंत । वेण्णि'वि जिण-सासण-भत्तिवंत ।
वेण्णि'वि दुज्जय जय-सिरि-णिवास । वेण्णि'वि पणई-यण-पूरियास ।
वेण्णि'वि निसियर-णर-वर-वरिट्ठ । वेण्णि'वि रावण-राहवहँ इट्ठ ।
वेण्णि'वि जुज्झंत सिलीमुहेहि । णं गिरि अवरोप्परु सरि मुहेहिँ ।
मारिच्चहों भय भीसावणेण । धणु जीउच्छिणु संतावणेण ।
तेण'वि तहों चिर-पेसिय-सरेहिँ । संसारु'व परम-जिणेसरेहि ।
—रामायण ६३।३-४

(ग) हनूमान्‌का युद्ध

हणुवंत-रणे परिवेढिज्जइ णिसियरेहिँ ।
णं गयण-यले बाल-दिवायरु जलहरेहिँ ।
पर-बलु अणंतु हणुवंतु एक्कु । गय-जूहहों णाइ इंदु थक्कु ।
आ रोक्कइ कोक्कइ समुहुँ थाइ । जहि जहि जें थट्टु तहि तहि जें थाइ ।
गय-घड भड-थड भंजंतु जाइ । वंसत्थले लग्गु दवग्गि णाइ ।
एक्कू रहु महाँहवे रस-विसट्टु । परिभमइ णाइँ वलें भइय वट्टु ।
सो णवि, भडु जासु ण मलिउ माणु । सो ण वयउ जासु ण लग्गु बाणु ।....
सो णवि तुरंगु जस गोंडु ण तुट्टु । सो विण रहु जासु ण रहंगु फुट्टु ।
सो णवि भडु जासु ण छिण्णु गत्तु । तं णवि विमाणु जहि सरु ण पत्तु ।
घत्ता । जगडंतु बलु मारुइ हिंडइ जहिँ जें जहिँ ।
संगाम-महिहे रुंड णिरंतर तहि जें तहिँ ॥१॥
जं जिणेवि ण सक्किउ वर-भडेहि । वेढाविउ मारुइ गय-घडेहि ।
गिरि-सिहिर-गहिर कुंभत्थलेहिँ । अणवरय-गलिय- गंडत्थलेहिँ ।
छप्पए-झंकार-मणोहरेहिँ । घंटा-टंकार-भयंकरेहिँ ।
तंडविय कण्ण उद्ध करेहिँ । मुक्कंकुसेहि मय-णि ज्झरेहिँ ।...

---

[1] बे=दो (गुजराती)

दोऊ यशलुब्ध विरुद्ध क्रुद्ध । दोऊ वंशोज्वल कुल-विशुद्ध ।
दोऊ सुरवधु-आनंद-जनन । दोऊ सत्त्वोत्तम शत्रु-हनन ।
दोऊ रण-धुर-धौरेय महंत । दोऊ जिन-शासन-भक्तिवंत ।
दोऊ दुर्जय जयश्री निवास । दोऊ प्रणयीजन-पूरिताश ।
दोऊ निशिचर-नरवर-वीरष्ट । दोऊ रावण-राघवहँ इष्ट ।
दोऊ युध्यंत शिलीमुखेहिँ । जनु गिरि अपरोपर सरि-मुखेहिँ ।
मारीचहु भय-भीषावणेहिँ । धनुज्या उछिन्दु संतापनेहिँ ।
सोऊ तेहि चिर-प्रेषित-शरेहिँ । संसारि'व परम जिनेवरेहिँ ।
—रामायण ६३।३-४

(ग) हनूमान्‌का युद्ध

हनुमंत-रणे परिवेठिज्जै निशिचरेहिँ ।
जनु गगनतले बालदिवाकर जलधरेहिँ ।
पर-बल अनंत हनुमंत एक । गज-यूथहिँ न्याइँ इंदु थाक[1]
आरोकइ कोकइ समुँहेँ धाइ । जहँ जहीँ ठट्ट तहँ तहीँ थाय[2] ।
गज-घट भट-ठट भंजंत जाइ । वंश-स्थले लागि दवाग्नि न्याइँ ।
एको रथ महाहवे रस-विसट्ट । परिभ्रमै न्याइँ वलेँ भयावर्त्त ।
सो नहिँ भट जासु न मलेँउ मान । सो नहिँ ध्वज जासु न लागु बाण ।....
सो नहिँ तुरंगँ जसु गोँड न टूट । सो नहिँ रथ जसु न रथंग फूट ।
सो नहिँ भट जासु न छिन्नु गत्त । सो नहिँ विमान जेहि शर न प्राप्त ।
घत्ता। भगडंत बल मारुति हिंडइ जहँहि जहँ ।
संग्राम-महिहिँ रुंड निरंतर तहँहि तहँ ॥१॥
जो जितव न सक्केउ वर-भटेहिँ । वेष्ठाविउ मारुति गजघटेहिँ ।
गिरि-शिखर-गहिर-कुंभस्थलेहिँ । अनवरत-गलित-गंडस्थलेहिँ ।
षट्पद-झंकार-मनोहरेहिँ । घंटाटंकार-भयंकरेहिँ ।
तांडविय कर्ण ऊर्ध्व-करेहिँ । मुक्त-आंकुशेहिँ मद-निर्भरेहिँ ।...

---

[1] ठहरै (बंगला) [2] रहै (गुजराती)

रण-रसिएँहि वेहाविद्धएहि। पेल्लिउ पडिवक्खु कइद्धएहि।
णासइ विहडप्फउ गलिय-खग्गु। चूरंतु परप्फरु चलण-मग्गु।

(घ) कुंभकर्णका युद्ध

भज्जंतउ पेक्खेंवि णियय-सेण्णु। रावणु जयकारेवि कुंभयण्णु।
धाइउ भय-भीसणु भीम-काउ। णं राम-बलहों खय-कालु आउ।
परिसक्कइ रण-भूमिहि ण माइ। गिरि-मंदरु-थाणहों चलिउ णाइ।
जउ जउ जि समच्छरु देइ दिट्ठि। तउ तउ जें पडइ णं पलय-विट्ठि।
कोंवि बाएँ कोवि भिउडिएँ पणट्ठु। कोंवि ठिउ अवठंभेवि धरणि विट्ठु।
कोंवि कहवि कडच्छए णरु णिलुक्कु। कोंवि दूरहोज्जें पाणेहि मुक्कु।
घत्ता। सुग्गीव वले गरुअउ हुअउ हल्लोहलउ।
णं अंगरे[1] हत्थि पइट्ठुव राउलउ ॥३॥...
इत्थंतरे किक्किंधाहिवेण। पडिबोहणत्थु आमुक्क तेण।
उम्मोहिउ उट्ठिउ वलु तुरंतु। कहि कुंभयण्णु वलु वलु भणंतु।
घत्ता। सयडम्मुहु पुणुवि पडीवउ धावियउ।
णं उयहि-जलु महि रेल्लंतु पराइयउ ॥५॥
पर-बलु णियेवि समुत्थरंतु। लंकाहिवेण थरहर-थरंतु।
करि कड्ढिउ णिम्मल चंदहासु। उग्गामिउ णइ दिणयर-सहासु।
रिउ-साहणें भिडइ ण भिडइ जावें। सोंडीर-वीर-णर तिण्णि तावें।
इंदइ घणवाहण वज्जणक्क। सिर णमिय कियंजलि-हत्थ थक्क।
"अम्हेंहि जीवंतेंहि किंकरेहिँ। तुहु अप्पणु पहरहि किं करेहिँ"।
सामिउ सम्माणेवि बद्ध-कोह। तिण्णेंवि समरंगणें भिडिउ जोह।
चंदोयर-तणयहु वज्जणक्कु। घणवाहणु भामंडलहों थक्कु।
इंदइ सुग्गीवहों समुहु चलिउ। णं मेरु महोयहि पहहुँ चलिउ।
घत्ता। णरु णरवरहों तुरयहों तुरय समावडिउ।
रहु रहवरहों गयहों महग्गउ आविडिउ ॥६॥

---

[1] अग्गहरे

रणरसिकेँहि वेधा-विद्धएहि। पेल्लेँउ प्रतिपक्ष कपिध्वजेहि।
नाशइ बिहडफ्फल गलित-खड्ग। चूरंत, परस्पर-चरण-मार्ग।

(घ) कुंभकर्णका युद्ध

भज्जंतउ पेखिय निजय-सैन्य। रावण जयकारहु कुंभकर्ण।
धायउ भयभीषण भीमकाय। जनु रामवलह क्षयकाल आय।
परि-सकै न रण-भूमिहि अमाइ। गिरि-मंदर-थानहु चलेउ न्याइँ।
जेँहि जेहि समक्षहु देइ दृष्टि। सोइ सोइ पडै जनु प्रलय-वृष्टि।
कोइ बाचेँ कोइ भृकुटिहिँ प्रणष्ट। कोइ ठिउ अवथंभेहि धराविष्ट।
कोँइ कोइ कटाक्षहिँ नरउ लूकु। कोइ दूरहीँहि प्राणेहिँ मोचु।
घत्ता। सुग्रीवहु गरुओ हुयो हल्लाहलउ।
जनु अग्रहारे पइठउ हस्ति राजुलउ॥३॥..
एहि अन्तर किष्किधाधिपेहिँ। प्रतिबोधनार्थं आमोचु तेहिँ।
उन्मोहेँउ उठेँऊ बल तुरंत। कहँ कुम्भकर्ण-बलबल भनंत।
घत्ता। शकट-मुँह पुनि हि प्रतीपउ धावियउ।
जनु उदधि-जल मही रेल्लंत[1] परायउ॥५॥
परबल निजेँहु समुत्थरंत। लंकाधिपेहिँ थर-थर-थरंत।
करेँ काढेँउ निर्मल चंद्रहास। उग्गियउ जनू दिनकर-सहस्र।
रिपु-सेना भिडइ न भिडइ याव। शौंडीर-वीर-नर तीन ताव।
इंद्रजि-घनवाहन-वज्रनाक। शिर नमिय कृतांजलि-हस्त थाक।
"हम सब जीवंतेहिँ किंकरेहिँ। तुहु अपने प्रहरै कि करेहि।"
स्वामिय सम्मानेहु वद्ध-क्रोध। तीनौ समरंगणेँ भिडेँउ योध।
चंद्रोदर-तनयहु वज्रनाक। घनवाहन भामंडलहुँ थाक।
इन्द्रजि सुग्रीवहि समुह चलिउ। जनु मेरु महोदधि-मथन चलिउ।
घत्ता। नर नरवरहुँ तुरयहु तुरय समापडिऊ।
रथ रथवरहुँ गजहुँ महागज आभिडिऊ॥६॥

---

[1] रेल-पेल

(ङ) **सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध—**

किक्किंध-णराहिउ धरिउ जाव। घण-वाहण भामंडलहें ताव।
अब्भिट्ट परोप्परु जुज्झ घोर। सरि सोत्त स-उत्तरें पहर थोरु।
छिज्जंत महग्गय गरुअ-गत्तु। णिवडंत समुद्धुय-धवल-छत्तु।
लोट्टंत महारह-हय-रहंगु। घुम्मंत-पडंत महातुरंगु।
तुट्टंत कवड तुट्टंत खग्गु। णच्चंत कवंधउ असि-कर-ग्गु।
आयामेंवि रणें रोसिय-मणेण। अग्गेउ मुक्कु घणवाहणेण।
आमेल्लिउ आयउ धगधगंतु। अंगार वरिसु णहें दक्खवंतु।
वारुणु विमुक्कु भामंडलेण। णं गिरिहि वज्जु आखंडलेण।
उल्हाविउ जलणु जलेण जं जें। सरु णागवासु पम्मुक्क तं जें।

घत्ता। पुप्फवइ-सुउ दीहर-पवर-महासरेहिँ।
परिवेंढियउ मलयिंदु'व विसहरेहि ॥६॥

—रामायण ६५।१-६

तार मारिच्च साहण सुसेणाहिवा। सुअपचंडालि संमुच्छ दहिमुह-णिवा।

घत्ता। अण्णेकहु मि भवणेक्केक्क पहाणहु।
किं सक्कियउ णाउँ गणेप्पिणु दाणहु ॥८॥

केणवि कोवि दोच्छिउ "मरु सवडम्मुहु थाहि थाहि।
केणवि कोवि वुत्तु "समरंगणें रहवरु वाहि वाहि ॥"
केणवि कोवि महासर-जालें। छाइउ जिह सुक्कालु दुकालें।
केणवि कोवि भिण्णु वच्छत्थलें। पडिउ घुलंतु णवरि महि-मंडलें।
केणवि कहोंवि सरासणु ताडिउ। णं हेट्ठामुहु हिअव उपाडिउ।
केणवि कहोंवि कवउ णिव्वाट्टिउ। वलि जिह दस-दिसेहि आवट्टिउ।
केणवि कहोंवि महद्धउ पाडिउ। णं मउ माणु मडप्फरु साडिउ।
केणवि दंति-दंतु उप्पाडिउ। णावइ जसु अप्पणउ भमाडिउ।
केणवि झंप दिण्णु रिउ-रहवरें। गरुडें जिह भुयंग-भुअणंतरें।
केणवि कहिंवि सीसु अच्छोडिउ। णं अवराह-रुक्खु-फल तोडिउ।

(ङ) **सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध**—

किष्किंध-नराधिप धरेँउ याव। घनवाहण भामंडलहँ ताव।
आभिडेँउ परस्पर युद्ध-घोर। शरस्रोत स्व-उत्तरेँ प्रहर थोर।
छिद्यंत मंहागज गरुअ-गात्र। निपतंत समुद्धत-धवल-छत्र।
लोटंत महारथ-हय-रथांग। घूमंत पडंत महातुरंग।
टूटंत कवच टूटंत खड्ग। नाचंत कबंधउ असि-कराग्र।
आयामेहु रणेँ रोषितमनेहिँ। आग्नेय मोचु घनवाहनेहिँ।
आमेलेँउ आतप धगधगंत। अंगार वरिसु नभेँ दग्धवंत।
वारुण विमोचु भामंडलेहिँ। जनु गिरिहिँ वज्र आखंडलेहिँ।
बूझायउ ज्वलन जलेहिँ जो हि। शर नागफास प्रम्मोचु सो हि।

घत्ता। पुष्पवती-सुत दीरघ-प्रवर-महाशरेहिँ।
परिवेठेँउ मलयद्रुम'व विषधरेहिँ ॥६॥

—रामायण ६५।१-६

तार मारीच साधन सुसेनाधिपा। सुत प्रचंडालि संमूर्छ दधिमुखनृपा।

घत्ता। अनेकहुहि भवने एक एक प्रधानहँ।
को सक्किय नाम गनाइव राजहँ।

केहु सँग कोउ दर्शिउ "मर शकटमुँह स्थाहि स्थाहि।
केहु सँग कोउ कह "समरंगणे रथवर वाहि वाहि।"
केहु कहँ कोउ महाशर जालेँ। छापेउ जिमि सुक्काल दुकालेँ।
केहु कहँ कोउ भिन्दु बक्षस्थले। पडेँउ घुरंत केँवल महिमंडले।
केहु कहँ कोउ शरासन ताडेँउ। जनु हेठामुँह हृदय उपाडेँउ।
केहु कहँ कोउ कवच निर्वट्टिउ। वलि जिमि दशदिशेहिँ आवट्टिउ।
केहु कहँ कोउ महाध्वज पातेँउ। जनु मृदु मान'हँकारा साटेँउ।
कोऊ दंति-दंत उप्पाडेउ। मानोँ यश आपनो भ्रमाडेँउ।
कोउ झंप दियेँउ रिपु-रथवरेँ। गरुडेँ जिमि भुजंग भुवनंतरे।
कोऊ काहुहि शीश आच्छोडिउ। जनु अपराध वृक्ष फल तोडिउ।

घत्ता। केणवि समरे दिण्णु विबक्खहो हिअउ थिरु।
जीविउ जमहीं गुरु पहरहों सामियहें सरु ॥६॥

—रामायण ६६।६

(च) रावणका शरीर

दसहिँ कंठेहि दसजें कंठाइँ दस भालहिँ तिलय दस।
दस सिरेहिँ दस मउड पज्जलिय।
दहहिँमि कुंडल-ज्जुएहि कण्ण-जुयल-सुकउल मुहलिय।
फुरिउ रयण-संघाउ दसाणण रोसुव। अह थिउ स-तारायणु वहल पऊसुंव।
पढम वयणु खय-सूर समप्पहु। सिंदुरारुणु सुरहंमि दूसहु।
वीयउ वयणु धवल-धवलच्छउ। पुण्णिम-यंद-बिंब-सारिच्छउ।
तइयउ वयणु भुयण-भय-गारउ। अंगारारुणु मुक्कंगारउ।
वयणु चउत्थउ बुह-मुह भासुरु। पंचमएण सइजें णं सुर-गुरु।
छट्ठउ सुक्क सुक्क-संकासउ। दाणव-वक्खिउ सुर-संतासउ।
सत्तमु कसणु सणिच्छरु भीसणु। दंतुरु वियडु दाढु दुद्दरिसणु।
अट्ठमु राहु-वयणु विकरालउ। णवमउ धूमकेउ धूमालउ।
दसमउ वयणु दसाणणकेरउ। सव्व-जणहों भय-दुक्ख-जणेरउ।
घत्ता। बहु-रूवउ बहु-सिरु बहु-वयणु, बहु-विह-कवोलु बहु-विह-णयणु।
बहु-कंठउ बहु-करु वि बहु-पउ, णं णट्ट-पुरिसु रसभाव गउ ॥८॥
ते णिएप्पिणु णिसियरिंदस्स सीसइ णयणइ मुहइँ पहरणाइँ रयणीयर भीसणु।
आहरणइ वच्छयलु राहवेण पुच्छिउ विहीसणु।
"किं तिकूड सेलोवरि दीसइ णव-घणु। देव देव! ऍहु रहें थिउ रावण।
किं गिरि-सिहरइँ, णहि दीसराइँ। णं णं आयइँ दससिर-सिराइँ।
किं पलय-दिवायर-मंडलाइँ। णं णं आयइँ मणि-कुंडलाइँ।
किं कुवलयाइँ माणस-सरहों। णं णं णयणइँ लंकेसरहों।
किं गिरि-कंदरइँ भयाणणाइ। णं णं दह-वयणें दसाणणाइँ।
किं सुर-चावइ चाउत्तिमाइ। णं णं कंठाहरणइँ इमाइँ।
किं तारा-यणइँ तणुज्जलाइँ। णं णं धवलइँ मुत्ताहलाइँ।

घत्ता। काहुहिँ समरे दीन विपक्षहँ हृदय थिर।
जीवित जमहु पुर प्रहरहु स्वामियहँ शिर ॥६॥

—रामायण ७४।६

(च) रावणका शरीर

दसहिँ कंठे दसहु कंठा दस भालहिँ तिलक दस।
दस सिरेहिँ दस मुकुट प्रज्वलिय।
दसहि'पि कुंडल-युगेहिँ कर्ण-युगल-शुक-कुल-मुखरिय।
स्फुरे'उ रतनसंघात दशानन रोषि'व।
अथ थिउ स-तारागण बहल प्रदोषि'व।
प्रथम वदन क्षय-शूर समपंहु। सिंदुर-अरुण सुरथउ दुस्सहु।
दूसर वदन धवल-धवलाक्षउ। पूणिम-चंद्रविंब-सारिक्खउ।
तीसर वदन भुवन-भयकारउ। अंगारारुण मोचु अँगारउ।
वदन चतुर्थउ बुध-मुख-भासुर। पंचम स्वयं एव जनु सुरगुरु।
छट्ठउ शुक्ल-शुक्र-संकाशक। दानव-पक्षिक सुर-संत्रासक।
सत्तम कृष्ण शनिश्चर भीषण। दंतुर विकट-दाढ दुर्दर्शन।
अष्टम राहु-वदन विकरालउ। नवमउ धूमकेतु धूमालउ।
दसमउ वदन दसाननकेरउ। सर्वजनन्ह भय-दुःख-जनेरउ।
घत्ता। बहु-रूपउ बहु-शिर बहु-वदन, बहु-विध कपोल बहु-विध नयन।
बहु-कंठउ बहु-करहु बहु-पद, जनु नट्ट-पुरुष रसभाव गयउ ॥८॥
सो निजेही निश्चरेन्द्र कर सीसैं नयनैं मुखैं प्रहरणें रजनीचर भीषण।
आभरणैं वक्षतल राघवेहिँ पूछे'उ विभीषण॥
"का त्रिकूट शैलोपरि दीसै नवघन?" "देव देव! एहु रथें हौ रावण।"
"का गिरि-शिखरा नहि दीसराइँ?" "ना ना अहँ दससिर-सिराइँ।"
"का प्रलय-दिवाकर-मंडलाइँ। ?" "नाना अहैं मणि-कुंडलाइँ।"
"का कुवलयाइँ मानससरहू?" "ना ना दशवदने दस आननहू।"
"का सुर-चापा चापोत्तमहू?" "नाना कंठाभरणा एहू।"
"का तारा-गणइँ तनुज्वलाइँ?" "ना ना धवलइँ मुक्ता-फलाइँ।"

किं कसणु विहीसण गंयण-यलु । णं णं लंकाहिव वच्छ-यलु ।
किं दिसवे यंड-सोंड-पयरो । णं णं दहकंधर-कर-णियरो ।
घत्ता । तं वयणु सुणेप्पिणु लक्खणेण, लोयणइँ विरिल्लेँवि तक्खणेण ।
अवलोइउ रावणु मच्छरेण, णं रासि-गयेण सणिच्छरेण ॥९॥

(छ) लक्ष्मण-रावण युद्ध—

करेँ केरप्पिणु सायरावत्तु थिउ लक्खणु ।
गरुड-रहे गारुडत्थु गारुड-मद्धउ ।
वलु वज्जावत्तु धरु सीह चिंधु वर-सीह-संदणु ।
गयवि हत्थु गय-रह-वरु पमय महद्धउ ।
विप्फुरंतु किक्किधा-हिउ सण्णद्धउ ।.......................
घत्ता । सण्णहेँवि पासु ढुक्कइ वलहोँ, अक्खोहणि वीससयइँ वलहोँ ।
विरएवि वूहु संचल्लियइँ, णं उयहि-मुहइ उत्थाल्लियइ ॥१०॥

घुट्टु कलयलु दिण्ण रणभेरि चिंधाइ समुब्भियइँ,
लइय कवय-किय-हेइ-संगहे ।
गय-घडउ पचोइयउ मुक्क-तुरय-वाहिय-महारहा,
राम-सेण्णु रण-रहसियउ ।
कहिमि ण माइउ जगु गिलेवि,
णं परवलु गिलइ पधाइयउ ।
अब्भिट्टु जुज्झु रोसिय-मणाहुँ । रयणीयर-वाणर-लंछणाहुँ ।
उसरिय संख-सय-संघडाहुँ । रण-वहु फेडाविय मुह-वडाहु ।
उद्धंकुस-धाइय गय-घडाहुँ । खर-पवणंँदोलिय धय-वडाहुँ ।
कंपाविय सयल-वसुंधराहुँ । रोसाविय आसीविसहराहुँ ।
मेल्लाविय णयणहु वासणाहुँ । संजलिय दिसामुहु इंधणाहुँ ।
जय-लच्छि-वहुअ-गेण्हण-मणाहु । जूराविय सुर-कामिणि-जणाहु ।
उग्गामिय भामिय असि-वराहु । णिव्वट्टिय लोट्टिय हय-वराहु ।
णिद्दलिय कुंभ कुंभत्थलाहु । उच्छलिय धवल-मुत्ताहलाहु ।

"का कृष्ण विभीषण गगन-तला ?" "ना ना लंकाधिप वक्षतला।"

"का दीसइ चंड शौंड प्रकरो ?" "ना ना दसकंधर कर-निकरो।"

घत्ता। सो वचन सुनीयउ लक्ष्मणेहिँ, लोचनहिँ विरंक्तेँउ तत्क्षणेहिँ।

अवलोकेँउ रावण मत्सरेहिँ, जनु राशिगतेहिँ शनिश्चरेहिँ ॥९॥

(छ) लक्ष्मण-रावण युद्ध—

करे करवाल सागरावर्त्त ठाढो लक्ष्मणु।

गरुड-रथै गरुडास्त्र गारुडा-मूर्धउ।

वल वज्रावर्त्त धरु सिंहचिन्ह वरसिंह-स्यंदनु।

गजहि हस्त गज-रथ-वर प्रमद महाध्वज।

विस्फुरंत किष्किधाधिप सन्नद्धउ।...

घत्ता। सन्नाहि'व पार्श्व ढूकै वलहु, अक्षोहिणि वीस-सौ वलहु।

विरचि व्यूह संचल्लिय, जनु उदधिमुखइ उच्छल्लिय ॥१०॥

घुष्टु कलकल दीनु रणभेरि चिन्हैँ उठियाइँ,

लेइ कवच किय-हेति-संग्रहा।

गज-घटउ प्रप्ररियउ मोचु तुरग वाहेँउ महारथा,

रामसैन्य रण-रहसियऊ।

कहिँहु न अमायउ जगेँ निगलि,

जनु परवल निगलै धाइयऊ ॥

आरब्धु युद्ध रोषितमनाहँ। रजनीचर-वानर-लांछनाहँ।

अपसरिय शंख-शत-संघटाहँ। रण-वधु फेँराविय मुख-पटाह।

ऊर्ध्वंकुश धाइय गजघटाह। खर-पवनांदोलिय ध्वजपटाह।

कंपाविय सकल वसुंधराह। रोषाविय आशीविषधराह।

मेलाविय नयनहुँ वासनाह। संज्वलिय दिशामुख इंधनाह।

जय लक्ष्मि-वधुग्र-ग्रहणन-मनाह। झूराविय सुरकामिनि-जनाह।

उट्ठाविय भ्रामिय असिवराह। नीवत्तिय लोट्टिय हयवराह।

निर्दलिय कुंभ कुंभस्थलाह। उच्छलिय धवल-मुक्ताफलाह।

घत्ता । भड-थड गय-घडेहिँ भिडंतएहिँ, रह-तुरयहिँ तुरिउ भिडंतएहिँ ।
रयणियरु समुट्ठिउ झत्तिकिह, णिय- कुलु मइलंतु दुपुत्तु जिह ॥११॥
—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

जाउ सुट्ठु समरंगणु दूसंचारउँ । तहिँ मि केवि पहरंति स-साहुक्कारउँ ।
केहिमि करि-कुंभइ परमट्ठइ । णं संगम-सिरिहें थण वट्टइँ ।...
केहिमि लइयइ पर-वल-छत्तइँ । णं जयसिरि-लीला-सयवत्तइँ ।
केहिमि चक्खु पसरु अलहंतेहिँ । पहरिउ वाला लुंचिकरंतेहिँ ।
केण' वि खग्ग-लट्ठि-परियट्ठिय । रण-रक्खसहों जीँह णं कड्ढिय ।
केण'वि करि-कुंभत्थलु पाडिउ । णं रण-भवण-वारु उग्घाडिउ ।
कत्थइ सुसुमूरिय असि-धारेहिँ । मोत्तिय-दंतुरु हसियउ अहरेहिँ ।
कत्थइ रुहिर-पवाहिणि धावइ । जाउ महाहउ-पाउसु णावइ ।
घत्ता । सोणिय-जल-पहरणग्गिरेहिँव, सुहंतराल णह-यल-गएहिँ ।
पज्जलइ बलइ धूमाइ रयणु, णं जुग-खय-काले कालवयणु ॥१२॥
—रामायण ७४।१२

हे णरणाह ! णेह अच्छरियउ । पर-बलु पेक्खु केम जज्जरियउ ।
रुंड-णिरंतरु सोणिय चच्चिउ । णाणा विह-विहंग-परिअंचिउ ।
कोवि पयंड-वीरु बलवंतउ । भमइ कियंतु वरिउ जगडंतउ ।
गय-घड भड-थड सुहड वहंतउ । करि-सिर कमल-संडु तोडंतउ ।
रोक्कइ कोक्कइ ढुक्कइ थक्कइ । णं खय-कालु समरें परिसक्कइ ।
—रामायण २५।१८

घत्ता । तेहएँ समरें सूरहेँमि भज्जंति मइ ।
गय-गिरिवरेँहि ताव समुट्ठिय रुहिर-णइ ॥२॥
गय-वर-गंडसेल-सिहरग्ग-विणिग्गय णइ तुरंतिया ।
उद्धुव धवल छत्त-डिंडीरु समुव्वहंतिया ।
पवरोज्झर-सोणिय-जल-पवाहु । करि-मयर-तुरंगम-णक्क-गाहु ।
चक्कोहर संदण संसुमार । करवाल मच्छ परिहच्छ चार ।

घत्ता । भटठट-गजघटेहिँ भिडंतएहि, रथ-तुरंगहिँ तुरिय भिडंतएहिँ ।
रजनिचर समुट्ठेउ झट्ट किमि, निजकुल मैलंत दु-पुत्र जिमि ॥११॥
—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

जाव सुष्टु समरंगण दुःसंचारा । तहँहि कोइ प्रहरंति स-साधुक्कारा ।
कोऊहि करिकुंभैं परिमीँजैं । जनु संग्राम-श्री स्तन-वट्टै ।
कोऊ लेइय पार-बल छत्रहिँ । जनु जयश्री-लीला शतपत्रहिँ ।
कोऊ चक्षु-प्रसर अलभंता । प्रहरेउ वाला-लुंचि करंता ।
कोऊ खड्ग यष्टि परि-काढिय । रण-राक्षसहँ जीभ जनु काढिय ।
कोऊ करिकुम्भस्थल पाटेँउ । जनु रण-भवन-द्वार उग्घाटेउ ।
कहिं कहिं सुंठि काटिय असिधारेहिँ । मौक्तिक-दंतुरु हसियउ अधरेहिँ ।
कहिँ कहिँ रुधिर प्रवाहिणि धावै । याव महाहव-पावस आवै ।
घत्ता । शोणित जल-प्रहरणाग्रेहि इव, सुखंतराल नभतल गतेहिँ ।
प्रज्वलै बलै धूमै रतन, जनु युगक्षयकाले कालवदन ॥१२॥
—रामायण

हे नरनाथ ! नेह आश्चर्यउ । पर-बल पेखु केम् जर्जरियउ ।
रुंड निरंतर शोणित-र्वचित । नानाविध विहंग परि-अंचित ।
कोइ प्रचंड वीर-वलवंता । भ्रमैं कृतांत-वरेँउ झगडंता ।
गज-घट भट-ठट सुभट वहंता । करि-शिर-कमलषंड-तोडंता ।
रोकैं कोकैं ढूकैं थाकैं । जनु क्षयकाल समरेँ परिसक्कैं ।............
—रामायण २५।१८

घत्ता । तेही समरे सूरहुँहि भज्जंत ।
गज-गिरिवरेहिँ तव अमुट्ठिय रुधिरनदी ॥२॥
गजवर-गंड शैल शिखराग्र-विनिर्गत नदी तुरंतिया ।
उद्धुत-धवल-छत्र-डिंडीर-समुद्-वहंतिया ।
प्रवरोज्झर-शोणित-जलप्रवाह । करि, मकर, तुरंगम नाक-ग्राह ।
चक्कोधर स्यंदन शिशुमार । करवाल, मच्छ-परिहस्त चार ।

मत्तेभ-कुंभ-भीसण-सिलोह । सिय-चमर-वलाया-पंति सोह ।
तंण्णइ[1] तरेवि केंवि वावरंति । वुड्डंति केवि केंवि उव्वरंति ।
केंवि रय-धूसर केवि रुहिर-लित्त । केंवि-हत्थ हडएँ-विहुणे विधित्त ।
केंवि लग्ग पडीवादंत-मुसलें । णं थत्तु विलासिणि-सिहिण-जुअलें ।
केंवि णियय विमाणहों झंप देंति । णहें णिवडेंवि वइरिहि सिरइ लेंति ।
तहिँ तेहए रणें सोणिय-जलेण । रउ सोसिउ सज्जणु जिह खलेण ।

—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जं राम-सेण्णु णिम्मल-जलेण । संजीवेंउ संजीवणि-बलेण ।
तं वीरेहि वीर-रसाहिएहि । वग्गंतेंहि पुलय-पसाहिएहि ।
वज्जंतेंहि पडहेंहि मद्दलेहि । गिज्जंतेंहि धवलेंहि मंगलेहि ।
णच्चंतेहि खुज्जय-वावणेहि । जज्जरिय पढंते बंभणेहि ।
गायंतेंहि अहिणव-गायणेहि । वायंतेंहि वीणा-वायणेहि ।

—रामायण ६९।२०

तो खर-णहर-पहर-धुव-केसर केसरि-जुत्त-संदणो ।
धवल-महद्धउ समुद्धायउ दसरह-जेट्ठ-णंदणो ।।
जस-धवल-धूरि-धूसरिय-अंगु । धवलंवरु धवला वर-तुरंगु ।
धवलाणणु धवल-पलंब-बाहु । धवलामल-कोमल-कमल-णाहु ।
धवलउ जें सहावें धवल-वंसु । धवलच्छि-मरालिहें राय-हंसु ।
धवलाहँ लवलु धवलायवत्तु । रहु-णंदणु दणु-पहरंतु पत्तु ।

—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके हाथों रावणकी मृत्यु

तो गहिय चंद-हासाउहेण । हक्कारिउ लक्खणु दह-मुहेण ।
लइ पहरु पहरु किं करहि खेउ । तुहु एक्कें चक्कें सावलेउ ।

---

[1] वं नइ

मत्तेभ-कुंभ-भीषण-शिलोघ। सितचमर बलाकापंक्ति सोह।
सो नदी तरन कोउ व्यापरंति। बूडंति कोइ कोंइ ऊवरंति।
कोंइ रजधूसर कोंइ रुधिर-लिप्त। कोंउ हाथहरे विहुणेउ-घित्त।
कोंइ लाग प्रतीपा दँत-मुसले। जनु धूर्त्त बिलासिनि-स्तन-युगले।
कोंइ निजह विमानहँ झंप देंति। नभें निपतिय वैरिहि शिरहिँ लेंति।
तहँ तेहि रणे शोणित-जलेहिँ। रज सोखेंउ सज्जन जिमि खलेहिँ।

—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जो राम-सैन्य निर्मल-जलेहिँ। संजीवेंउ संजीवनि-बलेहिँ।
सो वीरेहिँ वीररसाधिकेहि। बलंतेंहि पुलक प्रसाधितेहिँ।
वाजंते पटहेंहिँ माँदलेहिँ। गीयंतेंहि धवलेंहिँ मंगलेहिँ।
नाचंते कुब्जक-वामनेहिँ। चर्चरी पढंतेहिँ ब्राह्मणेहिँ।
गायंते अभिनव-गायनेहिँ। वाजंतेहिँ वीणावादनेहिँ।

—रामायण ६९।२०

तो खर-नखर-प्रहर धुत केसर केसरियुक्त-स्यंदनेहिँ।
धवल-महाध्वज फहरायेउ दशरथ-ज्येष्ठ-नंदनेहिँ।
यश-धवल-धूरि-धूसरित अंग। धवलावर धवला वरतुरंग।
धवलानन धवल-प्रलंब-बाहु। धवलामल-कोमल-कमल-नाभ।
धवलहुहि स्वभावे धवल-वंश। धवलाक्ष-मरालिहें राजहंस।
धवला लवण्य धवलातपत्र। रघुनंदन दनु-प्रहरंत प्रप्त।

—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके हाथों रावणकी मृत्यु

तो गहिय चंद्रहासायुधेहिँ। हक्कारेउ[१] लक्ष्मण दशमुखेहिँ।
ले प्रहरु प्रहरु का करहि क्षेप। तुह एको चक्को सावलेप।

---

[१] पुकारेउ (मैथिली, भोजपुरी, मगही)

महु पइ पुणु आयं कवणु गण्णु। किं सीह(हि) होइ सहाउ अण्णु।
तं णिसुणेंवि विप्फुरियाहरेण। मेल्लिउ रहंगु लच्छीहरेण।
घत्ता। उअयइरिहें णं अत्थइरि गउ, सूर-बिंबु कर-मंडियउ।
सइँ मुएँहि हणंतहों दहमुहहों, मंड-उरत्थलु खंडिअउ ॥२२॥
—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम-)सेनाका लंकामें प्रवेश

पइसंतें बल-णारायणेण। ववचालिय णायरिया-गणेण।
एँहु सुंदरि! सोक्खुप्पायणहो। अहिरामु रामु रामायणहो।
एँहु लक्खणु लक्खण-लक्ख-धरु। जो रावण-रावण-पलयकरु।
एँहु भामंडलु भाभूसभुउ। वइदेहि-सहोयरु जणय-सुउ।
एँहु किक्किंधाहिउ दुद्दरिसु। तारा-वइ तारावइ-सरिसु।
एँहु अंगउ जेण मणोहरिहे। केसग्गहु किउ मंदोयरिहे।
एँहु सुर-वर-करि-कर-पवर-भुउ। णंदण-वण-मद्दण पवण-सुउ।
—रामायण ७८।६

(२) विभीषणद्वारा लंकामें रामका स्वागत—

दहि-दोव-जल-क्खय-गहिअ-करा। गय तहिँ जहि हलहर-चक्कहरा।
आसीसेंहि सेसहि पणवणेहिँ। जय णंद बद्ध बद्धावणेहिँ।
उच्छाहेंहिँ धवलेंहिँ मंगलेहिँ। पडु-पडहहिँ संखेंहिँ मंदलेहिँ।
कइ-कहएँहिँ णउ-णट्टावएहिँ। गायण-वायण-फंफावएहिँ।
णर-णायर-वंभण-घोसणेहि। अवरेंहिँमि चित्त-परिऊसणेहिँ।
—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत—

रामागमणें भरहु णीसरियउ। हय-गय-रह-णरिंद-परियरिउ।
अण्णे तहि सत्तुहणु स-वाहणु। स-रह सु-सालंकारु सु-साहणु।

मम तैं पुनि आहि कवन गण्य। का सिंहहू होइ स्वभाव अन्य।
सो सुनिया विस्फुरिताधरेहिँ। मेलेँउ रथांग लक्ष्मीधरेहिँ।
घत्ता। उदयगिरिहिँ जनु अस्तगिरि गउ, सूरबिंब-कर-मंडियऊ।
स्वयं मृतहि हनंतहु दशमुखहु, मंडउरस्थल खंडियऊ ॥२२॥

—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम) सेनाका लंकामें प्रवेश

पइसंते बल-नारायणेहि। व्यवचालिय नागरिका-ननेहि।
ऐँहु सुंदरि ! सौख्य-उपायनहू। अभिराम राम रामायणहू।
ऐँहु लक्ष्मण लक्षण-लक्ष-धरु। जो रावण रावण प्रलय-करू।
ऐँहु भामंडल भाभूषभुतू। बैदेहि-सहोदर जनकसुतू।
ऐँहु किष्किधाधिप दुर्दर्शू। तारा-पति तारापति-सरिसू।
ऐँहु अंगद जानें मनोहरिहा। केश-ग्रह किउ मंदोदरिहा।
ऐँहु सुरवर-करि-कर-प्रवर-भुजू। नंदन-वन-मर्दन पवनसुतू।

—रामायण ७८।६

(२) विभीषण द्वारा लंकामें रामका स्वागत—

दहि-दूबि-जल-आक्षत गहिय-करा। गा तहँ जहँ हलधर-चक्रधरा।
आशीषेहिँ शेषहिँ प्रनमनहीँ। "जय नंद वर्ध" बद्धावनहीँ।
ऊछाहेहिँ धवलेहिँ मंगलेहिँ। पटु पटहेँहिँ शंखेँहिँ माँदलेहिँ।
कवि-कथनेहिँ नट-नट्टावनहीँ। गायन-वादन-फप्फावयहीँ।
नर-नागर-ब्राह्मण घोषणहीँ। औरेँहिउ चित्त-परितोषणहीँ।

—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत—

रामागमनें भरत नीसरेँऊ। हय-गज-रथ-नरेन्द्र परिचरेँऊ।
अन्यहु तँह शत्रुहन सवाहना। स-रथ स-स्वालंकार सु-साधना।

छत्त-विमाण-सहासइ धरियइँ। अंवरें रवि-किरणइ अंतरियइँ।
तूरइ हयइँ कोडि-परिमाणेंहिं। दुंदुहि दिण्ण गयणें गिव्वाणेंहिं।
जणवउ णिरवसेसु संखुब्भइ। रह-गय-तुरयहिँ मग्गु ण लब्भइ।
णिवडिय एक्कमेक्क भिडमाणेहिँ। पेल्ला-वेल्लि जाय जंपाणहि।..
घत्ता। केक्कय-सुएण णमंतएण, सिरुरुहु चलणंतरें कियउ।
दीसइ विहि रत्तुप्पलहँ, णीलुप्पल-मज्झे णाइ थिअउ ॥१॥
जिह रामहों तिह णमिउ कुमारहों। अंतेउरहों पहोलिर हारहों।
बलेंण बलुद्धरेण हक्कारेंवि। सरहस णिय-भुय-दंड पसारेंवि।
अवरुंडिउ मायरु बहु-वारउ। मत्थएं चुंविउ पुणु सयवारउ।
सय-वारउ उच्छंगें चडाविउ। सय-वारउ भिच्चहु दरिसाविउ।
सय-वारउ दिण्णउ आसीसउ। वरिस सरिस हरिसंसु विमीसउ॥

—रामायण ७९।१-२

जयजयकारु करंतेंहि लोऍहिँ। मंगल-धवलु-'च्छाह पऊऍहिँ।.
अइहव सेसासीस सहासेहिँ। तारय-णिवह-छडा-विण्णासेहिँ।
दहि-दोबा-दप्पण-जल-कलसेंहिँ। मोत्तिय-रंगावलि णव-कणिसेंहिँ।
बंभण-वयणु'ग्घोसिय वेऍहिँ। कंडिअ जज्जरिव्व' सम-भेएहिँ।
णड-कइ-कहय छत्त-फंफावेंहि। लक्खिय तारारोंहणु विहावेंहि।
भट्टेंहिँ वयणु'च्छाह पढंतेंहि। बायाली स-विसर सुमरंतेंहि।
मल्ल-प्फोडण-सरेंहि विचित्तेंहि। इंदयाल-उप्पाइय चित्तेंहिँ।
मंद फंद वंदेंहिँ कुदंतेंहि। डोम्बेंहि वंसारोंहण करंतेंहि।
घत्ता। पुरें पइसंतहों राहवहों, णट्ट-कला-विण्णाणइ केवलइँ।
दुंदुहि ताडिय सुरेंहि णहों, अच्छरेहिंमि गीयइ मंगलइँ ॥४॥

—रामायण ७९।४

(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

सयल सुरासुर दिण्ण पसंसहों। अज्ज अमंगलु रक्खस-वंसहों।
खल-खुद्दहुँ पिसुणहुँ दुवियड्ढहु। अज्ज मणोरह सुरवर सड्ढहु।

छत्र-विमान-सहस्रै धरिया । अंबरे॔ रविकिरणहॅं अन्तरिया ।
तूर्यं हनै॔(हिं)कोटि परिमाणा । दुंदुभि दिये॔उ गगने॔ गीर्वाणा ।
जनपद निर्विशेष संक्षुब्धा । रथ-गज-तुरगहिँ मार्ग न लब्धा ।
निपते॔उ एकमेक भिडमाना । पेलापेलि जाये॔ झम्पाणा ।
घत्ता । केकयि-सुतहिँ नमंतएहिँ, शिररुह चरणंतरे॔ कियउ ।
दीसै विधि-रक्तोत्पलहॅं, न्याइँ नीलोत्पल माँझे ठियउ ॥१॥
जिमि रामहॅं तिमि नमे॔उ कुमारहु । अंतःपुरहु प्रभोलिर हारहु ।
वले॔हि बलुद्धरेहिँ हक्कारिय । स-रभस निज-भुजदंड पसारिय ।
अबलिंगिउ माता बहु बारा । माथे चुंबे॔उ पुनि शतबारा ।
शतबारउ उत्संगे॔ चढाइउ । शतबारउ भृत्यहॅं दरसाइउ ।
शतबारउ दीने॔उ आशीषा । बरिस-सरिस हरि सं सुबिभीषा ।

—रामायण ७९।१-२

जयजयकार करंतेहिँ लोगे॔हिँ । मंगल-धवल-उछाह प्रयोगे॔हिँ ।
अतिभव शेषाशीष-सहस्रे॔हिँ । तारक-निवह-छटा-विन्यासे॔हिँ ।
दधि-दूर्वा-दर्पण-जलकलशे॔हिँ । मौक्तिक रंगावलि नवमंजरिहिँ ।
ब्राह्मण-वदन-उद्घोषिय वेदहिँ । कंडिक चर्चरि इव समभेदहिँ ।
नट-कवि कथै॔ छत्र फहरावै॔ । लखियत तारारुहण विभावे॔हिँ ।
भाँटे॔हिँ वचन-उछाह पढंते॔हिँ । बैतालिक विसार सुमरंते॔हिँ ।
मल्ल-स्फोटन-शरेहिँ विचित्रे॔हिँ । इंद्रजाल-उत्पादित चित्ते॔हिँ ।
मंद फंद बंदे॔हि कूदंते॔हि । डोमे॔हिँ बंशारोह करंते॔हि ।
घत्ता । पुरि पइसंतहॅं राघवहॅं, नाटयकला विज्ञानइँ के॔वलइँ ।
दुंदुभि ताडित सुरे॔हिँ नभहु, अप्सरेहि उ गाइय मंगलाइँ ।

—रामायण ७९।४

(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

सकल-सुरासुर दीन् प्रशंहि । आज अमंगल राक्षस-वंशहिँ ।
खल-क्षुद्रहु पिशुनहु दुविदग्धहु । आज मनोरथ सुरवर सिद्धहु ।

दुद्दुहीं वज्जहु गज्जइ सायरु। अज्ज तवउ सच्छंदु दिवायरु।
अज्जु मियंकु होउ पहवंतउ। वाउ वाउ जगि अज्जु सइत्तउ।
अज्जु धणउ धणरिद्धि णियच्छउ। अज्जु जलंतु जलणु जगें अच्छउ।
अज्जु जमहों णिव्वहउ जमत्तणु। अज्जु करेउ इंदु इंदत्तणु।
अज्जु धणहु पूरंतु मणोरह। अज्जु णिरग्गलु होंतु महागह।
अज्जु पफुल्लउ फलउ वणासइ। अज्जु गाउ मोक्कलउ सरासइ।
—रामायण ७६।४

जो भुवणा-हिंदोलणा, वइरि-समुद्द-विरोलणा।
सुर-सिंधुर-कर-बंधुरा, परिअड्डिय रणभरधुरा॥
जे थिर थोर पलंब-पईहर। सुहि मंभीस वीस-पहरण-धर।
जे बालत्तणें बालक्कीलइ। पण्णय-मुहेंहि छुहंतउ लीलइ।
जे गंधव्व-वावि-आडंभण। सुर-सुंदरि-वुह-कणय-णिरुंभण।
जे वइ सवण-रिद्धि-विब्भाडण। तिजग-विहूसण गय-मय-साडण।
जे जम-दंड-चंड-उद्दालण। स-वसुंधर कइलासु'च्चालण।
जे सहास-यर मडफर-भंजण। णलकुव्वर[१]-गेहिणि-मण-रंजण।
जे अमरिंद-दप्प-ऊहट्टण। वरुण-णराहिव-वल-दल-वट्टण।
—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका लक्ष्मणके लिये

रोवंतेहें दसरह-णंदणेण। वाहाविउ सव्वे परियणेण।
दुक्खाउरु रोवइ सयलु लोउ। णं चप्पिवि चप्पेंवि भरिउ सोउ।

---

[१] कुबेर (वैश्रवण)-पुत्र

दुंदुभि बाजै गरजै सागर। आज तपउ स्वच्छंद दिवाकर।
आज मृगांक होउ प्रभवंता। वायु वाहु जग आज स्वतंत्रा।
आज वनप धन-ऋद्धि नियच्छउ[1]। आज ज्वलंतु ज्वलन जग अच्छउ।
आज यमहु निर्वहउ यमत्त्वा। आज करेउ इंद्र इंद्रत्वा।
आज धनहु पूरंतु मनोरथ। आज निरर्गल होंतु महाग्रह।
आज प्रफुल्लउ फलउ वनस्पति। आज़ गाउ परिमुक्त सरस्वति।

—रामायण ७६।४

जो भुवना हिंदोलना, वैरिसमुद्र-विरोलना।
सुरसिंधुर करवंधुर, परिआ-ठिउ रणभरधुरा॥
जो थिर थोर प्रलंवपती-हर। सुखि भीडंत बीस-प्रहरणधर।
जो वालत्वेंहि वालक्रीडइ। पन्नग-मुखेहिँ छवंता लीलइ।
जो गंधर्व-वापिया-गाहन। सुर-सुंदरि बुधकनक निरूपण।
जो वैश्रवण-ऋद्धि-विभ्राटन। त्रिजग-विभूषण गज-मद-शाटन।
जो यमदंड-चंड-उद्दारण। स-वसुंधर कैलाश-उच्चारन।
जो सहस्रकर-गर्व-विभंजन। नलकूबर-गेहिनि-मनरंजन।
जो अमरेंद्र-दर्प-अवघट्टन। वरुण-नराधिप-वल-दल-वंटन।

—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका लक्ष्मणके लिए

रोवंते दशरथ-नंदनहीँ। धाहावेउ[1] सर्व परिजनहीँ।
दुःखाकुल रोवै सकल लोक। जनु चप्पे चप्पे भरेँउ शोक।

---

[1] देउ

रोवइ भिच्च-यणु समुद्द-हत्थु । णं कमल-संडु हिम-पवण-घत्थु ।
रोवइ अंतेउरु सोयवुण्णु । णं(स)ज्जमाणु संख-उलु चुण्णु ।
रोवइ अवरा इव रामजणणि । केक्कय दाइय तरु-मूल-खणणि ।
रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय । रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय ।
हा पुत्त पुत्त ! केत्तहि गउसि । किह सत्तिएँ वच्छत्थलें हउसि ।
हा पुत्त ! मरंतु म जो हउसि । दइवेण केण विच्छो इउसि ।
घत्ता । रोवंतिएँ लक्खण-मायरिएँ, सयल लोउ रोवावियउ ।
कारुण्णइ कव्व कहाएँ जिह, कोव ण अंसु मुआवियउ ॥१३॥

—रामायण ६९।१३

(ख) रावण-परिजन-विलाप

घत्ता । ताव दसाणणु आहयणें पडिउ सुणेवि सदोरु[1] सणेउरु ।
धाइउ मंदोयरि-पमुह, धाहावंतु सयलु अंतेउरु ॥४॥
दुम्मणु दुक्ख-महण्णवें घित्तउ । पिउ-विऊय जालोलिय-लित्तउ ।
मोक्कल-केस विसंठुल-गत्तउ । विहडप्फडु णिवडंतु'ढंतउ ।
उद्ध-हत्थु उद्धाहावंतउ । अंसु-जलेण वसुह सिंचंतउ ।
णेउर-हार-डोर गुप्पंतउ । चंदण-छड-कद्दमें खुप्पंतउ ।
पीण-पऊहर-भारक्कंतउ । कज्जल-जल-मल मइलिज्जंतउ ।
णं कोइल-कुलु कहिमि पयट्टउ । णं गणियारि-जूहु विच्छुट्टउ ।
णं कमिलिणि वणु थाणहो चुक्कउ । णं हंसि-उलु महासर मुक्कउ ।
कलुण-सरेण रसंत पधाइउ । णिविसें रण-धरित्ति संपाइउ ।
घत्ता । हय-गय-भड-रुहिरारुणिय, समर-वसुंधर सोह ण पावइ ।
रत्तउ परिहवेवि पंगुरेवि, थिय रावणु अणुमरणें णावइ ॥५॥. . .
तहि दहवयणु दिट्ठु वहुवाहउ । कप्पतरु'व्व पलोट्टिय साहउ ।
रज्ज-गय-ालण-खंभु' च्छिण्णउ । . . . .

---

[1] कटि-आभूषण सुवर्ण डोरी

रोवै भृत्यगण उठाइ हाथ। जनु कमल-षंड हिमपवन-प्राप्त।
रोवै अन्तःपुर शोकपूर्ण। जनु सज्जमान शंख-कुल-चूर्ण।
रोवै औरहिं इव रामजननि। केकयि दापित तरुमूल-खननि।
रोवै सुप्रभ विच्छाय जाय। रोवै सुमित्रा सौमित्र-माय।
हा पुत्र पुत्र! कहँवा गओसि। किमि शक्तिहिं वक्षस्थलें हतोसि।
हा पुत्र! मरंत न जोयोसी। दैवेहिं किमि विच्छोहेओसी।
घत्ता। रोवंती लक्ष्मण-महतारी, सकल लोक रोवावियऊ।
कारुण्यइ काव्यकथाइ जिमि, को ना अश्रु मुचावियऊ ॥१३॥
—रामायण ६९।१३

(ख) रावण-परिजन-विलाप

घत्ता। तव्व दशानन आहवें पडेँउ, सुनिय स-डोर स-नूपुर।
धाइउ मंदोदरिप्रमुखा, धाहावंत सकल-अंतःपुर ॥४॥
दुर्मन दुःख महार्णव क्षिप्तउ। प्रिय-वियोग-ज्वालोलिय-लिप्तउ।
मुक्तहु केश विसंस्थुल[1]-गात्रउ। हुडवडंत निपतंत उद्भ्रांतउ।
ऊर्ध्वहस्त उद्-धाहावंतउ[2]। अश्रुजलेँहिं वसुधा सिंचंतउ।
नूपुर-हार डोर गोप्यंतउ। चंदन-छट-कर्दम मेटंतउ।
पीन-पयोधर-भाराक्रान्तउ। कज्जल-जल-मल मइलिज्जंतउ।
जनु कोकिल-कुल कथा-प्रवृत्तउ। जनु गजियार-यूथ-विच्छुट्टउ।
जनु कमलिनि-वन थानहँ चूकउ। जनु हंसीकुल महसर मुंचउ।
करुण-स्वरेहिं रसंत प्रधायेँउ। निमिषें रणधरित्रि संप्रापेँउ।
घत्ता। हय-गज-भट-रुधिरारुणित, समर-वसुंधर सोइ न पावै।
रक्तउ परिभवेहु अंकुरेँउ, ठिउ रावण अनुमरणें न आवै ॥५॥ . . .
तहँ दशवदन दीस वहुबाँहा। कल्पतरू इव लोटिय शाखा।
राज्यगज-आलान-खंभ[3] च्छिन्नउ। . . . .

---

[1] अस्तव्यस्त [2] धाड मारतीं [3] हाथी बांधने का खंभा

घत्ता। दह दियहाइ स-रत्तियइँ, जं जुज्झंतु ण णिद्दएँ मुत्तउ।
तेण चक्कु सेज्जहि चडेंवि, रण-वहुअएँ समाणु णं सुत्तउ ॥६॥...

घत्ता। णिएँवि अवत्थ दसाणणहों, हा हा सामि भणंतु सवेयणु।
अंतेउरु मुच्छाविहलु, णिवडिउ महिहि झत्ति णिच्चेयणु ॥७॥

(ग) मंदोदरि-विलाप—

तारा-चक्कु'व थाणहों चुक्कउ। 'दुक्खु दुक्खु' मुच्छएँ आमुक्कउ।
लग्गं रुएँव्वएँ तहि मंदोयरि। उव्वसि-रंभ-तिलोतिम-सुंदरि।
चंदवयण-सिरिकं-तणुद्ध(द्द?)रि। कमलाणण-गंधारि'व सुंदरि।
मालइ-चंपय-माल-मणोहरि। जय-सिरि-चंदण-लेह-तणूध(द?)रि।
लच्छि-वसंत-लेह-मिग-लोयण। जोयण-गंध गोरि-गोरोयण।
रयणावलि मयणावलि सुप्पह। काम-लेह काम-लय सइंपह।
सुहय बसंत-तिलय मलयावइ। कुंकुम-लेह-पउम-पउमावइ।
उप्पल-माल-गुणावलि णिरुवम। कित्ति-बुद्धि-जय-लच्छि-मणोरम।

घत्ता। आएहिं सोआरियहि, अट्ठारह हि'व जुवइ-सहासेंहि।
णव-घण-मालाडंवरेंहिं, छाइउ विज्जु[1] जेम चउपासेंहि ॥८॥

रोवइ लंकापुर-परमेसरि। हा रावण! तिहुयण-जण-केसरि।
पइ विणु समर तूरु-कहों वज्जइ। पइ विणु बालकील कहों छज्जइ।
पइ विणु णवगह-एक्कीकरणउ। को परिहेसइ कंठाहरणउ।
पइ विणु को विज्जा आराहइ। पइँ विणु चंद-हासु को साहइ।
को गंधव्व-वापि आडोहइ। कण्णहों छवि-सहासु संखोहइ।
पइ विणु को कुवेरु भंजेसइ। तिजग-विहूसणु कहों वसें होसइ।
पइ विणु को जमु विणिवारेसइ। को कइलासु'द्धरणु करेसइ।
सहस-किरणु णलकुव्वर-सक्कहु। को अरि होसइ ससि-वरुणक्कहु।
को णिहाण रयणइ पालेसइ। को वहुरूविणि विज्जाँ लएँसइ।

---

[1] विच्छु(?)

घत्ता। दश दिवसाइँ स-रात्रियहिँ, जनु युध्यंत न निद्रा प्राप्तउ।
सो चक्र-शय्यहिँ चढिया, रण-वधुयेहिँ सँग सुत्तउ ॥६॥. . .

घत्ता। पेखि अवस्थ दशाननहोँ "हा हा स्वामि" भनंत सवेदन।
अंत:पुर मूर्छाविकल, निपतेउ महिहिँ भट्ट निश्चेतन ॥७॥

(ग) मंदोदरि-विलाप—

तार-चक्र इव थानहिँ चूकउ। दु:ख दु:ख मूर्छहिँ आमुंचउ।
लागु रोइबा तहँ मन्दोदरि। उर्व्वशि-रंभ-तिलोत्तम-सुंदरि।
चंद्रवदनि श्रीकांत तनूदरी। कमलानन **गंधारि** 'व सुंदरी।
मालति-चंपक-माल-मनोहरी। जयश्री - चंदन - लेख तनूदरी।
लक्ष्मि-वसंत-लेख मृगलोचन। योजन-गंधाँ गोरि गोरोचन।
रतनावलि मदनावलि सुप्रभ। कामलेख कमलता स्वयंप्रभ।
सुखद-वसंत-तिलक मलयावति। कुंकुम-लेख पद्म-पद्मावति।
उत्पल-माल-गुणावलि निरुपम। कीर्त्ति बुद्धि जय लक्ष्मि मनोरम।

घत्ता। आऐँहि शोकार्त्तहिँ, अट्ठारहहिँ वरयुवति-सहस्रेँहिँ।
नव घनमालाडंबरेहिँ, छाइ बिज्जु जेम चौपासेँहिँ ॥८॥

रोवै लंकापुर-परमेश्वरि। "हा रावण ! त्रिभुवन-जन-केसरि।
तुम विनु समर-तूर्य कहँ बाजै। तुम विनु बालक्रीड कहँ छाजै।
तुम विनु नवग्रह एकीकरणउ। को पहिरावै कंठाभरणउ।
तुम विनु को विद्या[1] आराधै। तुम विनु चंद्रहास[2] को साधै।
को गंधर्व-वापि आडोभै। कर्णहु छवि-सहस्र संखोभै।
तुम विनु को कुबेर भंजीहै। त्रिजगविभूष केहि वश होइहै।
तुम विनु को यम विनिवारीहै। को कैलाशोद्धरण करीहै।
सहसकिरण-नलकूवर-शक्रहु। को अरि होइहै शशि-वरुणउ कहँ।
को निधान रतनहि पालीहै। को बहुरूपिन विद्या लीहै।

---

[1] मंत्रशक्ति [2] तलवार

घत्ता। सामिय पइँ भविएण विणु, पुप्फविमाणे चडेंवि गुरुभत्तिएँ।
मेरु-सिहरेँ जिण-मंदिरइँ, को मइ णेसइ वंदण-हत्तिए ॥९॥

पुणुवि पुणुवि गयणंगण-गोयरि। कलुणाकंदु करइ मंदोयरि।
णंदण-वणेँ दिज्जंति मणोहरि। सुमरमि पारियाय-तरु-मंजरि।
वुड्डुण वाविहेँ थण-परिवट्टणु। सुमरमि ईसि ईसि अवरुंडणु।
सयण-भवणेँ णहणियर-वियारणु। सुमरमि लीला-पंकय-ताडणु।
पणय-रोस-समए मएँ बंधणु। सुमरिम रसणा-दाम-णिबंधणु।
सुमरमि दिज्जमाण दणु-दावणि। धरणेंदहोँ केरउ चूडामणि।
सुमरमि सामि कुमारहोँ केरउ। वरहिण पेहुण कण्णेँ ऊरउ।
सुमरमि सुर-करि-मय-मलु सामलु। हारेँ ठविज्जमाणु मुत्ताहलु।

घत्ता। सुमरमि सइ सुरयारुहणु, णेउर-वर-झंकार-विलासु।
तोइ महारउ वज्जमउ, हिअउ ण वेदलु होइ णिरासु ॥१०॥

पुणुवि पुणुवि मंदोयरि जंपइ। उट्ठेँ भडारा कित्तिउ सुप्पइ।
जइ'वि णिरारिउ णिद्दएँ भुत्तउ। तो'वि ण सोहहि महियलेँ सुत्तउ।
सामिय ! को अवराहु महारउ। सीयहेँ ढूई गय-सय-वारउ।
तोँहि अकारणिज्जेँ आरुड्ढउ। जेण परिट्ठिउ पाराउड्ढउ।
तहिँ अवसरेँ पिउ पेँक्खेवि आइउ। कावि करेइ अलीअइ-साइउ।
आलिंगेवि ण सव्वायामेँ। कावि णिबंधइ रसणा दामेँ।
कावि वरंसुएण कवि हारेँ। कावि सुअंध-कुसुम-पब्भारेँ।
कवि उरेँ ताडिवि लीला-कमलेँ। पभणइ मउलिएण मुहकमलेँ।

—रामायण ७६।४-११

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर दशरथका विलाप

केणवि कहिउ ताम भरहे सहोँ। गय सोमित्ति राम वण-वासहोँ।
तं णिसुणेवि वयणु धुयवाहउ। पडिउ महीहरो'व्व वज्जाहउ।

घत्ता । स्वामी ! तुमहि भये विनु, पुष्पविमान चढबि गुरु-भक्तिय ।
मेरु शिखरें जिनमंदिरें, को मोहिं लेइसै वंदन हाथिय" ॥९॥

पुनि पुनि गगनंगण-गोचरी । करुणाक्रंदन कर मंदोदरी ।
"नंदनवने दीयंत मनोहरि । सुमिरौं पारियात्र-तरु-मंजरि ।
डुब्बन-वापिहिं स्तन-परिवर्त्तन । सुमिरौं तनिक तनिक आलिंगन ।
शयन-भवनें नख-निकर-विदारन । सुमिरौं लीलापंकज-ताडन ।
प्रणय-रोष-समये मम बंधन । सुमिरौं रसनादाम-निबंधन ।
सुमिरौं दीयमान दनु-दानव । धरणींद्रहु केरहु चूडामणि ।
सुमिरौं स्वामि-कुमारहु केरउ । बर्हिन पिच्छहु कर्णपूरउ ।
सुमिरौं सुर-करि-मदमल श्यामल । हारें ठपीयमान मुक्ताफल ।

घत्ता । सुमिरौं सकृत-सुरत-आरोहण, नूपुर-वरझंकार-विलास ।
तोंउ हमारौ वज्र-मय, हृदय न दो-दल होइ निराश" ॥१०॥

पुनिहु पुनिहु मंदोदरि जल्पै । "उठु भट्टारक केतक सुत्तै ।
यदिउ अवश्यहि निद्रा भुक्तउ । तऊ न सोहै महितल-सुत्तउ ।
स्वामी ! को अपराध हमारउ । सीतहिं दूति गई शतवारउ ।
तहँ अकारणीय आरूढउ । जातें परि-स्थित-पारा-उड्डउ" ।
तेंहि अवसरें प्रिय पेखब धाइउ । कोइ करेइ अलीकै साइउ ।
आलिंगेबि न सर्वायामे । कोइ निबंधै रसना-दामे ।
कोइ वरंशुकेहिं कोइ हारें । कोंइ सुगंध कुसुम-प्राग्भारें ।
कोइ उर ताडबि लीलाकमलेहिं । प्रभनै मुकुलितेहिं मुखकमलेहिं ।

—रामायण ७६।४-११

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर दशरथका विलाप

काहुहिं कहेउ तबहिं दशरथ सहँ । गयें सौमित्रि राम वनवासहँ ।
सो सुनि केहिं वदन कँपवाँहउ । पडेंउ महीधर इव वज्राहतु ।

घत्ता । जं मुच्छाविउ राउ, सयलु'वि जणु मुह-कायरु ।
पलयाणिल-संतत्तु, रसेवि लग्गु णं सायरु ॥६॥
चंदणेण पव्वालिज्जंतउ । चमरुक्खेविहिँ विज्जिज्जंतउ ।
"दुक्खु दुक्खु" आसासिउ राणउँ । जरठ-मियंकु'व थिउ उद्धाणउ ।
अविरल अंसु-जलोल्लिय-णयणउँ । एम पजंपिउ गग्गिर-वयणउ ।
णिवडिय असणि अज्ज आयासहोँ । अज्ज अमंगलु दसरह-वंसहोँ ।
अज्ज जाउँ हउँ सुडिय-वक्खउ । दुहु भायणु पर-मुँहु हउँ वेक्खउ ।
अज्ज णयरु सिय-संपय-मेंल्लिउ । अज्जु रज्जु परचक्कें पेल्लिउ ।
एव पलाउ करोवि सहग्गएँ । राहव-जणणिएँ गउऊ लग्गएँ ।
केस-विसंठुल दिट्ठु रुअंती । अंसु-पवाह धाह मेल्लंती ।
—रामायण २४।६-७

• (ख) लक्ष्मणके लिये रामका विलाप

घत्ता । सोमित्ति-सोय-परिमाणेण, रहुवइ-णंदणु मुच्छिअउ ।
जलु चंदणु चमरुक्खेवएँहिँ, दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छिअउ ॥२॥
हा लक्खण-कुमार ! एक्कोयर[1] । हा भद्दिय उविंद दामोदर ।
हा माहव ! महुमह महुसूयण । हा हरि-कण्ह-विण्हु-णारायण ।
हा केसव ! अनंत-लच्छी-हर । हा गोविंद ! जणद्दण-महिहर !
हा गंभीर-महाणइ-रुंभण । हा सीहोयर-दप्पणिसुंभण ।....
हा हा रुद्द-भुत्ति-विणिवारण । हा हा वालिखिल्ल-संहारण !
हा हा कविल-मरट्ट-विमद्दण । हा वणमाली-णयणाणंदण ।
हा अरि-दमण ! मडप्फर-भंजण । हा जिय-पोम सोम-मण-रंजण ।
हा महरिसि-उवसग्ग-विणासण । हा आरण्ण-हत्थि-संतावण !
हा करवाल-रयण-उद्दालण ! संब-कुमार-विलास-णिहालण !
हा खर-दूसण-बलमुसुमूरण ! हा सुग्गीव-मणोरह-पूरण !
हा हा कोडिसिला-संचालण ! हा हा मयर-हरो उत्तारण !

[1] सहोदर, भाई

घत्ता । जो मूर्छायें उ राव, सकलहु जन मुँह-कातर ।
प्रलयानल-संतप्त, बोँलन लागु जनु सागर ॥६॥
चंदनेहिँ लेप्पाइज्जंतउ । चमर्-उत्क्षेपेहिँ बीजायंतउ ।
"दुःख दुःख" आश्वासै राणा । जरठ मृगांकि 'व ठिउ उद्धाना ।
अविरल-अश्रु-जलोलित-नयना । इमि प्रजल्पेउ गद्गद-वयना ।
"निपतिय अशनि आज आकाशहेँ । आज अमंगल दशरथ-वंशहेँ ।
आज जाउँ हौँ पीटिय वक्षहु । दोँउ भाइन परमुँह हौँ पेखउँ ।
आज नगर सिय-संपति मेलेँउ[1] । आज राज्य परचक्रेँ पेलेँउ" ।
इमि प्रलाप करेव सहाग्रइ । राघव-जननिएँ आयउ लग्गेँइ ।
केश-विसंस्थुल दीस रोँवंती । अश्रुप्रवाह बाहु मेलंती[1] ।
—रामायण २४।६-७

(ख) लक्ष्मणके लिए रामका विलाप

घत्ता । सौमित्र शोकपरितापेँहिँ, रघुपतिनंदन मूर्छियउ ।
जल-चंदन-चमर डुलावनहूँ, दुःख-दुःखउ मूर्छियउ ॥२॥
"हा लक्ष्मण कुमार एकोदर ! हा भप्रिय उपेन्द्र दामोदर !
हा माधव मधुमथ मधुसूदन ! हा हरि कृष्ण विष्णु नारायण !
हा केशव अनंत लक्ष्मीधर ! हा गोविंद जनार्दन महिधर !
हा गंभीर-महानदि-रंधन ! हा सिंहोदर-दर्प-निनाशन !
हा हा रुद्र भुक्ति विनिवारण ! हा हा बालिखिल्य-संहारण !
हा हा कपिल-(कु)दर्प-विमर्दन ! हा वनमाली नयनानंदन !
हा अरिदमन-गर्व-बी-भंजन ! हा जितपद्म सोम-मन-रंजन !
हा महाँ ऋषि-उपसर्ग विनाशन ! हा आरण्य-हस्ति-संतापन !
हा करवाल-रतन-उद्दारण ! शांवकुमार-विलास-निहारण !
हा खर-दूषण-बल-मुसमूरण ! हा सुग्रीव-मनोरथ-पूरण !
हा हा कोटिशिला-संचालन ! हा हा मकरधरो उत्तारन !

---

[1] त्यागेउ [2] शत्रु शासन

घत्ता । कहि तुहुँ कहि हउँ कइ पिअय, कहि जणेरि कहि जणणु गउ ।
हय-विहि विछोउ करेप्पिणु, कवण मणोरह पुण्ण तउ ॥३॥

हरि-गुण संभरंतु विद्दाणउ । रुवइ स-दुक्खउ राहव-राणउ ।
वरि पहिरउँ पर-णरवर-चक्कएँ । वरि खय-कालु ढुक्कु अत्थक्कएँ ।
वरि तं कालकुट्टु विसु भक्खिउ । वरि जम-सासणु णयण-कडक्खिउ ।
वरि असिपंजरें थिउ थोवंतरु । वरि सेविउ कियंत-दंततंरु ।
झंप दिण्ण वरि जलण जलंतएँ । वरि वगला-मुहें भमिउ भमंतएँ ।
वरि वज्जासणें सिरें ण पडिच्छिय । वरि ढुक्कंति भवित्ति-समिच्छिय ।
वरि विसहिउँ जम-महिस-झडिक्किउ । भीसण-काल-दिट्ठि अहिडंकिउँ ।
वरि विसहिउ केसरि णह-पंजरु । वरि[1] जोयउ कलि-कालु सणिच्छरु ।
घत्ता । वरि दंति-दंतें मुसलग्गेंहि, विणिभिंदाविउ अप्पणउ ।
वरि णरय-दुक्खु आयामिउ, णउ विऊउ भाइहिँ तणउ ॥४॥

—रामायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हउँ भामंडलु[2] हणुवंत एहु । एँहु अंगद रहसुच्छलिय देहु ।
तिण्णिवि आइय कज्जेण जेण । सुणु अक्खमि किं वहु वित्थरेण ।
सीयहि कारणें रोसिय-मणाहँ । रणु वट्टइ राहव-रावणाहँ ।
लक्खणु सत्तिएँ विणिभिण्णु तत्थु । दुक्करु जीवइ तें आय इत्थु ।
तं वयणु सुणिवि परियालयेलु । णं कुलिस-समाहउ पडिउ सेलु ।
णं चवण-कालें सग्गहों सुरेंदु । उम्मुच्छिउ कहवि कहवि णरेंदु ।
दुक्खा उरु धाहा वणह लग्गु । पुण्णक्खइ हरिंव मुयंतु सग्गु ।
घत्ता । हा पइ सोमित्ति ! मरंतएण, मरइ णिरुत्तउ दासरहि ।
भत्तार-विहूणिय णारि जिह, अज्जु अणाहीहूय महि ॥१०॥

---

[1] वलि   [2] सीताका भाई

घत्ता । कहँ तुहुँ कहिहौं का पियहिँ, कहँ जनेरि कहँ जनक गउ।
हत-विधि ! विछोह कराइय, कवन मनोरथ पूर्ण तव" ॥३॥

हरि-गुण संवदंत विद्राणउ। रोँवइ सदुःखउ राघव-राणउ।
वरु प्रहरौ पर-नरवर-चक्रउ[1]। वरु क्षयकाल ढुक्कु अत्थक्कउ।
वरु सो कालकूट विष भक्षिउ। वरु यमशासन-नयनकटाक्षउ।
वरु असिपंजरेँ ठिउ थोडंतर। वरु सेउव कृतांत-दंतान्तर।
झंप देँउव वरु ज्वलन जलंते। वरु बगलामुखेँ भ्रमिव भ्रमंते।
वरु वज्रासनेँ शिरेँहिँ प्रतीच्छिव। वरु ढुक्कंत भवित्रि समीच्छिव।
वरु विसहव यम-महिष-झड़क्कउ। भीषण-काल-दृष्टि अभिडंकउ।
वरु विसहव केसरि-नख पंजर। वरु जोयव कलिकाल-शनिश्चर।
घत्ता। वरु दंतिदंतेँ मुसलग्रेँहि, विनि-भिदाविउ आपनहुँ।
वरु नरक-दुःख आगामिउ, नहिँ वियोग भाइहिँतनउ ॥४॥

—रामायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हौँ भामंडल हनुमंत एहु। एहु अंगद रभसोच्छलिय-देहु।
तीनहुँ आयउँ कार्येहिँ जेहि। सुनु भाखौँ का वहु विस्तरेहि।
सीतहिँ कारणेँ रोषितमनाहँ। रण चल्लै राघव-रावणाहँ।
लक्ष्मण शक्तिहिं विनि-भिन्नु तत्र। दुष्कर जीवै सो आय अत्र"।
सो वचन सुनिय परिपातयेल। जनु कुलिश-समाहत पडेउ शैल।
जनु च्यवन-काल स्वर्गहँ सुरेन्द्र। उन्मूर्छिउ कहव कहव नरेन्द्र।
दुःखाकुल धाहा वनह लग्ग। पुण्य-क्षय हरि इव भरत सर्ग।
घत्ता। हा तव सौमित्रि ! मरंतई, मरै अवश्यहिँ दाशरथी।
भत्तरि-विहूनी नारि जिमि, आज अनाथा भइ मही ॥१०॥

---

[1] शत्रुराज शासन

हा भायर ! एँक्कसि देहि वाय । हा पइ विणु जइसिरि-विहव जाय ।
हा भायर ! महु सिरि पडिय गयणु । हा हियउ फुट्टु दक्खहि वयणु ।
हा भायर ! महुयर-महुर-वाणि । महु णिवडिऊ-सि दाहिणउ पाणि ।
हा ! किं समुद्दु जल-णिवहु खुट्टु । हा ! किह दिढु कुम्भकडाहु फुट्टु ।
हा ! किह सुरवइ[1] लच्छिएँ विमुक्कु । हा ! किह जमरायहों मरणु ढुक्कु ।
हा ! किह दिणयरु कर-णियरु चत्तु । हा ! किह अणंगु दोहग्गु पत्तु ।
हा ! चंचल हूयउ केम मेरु । हा ! केम जाउ णिद्धणु कुवेरु ।
घत्ता । हा ! णिव्विसु किह धरणेंदु[2] थिउ, णिप्पहु ससि-सिहि-सीयलउ ।
टलटलि हूई केम महि, केम समीरणु णिव्वलउ ॥११॥
लब्भइ रयणायरें रयण-खाणि । लब्भइ कोइल-कुलें महुर-वाणि ।
लब्भइ चंदणु-सिरि मलय-सिंगे । लब्भइ सुहवत्तणु जुवइ-अंगें ।
लब्भइ धणुधणएँ धरापवण्णु । लब्भइ कंचणें परवएँ सवण्णु ।
लब्भइ पेसेंण सामिएँ पसाउ । लब्भइ किएँ-विणएँ जणाणुराउ ।
लब्भइ सज्जणें गुण दाणें कित्ति । सिय असिवरें गुरु-उलें परम-तित्ति ।
लब्भइ वसियरणें कलत्त-रयणु । महकव्वें सुहासिउ सुकइ-वयणु ।
लब्भइउ वयार-सइहि सुमित्तु । मद्दवेंहि विलासिणि चारु चित्तु ।
लब्भइ परतीरि महग्घु भंडु । वरवेणु-मूलें वेलुज्ज-खंडु[3] ।
घत्ता । गय- मोत्तिउ सिंघलदीवें मणि, वइरागरहो वज्ज पउरु ।
आयइ सव्वइ लब्भंति जइ, णवर ण लब्भइ भाइवरु ॥१२॥
—रामायण ६९।१०-१२

(घ) **कुंभकर्णके लिये रावणका विलाप**

तं णिसुणेवि दसाणण हल्लिउ । णं वच्छत्थलें सूलें सल्लिउ ।
थिउ हेट्ठामुहु रावण-राणउ । हिम-हय-सयवत्तु'व विद्दाणउ ।
रुवइ सदुक्खउ गग्गर-वयणउ । वाह भरंतु णिरंतर वयणउ ।
हा हा कुंभयण्ण ! एक्कोयर । हा हा मय-मारिच्च-सहोयर ।

---

[1] इन्द्र [2] शेषनाग [3] हरितकांति वैदूर्यमणिका टुकड़ा

हा भायर ! एकहि देँहि वाच । हा तैँ विनु जयश्री विभव जाय ।
हा भ्रातर ! मम श्री पडिय गगन । हा हियहु फूटु डाहैं वदन ।
हा भायर ! मधुकर मधुर-वाणि । मम निपतेँउ तुम दाहिनउ पाणि ।
हा ! का समुद्र-जल-निवह खुट्ट । हा ! का दृढ कुंभकडाह फुट्ट ।
हा ! किमु सुरपति लक्ष्मियेहि मुञ्चु । हा ! किमु यमराजहँ मरन ढुक्कु ।
हा ! किमु दिनकर-कर-निकर-त्यक्त । हा ! किमु अनंग दौर्भाग्य-प्राप्त ।
हा ! चंचल होयउ केम मेरु । हा ! केम वनेँउ निर्धन कुवेरु ।
घत्ता । हा ! निर्विष किमु धरणींद्र ठिउ, निष्प्रभ शशि शिखि शीतलउ ।
टलटलि हूइ केम महि, केम समीरण निर्बलउ ॥११॥

लब्भै रतनाकरेँ रतनखानि । लब्भै कोकिल-कुलेँ मधुरवाणि ।
लब्भै चंदन श्रीमलयश्रृंगेँ । लब्भै सुखवत्त्वउ युवति-अंगेँ ।
लब्भै धन-धान्य-धरा प्रपन्न । लब्भै कंचन-पर्वतेँ सुवर्ण ।
लब्भै दासेहिँ[1] स्वामिय प्रसाद । लब्भै कृतविनये जन'नुराग ।
लब्भै सज्जनेँ गुण, दानेँ कीर्त्ति । सित असिवरेँ, गुरुकुलेँ परम तृप्ति ।
लब्भै वशिकरणेँ कलत्र-रतन । महकव्येँ सुभाषित सुकवि-वचन ।
लब्भै उपकार-मइहि सुमित्त । मार्दवेँहिँ विलासिनि चारुचित्त ।
लब्भै परतीरेँ महार्घ भांड । वर-वेणु-मूलेँ वेलुज्ज[2]-खंड ।
घत्ता । गजमोतिउ सिंहलद्वीपेँ मणि, बैरागरहु वज्र ।
आगतेँ सर्वइ लब्भंति यदि, पर नहिँ लब्भै भाइवरु" ॥१२॥

—रामायण ६६।१०-१२

(घ) कुंभकर्णके लिये रावणका विलाप

सो सुनिय दशानन हिल्लेउ । जनु वक्षस्थल सूलेहि सालेउ ।
ठिउ हेट्ठामुँह रावण राणा । हिम-हत-शतपत्रि 'व विद्राणा ।
रोव सदुःखउ गद्गद-वदना । वाह भरंत निरंतर वचना ।
"हा हा कुंभकर्ण एकोदर ! हा हा मम मारीच-सहोदर !

---

[1] पेस=प्रेष्य (दूत, संदेशवाहक) [2] वंश-रत्न

हा इंदइ हा तोयदवाहण। हा जमहंट अणिट्ठिय-साहण[1]।
हा केसरि-णियंव-दणु-दारण। जंबुमालि हा सुअ हा सारण।
दुक्खु दुक्खु पुणु मणु विणिवारिउ। सोय-समुद्दहों अप्प उतारिउ।
—रामायण ६७।६

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

अप्पणु हणइ विहीसणु जावेंहिं। मुच्छइँ णाइ णिवारिउ तावेंहिं।
णिवडिउ धरणि वट्टि णिव्वेयणु। दुक्खु समुट्ठिउ पसरिय वेयणु।
चरण धरेवि रोऍवएँ लग्गउ। हा भायर महँ मुऍवि कहिं गउ।
हा हा भायर ! ण किउ णिवारिउ। जण-विरुद्धु ववहरिउ णिरारिउ[2]।
हा भायर ! सरीरें सुकुमारएँ। केम विआरिउ चक्कएँ धारएँ।
हा भायर ! दुण्णिट्टएँ मुत्तउ। सिज्जें मुऍवि किं महियलें सुत्तउ।
घत्ता। किं अवहेरि करेवि थिउ, सीसें चडाविय चलण तुहारा।
अच्छमि सुट्ठुम्माहियउ, हिअउ फुट्ट आलिंगि भडारा ॥२॥
रुअइ विहीसणु सोयक्कमियउ। तुहु ण त्थमिउ वंसु अत्थमियउ।
तुहु ण जिऊसि सयलु जिउ तिहुयणु। तुहु ण मुऊसि मुयउ वंदिज्जणु।
तुहु पडिऊसि ण पडिउ पुरंदरु। मउडु ण भग्गु भग्गु गिरि-कंदरु।
दिट्ठि ण णट्ठ णट्ठ लंकाउरि। वयण ण णट्ठ णट्ठ मंदोयरि।
हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु। हियय ण भिण्णु भिण्णु गयणंगणु।
चक्कु ण ढुक्कु ढुक्कु एक्कंतरु। आउ ण खुट्टु खुट्टु रयणायरु।
जीउ ण गउ गउ आसापोट्टल। तुहु ण सुत्तु सुत्तउ महिमंडल।
सीय ण आणिय आणिय जमउरि। हरि-बल कुद्ध कुद्ध णं केसरि।
—रामायण ७६।२-३

---

[1] अपार रण साधन वाले [2] निरेही

हा इंद्रजि(त्) हा तोयदवाहन ! हा यमघंट अनिष्ठित-साधन !
हा केसरि-नितंव-दनु-दारण । जंबुमालि हा शुक हा सारण"।
"दुःख दुःख" पुनि मन विनिवारिउ । शोक-समुद्रहों आय उतारिउ ।
—रामायण ६७।६

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

आपुहिं हनै विभीषण जब्बे । मूर्छं जनुक निहारिउ तब्बैं ।
निपतेंउ धरणि घूमि निर्वेदन । दुःख समुट्ठिउ पसरिउ वेदन ।
चरण धरिय रोअवै लागउ । "हा भायर ! मम मुइय कहाँ गउ ।
हा हा भायर ! न किउ निवारेंउ । जनविरुद्ध व्यवहरिउ निरारिउ ।
हा भायर ! शरीर सुकुमारा । केम विगारेउ चक्रहिं धारा ।
हा भायर ! दुर्निद्रे मुक्तउ । शय्य मुएँउ का महितलें सुत्तउ ।
घत्ता । का अवहेल करेबि ठिय, सीस चढाइव चरण तुहारा ।
रहौं सुठि उन्माथियउ हृदय फूटु आलिंगु भट्टारा[1]" ॥२॥
रोंवै विभीषण शोक-क्कमियउ । तुहुं न अस्तमिउ वंश'स्तमियउ ।
तुहु न जीवसि सकल जिउ त्रिभुवन । तुहुं न मुयउ मुयेंउ वंदनिय-जन ।
तुहुँ पडियेउ न पडेंउ पुरंदर । मुकुट न भंगु भंगु गिरिकंदर ।
दृष्टि न नष्ट नष्ट लंकापुरि । वचन न नष्ट नष्ट मंदोदरि ।
हार न टूटु टूटु तारागण । हृदय न भिदु भिदु गगनांगण ।
चक्र न ढुक्कु[2] ढुक्कु एकंतर । आयु न खुट्टु[3] खुट्ट रतनाकर ।
जीव न गउ गउ आशा-पोट्टल । तुहुँ न सुत्तु सुत्तु महिमंडल ।
सीय न आनेंउ आनेंउ यमपुरि । हरि-बल क्रुद्ध क्रुद्ध जनु केसरि ।
—रामायण ७६।२-३

---

[1] महाराजा [2] चीर कर भीतर घुसा [3] खतम हुई

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

माणुसु देहु होइ घिणि-विट्टलु। सिरेँहि णिबद्धउ हड्डह पोट्टलु।
चलु कुजंतु माय-मउ कुहेँडउ। मलहोँ पुंजु किमि-कीडहु सूडउ।
पूइगंध[1] रुहिरामिस-भंडउ। चम्म-रुक्खु दुग्गंध-करंडउ।
अंतहोँ पोट्टलु पक्खिहिँ भोयणु। बाहिहि भवणु मसाणहोँ भायणु।
आयहु कलुसियऊ जहि अंगउ। कवण पएसु सरीरहोँ चंगउ।
अण्णइ सुण्णरूव दुप्पेच्छउ। कडियलु पच्छाहर-सारिच्छउ।
जोव्वणु गंडहोँ अणुहरमाणउ। सिरु णालियर-करंक-समाणउ।

—रामायण ५४।११

एण सरीरेँ अविणय-थाणे। दिट्ठ णट्ठ जलबिंदु-समाणे।
सुर-चावेण'व अथिर सहावेँ। तडि फुरणेँण'व तक्खण-भावेँ।
रंभा-गब्भेण'व णीसारेँ। पक्क-फलेण'व सउणाहारेँ।
सुण्णहरेण'व विहडिय-बंधेँ। पच्छहरेण'व अइदुग्गंधेँ।
उक्करुडेण'व कीलावासेँ। अकुलीणेण'व सुकिय-विणासे।
परिवाहेण'व किमि-कोट्ठारेँ। असुइहि भवण भूमिहि भारेँ।
अट्ठिय-पोट्टलेण वस-कुंडे। पूय-तलाये आमिस-उंडे।
मलकूडेण रुहिर-जलघरणेँ। लसि-विवरेण पेम्म-णिज्झरणे।
कुहिय-करंडएण घिणिवंतेँ। चम्ममएण इमेँण कूजंतेँ।

—रामायण ७७।४

तं चलणु जुअलु गय-मंथरउ। सउणहि खज्जंतु भयंकरउ।
तं सुरय-णियंब सुहावणउँ। किमि वुडवुडंति चिलसावणउँ।

---

[1] दुर्गंधि

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

मानुष देह होइ घृण-विट्टल[1]। शिराइँ बाँधेउ हाडह पोट्टल।
　　चलु सडंत मायामय-कचरउ। मलहँ पुंज क्रमि-कीटहु सूडउ।
पूतिगंध रुधिरामिष-भंडा। चर्मवृक्ष दुर्गंध-करंडा।
　　आँतह पोटल पक्षिहिँ भोजन। काढहिँ भवन मसानेहु भायन।
आयहु कलुषीयहु जहि अंगउ। कवन प्रदेश शरीरह चंगउ।
　　अन्यइँ शून्य-रूप दुष्प्रेक्ष्यउ। कटितल पच्छाघर सादृश्यउ।
जोवन गंडहु[2] अनुहरमानउ। शिर नारियर-करंक-समानउ।

—रामायण ५४।११

एहि शरीरे अविनय-थाने। दृष्ट-नष्ट जलविंदु-समाने।
　　सुर-चापा इव अथिर-स्वभावा। तडि-स्फुरणि' इव तत्क्षण भावा।
रंभागर्भ इवा निस्सारा। पक्वफल इव शकुनाहारा।
　　शून्यघर इव विघटित-बंधा। पच्छा घर[3] इव अतिदुर्गंधा।
कूडापुंजि' इव कीटावासा। अकुलीना इव सुकृत-विनाशा।
　　परिबाधा इव क्रमि-कोट्ठारा। अशुची-भवना भूमिहि भारा।
अस्थिय पोट्टलका वसकुंडा। पूति-तलावा आमिष-कुंडा।
　　मल-कूटऊ रुधिर-जल छरना। लसि-विवरा पीव-निर्झरणा।
कुथित करंडा[4]ऊ घृणवंता। चर्ममया एते कूजंता।

—रामायण ७७।४

सो चरण-युगल गजमंथरउ। शकुनेहिँ खाद्यंत भयंकरउ।
　　सो सुरत-नितंब-सोँहावनऊ। क्रमि बुजबुजंति चिरसाइनऊ।

---

[1] गंदा बिटलाहा (मल्लिका)　[2] फोड़ा　[3] पाखाना　[4] पेटी

तं णाहि-पयेसु किसोयरउ। खज्जंतमाणु थिउ भासुरउ।
तं जोव्वणु अवरुंडणमणउ। सुज्जंत णवर भीसावणउ।
तं सुंदरुवयणु जियंताहुँ। किमि कप्पिउ णवर मरंताहुँ।
तं अहर-बिंबु वण्णुज्जलउ। लुंचंतु सिवेंहिँ घिणि-विट्ठलउ।
तं णयणु-जुअलु विब्भम-भरिउ। विच्छायउ कायहिँ कप्परिउ।
सो चिहुर-भारु कोडावणउ। उड्डंतु णवर भीसावणउ।
घत्ता। तं माणुसु तं मुह-कमलु, ते थण तं गाढालिंगणउ।
णवरि धरेविणु णा सउडु, बोलिज्जइ झिंधि चिलिसावणउ ॥७॥

(२) गर्भवास दुःख

तहिँ तेहइ रस-वस-भूय-भरे। णव मास वसेंव्वउ देहघरे।
णव णाहिकमलु उत्थल्लु जहिँ। पहिलउ जें पिंडु संबंधु तहिँ।
दस-दिवसु परिट्ठिउ रुहिर-जलु। कणु जेम पईयउ धरणियलु।
बिहि दस-रत्तिहि समुट्ठिअउ। णं जलें डिंडीर समुट्ठिअउ।
तिहि दस-रत्तिहिँ बुब्बुड घडिउ। णं सिसिर-बिंदु कंकुम पडिउ।
दस-रत्ति चउत्थहें वित्थरिउ। णावइ पवलंकुरु णीसरिउ।
पंचमें दस-रत्ति जाउ वलिउ। णं सूरण-कंदु चउप्पलिउ।
दस-दस-रत्तेंहि कर-चरण-सिरु। वीसहि णिप्पण्णु सरीर थिरु।
णव-मासिउ देहहों णीसरिउ। वट्टंतु पडीवउ वीसरिउ।
घत्ता। जेण दुवारें आइयउ, जो तं परिहरे ण सक्कइ।
पंतिहि जुत्तु वइल्लु जिह, भव-संसारें भमंतु ण थक्कइ ॥८॥

(३) आवागमन दुःख

इउ जणेंवि धीरहि अप्पणउं। करें कंकणु जोवहि दप्पणउ।
चउगइ[1] संसार भमंतऍण। आवंता जंत मरंतऍण।

---

[1] देव, मानुष, तिर्यक् (पशु पंछी), नरक

सो नाभिप्रदेश कृशोदरऊ। खाधंतमान ठिउ भासुरऊ।
सो यौवन अवरुंडन[1]-मनऊ। सुज्जंत अती-भीषावणऊ।
सो सुंदर वदन जियंतेही। कृमि-काटिय तुरत मरंतेही।
सो अधर-बिंब वर्णोज्वलऊ। नोचंत शिवेँहिँ[2] घृण-विट्ठलऊ।
सो नयन-युगल विभ्रमभरिऊ। विच्छायउ[3] कायहँ खप्परिऊ।
सो चिकुर-भार हर्षावणऊ। उड्डंत तुरत भीषावणऊ।
घत्ता। सो मानुष सो मुखकमल, सो स्तन सो गाढालिंगनऊ।
तुरत धरंते नासकुटू, बोलिय धिक् चिरसाइनऊ ॥७॥

(२) गर्भवास दुःख

तहँ तेहिहि रस-वस-भूत-भरे। नव मास वसेयउ देहघरे।
नव नाभिकमल उच्छल्ल जहाँ। पहिलहिहि पिंड संबंध तहाँ।
दस दिवस परिट्-ठिउ[4] रुधिर-जंलू। कण जेम पडेऊ धरणितलू।
दोउ दशरात्रेँहिँ सम्-उट्ठियऊ। जनु जलेँ डिंडीर[5] सुमुट्ठियऊ।
तेँहिदश रात्रे बुद्बुद गडेँऊ। जनु शिशिरबिंदु कुंकुम पडेऊ।
दशरात्रि चउत्थेहिँ विस्तरिऊ। न्याई प्रवलांकुर निस्सरिऊ।
पँचयेँ दशरात्रे जायोँ वली। जनु सूरन-कंद चऊपहली।
दश दशरात्रेहिँ कर-चरण-शिरू। बीसहिँ निष्पन्न शरीर थिरू।
नवमासे देहा नीसरिऊ। वर्त्तन्त प्रतीउ वीसरिऊ।
घत्ता। जेहि दुवारेँ आयऊ, जो तेहि परि-धारयउ न सक्कै।
पाँतिहि जुतो बइल्ल जिमि, भव-संसार भ्रमंत न थाकै ॥८॥

(३) आवागमन दुःख

ऍहु जानबि धीरेहि आपनऊ। कर-कंकण जोवै दर्पणऊ।
चउगति संसार भ्रमंतएहि। आवंत-जांत-मरतएहिँ।

---

[1] **अवरुंडन=आलिंगन** [2] **सियारों से** [3] **कुरूप** [4] **रहेउ** [5] **कमलनाल**

जगें जीवें कोण रुवाविअउ। को गरुय थाह ण मुआवियउ।
को कहिमि णाहि संताविअउ। को कहिमि ण आवइ पावियउ।
को कहि ण ढुक्कु[1] को कहि न मुउ। को कहि ण भमिउ को कहिं ण गउ।
कहि णवि मोयणु कहि णवि सुरऊ। जगें जीवहों किपि ण वाहिरऊ।
तइलोउ विअसिउ असंतएण। महि सयल डज्भंदड्ढंतएण।
घत्ता। सायरु पीयउ पियंतएण, अँसुएँहि रुयंतेहि भरिउ।
हड्डु-कलेवर-संचएँण, गिरि-मेरु सोवि अंतरिउ॥९॥
अह पइ किं वहु चविएण राम। भवें भमिउ भयंकरें तुहुमि ताम।
णडु जिहँ तिहँ वहु रूवंतरेहिँ। जर-जम्मण-मरण-परंपरेहिँ।
सा सीय वि जो णिसएहिँ आय। तुहुँ कहिमि बप्पु सा कहिँमि माय।
तुहु कहिमि भाउ सा कहिमि वहिणि। तुहु कहिमि दइउ सा कहिमि घंरिणि।
तुहु कहिमि णरएँ सा कहिमि सग्गें। तुहु कहिमि महिहिँ सा गयण-मग्गें।
तुहु कहिमि णारि सा कहिमि जोहु। किं सुइणा-रिद्धिहि करहि मोहु।
उम्मेट्टु विऊअ गइंदएसु। जगडंतु भमइँ जगु णिरवसेसु।
जइ ण धरिउ जिण-वयणंकुसेण। तो खज्जइ माणुस-माणुसेण।
घत्ता। एम भणेप्पिणु वेवि मुणि, गय कहिमि णह-गण-पंथें।
रामु परिट्ठिउ किविणु जिह, धणु इक्कु लएवि सहत्थें॥१०॥
—रामायण ३९।९-१०

(४) संसार तुच्छ

को काल-भुयंगहों उव्वरइ। जो जगु जें सव्वु उवसंहरइ।
तहों जहि जहि कहिमि दिट्ठि रमइ। तहि तहि णं भइय वट्टु भमइ।
कें वि गिलइ गिलइ कें वि उग्गिलइ। काहिमि जम्मावसाणि मिलइ।
कें वि णरय-विलेहि पइसे विगसइ। काहिवि अणुलग्गउ जे वसइ।

---

[1] ढूकना=प्रवेश करना

जगें जीवहि को न रोंवाइयऊ। कों गरुअ धाह न मुवाइयऊ।
　　को काहिहिं ना संतावियऊ। को काँहि न आवइ पावियऊ।
को कहँ न ढुक्कु को कहँ न मुऊ। को कहँ न भ्रमेंउ को कहँ न गऊ।
　　कहँ नहिं मोदन कह नहि सुरतू। जगें जीवहँ ना किय बाहिरऊ।
तिहु लोक विकसेंउ अशांतएहिं। महि सकल दग्ध दड्ढंतएहि।
　घत्ता। सागर पियेउ पियंतएहि, अँसुएहि रोवंतेहि भरेंऊ।
　　हाड-कलेवर-संचयेहि, गिरि-मेरु सोउ अंतरिऊ[१] ॥९॥
अथ तोहिं का वहु वचनेहिं राम ! भवें भ्रमिउ भयंकरें तुहुज नाम[२]।
　　नट जहँ तहँ वहु-रूपांतरेहिं। जर-जन्म-मरण-परंपरेहिं।
सो सीतउ योनिशतेहिं आय। तुहुँ कतहुँ बाप ऊ कतहुँ माय।
　　तुहुँ कतहुँ भाय ऊ कतहुँ बहिनि। तुहुँ कतहुँ दयित ऊ कतहुँ घरिनि।
तुहुँ कतहुँ नरकें ऊ कतहुँ सरगें। तुहुँ कतहु महिहिं ऊ गगन-मगे।
　　तुहुँ कतहु नारि ऊ कतहु जोध। का स्वपन-ऋद्धिहीं करहि मोह।
उन्मेंठ[३]-वियुक्त गजेंद्रएस। झगडंत भ्रमैं जगें निरवशेष।
　　यदि न धरिय जिन-वचनांकुशहीं। तो खाइय मानुष मानुषहीं।
　घत्ता। इमि भनिया दोऊ मुनि, गयउ कतहुँ नभगण-पथे।
　　राम बईठेउ कृपण जिमि, धनु एकलहू स्वहत्थे ॥१०॥

—रामायण ३९।९-१०

(४) संसार तुच्छ

को काल-भुजंगतें ऊबरई। जो जग सवेंइँ उपसंहरई।
　　तहँ जहँ जहँ कतहुँ दृष्टि रमई। तहँ तहँ जनु भयावर्त्त भ्रमई।
कोइँ गिलइ गिलइ कोइ ऊगिलई। कतहूँ जन्मावसान मिलई।
　　कोइ नरक-बिलेहिं पइसैं निकसैं। केतहँ अनुलग्न एव बसई।

---

[१] ढांक दिया　　[२] तहाँ　　[३] महावत

केंवि कड्ढइ सग्गहों बरि चडेवि । केंवि खय होणेंइ उप्परें चडेवि ।
केवि घारइ थोरइ पाव विसेण । केवि भक्खइ णाणाविहमसेंण ।
घत्ता । तहो कोवि ण चुक्कइ भुक्खियहों, काल-भुयंगहों दूसहहो ।
जिण-वयण-रसायणु लहु पियहों, जि अजरामर-पउ लइहो ॥२॥
जइ काल-भुअंगु णउव डसइ । तो किं सुर-वइ सग्गहों खसइ ।

—रामायण ७८।२,३

विरहाणल-जाल-पलित्त-तणु । चिंतेवएँ लग्गु विसण्ण-मणु ।
सच्चउ संसारि ण अत्थि सुहु । सच्चउ गिरि-मेरु-समाण दुहु ।
सच्चउ जर-जम्मण-मरण-भउ । सच्चउ जीविउ जलबिंद-सउ ।
कहों घरु कहो परियणु बंधु जणु । कहों माय-वप्पु कहों सुहि-सयणु ।
कहों पुत्तु-मित्तु कहों किर घरिणि । कहों भाय-सहोयरु कहों बहिणि ।
फलु जाव ताव बंधव-सयण । आवासिय पायवि जिह सउण ।
वलु एम भणेप्पिणु णीसरिउ । रोवंतु पडीवउ वीसरिउ ।
घत्ता । णिद्धणु लक्खण-वज्जिअउ, अण्णुवि वहु असणेहिं भुत्तउ ।
राहउ भमइ भुअंगु जिह, वणें "हा हा सीय" भणंतउ ॥११॥
हिंडंतें मग्ग मडप्फरेण । वणदेवय पुच्छिय हलहरेण ।
"खणें खणें वेयारहिं काइं मइं । कहिं कहिमि दिट्ठ जइ कंतयइं" ।
वलु एम भणेप्पिणु संचलिउ । ता वग्गएँ वण-गयंदु मिलिउ ।
"हे कुंजर-कामिणि-गइ-गमणा । कहें कहिमि दिट्ठ जइ मिगणयणा" ।
णिय-पडिरवेण वेआरियउ । जाणइ सीयएँ हक्कारिअउ ।
कत्थइ दिट्ठइं इंदीवरइं । जाणइ-धण-णयणइं दीहरइं[1] ।

---

[1] दीरघ

कोँइ निकसि सर्ग ऊपर चढई। कोँइ क्षय-होवन ऊपर चढई।
कोइ धारै धूरै पाप विषहिँ। कोइ भक्खै नानाविध मंसहिँ।
घत्ता। तहँ कोइ न बाँचै भूखियहीँ, काल-भुजंगह दुस्सहहीँ।
जिन-वचन-रसायन लघु पियहू, जिमि अजरामर-पद लहहू ॥२॥
यदि काल-भुजंग नहीँ डँसई। तो किमि सुरपति स्वर्गहँ खसई।

—रामायण ७८।२,३

विरहानल ज्वाल-प्रलिप्त तनू। चिंता इब लागु विषण्ण-मनू।
साँचै संसारेँ न अहै सुखू। साँचै गिरि-मेरु-समान दुखू।
साँचै जर-जन्मा-मरण-भवा। साँचै जीवित जलबिंदु-समा।
कहँ घर कहँ परिजन बंधुजना। कहँ माय-बाप कहँ हित-सजना।
कहँ पुत्र-मित्र कहँ पुनि घरिनी। कहँ भाय-सहोदर कहँ बहिनी।
फल जबै तबै बांधव-स्वजना। आवासैँ पादपेँ जिमि शकुना।
वल[1] ऐसेँहि भनिया नीसरेऊ। रोवंत पडीयउ बीसरिउ।
घत्ता। निर्धनु लक्ष्मण वर्जितउ, अन्यहु वहुत सनेहि त्यक्तऊ।
राघव भ्रमै भुजंग जिमि, वने "हा हा सीय" भनंतऊ ॥११॥
हिंडंतो भग्न गर्वएहिँ। वनदेवत पूछिय हलधरेहिँ[2]।
"क्षण-क्षण विकारा काह भई। कहिँ कतहुँ दीस यदि कांतों तईँ।"
वल[2] भनिया ऐसे संचलेऊ। तव आगेँइ वन-गयंद मिलेऊ।
"हे कुंजर कामिनि-गति-गमना ! कहिँ कतहुँ दीस यदि मृगनयना।"
निज प्रतिरवेहिँ वीचारियऊ। जानै सीता हक्कारियऊ[3]।
कतहूँ दीसैँ इंदीवरहीँ। जानै धनि-नयनिं-'दीवरहीँ।

---

[1] राम पिछला [2] राम [3] पुकारा

कत्थइँ असोय-दलु हल्लियउ। जाणइ धण-वाहा डोल्लिअउ।
वणु सयलु गवेसवि सयल महिँ। पल्लट्टु पडीवउ दासरहि।
—रामायण ३६।७–१२

(५) कोई किसीका नहीं

जगेँ जीवहो णाहिँ सहाउ कोवि। रइ बंधइ मोह-वसेण तोवि।
इय घरु इउ परियणु इउ कलत्तु। णउ बुज्झइ जिह सयलेहिँ चित्तु।
एक्केण कणुव्वउ विहुरकालेँ। एक्केण सुयेव्वउ जरपयाले।
एक्केण वसेव्वउँ तहि णिगोएँ। एक्केण रुइव्वउ पिय-विओएँ।
एक्केण भमेव्वउ भवसमुद्दे। कंमोह मोह जलयर-रउद्दे।
एक्कहोँ जेँ दुक्खु एक्कहोँ जेँ सुक्खु। एक्कहोँ जेँ वंधु एक्कहोँ जेँ मोक्खु।
एक्कहोँ जेँ पाउ एक्कहोँ जेँ धम्मु। एक्कहोँ जे मरणु एक्कहोँ जे जम्म।
—रामायण ५४।७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुणिवर कहिवि लग्गु विउलाइँ। किं जणेण णियहि धम्मे फलाइँ।
धम्मे भड-थड-हय-गय-संदण। पावेँ मरण-विऊय-क्कंदण।
धम्मे सग्गु भोग्गु सोहग्गु। पावेँ रोगु सोगु दोहग्गु।
धम्मेँ रिद्धि-विद्धि सिय-संपय। पावेँ अत्थहीण णर-विहय।
धम्मेँ कडय-मउड-कडिसुत्ता। पावेँ णर-दालिद्देँ मुत्ता।
धम्मेँ रज्जु करंति णिरुत्ता। पावेँ परपेसण-संजुत्ता।
धम्मेँ वर-पल्लंकेँ सुत्ता। पावेँ तिण-संथारेँ विभुत्ता।
धम्मेँ णर देवत्तणु पत्ता। पावेँ णरय-घोरेँ संकंता।
धम्मेँ णर रमंति वर-निलयउ। पावेँ दुह-विऊय दुह-णिलयउ।
धम्मेँ सुंदरु अंगु णिवद्धउ। पावेँ पंगुलउ वि वहिरंधउ।
—रामायण २८।६

कतहूँ अशोक-दल हिल्लियऊ। जानै धनि-बाहहँ डोलियऊ।
　　वन सकल गवेषेँउ सकल मही। पलटेउ पाछहूँ दाशरथी।
—रामायण ३६।७-१२

(५) कोई किसीका नहीं

जगेँ जीवहँ नाहिँ सहाय कोँऊ। रति बाँधै मोहवशेहिँ तऊ।
　　ऍहु घर ऍहु परिजन ऍहु कलत्र। ना बूझै जिमि सकलेहिँ चित्र।
ऍकलेहि कानिव्रउ विधुर-कालेँ। ऍकलेहि सोँईबउ जरठ-कालेँ।
　　ऍकलेहि बसीवउ तहँ वियोगेँ। ऍकलेहि रोँइव्वउ प्रिय-वियोगेँ।
ऍकलेहि भ्रमेबउ भव-समुद्रेँ। कर्मोघ-मोह-जलचर-रउद्रेँ।
　　ऍकलेहिहि दुख एकलेहिहि सुक्ख। एकलेहिहि बँध एकलेहिहि मोक्ष।
एकलेहिहि पाप्-एकलेहि धर्म। एकलेहिहि मरन एकलेहि जन्म।
—रामायण ५४।७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुनिवर कहन लागु विपुलाईँ। का जनेहिँ निज-धर्म-फलाईँ।
　　धर्मेँ भट-ठट-हय-गज-स्यंदन। पापेँ मरन-वियोग-क्रंदन।
धर्मेँ स्वर्ग-भोग-सौभाग्य। पापेँ रोग-शोक-दौर्भाग्य।
　　धर्मेँ ऋद्धि-वृद्धि सित-संपत। पापेँ अर्थहीन नर-विद्रय।
धर्मेँ कटक-मुकुट-कटि-सूत्रा। पापेँ नर दारिद्रये क्षिप्ता।
　　धर्मेँ राज्य करंति निचिंता। पापेँ पर-प्रेषण-संयुक्ता।
धर्मेँ वर-पर्यंके सुप्ता। पापेँ तृण-साथरेँ विमुक्ता।
　　धर्मेँ नर देवत्त्वहिँ प्राप्ता। पापेँ नरक-घोर-संक्रांता।
धर्मेँ नर रमंति वर-निलये। पापेँ दुख-वियोग-दुख-निलये।
　　धर्मेँ सुंदर अंग निबंधा। पापेँ पंगुल अरु बहिरंधा।
—रामायण २८।९

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

काल—८०० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४९) । देश—नालंदा ।

(रहस्यवाद)

(६—राग पटमंजरी)

काहेरि घेणि मेलि अच्छहु कीस । वेढिल हाक पडअ चउदीस ।
अप्पण मांसे हरिणा वइरी । खणह ण छाडअ भूसुकु अहेरी ।
तिण ण छूपइ पिवइ ण पाणी । हरिणा हरिणीर णिलअ ण जाणी ।
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तोँ । ए वन छाडि होहु भान्तो ॥
तरसँत हरिनार खुर न दीसइ । भूसुकु भणइ मुढ ! हिअहिँ ण पइसइ ॥६॥

(२१—राग बराडी)

णिशि अंधारी मूसा करअ अचारा । अमिअ-भखअ मूसा करअ अहारा ॥
मार रे जोइया ! मूसा-पवना । जेण तूटइ अवणा-गवणा ॥
भव बिदारअ मूसा खणअ गाती । चंचल मूसा कलिआं णासअ थाती ॥
काला मूसा उह ण वाण । गअणे उठि करअ अमिअ पाण ॥
तब्बे मूसा अंचल चंचल । सद्गुरु बाहे करह सो निच्चल ॥
जब्बे मूसा अचार तूटअ । भूसुकु भणइ तब्बे बंधण फिट्टइ ॥२१॥

(२३—राग बंडारी)

जइ तुम्ह भूसुकु अहेरी जाइब मरिहसि पंच जना ।
णलिणीवन पइसन्ते होहिसि एक्कु मणा ॥
जीवँत मा विहणि मएल ण अणिहिलि ।
णउ विणु मांसे भूसुकु पउमवण पइसहिलि ॥
माआजाल पसारी बाँधेलि माआ हरिणी ।
सदगुरु बोहेँ बूझि रे कासु (काहिणी ॥)

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

कुल—राजपुत्र (राउत) भिक्षु, सिद्ध (४१)। कृतियाँ (हिन्दी)—सहज-गीति (रहस्यवाद)

(६—राग पटमंजरी)

काहेर भक्ष्य मेलि रहों कईस। वेठिल हाक पडै चौदीस ॥
अपने मांसे हरिना वैरी। क्षणहुं न छाडै **भूसुक** अहेरी ॥
तृण न छुवै पियै न पानी। हरिना हरिनी-निलय न जानी ॥
हरिनी बोलै सुनु हरिना तों। ई बन छाड़ि होवहु भ्रमन्तो ॥
तृषित धावत हरिना खुर ना दीसै। **भूसुक** भनै मुढ ! हियहिं न पइसै ॥६॥

(२१—राग बराडी)

निशि अँधियारी मूसा करै सँचारा। अमृत-भक्ष्य मूसा करै अहारा ॥
मारु रे जोंगिया ! मूसा पवना। जासे टूटै अवना-गवना ॥
भव विदारै मूसा खनै गाती। चंचल मूसा खाइ नाशै थाती ॥
काला मूसा रोम न वर्ण। गगने उठि करै अमिय पान ॥
तब्बै मूसा अंचल-चंचल। सद्‌गुरु-बोधे करहु सो निश्चल ॥
जब्बै मूस-सँचारा टूटै। **भूसुक** भनै तब्बै बंधन छूटै ॥२१॥

(२३—राग बराडी)

यदि तुम भूसुकु अहेरे जइबा, मरिहो पाँच जना।
नलिनीवन पइठन्ते, होइहा एकमना।
जीवत न हनिहा मरल न अनिहा।
न विनु मांस भूसुक पदुमवन पइठिहा ॥
माया-जाल पसारी बधिहा माया-हरिनी।
सद्‌गुरु-बोधें बुझि रे कासु (एहु) कहनी ॥

(अप्पण काये छड्डुवि णउ मइलि खाअइ कालाकाले लेइ।
पाणी-वेणी णाहि हरिणा पाणि अवेक्खउ ॥
चंचल चंचल चलिआ सुण्ण माँझे अत्थगऊ ॥)२३॥

(२७—राग कामोद)

अध राति भर कमल विकसिउ, बतिस जोइणी तासु अँग उल्हसिउ।
चालिअउ ससहर मग्ग अवधूई। रअणइ सहज कहेमि ॥
चालिअ ससहर-गउ णिव्वाणे। कमलिनि कमल वहइ पणाले ॥
विरमानंद विलक्खण सुद्ध। जो एथु बुज्झइ सो एथु बुद्ध।
भूसुकु भणइ मइँ बूझिअ मेले। सहजाणंद महासुह लीले ॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

करुणामेह निरन्तर फारिआ। भावाभाव द्वंदल दालिआ।
उइउ गअण माज्झ अदभूआ। पेख रे भूसुकु ! सहज सरूआ ॥
जासु सुणन्ते तुट्टइ इँदआल। णिहुए णिज मण देइउ उल्लाल।
विसअ विसुज्झे मइँ बुज्झिउ आणंदे। गअणहँ जिम उजोली चन्दे ॥
ए तिलोए एत बि सारा। जोइ **भूसुकु** फडइ अँधआरा ॥३०॥

(४१—राग कण्हू-गुंजरी)

आइएँ अनुअनाएँ जग रे भन्तिएँ सो पडिहाइ।
रज्जु-सप्प देखि जो चमकिउ, साँचे जिम लोअ खाइउ[1] ॥
अकट जोइआ रे मा कर हाथ लोण्हा। अइस सहावे जइज बुज्झसि तूटइ वासना तोरा ॥
मरु-मरीचि गंधव-नअरी दापण-पडिबिंबु जइसा।
वातावत्ते सो दिढ भइआ, आये पाथर जइसा ॥
बांझिसुआ-जिम केलि करई खेलइ वहुविह खेला।
वालुअ-तेले सस-सिंगे आकाश फूलिला ॥
राउतु भणइ बढ **भूसुकु** भणइ बढ सअला अइस सहावा।
जइ तो मूढा अच्छसि भान्ती पुच्छहु सदगुरु पावा ॥४१॥

---

[1] साँचे कित वोड़ो खाई J.D.L.

(आपन काये छडिहा ना मैली। खाय कालाकाले लेई।
पानी-वेणी नहिँ हरिना पानी चाहेउ।
चंचल- चंचल चलि शून्य-मध्ये अथयेउ)[1] ॥२३॥

(२७—राग कामोद)

आधीराति भर कमल विकसेँउ। बतिस जोगिनी तासु अँग हुलसेँउ ॥
चालहु शशधर मग अवधूती। रतने सहज कहौँ मैँ ॥
चालिय शशधर गयेँउ निर्वाणे। कमलिनि कमलहिँ बहै प्रणाले ॥
बिरमानंद विलक्षण शुद्ध। जो एहु जानै सो एहिँ बुद्ध।
भूसुक भनै मैं बूझ्यों मेला। सहजानंद महासुख-लीला ॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

करुणा-मेघ निरन्तर फारी। भावाभाव द्वन्दहीँ दारी ॥
उयेँउ गगनमाँझ अदभूता। पेखु रे **भूसुकु** सहज-स्वरूपा ॥
जासु सुनत टूटै इन्द्रजाल। नि-धुए निजमन देइ उलास ॥
विषय विशुद्धे मैँ बूझेँउँ आनंदा। गगनहिँ जिमि उजाला चंदा ॥
एहि तिलोके एहुहि सारा। जोइ **भूसुकु** फटै अँधियारा ॥३०॥

(४१—राग कण्हू गुजरी)

आदिहिँ अजन्मते जग ई भ्रान्ति सोँ प्रतिभाइ।
रज्जु-सर्प देखि चमकेँउ साँचै जिमि लोग खाइ ॥
अहह जोगिया ! न कर हाथ लोना। ऐस स्वभाव यदि बूझसि टुटइ वासना तोरा ॥
मरु-मरीचि गंधर्व-नगरी दर्पण-प्रतिबिंब जैसा।
वातावर्त्तें सो दृढ होई, पानिहिँ पाथर जैसा ॥
बाँझसुता जिमि केली करै, खेलै बहुविध खेला।
बालू-तेले शश-शृंगे आकाश फुलेला ॥
राउतु भनै मूढ **भूसुकु** भनै मूढ सकल ऐस स्वभावा।
यदि तैँ मूढा हवै भ्रान्त पूछहु सद्‌गुरुपावा ॥४१॥

---

[1] अस्त हो गया

(४३—राग बंगाल)

सहज महातरु फरिअइ तिलोए। खसम सहावे वाणते मुक्क कोइ।
जिम जले पाणिअ टलिआ भेउ न जाअ। तिम मण-रअणा समरसे गअण समाअ॥
यासु णाहि अप्पा तासु परेला काहि। आइ-अन्तअ ण, जाममरण भव नाहि।
भूसुकु भणइ बढ! राउतु भणइ बढ! सअला एह सहाव।
जाइ ण आवइ रे ण तहिं भावाभाव॥४३॥

(४९—राग मल्लारी)

राअ-नावडी पँउअखँडे वाहिउ। अदअ बँगाल देसह लूटेँउ।
आजि भूसुक बंगाली भइली। णिअ घरिणी चंडाली लेली॥
डहिउ जे पँच पाटन इन्दि-विसआ णठा। ण जानमि चिअ मोर कँहि गइ पइठा॥
सोण-रूअ मोर किंपि ण थाकिउ[१]। णिअ परिवारे महासुह थाकिउ।
चउकोडि भँडार मोर लइउ असेस। जीवँते मइलेँ णाहि विसेस॥४९॥

—चर्यापद

२ : नवीं सदी

§ ५. लुईपा

काल—८३० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४९)
देश—मगध। कुल—कायस्थ, सिद्ध (१)

रहस्यवाद

(१—राग पटमंजरी)

काआ तरुवर पंच' बि डाल। चंचल चीए पइठा काल॥
दिढ करिअ महासुह परिमाण। लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण॥

---

[१] रहा

(४३—राग बंगाल)

सहज महातरु स्फुरै (फड़ै?) त्रिलोके । ख-सम स्वभावे बँध-मुक्त कोइ ॥
जिमि जले पानी डाले भेद न जान । तिमि मन रतन समरस गगन-समान ॥
जासु न आपा तासु पराया काह् । आदि-अन्त न जन्म-मरण भव नाहि ॥
भूसुकु भनै मूढ ! **राउतु** भनै मूढ ! सकल एह स्वभाव ।
जाइ न आवै रे ना तहँ भावाभाव ॥४३॥

(४९—राग मल्लारी)

राजनावडी पदुमखंडे चलायेँउ । अ-दय बँगल-देश लूटेउ ।
आज **भूसुकु** बंगाली भइली[१] । निज घरनी चंडाली लेलीं ॥
डहेँउ पाँच पाटन इन्द्रि-विषया नष्टा । न जानौँ चित्त मोर कँह जाइ पइठा ॥
सोना-रूपा मोर किछुअ न रहेँऊ । निज-परिवारे महासुख रहेऊ ॥
चौकोटि भँडार मोर लियउ अशेष । जियले मुअले नाहि विशेष ॥४९॥
—चर्यापद

२ : नवीँ सदी

§ ५. लुईपा

कृतियाँ—अभिसमय-विभंग, तत्व स्वभाव-दोहा कोष । बुद्धोदय भगवद्-अभिसमय, गीतिका ।

रहस्यवाद

(१—राग पटमंजरी)

काया तरुवर पाँचउ डाल । चंचल चित्ते पइठा काल ॥
दृढ करि महासुख परिमान । लुई भनै गुरु पूछिय जान ॥

---

[१] आज भूसुक युद्ध में हरलीँ—भाटे

सअल-समाहिहि काह करिअइ । सुख-दुखेतें निचित मरिअइ ।।
छड्डिअउ छंद बांधकरण कपटेर आस । सुण्ण-पक्ख भिडि लेहु रे पास ।।
भणइ लुई आम्हे झाणे दिट्ठा । धमण-चमण वेणि उपरि बइट्ठा ।।१।।

(२९—राग पटमंजरी)

भाव ण होइ अभाव ण जाइ । अइस सँबोहें को पतिआइ ।।
लुई भणइ वढ ! दुलख विणाणा । तिधातुए विलइ ऊह लागेना ।
जाहिर वण्ण-चिन्ह-रूअ ण जाणी । सो कइसे आगम-वेएँ वखाणी ।।
काहे रे किस भणि मइँ दिवि पिच्छा । उदक-चंद जिम सांच न मिच्छा ।
लुई भणइ मइँ भावइँ कीस । जा लेइ अच्छम ताहेर ऊह न दीस ।।२९।।

—चर्यापद[1]

§ ६. विरूपा

काल ८३० ई० (देवपाल ८०६-४९) देश—त्रिउर (मगध ?) । कुल—भिक्षु, सिद्ध (३) । कृतियाँ—अमृतसिद्धि, दोहा-कोष, कर्मचंडालिका-

रहस्यवाद

(३—राग गवडा)

एक से शोंडिनि दुइ घरे सांधअ । चीअ न वाकलअ वारुणी बांधअ ।।
सहजे थिर करि वारुणि सांधअ । जें अजरामर होइ दिढ़ कांधअ ।।
दसमी दुआरते चिन्ह देखइआ । आइल गराहक अपने बहिआ ।।
चउशटि घडिये देल पसारा । पइठल गराहक नाहि निसारा ।।
एक घडुल्ली सरुइ नाल । भणइ विरुआ थिर कर चाल ।।३।।

—चर्यापद

[1] J.S.L. Cal. XXX

सकल समाधिहिँ काह करिज्जै । सुख-दुःखनतेँ निचित मरिज्जै ॥
छाडि छंद-बंध कर ना कपटकी आश । शून्य-पक्ष भीडि लेहु रे पाश ॥
भनै लुई मैँ ध्याने दीठा । धमन-चमन दोँउहि ऊपर बैठा ॥१॥

(२९—राग पटमंजरी)

भाव न होइ अभाव न होइ । ऐस सँबोधिहिँ को पतियाइ ।
लूइ भनै मूढ ! दुःलंख विज्ञाना । त्रिधातुहिँ विलसै ऊह लागै ना ॥
जाहि वर्ण-चिन्ह-रूप न जानी । से कैसे आगम-वेद बखानीं ।
काहे रे कैसे भनि मैँ देबोँ पूछा । उदक-चंद जिमि साँच न मिथ्या ॥
लूई भनै मैं भावौँ कैसे । जे लेइ रहौ तेहि ऊह न दीसै ॥२९॥
—चर्यापद

§ ६. विरूपा

दोहाकोष, विरूप-गीतिका, विरूप-वज्र-गीतिका, विरूप-पद-चतुरशीति, मार्ग-फलान्विता ववादक, सुनिष्प्रपंचतत्त्वोपदेश ।

रहस्यवाद

(३—राग गबडा)

एक से सूँडिन[१] दुइ घरे साँधै । चीअ न बाकल वारुणी बाँधै ॥
सहजे थिर करि वारुणि साँधा । जे अजरामर होइ (न) दृढ स्कंधा ॥
दशम दुवारे चिन्ह देखि कहेँ । आयउ ग्राहक अपन लेन कहेँ ॥
चौँसठ-घडिया देल पसारा । पइठु गराहक नाहिँ निसारा ॥
एक घडुल्ली स्वरूपी नाल । भनै विरूपा थिर करु चाल ॥३॥
—चर्यापद

---

[१] शराब बेँचने वाली

§ ७. डोम्बिपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९ ई०)। देश—मगध कुल—क्षत्रिय,

रहस्यवाद

(राग धनसी)

गंगा-जउँना-माँझे बहइ नाई। तँह बुडिली मातंगी पोइआ लीलें पार करेइ।
बाहतु **डोम्बी** बाहलो डोम्बी, बाट भइल उछारा।
सदगुरु-पाअ-प(सा)ए जाइब पुनु जिनउरा॥
पाँच केडुआल पडन्ते माँगे पीठत काच्छी बाँधी।
गअण-दुखोलें सिञ्चहू पाणी न पइसइ साँधी॥
चंद-सूज्ज दुइ चक्का सिठि-संहार-पुलिन्दा।
वाम दहिन दुइ भाग न चेवइ वाहतु छन्दा॥
कवड़ी न लेइ बोडी न लेइ सुच्छडे पार करई।
जो एथे चड़िया बाहब न जा(न)इ कूलें कूल बुड़ाई॥१४॥

—चर्यापद

§ ८. दारिकपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९ ई०)। देश—सालिपुत्र (उड़ीसा)

रहस्यवाद

(३४—राग बराडी)

सुन-करुण अभिन्ने चारें काअवाअचीए।
विलसइ **दारिक** गअणत पारिमकूले॥
अलक्ख लक्खइ चिए महासुहे।
विलसइ **दारिअ** गअणत पारिम कूलें॥

§ ७. डोम्बिपा

सिद्ध (४)। कृतियाँ—अक्षरद्विकोपदेश, गीतिका, नाड़ी-विंदु-द्वारे योग-चर्या।

रहस्यवाद

(राग धनसी)

गंगा-यमुना-माँझे चलै नाई। तँह बूडल मातंगी पुतिया लीले पार करेइ॥
ले चल डोम्बी ले चल डोम्बी-वाट सोझारा।
सद्‌गुरु-पाद-प्रसादे जायेब पुनि जिन-पूरा॥
पाँच केडुआल पडत माँगेमे पीठसे कच्छी बंधी।
गगन-दुखोलेहिँ सीँचहु पानी न पइठै संधी॥
चंद्र-सूर्य दुइ चक्का सृष्टिसंहार-पुलिन्दा।
वाम-दहिन दोउ मार्ग न दीसइ (नाव) चलाव स्वछंदा॥
कौडी न लेइ बौडी न लेइ छूछै पार करेइ।
जो एहिँ चढि चलावन न जानै कूलहिँ कूल बुडेइ॥१४॥
—चर्यापद

§ ८. दारिकपा

कुल—राजा, सिद्ध (७७)। कृतियाँ—महागुह्य तत्त्वोपदेश, तथताद्दृष्टि, सप्तम सिद्धांत

रहस्यवाद

(३४—राग बराडी)

शून्य करुणा अभिन्न काय-वाक्-चित्ते।
विलसै दारिक गगनते पारिमकूले॥
अलख लखै चित्त महासुखे।
विलसै दारिक गगनते पारिमकूले॥

किन्तो मन्तो किन्तो तन्ते किन्तो झाण-वखाणे।
अप्प पइट्ठा महासुह लीलें दुलक्ख परम-निवाणे॥
दुःखें सुखें एकू करिआ भुञ्जइ इन्दी जानी।
स्वपरापर न चेवइ **दारिक** सअलानुत्तर मानी।
राआ राआ राआ रे अवर राअ मोहे बाधा।
लुइपाअ-पए **दारिक** द्वादश भुअणे लाधा॥३४॥

—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९)। देश—डिसुनगर।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तिअड्डा चापि जोइनि दे अँकवाली। कमल-कुलिश घोंटि करहु विआली॥
जोइनि तइँ विनु खनहि न जीवमि। तो मुह चुम्बि कमल-रस पीवमि।
खेपहुँ जोइनि लेप न जाअ। मणि-कुले बहिआ उडिआने समाअ॥
सासु घरें घालि कोंचा-ताल। चाँद-सूज बेण्णि पखा फाल।
भणइ **गुन्डरी** अम्हे कुन्दुरे वीरा। नर अ नारी माझे उभिल चीरा॥४॥

—चर्यागीति

§ १०. कुक्कुरीपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९)। देश—कपिलवस्तु। कुल—ब्राह्मण

रहस्यवाद

(२—राग गवडा)

दुलि दुहि पिटा धरण न जाइ। रुखेर तेंतुलि कुँभीरे खाइ।
आँगन घर पण सुन हे भोविआती। कानेट चोरी निल अधराती॥

की तोर मंत्रे की तोर तंत्रे की तोर ध्यान बखाने।
आप पईठा महसुख लीले दुर्लख परम-निवाणे ॥
दुःख-सुख एक करी भखै इन्द्रजाली।
स्व-परापर न चीन्है दारिक सकल अनुत्तर मानी ॥
राजा राजा राजा अवर राजा मोह बँधाया।
लूईपाद-पभे दारिक द्वादश भुवनहिं पाया ॥३४॥
—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

कुल—लोहार, सिद्ध (४)। कृतियाँ—गीति।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तियड़ा चाँपि जोगिनि दे अँकवारी। कमल-कुलिश घोँटि करहु बियाली ॥
जोगिनि तोहि बिनु क्षणहुं न जीयौं। तव-मुख चूमि कमल-रस पीयौं ॥
फेँकेहु जोगिनि लेप न जाय। मणि-कुंडल बहि उडयाने समाय ॥
सासु घरे डाली कुंजी-ताल। चाँद-सूर्य दोउ पाखहिं फाल ॥
भनै गुंडरी मैं कुन्दुरे वीरा। नर-नारी-माँझे दीनेउँ चीरा ॥४॥
—चर्यागीत

§ १०. कुक्कुरीपा

सिद्ध (३४)। कृतियाँ—योगभावनोपदेश, स्रवपरिच्छेदन।

रहस्यवाद

(२—राग गवडा)

कूर्म दूहि पात्र धरन न जाय। वृक्षेर इम्ली कुंभीर खाय।
आँगन घर पुनि सुनु कुविशाती। कानेट चोरि लियेउ अधराती ॥

ससुरा निंद गेल बहुडी जागअ । कानेट चोरे निल का गइ मागअ ।।
दिवसइ बहुडी काग-डरे भाअ । राति भइले कामरू जाअ ।
अइसन चर्या कुक्कुरिपाए गाइउ । कोड़ि माझे एकु हिअहिं समाइउ ।।२।।

(२०—राग पटमंजरी)

हँउ निरासी खमन भतारी । मोंहोर विगोआ कहण न जाई ।
फिटल गो माए ! अन्तउडि चाहि । जा एथु वाहम सो एथु नाहि ।।
पहिल विआण मोर वासना पूडा । नाडि विआरन्ते सेव वापुडा ।
जाण जौवण मोर भइले से पूरा । मूलन खलि बाप संघारा ।।
भणथि कुक्कुरीपाए भवथिरा । जो एथु बूझइ सो एथु वीरा ।।२०।।

—चर्यापद

§११. कमरि(कंबल)पा

काल ८४० ई० (देवपाल ८०९-४९ ई०) । देश—उडीसा । कुल—राजकुमार

रहस्यवाद

(८—राग देवश्री)

सोने भरिती करुणा नावी ।
रूपा थोइ नाहिक ठावी ।।
वाहनु कामलि गअण-उवेसें ।
गेला जाम बाहुडइ कंइसें ।।
खुंटि उपाड़ी मेलिलि काच्छि ।
वाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि ।।
माँगत चढ़िले चउदिस चाहअ ।
(नाव-पीठ चढि विलहिँ पडअ) ।
केडुआल नाहि कें कि (नाविक) बाहव के पारअ ।।
वाम दाहिण चाँपि मिलि मिलि (चढ़ि) माँगा ।
बाटत मिलिल महासुह साँगा ।।८।।

—चर्यापद

सासु नींदि गइल बहुवा जागै। कानेट चोरि लिय कागहिँ माँगै ॥
दिवसहिँ बहू काग डर खाय। राति भइले कामरूप जाय ॥
ऐसन चर्या कुक्कुरि गाये। कोटि माँझ एक हियहिँ समाये ॥२॥

(२०—राग पटमंजरी)

हौं निराशी ख-मन भतारी। मोर विज्ञान कहल न जाई।
फूटल रे माई! अन्त मैं देखौं। जो एहिँ गिरे उ सो ऐंहि नाहीं ॥
प्रथम विज्ञाने मोरि वासना टूटी। नाडी बिचारते सोइ बापुड़ी ॥
नवयौवन मोर भइल से पूरा। मूल निखूटि पाप संहारा ॥
भनै कुक्कुरीपा भव थिरा। जो एहि बूझे सो एहिँ वीरा ॥
—चर्यापद

§ ११. कमरि(कंबल)पा

भिक्षु, सिद्ध (३०)। कृतियाँ—असंबंध-दृष्टि, असंबंध-सर्गदृष्टि, गीतिका।

रहस्यवाद

(८—राग देवक्री)

सोनेहिँ भरती करुणा नावी।
रूपा थापै नाहिक ठाँवी ॥
ले चल कामलि गगन-उदेसे।
गैला जन्म बहुरिहैं कैसे।
खूँटी उपाडि फेंकल काछी।
ले चल कामलि सद्गुरु पूछी ॥
माँगे चढल चतुर्दिश देखै।
(नाव-पीठ चढि बलहीं पड़ई)।
केडुआल नाहीं कैसे चलायब पारै ॥
वाम-दहिन चाँपि मिलि(चढ़ि)माँगा।
वाटेहिँ मिलल महासुख-संगा ॥८॥
—चर्यापद

§१२. कण्हपा

(कृष्णपाद, चर्यापाद, कृष्णवज्रपाद), काल—८४० (देवपाल ८०६-४९ ई०)। देश—कर्नाटक : निवास—विहार और बंगाल (सोमपुरी)।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोअह गव्व समुव्वहइ, हउँ परमत्थेँ पवीण।
कोडिअ-मज्झे एक्कु जइ, होइ णिरंजण-लीण ॥१॥
आगम-वेअ-पुराणेँ (ही), पण्डिअ माण वहन्ति।
पक्क-सिरीफलेँ अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति ॥२॥
खिति-जल-जलण-पवण-गअण बि माणह।
मण्डल-चक्क विसअ-बुद्धि लइ परिमाणह ॥९॥

(२) सहज-मार्ग

णित्तरंग-सम सहज-रूअ सअल-कलुस-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहिए कुच्छ णाहि काण्ह फुट कहिए ॥१०॥
वहिण्णिक्कालिआ सुण्णासुण्ण पइट्ठु।
सुण्णासुण्ण-वेणि मज्झेँ रे बढ़! किम्पि ण दिट्ठु ॥११॥
सहज एक्कु पर अत्थि तहि फुड़ काण्ह परिजाणइ।
सत्थागम बहु पढइ सुणइ बढ़! किम्पि ण जाणइ ॥१२॥
अह ण गमइ ऊह ण जाइ। वेण्णि-रहिअ तसु णिच्चल ठाइ।
भणइ काण्ह मण कहबि ण फुट्टइ। णिचल पवण घरिणि-घर वट्टइ ॥१३॥
वरगिरिकन्दर गुहिरे जगु तहिँ सअल' वि तुट्टइ।
विमल सलिल सोँस जाइ, कालग्गि पइट्टइ ॥१४॥
पह वहन्ते णिअ-मणा, बन्धण किअऊ जेण।
तिहुअण सअल' वि फारिआ, पुणु सांरिअ तेण ॥१७॥

---

[1] The Journal of the Department of Letters, Cal. Uni.

§ १२. कण्हपा

कुल—ब्राह्मण-भिक्षु, सिद्ध (१७)। कृतियाँ—गीतिका, महाढुंढन, वसंत तिलक, असंबंध-दृष्टि, वज्रगीति, दोहाकोष[1]।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोगा गर्व समुव्वहै, हौं परमार्थ-प्रवीण।
कोटी-मध्ये एक यदि, होइ निरंजन-लीन ॥१॥
आगम-वेद-पुराणहीं, पण्डित मान वहंति।
पक्व-सिरीफल अलिय जिमि, बाहरहीं हि भ्रमन्ति ॥२॥
क्षिति-जल-ज्वलन-पवन, गगनहु मानहु।
मंडल-चक्र विषय-बुद्धि लेइ परिमाणहु ॥६॥

(२) सहज-मार्ग

निस्तरंग सम सहज रूप, सकल-कलुष-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहित किछु नाहि, **काण्हे** फुर कहिये ॥१०॥
बाहर निकालिय शून्याशून्य प्रविष्ट।
शून्याशून्य दोउ मध्ये, मूढ़ा ! किछुअ न दृष्ट ॥११॥
सहज एक **पर** अहै तहँ फुर **काण्ह** परि-जानै।
शास्त्रागम बहु पढै सुनै मूढ ! किछुउ न जानै ॥१२॥
अधो न जाइ ऊर्ध्वं न जाइ। द्वैत-रहित तासु निश्चल ठाइ।
भनै **काण्ह** मन कैसहु न फूटै। निश्चल पवन घरनी-घरे बाटै ॥१३॥
वर-गिरि-कन्दर-कुहरे, जग तँह सकलउ टुट्टै।
विमल-सलिल सुखि जाइ, काल-अगिन पइट्ठै ॥१४॥
प्रभा वहन्ता निज मन, बंधन कियेऊ जेहिं।
त्रिभुवन सकलउ फारिया, पुनि संहारिय तेहिं ॥१७॥

---

[1] Vol. XXVIII, pp. 24-27

सहजे णिच्चल जेण किअ, समरसें णिअ-मण-राअ।
सिद्धो सो पुण तक्खणे, णउ जरामरणह भाअ ॥१९॥

(३) निर्वाण-साधना

णिच्चल णिव्विअप्प णिव्विआर। उअअ-अत्थमण-रहिअ सुसार।
अइसो सो णिव्वाण भणिज्जइ। जहिँ मण माणस किम्पि ण किज्जइ ॥२०॥
जइ पवण-गमण-दुआरे, दिढ तालावि दिज्जइ।
जइ तसु घोरान्धारें, मण दिवहो किज्जइ ॥
जिण-रअण उअरें जइ, सो वरु अम्वरु छुप्पइ।
भणइ काण्ह भव भुञ्जन्ते, णिव्वाणो'बि सिज्झइ ॥२२॥
वर-गिरि-सिहर उतुंग मुणि, सबरें जहिँ किअ वास।
णउ सो लंघिअ पँचाणणेहि, करि-वर दुरिआ आस ॥२५॥
एहु सो गिरिवर कहिअ मँइ, एहु सो महसुह ठाव।
एक्कु रअणी सहज-खण, लब्भइ महसुह जाव ॥२६॥
सब जगु काअ-वाअ-मण मिलि विफुरइ तहि सो दूरे।
सो एहु भंगे महासुह णिव्वाण एक्कु रे ॥२७॥
एक्कु ण किज्जइ मन्त ण तन्त। णिअ-घरणी लइ केलि करन्त ॥
णिअ-घरे घरणी जाव ण मज्जइ। ताव कि पञ्च वण्ण विहरिज्जइ ॥२८॥
एसो जप-होमे मण्डल कम्मे। अणुदिण अच्छसि काहिउ धम्मे ॥
तो विणु तरुणि णिरन्तर णेहें। बोहि कि लब्भइ एण'बि देहें ॥२९॥
जें किअ णिच्चल मण-रअण, णिअ-घरणी लइ एत्थ।
सोह वाजिरा-णाहु रे, मयिँ वुत्तो परमत्थ ॥३१॥
जिमि लोण विलिज्जइ पाणिऐंहि, तिम घरिणी लइ चित्त।
समरस जाई तक्खणे, जइ पुणु ते सम णित्त ॥३२॥

—दोहाकोष[1]

---

[1] J.D.L. Cal. vol. XXVIII, pp. 24-27

सहजे निश्चल जेँहि किय, सम-रस निज-मन राग।
सिद्धा सो पुनि तत्क्षणे, न जरामरणहँ भाग ॥१९॥

(३) निर्वाण-साधना

निश्चल निर्विकल्प निर्विकार। उदय-अस्तमन-रहित सु-सार।
ऐसो सो निर्वाण भनिज्जै। जँह मन-मानस कछुउ न किज्जै ॥२०॥

यदि पवन-गमन-दुआरे, दृढ तालाहू दीजै।
यदि तँह घोर अन्हारे, मन-दीपहु कीजै॥

जिन-रतन उये यदि, सो वर-अंबर छूवै।
भनै काण्ह भव भोगतहिँ, निर्वाणहु सीझे ॥२२॥

वर-गिरि-शिखर-उतुंग मुनि, शबरा[१] जँह किउ वास।
ना सो लाँघेँउ पांच मुख, करिवर दूरेँउ आस ॥२५॥

एहु सो गिरि-बर कहेँउँ मैँ, एहु सो महसुख-ठाँव।
एक रजनि सहज क्षणे, लभै महासुख जाव ॥२६॥

सब जग काय-वाक्-मन मिलि , स्फुरै नाहि सो दूरे।
सो एहि भंगेँ महासुख निर्वाण एक रे ॥२७॥

एक न कीजै मन्त्र न तन्त्र। निज घरनी लेइ केलि करन्त।
निज घरे घरनी जौ न मज्जै। तौ की पंच वर्ण विहरीजै ॥२८॥

ऐँहु जप-होमे मंडल कर्मे। अनुदिन रही काहे धर्मे।
तो विनु तरुणि निरन्तर स्नेहे। बोधि कि लब्भै अन्यहिँ देहे ॥२९॥

जो किउ निश्चल मन-रतन, निज घरनी लेइ एत्थ।
सोँई वज्जरनाथ रे, मैँ बोलेँउँ परमार्थ ॥३१॥

जिमि नोन विलाय पानियहिँ, तिमि घरनी लेइँ चित्त।
सम-रस जाये तत्क्षण, यदि पुनि सो सम नित्त्य ॥३२॥
—दोहाकोष

---

[१] वज्रधर=निरंजन=परमतत्व

(४) रहस्य-गीत

(२) गीतें[१]

(९—राग पटमंजरी)

एवंकार दिढ़ वाखोड़ मोड्डिउ। विविह् विआपक बाँधन तोडिउ॥
काण्ह् विलसिआ आसव-माता। सहज-नलिनि-वन पइसि निवाता॥
जिम जिम करिणा करिणिरें रीभअ। तिम तिम तथता-मअगल वरिसअ॥
छड गइ सअल सहावे सुद्ध। भावाभाव वलाग न छुद्ध॥
दशबल रअण हरिअ दश दीसें। अविद्यकरिकूँ दम अकिलेसें॥९॥

(१०—राग देशारव)

नगर वाहिरे डोम्बि तोहोरि कुडिआ। छाइ छोंइ जाइ सो वाम्हण नाडिया।
आलो डोम्बि तोए सम करिब म संग। निघिण काण्ह् कपालि जोई लाँग॥
एक सो पदुम चौषठि पाखुड़ी। तहिं चडि णाचअ डोम्बि वापुड़ी॥
हालो डोम्बि तो पूछमि सद्भावे। आइससि जासि डोम्बि काहरि नावें॥
ताँति विकणअ डोम्बी अवर न चँगेडा। तोहोर अन्तरे छड़ि नड़ पेड़ा॥
तूँ लो डोम्बी हाँउ कपाली। तोहोर अन्तरे मोए घेणिलि हाडेरि माली॥
सरवर भाँजिअ डोम्बी खाअ मोंलाण। मारमि डोम्बी लेमि पराण॥१०॥

(११—राग पटमंजरी)

नाडि शक्ति दिढ धरिआ खाटे। अनहा डमरु बजइ विरनाटे॥
काण्ह् कपाली जोइ पइठ अचारे। देह न अरि विहरइ एककारें॥
अलि-कलि घंटा नेउर चरणे। रवि-शशि-कुंडल किउ आभरणे॥
राग-दोष-मोहे लाइअ छार। परम मोख लवएँ मुत्ताहार॥
मारिअ सासु नणंद घरें शाली। मा मरिअ काण्ह् भइल कपाली॥११॥

---

[१] J.D.L. XXX (115—56)

(४) रहस्य-गीत

(२) गीतें

(९—राग पटमंजरी)

ऐंहि विधि दोउ खम्भा मोडी। विविध-व्यापक बंधन तोडी।
काण्ह विलासै आसव-माता। सहज नलिन-वन पइठि नि-वाता॥
जिमि जिमि करिणा करिणिहिं रीझै। तिमि तिमि तथता मद-कण बरसै॥
षड्गति सकल स्वभावे शुद्ध। भावाभाव बालाग्र न शुद्ध॥
दशबल-रतन-भरित दश दीसा। अविद्या-करिहिं दम अक्लेशा॥९॥

(१०—राग देशारव)

नगर-बाहिरे डोम्बी[१] तोहर कुटिका। छुइ छुइ जाइ सो बाभन-लडिका।
अरे डोम्बी तोरे साथ करब न संग। निर्घृण काण्ह कपाल-जोगि नंग।
एकउ पदुम चौंसठ पाँखुरी। तँह चढि नाचै डोम्बि बापुरी।
हे रे डोम्बी! तोहिं पूँछौं सद्भावे। आवै जाय डोम्बी! केकरि नावें॥
तंत्री विकिनै डोम्बी और चंगेरा। तोहर कारण छाडी नल पेरा।
तँू रे डोम्बी मैं कपाली। तोहों र कारण मैं लेलों हाडकै माली॥
सरवर भाँगि डोम्बी खाइ मृणाल। मारहुँ डोम्बि लेई पार॥१०॥

(११—राग पटमंजरी)

नारी शक्ति दृढ धरिके खाटे। अनहद डमरू बजै वीर-नादे॥
काण्ह कपाली जोगी पइठो आचारे। देह-नगरी विहरै एकाकारे॥
आली-काली-घंटा-नूपुर चरणे। रवि-शशि-कुंडल कियउ आभरणे॥
राग-द्वेष-मोहे लाई छार। परम-मोक्ष लिये मुक्ताहार॥
मारें उसासु-ननद घरें साली। मातु मारि काण्ह भइल कपाली॥११॥

---

[१] सुरति=चित-एकाग्रता

(१८—राग गउडा)

तीन-भुअण मइँ बाहिअ हेलें। हँउ सूतेलि महासुह लीलें॥
कइसनि डोम्बि तोहोँरि भाभरि आली। अन्ते कुलिण जण माँझें कबाली॥
तँइ लो डोम्बी सअल बिटालिउ। काज ण कारण ससहर टालिउ।
केहोँ केहोँ तोँहोँरे विरुआ बोलइ। विदु जन लोअ तोरे कण्ठ न मेलइ॥
काण्हे गाइ तू कामचँडाली। डोम्बि तआगलि नाहि छिनाली॥१८॥

(१९—राग भैरवी)

भव-णिव्वाणे पड़ह माँदला। मण-पवण-वेण्णि करँड कशाला॥
जअ जअ दुन्दुहि सद्द उछलिला। काण्हे डोम्बि-विवाहे चलिला॥
डोम्बि विवाहिअ अहारिउ जाम। जउतुके किअ आणूतू धाम॥
अहणिसि सुरअ-पसंगे जाअ। जोइणि जाले रअणि पोँहाअ॥
डोँबिएँ संगे जोई रत्तो। खणह ण छाडअ सहज-उमत्तो॥१९॥

(३६—राग पटमंजरी)

सुण्ण वाह तथता पहारी। मोह-भँडार लइ सअल अहारी॥
घुमइ न चेवइ स-पर-विभागा। सहज-निदालु काण्हिला लाँगा॥
चेअण ण बेअण भर निद गेला। सअल मुकल करि सुहे सुतेला॥
सुअने मइँ देखिल तिहुअण सुण्ण। घोलिअ अवनागवण बिहूण॥
साखि करिब जालंधरि-पाए। पाखि न चहइ मोँरि पँडिआचाए॥३६॥

(४२—राग कामोद)

चिअ सहजे सुण्ण सँपुण्णा। काँधवियोएँ मा होहि विसन्ना॥
भण कइसे काण्हा नाही। फरइ अणुदिण तिलोएँ समाई॥

(१८—राग गउडा)

तीन भुवन मैं गयरूँ हेलैं। मैं सूतलि महासुखें लीलैं॥
कैसन डोम्बि! तोर भाभर आली। अन्त कुलीन जन-मध्ये कपाली॥
तैं रे डोम्बी! सकल विटालेंउ। कार्य न कारण शशधर टालेंउ॥
केंहु केंहु तोकहँ बरुआ बोलै। बड जन तोंके कंठ न मेलै॥
काण्हा गावै तू काम-चंडाली। डोम्बी त आगे नाहिं छिनाली॥

(१९—राग भैरवी)

भव - निर्वाणे पटह माँदला। मन-पवन दोऊ करौं कशाला॥
'जय' 'जय' दुंदुभि शब्द उचरिला। काण्हे डोम्बि-विवाहे चलिला॥
डोम्बि वियाहि अहारेंउ जन्म। जौतुक कियउ अनुत्तर-धर्म॥
अहनिशि सुरत-प्रसंगे जाय। जोगिनि-जाले रजनि विताय॥
डोम्बी-संग जोउ रक्त। क्षण ना छाडै सहजुन्मत्त॥१९॥

(३६—राग पटमंजरी)

शून्य बाहे तथता प्रहारिय। मोह-भंडार लेंइ सकल अहारी॥
सुतै न चिन्तै स्व-पर-विभंगा। सहज-निद्रालु काण्हिला नंगा॥
चेतन न वेदन भर-नींदि गेला। 'सकल मुक्त करि सुखे सुतेला॥
स्वप्ने मैं देखल त्रिभुवन शून्य। घोरि के अवनागवन - विहून॥
साखि करब जालंधरपाद। पास न देखौं मोंर पंडिताचार॥३६॥

(४२—राग कामोद)

चित्त सहजेहिं शून्य - सँपूर्णा। स्कंध-वियोगे ना होहु विषण्णा॥
भनु कैसे काण्हा नाहीं। फिरै अनुदिन तिलोक-समाई॥

मूढा दिठ नाठ देखि काअर । भाँग तरंग कि सोषइ साअर ॥
मूढ ! अछन्ते लोअण पेक्खइ । दूध माँझें लउ अच्छन्ते ण देक्खइ ॥
भव जाई ण आवइ ण एथु कोई । अइस भावे विलसइ **काण्हिल** जोई ॥४२॥

(४५—राग मल्लारी)

मण-तरु पाँच इन्दि तसु साहा । आसा-बहल पात फल बाहा ॥
वर-गुरु-वअणें कुठारें छिज्जअ । **काण्ह** भणइ तरु पुण ण उइजअ ॥
बढइ सो तरू सुभासुभ पाणी । छेवइ विदु-जन गुरु-परिमाणी ॥
जो तरु छेवइ भेउ ण जाणइ । सड़ि पडिआँ मुढ ! ना भव माणइ ॥
सुण्णा तरुवर गअण-कुठार । छेवइ सो तरु-मूल ण डाल ॥४५॥

—चर्यापद[1]

(५) वज्रगीति[1]

कोल्लयि रे ठिअ बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला ।
घणे किपिट्टहों वज्जइ, करुणेकि अई न रोला ॥
तहि बल खज्जइ गाढ़े, मअ णा पिज्जिअई ।
हले कलिञ्जल पणिअइ दुद्दुरु वज्जिअई ॥
चउसम कस्तुरि सिहला कप्पुर लाइअई ॥
मालइ-इंधन सलील तहि भरु खाइअई ॥
पेंखण खेट करन्ते सुद्धासुद्ध ण माणिअइ ॥
निरें सुह अङ्ग चडाविअइ जस नावि पणिअइ ॥
मलअज कुन्दुरु वट्टइ, डिंडिम तहिँ णा वज्जिअइ ॥

—चर्यापद[2]

---

[1] J.D.L. Cal. XXX, p. 36 [2] J.D.L. Cal. XXVIII, p. 36

मूढ ! दृष्ट नष्ट देखि कातर। भांग तरंग कि सोखै सागर ॥
मूढ ! अछतै लोग न पेखै। दूध माँझ घृत अछत न देखै ॥
भव जाइ न आवै न ऐंहिं कोई। ऐस भावहिं विलसै काण्हिल योगी ॥२४॥

(४५—राग मल्लारी)

मन तरु पाँच इन्द्रि तसु साखा। आशा-बहुल पत्र-फल-वाहा ॥
वरगुरु-वचन कुठारेंहिं छीजै। काण्ह भनै तरु पुनि न उपजै ॥
बढै सो तरू शुभाशुभ पानी। छेवै विदु-जन गुरु-परिमाणी ॥
जो तरु छेवै भेद न जानै। सड़ पड़ें उयो मुढ ! न भव मानै ॥
शून्या तरुवर गगन-कुठार। छेवै सो तरु-मूल न डार ॥

—चर्यापद

(५) वज्रगीति[1]

कोल्लयि रे ठिअ बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला।
　　घणे किपिट्टहों वज्जइ, करुणेकि अई न रोला ॥
तहि वल खज्जइ. गाढ़े, मअ णा पिज्जिअई।
　　हले कलिञ्जल पणिअइ दुद्दुर बज्जिअई ॥
चउसम कस्तुरि सिहला कप्पुर लाइअई।
　　मालइ-ईंधन सलील तहि भरु खाइअई ॥
पेंखण खेट करन्ते सुद्धासुद्ध ण माणिअइ।
　　निरें सुह अङ्ग चडाविअइ जस नावि पणिअइ ॥
मलअज कुन्दुरु बट्टइ, डिंडिम तहिँ णा वज्जिअइ ॥

—चर्यापद

---

[1] J.D.L. Cal XXVIII, p. 36

§१३. गोरखनाथ (गोरक्षपा)

काल—८४५ (देवपाल ८०९–४९)। देश—गोरखपुर(?)। कुल····
कृतियाँ—(१) गोरखबानी[1], (२) वायुतत्त्वोपदेश[2]

१. आत्म-परिचय[3]

(१) मछेन्द्र (मत्स्येन्द्र)के शिष्य—

प्यंडे होइ तो मरै न कोई। ब्रह्मंडे देषैं[4] सब लोई।
प्यंड ब्रह्मंड निरंतर वास। भणंत गोरष मछचंद्रका दास॥ (२५।७०)
गुदडी जुग च्यारि तैं आई। गुदडी सिध-साधिकां चलाई।
गुदडीमें अतीतका वासा। भणंत गोरख मछचंद्रका दासा॥ (६६।१९७)[5]

(२) चौरासी सिद्धोंसे संबंध

मन मछिंद्रनाथ पवन ईस्वरनाथ चेतना चौरंगीनाथ।
ग्यान श्रीगोरखनाथ। (पृष्ठ २०४)
नाद हमारै वाहै कवन। नाद बजाया तूटै पवन।
अनहद सबद बाजत रहै। सिध-संकेत श्रीगोरख कहै॥ (३७।१०६)
नौ नाथा नै चौरासी सिधा, आसणधारी हूव॥ (१३३।५)
आदिनाथ[6] नाती मछिंद्रनाथ पूता। ब्यंद तोलै राषीले गोरष अवधूता॥ (पृ० ९१)

---

[1] डाक्टर पीतांबरदत्त बडथ्वाल सम्पादित—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (संवत् १९९९) [2] भोट-भाषानुवाद (तनजुर ४८।१५१)

[3] सब उद्धरण गोरखवाणी से पृष्ठ और पद्यांक

[4] ष का उच्चार ख और श दोनों होता है, यहां ख है।

[5] गोरखवानीकी भाषा ९वीं सदी नही पंद्रहवीं-सोलहवीं की है।

[6] जलंधरपाद (दे० पुरातत्त्व-निबंधावली, पृ० १६३)

२. दर्शन (चौरासी सिद्धोंका)

(१) सहजयान

हवकि न बोलिबा ठबकि न चालिबा धीरै धोखा पाँव ।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरषराव ॥ (११।२७)
गिरही सो जो गिरहै काया । अभि-अंतरकी त्यागै माया ।
सहज-सीलका धरै सरीर । सो गिरही गंगाका नीर ॥ (१७।४५)
निद्रा सुपनैं बिन्दु कूं हरै । पंथ चलंतां आतमां मरै ।
बैठां षटपट ऊभां उपाधि । गोरख कहै पूता सहज-समाधि ॥ (७०।२१२)
जिहि घर चंद-सूर नहिं ऊगै, तिहि घरि होसी उजियारा ।
तिहां जे आसण पूरौ तौ सहजका भरौ पियाला मेरे ज्ञानी ॥ (९०।४)
सहज-पलांण पवन करि घोड़ा, लै लगाम चित चबका ।
चेतनि असवार ग्यान गुरू करि, और तजौ सब ढबका ॥ (१०३।२)
सहज गोरखनाथ वणिजे कराई, पंच बलद नौ गाई ।
सहज सुभावै बाषर ल्याई, मोरे मन उड़ियानी आई ॥ (१०४।१)
भणंत गोरखनाथ मछिंद्रका पूता, एहा बणिज ना अरथी ।
करणी अपणी पार उतरणां, बचनें लेणां साथी । (१०४।३)
काया गढ़ लेबा जुगे-जुग जीवा ॥टेक॥
काया गढ़ं भीतरि नौ लष खाई , जंत्र फिरै गढ़ लिया न जाई ।१।
ऊंचे नीचे परबत झिलमिल षाई, कोठड़ीका पाणी पूरण गढ़ जाई ।
इहां नहीं उहां नहीं त्रिकुटी-मंझारी, सहज-सुनि में रहनि हमारी ।३।
आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता, कायागढ़ जीति ले गोरष अवधूता ।४। (१४३।३९)
त्रिभुवन डसती गोरखनाथ डीठी ॥टेक॥
मारौ स्रपणीं जगाई ल्यौ भौरा,
जिनि मारी स्रपणीं ताकौं कहा करै जौंरा ।१।
स्रपणीं कहै मैं अबला बलिया,
ब्रह्मा बिस्न महादेव छलिया ।२।

माती माती स्रपनीं दसौ दिसि धावै,
गोरखनाथ गारुड़ी पवन वेगि ल्यावै। (१३६।३)
अवधू सहज हंसका षेल भणीजै, सुंनि हंसका बास।
सहजैं ही आकार निराकार होइसी, परम-ज्योति हंसका निवास। (१६१।४०)
अवधू सहज-सुनि उतपना आइ। समि सुनि सतगुरु बुझाइ।
अतीत सुनिमैं रह्या समाइ। परम-तत्व मैं कहूं समझाइ। (१६३।६२)
बांफ न निकसै बूंद न ढलके, सहजि अंगीठी भरि भरि रांधै।
सिध-समाधि योग-अभ्यासी, तब गुरु परचै साधै। (२१८।४४)

(२) मध्य-मार्ग

षांयें भी मरियें अणषांयें भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि ही तरिये।
मधि निरंतर कीजै बास। निहचल मनुवां थिर होइ सांस। (५१।१४६)

(३) अलख और निरंजन-तत्त्व—

घरबारी सो घरकी जाणै। बाहरि जाता भीतरि आणै।
सरब निरंतरि काटै माया। सो घरबारी कहिये निरंजनकी काया। (१६।४४)
पंच तत्त ले सिधां मुडाया, तब भेंटि ले निरंजन-निराकारं।
मन मस्त हस्ती मिलाइ अवधू, तब लूटि ले अषै भंडार। (२७।७७)
अलेष लेषंत अदेष देषंत, अरस-परस ते दरस जाणी।
सुनि गरजंत वाजंत नाद, अलेष लेषंत ते निज प्रवाणी। (३२।६१)
उदय न अस्त राति न दिन, सरबे सचराचर भाव न भिन्न।
सोई निरंजन डाल न मूल, सर्बव्यापिक सुषम न अस्थूल। (३६।१११)
माता हमारी मनसा बोलिये, पिता बोलिये निरंजन-निराकारं।
गुरु हमारै अतीत बोलिये, जिन किया पिण्डका उधारं। (६७।२०२)
नाद-विन्द गांठि प्रवानां। कवण घटि जोति कवण अस्थानां।
कहा निरंजन बासा करही। कहाँ काली नागनी मीडक धरहीं॥ (१६६।१०)
कहाँ जलधर पवना मेला। उंद्र कहाँ बिलइया घेरा।
सींगी नाद कहाँ जोगी पूरा। जीत्या संग्राम पुरिष भया सूरा॥ (१६६।११)

(४) शून्य और आकाशतत्त्व

आकाश-तत सदा-सिव जांण। तसि अभिअंतरि पद-निरबाण।
प्यंडे परचानैं गुरमुषि जोइ। बाहुडि आवागवन न होइ। (५७।१६८)
जोगी सो जो राषै जोग। जिभ्या यन्द्री न करै भोग।
अंजन छोड़ि निरंजन रहै। ताकूं गोरख योगी कहै॥ (७३।२३०)
सुंनि ज माई सुंनि ज बाप। सुंनि निरंजन आपै आप।
सुनिकै परचै भया सथीर। निहचल जोगी गहर-गंभीर॥ (७३।२३१)
अवधू मनका सुंनि रूप, पवनका निरालंभ आकार।
दमकी अलेख दसा, साधिबा दसवैं द्वार॥ (१८७।८)
अवधू हिरदा न होता तब सुंनि रहिता मन।
नाभी न होती तब निराकार रहिता पवन॥
रूप न होता तब अकुलान रहिता सबद।
गगन न होता तब अंतरष रहिता चंद॥ (१८९।२८)
स्वामी कौण तेज थैं जोति पलटै। कौण सुंनि थे बाबा फुरै।
कौण सुंनि थैं त्रिभुवन सार। कौण सुंनि थैं उतरिबा पार॥ (१९४।६९)
अवधू सुंने आवै सुंने जाइ। सुंने चीया रहे समाइ।
सहज-सुंनि मन-तन थिर रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै॥ (१९५।७८)
अवधू सबद अनाहद सुरति सोचित। निरति निरालंभ लागै बंध।
दुबध्या मेटि सहजमें रहै। ऐसा बिचार मछिंद्र कहै। (१९६।८४)

(५) रहस्यवाद

सिष्टि-उतपती बेली प्रकास, मूल न थी, चढी आकास।
उरध गोढ़ कियौ बिसतार, जाणनै जोसी करै विचार। (११९।१)
भणत गोरखनाथ मछिंद्रना पूता, मारयौ मृघ भया अवधूता।
याहि हियाली जे कोई बूझै, ता जोगीको त्रिभुवन सूझै। (११९।५)

गुरु जी ऐसा करम न कीजै, ताथैं अमी-महारस छीजै ॥ टेक ॥
दिवसै बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै ।
जाणि बूझि रे मूरिष लोया घरि-घरि बाघणि पोषै ॥
नदी तीरै विरषा नारी संगै पुरषा अलप-जीवनकी आशा ।
मनथैं उपज मेर षिसि पड़ई ताथैं कंध बिनासा ॥
गोड़ भये डगमग पेट भया ढीला, सिर बगुलाकी पँखियाँ ।
अमी-महारस बाघणी सोष्या घोर मथन जैसी अंखियां ॥
बाँघिनीको निदिलै बाघनीको बिदिलै बाघनी हमारी काया ।
बाघनी घोषि घोषि सुंदर षाये भणत गोरखराया ।३।
(१३७।४३)

बांधौ बांधौ बछरा पीओ पीओ षीर । कलि अजरावर होइ सरीर । टेक ।
आकासकी धेन बछा जाया । ता धेनकै पूछ न पाया ।१।
बारह वछा सोलह गाई । धेन दुहावत रैन बिहाई ।२।
अचरा न चरै धेन कटरा न षाई । पंच ग्वालियाँकी मारण धाई ।
याही धेनक दूध जु मीठा । पीवै गोरखनाथ गगन बईठा ॥ (१४७।५१)

सांभलि राजा बोल्या रे अवधू । सुणैं अनोपम वाणी जी ।
निरगुण नारी सूं नेह करंता । झबकै रैणि बिहाणी जी । टेक ।
डाल न मूल पत्र नहि छाया । बिण जल पिंगुला सीचै जी ।
बिणही मढ़ीयां मंदला बाजै । यण विधि लोका रीझै जी ।१।
चीटयां परबत ढोल्या रे अवधू । गायां बाघ बिडारचा जी ।
सुसलै समदा लहरि मनाई । मृघा चीता मारचा जी ॥
ऊझड़ि मारगि जाता रे अवधू । गुर विन नहीं प्रकासा जी ।
जीत्या गोरष अब नहीं हारै । समझि रराले पासा जी । (१५३।५७)

गोरष बालड़ा बोलै सतगुरु वाणी रे ।

जीवता न परराया तेन्हँ अगनि न पांणीं रे ॥ टेक ॥
षीलौ दूझै भैंसि बिरोलै, सासूड़ी पालनड़ै बहुड़ी हिंडोलै ।१।
कोयल मोरी आंबौ वास्यौ, गगन मछलड़ी बगलौ ग्रास्यौ ।२।
करसन पाकू रषवालू षाधू, चरि गया मृघला पारधी बांधू ।३।
सींगी नादै जोगी पूरा, गोरखनाथ परन्या तिहाँ चंद न सूरा । (१५५।६०)

३–साधना और उलटवाँसी

(१) साधना

बैठा अवधू लोकी षूँटी, चलता अवधू पवनकी मूठी ।
सोवता अवधू जीवता मूवा, बोलता अवधू प्यंजरै सूवा । (२५।७१)
दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा सुरति लुकाइबा कानं ।
नासिका अग्रे पवन लुकाइबा, तब रहि गया पद निर्वानं । (२७।७५)
उलटया पवना गगन समोइ, तब बालरूप परतषि होइ ।
उदै ग्रहि अस्त हेम ग्रहि पवन मेला, बँधिलै हस्तिया निज साल भेला ॥ (३१।८८)
अहंकार तूटिवा निराकार फूटिवा, सोषीला गंग-जमनका पानी ।
चंद-सूरज दोऊ सनमुषि राखीला, कहो हो अवधू तहाँकी सहिनाणी ॥
(३६।११३)
अवधू रवि अमावस चंद सु पड़िवा । अरधका महारस ऊरध ले चढ़िवा ॥
गगन अस्थाने मन उनमन रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥ (१८८।१८)
षरतर पवना रहै निरंतरि । महारस सीझै काया अभिअंतरि ।
गोरख कहै अम्हे चंचल ग्रहिया । सिव-सक्ती ले निज घर रहिया ॥ (४५।१३०)

(२) उलटवाँसी

गगनि-मंडलि मैं गाय बियाई कागद दही जमाया ।
छाछि छाँड़ि पिंडता पीनी सिधा माषण खाया ॥ (६६।१६६)

नाथ बोले अमृत वाणी बरिषैगी, कंबली भीजैगा पाणी । टेक ।
गड़ि पड़रवा बाँधिलै षूंटा, चलै दमामा बाजि ले ऊँटा ।१।
कउवाकी डाली पीपल बासै, मूसाकै सबद बिलइया नासै ।२।
चले बटावा थाकी बाट, सोवे डुकरिया ठौरे षाट ।३।
ढूकि ले कूकुर भूकि ले चोर, काढै धणी पुकारै ढोर ।४।
ऊजड़ षेड़ा नगर-मझारी, तलि गागरि ऊपर पनिहारी ।५।
मगरी परि चूंल्हा धूंधाइ, पोवणहाराकी रोटी खाइ ।६।
कामिनि जलै अँगीठी तापै, बिच बैसंदर थरहर काँपै ।७।
एक जु रढिया रढती आई, बहू बिवाई सासू जाई ।८।
नगरीको पाणी कुई आवै, उलटी चरचा गोरख गावै । (१४१।४७)

४—गोरखका संदेश

(१) रुढ़ि-खण्डन

अबूझि बूझि लै हो पंडिता, अकथ कथिलै कहाणी ।
सीस नवावत सतगुरु मिलिया, जागत रैण विहाणी । (७२।२२२)
मेरा गुरु तीनि छंद गावै,
ना जाणौं गुर कहाँ गैला, मुझ नींदड़ी न आवै ।। टेक ।।
कुम्हराकै घरि हाँडी आछै, अहीराके घरि साँडी ।
बमनाकै घरि राड़ी आछै, राड़ी, साँडी हाँड़ी ।१।
राजाकै घरि सेल आछै, जंगल-मधें बेल ।
तेलीके घरि तेल आछै, तेल-बेल-सेल ।२।
अहीरकै घरि महकी आछै, देवल-मध्ये ल्यंग ।
हाटी-मधे हींगँ आछै, हींगँ, ल्यंग, स्यंग ।३।
एकै सुत्रै नाना वणियाँ, बहु भाति दिखलावै ।
भणंत गोरष त्रिगुणी माया, सतगुर होइ लषावै ।
(१३६।४२)

संयम चितवो जुगत अहार। न्यंद्रा तजौ जीवनका काल।
छाड़ौ तंत-मंत वेदंत। जंत्र गुटिका धात पषंड।
(१७०।४)

जड़ी-बूटीका नांव जिनि लेहु। राज-दुआर पाव जिनि देहु।
थंभन मोहन वसिकरन छाड़ौ औचाट। सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभकी बाट।
(१७०।५)

नैण महारस फिरौ जिनि देस। जटा भार वँधौ जिनि केस।
रुष-विरष-बाड़ी जिनि करो। कूवा-निवाण षोदि जिनि मरौ। (१७०।७)
छोड़ौ बैद-वणज-व्यौपार। पढ़िवा गुणिबा लोकाचार। (१७०।९)
पूजा-पाठ जपौ जिनि जाप। जोग मांहि विटंबौ आप।
जड़ी-बूटी भूलै मति कोइ। पहली रांड वैदकी होइ।
जड़ी-बूटी अमर जे करे। तौ वैद धनंतर काहे को मरै। (१७७।१७)
सोनै रूपै सीझै काज। तौ कत राजा छोड़ै राज।
पसुवा होइ जपै नहिँ जाप। सो पसुवा औषि क्यों जात। (१७७।१८)

(२) राजा-प्रजाको समान देखना—

निसपती जोगी जानिबा कैसा। अगनी पाणी लोहा माने जैसा।
राजा-परजा सम करि देष। तब जानिबा जोगी निसपतिका भेष। (४८।१३९)

(३) भोगमें योग

भग-मुषि व्यंद अगनि-मुष पारा। जो राखै सो गुरू हमारा। (४९।१४२)
षायें भी मरिये अणषायें भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि ही तरियै।
मधि निरंतर कीजै बास। निहचल मनुवा थिर होइ साँस। (५१।१४६)
आओ देवी बैसो। द्वादिस अंगुल पैसो
पैसत पैसत होइ सुष। तब जनम-मरनका जाइ दुष। (५३।१५५)
स्वामी काचीं बाई काचा जिंद। काची काया काचा विंद।
क्यूँ करि पाकै क्यूँ करि सीझै। काची अगनीं नीर न षीजै॥ (५४।१५६)

§ १४. टेंडरण(तंति)पा

काल—८४५ (देवपाल-विग्रहपाल ८०९–४९–५४)। देश—अवंतिनगर

(३३—राग पटमंजरी)

टालत (नगरत) मोर घर नाहि पडिवेशी।
हाँडीत भात नाहि निति आवेशी ॥
वेङ्गस साप बड्हिल जाअ।
दुहिल दुधु कि वेन्टे समाअ ॥
बलद बिआअल गविआ बाँझे।
पिटहु दुहिअइ ए तिनो साँझे ॥
जो सो बुधी सोध नि-बुधी।
जो सो चोर सोई साधी।
निति सिआला सिंहे सम जूझअ।
टेण्टण पाएर गीत बिरले बूझअ ॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०–५४–९०८)। देश—मगध।

(१६—राग भैरवी)

तीनिए पाटें लागेलि अणहअ सन घण गाजइ।
ता सुनि मार भयंकर बिसअ-मंडल सअल भाजइ ॥
मातेल चीअ-गएन्दा धावइ। निरंतर गअणंत तुसे (रवि-ससि) घोलइ ॥
पाप-पुण्ण वेण्णि तोडिअ सिंकल मोडिअ खम्भा ठाणा।
गअण-टाकली लागेलि रे चित्त पइट्ठ णिबाणा ॥
महरस पाने मातेल रे तिहुअन सअल उएखी।
पंच बिसअ-नायक रे विपख कोवि न देखी ॥
खर रवि-किरण सँतापें रे गअणङ्गण जइ पइठा।
भणन्ति **महिआ** मइ एथु बुडन्ते किम्पि न दिठ ॥१६॥

—चर्यापद

§ १४. टेंडण(तंति)पा

(उज्जैन)। कुल—तंतवा (कोरी), सिद्ध (१३)। कृति—चतुर्योग-भावना।

(३३—राग पटमंजरी)

नगर-मांझ मोर घर, नाहि पडोसी।
हाँडीते भात नाहीं नित्य आवेशी॥
बेंगेहिँ सांप बधिल जाय।
कच्छू दूध कि मेंटे समाय॥
बरध बियाइल गैया बाँझी।
मेंटहि दूहिय तीनों साँझी॥
जो सो बुद्धी सोइ निर्बुद्धी।
जो सो चोर सोई साहु॥
नित्य सियारा सिंह से जूझै।
टेंटणपा कै गीति बिरलै बूझै॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

कुल—शूद्र। कृतियाँ—वायुतत्त्व-दोहागीतिका।

(१६—राग भैरवी)

तीन पाटे लागल अनहद-स्वन घन गाजै।
तेहि सुनि मार भयंकर विषय-मंडल सकल भाजै॥
मातल चित्त-गयन्दा धावै, निरंतर गगनते तुष (रवि-शशि) घोलै।
पाप-पुण्य द्वैत तोडि सांकल मरोडी खम्भा-थान।
गगन टकटकी लागलि रे चित्त पइठ निर्वाण॥
महारस पाने मातल रे त्रिभुवन सकल उपेक्षी।
पंच विषय-नायकरे विपख काहु न देखी॥
खर-रवि किरण संतापेहिँ गगनांगण जाइ पइठा।
भणै महीआ मैं एहिँ बूडत किछू न दीठा॥१६॥
—चर्यापद

§ १६. भादे(भद्र)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०-५४-६०८)। देश—श्रावस्ती।

(३५—राग मल्लारी)

एत काल हाँउ अच्छिल स्वमोहें।
एवें मइ बूझिल सद्गुरु-वोहें॥
एवें चिअ-राअ मोकू णठा।
गअण-समुद्दे टलिआ पइठा॥
पेखमि दह दिह सर्वइ सुन्न।
चिअविहुन्ने पाप न पुन्न॥
बाजुले दिल मो लक्ख भणिआ।
मइ अहारिल गअणत पणिआ॥
भादे भणइ अभागे लइला।
चिअ-राअ मइ अहार कइला॥३५॥

—चर्यापद

§ १७. धाम(धर्म)पा

काल—८७५ ई० (विग्रहपाल - नारायणपाल ८५०-५४-६०)। देश—विक्रमशिला (भागलपुर)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१६)।

(४७—राग गुर्जरी)

कम-कुलिश माँझे भमई लेली।
समता-जोएँ जलिल चण्डाली॥
डाह डोम्बिघरे लागेलि आग्गी।
ससहर लइ सिंचहु पाणी॥

§ १६. भादे(भद्र)पा

कुल—चित्रकार, सिद्ध (३२)। कृतियाँ—चर्यापद (गीति)

(३५—राग मल्लारी)

एतन काल हौं रलों स्वमोहे।
अब मैं बुझलों सद्गुरु-बोधे॥
अब चित्त-राग मोरा नष्टा।
गगन-समुद्रे टलिके पइठा॥
पेखौं दश-दिशि सर्बहि शून्य।
चित्त-विहूने पाप न पुण्य॥
बाजुल ने दीलो मोहिं लक्ष्य भानी।
मैं आहारिल गगनसें पानी॥
भादे भनै अभागे लियेउ।
चित्त-राग मैं आहार कियेउ॥३५॥

—चर्यापद

§ १७. धाम(धर्म)पा

कृतियाँ—कालि-भावना-मार्ग, सुगतदृष्टि-गीतिका, हुंकार-चित्त-विंदु-भावना-क्रम।

(४७—राग गुर्जरी)

कमल-कुलिश माँझे भमई लेली।
समता-योगेहि ज्वलिल चँडाली॥
डाह डोम्बि-घरे लागलि आगी।
शशधर लेइ सींचहु पानी॥

णउ खरे जाला धूम ण दीसइ।
मेरु-सिहर लइ गअण पईसइ ॥
दाढ़इ हरि-हर-ब्रह्मण नाडा (भट्टा)।
दाढ़इ नव-गुण-शासन पाडा (पट्टा) ॥
भणइ धाम फुड़ लेहु रे जाणी।
पञ्चनालें उठे (ऊध) गेल पाणी ॥

—चर्यापद

३ : दसवीं सदी

§ १८. देवसेन

काल—९३३ ई०। देश—धारा (मालवा)में रहे। कुल—जैन साधु।

(१) सदाचार-उपदेश

दुज्जणु सुहियउ होउ जगि, सुयणु पयासिउ जेण।
अमिउ विसे वासस तमिण, जिम मरगउ कच्चेण ॥२॥
महु आसायउ थोडउवि, णासइ पुण्णु बहुत्तु।
वइसाणरहँ तिडिक्कडँइ, काणणु डहइ महन्तु ॥२३॥
जूँए धणहु ण हाणि पर, वयहँ मि होइ विणासु।
लग्गउ कट्ठु ण डहइ पर, इयरहँ डहइ हुयासु ॥३८॥
बेसहिं लग्गइ धनिय धणु, तुट्टइ बंधउ मित्तु।
मुच्चइ णरु सव्वइँ गुणहँ, वेसाघरि पइसन्तु ॥४४॥
मुक्कइँ कूड-तुलाइयइँ, चोरी मुक्की होइ।
अह न वणिज्जइँ छाडियइँ, दाणु ण मग्गइ कोइ ॥४६॥
मण-वय-कामहि दय करहिं, जेम ण ढुक्कइ पाउ।
उरि सण्णाहि वद्धइण, अवसि न लग्गइ धाउ ॥६०॥

नहिँ खरे ँ ज्वाल धूम न दीसै ।
　　　　　मेरु-शिखर लेइ गगन पईसै ॥
डाहै हरि-हर-ब्रह्म भट्टा ।
　　　　　डाहै नव-गुण-शासन पट्टा ॥
भनै धाम फुर लेहु रे जानी ।
　　　　　पंच नालेहिँ उठि गइल पानी ॥४७॥

—चर्यापद

३ : दसवीँ सदी

§ १८. देवसेन

कृतियाँ—सावयधम्म-दोहा ।

(१) सदाचार-उपदेश

दुर्जन सुखियहु होहु जग, सुजन पकासेँउ जेहि ।
　　　　　अमृत विषे वासर तमसि, जिमि मर्कत कांचेन ॥२॥
मद-आस्वादन थोडहू, नाशइ पुण्य बहुत्त ।
　　　　　वैश्वानर चिंगारियउ, कानन डहै महन्त ॥२३॥
जूएँहि धनको हानि पुनि, धर्महु होत विनाश ।
　　　　　लागो काठ न डहइ बरु, अन्यहु डहइ हुताश ॥३८॥
वेश्यहि लागहिँ धनिक-धन, छूटइ बांधव-मित्र ।
　　　　　मुंचइ नर सर्बहि गुणहि, वेश्या-घर पइसन्त ॥४०॥
मुंचै कूट-तुलादिते, चोरी-मुक्ती होइ ।
　　　　　अथन वणिज्जहि छाँड तो, दान न माँगइ कोइ ॥४२॥
मन-वच-कर्महि दया करु, जिमिना ढुक्कइ पाप ।
　　　　　उर सन्नाहे बाँधतो, अवशि न लागइ घाव ॥६०॥

भोगहँ करहि पमाणु जिय, इंदिय म करिसि दप्प ।
हुंति ण भल्ला पोसिया, दुद्धें काला सप्प ॥६५॥
लोह लक्ख विसु सणु मयणु, दुट्ठु-भरणु पसु-भार ।
कंडि अणत्थइं पिडि-पडिइ, किमि तरइहि संसार ॥६७॥
एहु धम्मु जो आयरइ, बंभणु सुद्दुं वि कोइ ।
सो सावउ कि सावयहँ, अण्णु कि सिरिमणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

जइ गिहत्थ दाणेण विणु, जगिव भणिज्जइ कोइ ।
ता गिहत्थ पंखि वि हवइ, जें घरु ताइवि होइ ॥८७॥
धम्म करउँ जइ होइ धणु, इहु दुव्वयणु म बोल्लि ।
हक्कारउ जमभटतणउ, आवइ अज्जु कि कल्लि ॥८८॥
काइँ बहुत्तइ संपयइँ, जइ किविणहँ घर होइ ।
उयहि-णीरु खारें भरिउ, पाणिउ पियइ न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धम्मे सुहु पावेण दुहु, एक पसिद्धउ लोइ ।
तम्हा धम्मु समायरहि, जेहिय इंछिउ होइ ॥१०१॥
काइँ बहुत्तइँ जंपियइँ, जं अप्पह पडिकूल ।
काइँ मि परदु ण तं करहि, एहजि धम्महु मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धम्मु विसुद्धउ तं जि पर, जं किज्जइ काएण ।
अहवा तं धणु उज्जलहु, जं आवइ णाएण ॥११३॥
रूवहु उप्परि रइ म करि, णयण णिवारइ जंत ।
रूवासत्त पयंगडा, पेक्खइ दीवि पडंत ॥१२६॥
गुणवन्तह सइ संगु करि, भल्लिम पावहि जेम ।
सुमण सुपत्त विवज्जियउ, वरतरु वुच्चइ केम ॥१४१॥

भोगहिँ मात्रा करहु जिय, इन्द्रिय ना करु दर्प ।
होत भला नहिं पोसिया, दूधे काला सर्प ॥६५॥
लोह, लाख, विष-सन, मयन, दुष्ट-भरण पशु-भार ।
छांडि अनर्थहि पिंड पडि, किमि तरिहै संसार ॥६७॥
एहि धर्महि जो आचरइ, ब्राह्मण, शूद्रहु कोइ ।
सो श्रावक कि श्रावकहिँ, अन्य कि सिर-मणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

यदि गृहस्थ दानहि विना, जगमें भणियत कोइ ।
तो गृहस्थ पंछिहु इवै, जे घर ताहउ होइ ॥८७॥
धर्म करौ यदि होइ धन, ऍहु दुर्वचन न बोल ।
हुंकरउ जम-भटनते, आवइ आज कि कालि ॥८८॥
काह बहूतहिँ संपदहि, यदि कृपणहिँ घर होइ ।
उदधि-नीर खारे भरेंउ, पानिउ पियै न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धर्महि सुख पापहि दुख, एह प्रसिद्धउ लोक ।
ताते धर्म समाचरहु, जे हिय-वांछित होइ ॥१०१॥
काइ बहूते जल्पने, जो अपने प्रतिकूल ।
काहू दुख सो ना करइ, ऍहु जे धर्मको मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धर्म विशुद्ध सोइ पर, जो कीजइ कामेन ।
अथवा सो धन उज्ज्वल, जो आवइ न्यायेन ॥११६॥
रूपहि ऊपर रति न करु, नयन निवारहु जांत ।
रूपासक्त पतंगडा, पेखहु दीप पडन्त ॥१२६॥
गुणवानैं सह संग करु, भल्लो पावइ जेमु ।
सुमन-सुपत्रन-वर्जितउ,, बरतरु कहियतु केमु ॥१४१॥

अण्णाएँ आवंति जिय, आवइ घरण ण जाइ।
उम्मग्गें चल्लंत यहँ, कंटइँ मज्जइ पाउ ॥१४५॥
कूड-तुला-माणाइयहं, हरि-करि-खर-विस-मेस ।
जो पच्चइ णट्टु पेखणउ, सो गिण्हइ बहु-वेस ॥१६२॥
दुल्लहु लहि मणुयत्तणउ, भोयह पेरिउ जेण।
लोहु कंजि दुत्तर तरणि, णाव विदारिय तेण ॥२२१॥

§१९. तिल्लोपा[1]

काल—९६० ई० (राज्यपाल-गोपाल द्वि०-विग्रहपाल द्वि० ९०८-४०-६०-८०)। देश—भिगुनगर (मगध)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (२२)

(१) सहज-मार्ग

सहजें भावाभाव ण पुच्छह। सुण्ण करुण तहि समरस इच्छअ ॥२॥
मारहु चित्त णिबाणें हणिआ। तिहुअण सुण्ण णिरंजन पलिआ ॥३॥
आइ-रहिअ एहु अन्तर-हिअ। वर-गुरु-पाअ अद्दअ कहिअ ॥६॥
बढ़ ! अणें लोअ-अगोअर तत्त, पंडिअ लोअ अगम्म ।
जो गुरु पाअ पसण्ण..,तहिं की चित्त अगम्म ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

सअ-संवेअण तत्त-फल, तीलोपाअ भणन्ति।
जो मण-गोअर पइठई, सो परमत्थ ण होन्ति ॥९॥
सहजें चित्त विसोहहु चङ्गा। इह जम्महि सिधि मोक्खा भंगा ॥१०॥
अद्दअ-चित्त तरुअरा, गउ तिहुअण वित्थार।
करुणा फुल्लिअ फलधरा, णउ परता ऊआर ॥१२॥

---

[1] J.D.L. XXVIII, pp. 1—4

अन्याये आवइ यदि, आवइ घरेँउ न जाइ।
उन्मार्गें चल्लन्त कहं, कंटक भंजइ पाउ ॥१४५॥
कूट-तुला-मानादि कहं, हरि-करि-खर-विष-मेष।
जो नाचइ नट प्रेक्षणउ, सो गृण्हइ बहु-वेष ॥१६२॥
दुर्लभ लहि मनुजत्व कहं, भोगेहि प्रेरेँउ येन।
लोह-लाइं दुस्तर तरणि, नाव विगाडेँउ तेन ॥२२१॥

§ १९. तिलोपा

कृतियाँ—निवृत्तिभावनाक्रम, करुणाभावनाधिष्ठान, दोहा-कोष, महामुद्रोपदेश।

(१) सहज-मार्ग

सहजे भावाभाव न पूछिय। शून्य-करुण तँह सम-रस इच्छिय ॥२॥
मारहु चित निर्वाणे हनिया। त्रिभुवन शून्य निरंजन पेलिया ॥३॥
आदि-रहित एहु अन्त-रहित। वर-गुरु-पाद अद्वय कथित ॥६॥
मूढ-जन-लोग-अगोचर तत्त्व, पंडित लोग-अगम्य।
जो गुरुपाद प्रसन्न (हो), तेहि की चित्त-अगम्य ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

स्वक-संवेदन[1] तत्त्व-फल, तीलोपाद भणन्ति।
जो मन-गोचर पइठै, सो परमार्थ न होन्ति ॥९॥
सहजे चित्त विशोधहु चंगा। इहँ जन्महि सिद्धि मोक्षा भंगा ॥१०॥
अद्वय-चित्त तरूवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार।
करुणा फूली फलधरा, नहि परतो उपकार ॥१२॥

---

[1] **स्वकीय अनुभव**

पर अप्पाण म भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।
तिहुअण णिम्मल परम-पउ, चित्त सहावें सुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल णिचल जो सअलाचार । सुण्ण णिरंजन म करु विआर ॥१४॥
एहु से अप्पा एहु जगु जो परिभावइ । णिम्मल चित्त सहाव सो कि बुज्झइ ॥१५॥
हँउ जग हँउ बुद्ध हँउ णिरंजण । हँउ अमणसिआर भव-भंजण ॥१६॥
मणह भअवा खसम म अवई । दिवाराति सहजे राहीअइ ॥१७॥
जम्म-मरण मा करहु रे भन्ति । णिअ-चिअ तहीं णिरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तित्थ तपोवण म करहु सेवा । देह सुचीहि ण सन्ति पावा ॥१९॥
बम्हा-विहणु-महेसुर देवा । वोहिसत्त्व मा करहु सेवा ॥२०॥
देव म पूजहु तित्थ ण जावा । देवपुजाही मोक्ख ण पावा ॥२१॥
बुद्ध अराहहु अविकल-चित्तें । भव णिव्वाणे म करहु थित्तें ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिम विस भक्खइ, विसहि पलुत्ता ।
तिम भव भुञ्जइ भवहि ण जुत्ता ॥२४॥
खण आणंद भेउ जो जाणइ । सो इह जम्महि जोइ भणिज्जइ ॥२८॥
हँउ सुण्ण जगु सुण्ण तिहुअण सुण्ण । णिम्मल सहजें ण पाप ण पुण्ण ॥३४॥
जहि इच्छइ तहि जाउ मण, एत्थु ण किज्जइ भन्ति ।
अध उघाडि आलोअणें, झाणें होइ रे थित्ति ॥३५॥
—दोहाकोष[1]

---

[1] J.D.L. Cal. XXVIII, pp. 1—4

पर-आपा न: भ्रान्ति करु, सकल निरन्तर बुद्ध ।
त्रिभुवन निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल निचल जो सकलाचार । शून्य-निरंजन न करु विचार ॥१४॥
ऐंहु सो आपा ऐंहु जग जो परिभावै । निर्मल चित्त-स्वभाव सो का बूझै ॥१५॥
हौं जग हौं बुद्ध हौं निरंजन । हौं अ-मनसिकार भव-भंजन ॥१६॥
मन भगवान् ख-सम[1] भगवती । दिवा-रात्रे सहजे रहई ॥१७॥
जन्म-मरण न करहु रे भ्रान्ति । निज चित्त तहाँ निरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तीर्थ-तपोवन न करहु सेवा । देह शुची ना होवै पापा ॥१९॥
ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-देवा । बोधिसत्त्व ना करहु रे सेवा ॥२०॥
देव न पूजहु तीर्थ न जावा । देवपूजते मोक्ष न पावा ॥२१॥
बुद्ध अराधहु अ-विकल चित्ते । भव-निर्वाणे न करहु स्थित्वे ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिमि विष भक्षै विषहिं प्रलुप्ता ।
तिमि भव भोगै भवहिं न युक्ता ॥२४॥
क्षण-आनंद भेद जो जानै । सो एहि जन्महिं जोगि भनीजै ॥२८॥
हौं शून्य जग शून्य त्रिभुवन शून्य । निर्मल-सहजे न पाप न पुण्य ॥३४॥
जेंह इच्छै तेंह जाउ मन, एहिं न कीजै भ्रान्ति ।
अधो उघारि अवलोकने, ध्याने होइ रे स्थित्ति ॥३५॥
—दोहाकोष

---

[1] शून्य समान

§ २०. पुष्पदंत (पुष्फयंत)

काल—९५९-७२ (राष्ट्रकूट कृष्ण[1] तृतीय खोट्टिग[2] के समकालीन)। देश—ब्रज या यौधेय (दिल्ली) में जन्म, मान्यखेट[3] (मालखेड़, हैदराबाद-दक्खिन) में रचना।

१—आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-केम्प) में

उब्बद्ध-जूडु भू-भंग-भीसु। तोडेप्पिणु चोडहों तणउ सीसु।
भुवणेक्कराम रायाहिराउ। जहिं अच्छहि तुडिगु[4] महाणुभाव।
तं दीण दिण्ण-धण-कणय-पयरु। महि परिभमंतु मेपाडि[5]-णयरु।
अवहेरिय-खल-यणु गुण-महंतु। दियहेहिं पराइयु पुष्फयंतु।
दुग्गम दीहर-पंथेण रीणु। णव-यंदु जेम देहेण खीणु।
तरु कुसुम-रेणु-रंजिय-समीरि। मायंद-गोंछ-गोंदलिय-कीरि।
णंदण-वणि किर वीसमइ जाम। तहिं विण्णि पुरिस संपत्त ताम।
पणवेप्पिणु तेहिं पवुत्तु एँव। "भो खंड-गलिय-पावावलेव।
परिभमिर-भमर-रव-गुमगुमंति। किंकर णिवसहि णिज्जण-वणंति।
करि सर बहिरिय-दिच्चक्कवाल। पइसरहि ण किं पुरवरि विसालि?"

---

[1] ९३९ में गद्दी पर बैठा। चोल-युवराज राजादित्यको ९४९ ई० में मार कर कुमारी तक सारे दक्षिण पर प्रभाव। इसके परमार श्रीहर्ष (मालव-राज सीयक), और कलचूरी भी आधीन सामन्त। ९६८ (?) में मृत्यु। अपने समय-का सबसे बड़ा भारतीय राजा।

[2] खोट्टिग, कृष्णका पुत्र, शासनकाल ९६८-७२। ९७२में मालवराज श्रीहर्ष (सीयक ९४९-७२, वाक्पतिराज मुंजका पिता) ने मान्यखेटको ध्वस्त किया। राष्ट्रकूट-शक्ति (५७०-७२) समाप्त।

[3] राष्ट्रकूट-राजधानी ८१५-९७२ ई०

[4] राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय

[5] मेलपाटी (उत्तरी-अर्काट)

§ २०. पुष्पदंत (पुप्फयंत)

कुल—ब्राह्मण, दर्बारी कवि। कृतियाँ[1]—महापुराण[2] (तिसट्ठि-महापुरिसगुणालंकार), जसहर चरिउ[3] (यशोधर-चरित), नायकुमार-चरिउ[4] (नागकुमार-चरित)।

१—आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-केम्प)में

उद्-बद्ध-जूट भ्रूभंग-भीष। तोडे[5] वियउ चोलहिँकेर शीर्ष।
भुवन्-एकराम राजाधिराज। जहँ आछै[5] तुडिग महानुभाव।
सो दीन दत्त-धन-कनक-प्रवर। महि परिभ्रमंत मेपाडि नगर।
अवधीरिय खल-जन गुण-महंत। दिवसेँहिँ तहँ आयेँउ पुष्पदन्त।
दुर्गम-दीरघ-पंथे 'वतीर्ण। नव-चंद्र जिमी देहेँहिँ क्षीण।
तरु-कुसुम-रेणु-रंजित समीर। माकंद-गुच्छ गोंदलिय[6] कीर।
नंदनवन फुरि विश्रमै जहाँ। तब दोउ पुरुष आयेउ तहाँ।
प्रणमीया तेहीँ कहेँउ एम। "हे खंड-गलित-पापावलेप!
परिभ्रमत भ्रमर-रव-गुगगुमंत। क्योँकर निवसहु निर्जन-वनांत?
करि सर बाहिर-दिक् चक्रवाल। पइसहू न क्योँ पुर-वर-विशाल?"

---

[1] भरत और नल दोनों पिता पुत्र (राजमंत्री) पुष्पदन्तके आश्रयदाता।

[2] डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रंथ-माला (बंबई)में संपादित (१९३७, १९४०, १९४१) तीन जिल्द।

[3] डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, बरार) में संपादित १९३१ ई०

[4] प्रो० हीरालाल जैन द्वारा देवेन्द्र-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, बरार) में सम्पादित १९३३ ई०

[5] है **[6] चबाया**

तं सुणिवि भणइ अहिमाण-मेरु[1]। "वरि खज्जइ गिरि-कंदरि-कसेरु।
णउ दुज्जण-भउँहा-वंकियाइँ। दीसंतु कलुस-भावंकियाइँ।
घत्ता। वर णरवरु धवलच्छिहे होउ, मा कुच्छिहे मरउ सोणि मुहणिग्गमे।
खल-कुच्छिय-पहु-वयणइँ भिउडिय णयणइँ म णिहालउ सूरुग्गमे ॥३॥
चमराणिल उड्डाविय-गुणाइ। अहिसेय-धोय-सुयणत्तणाइ।
अविवेयइ दप्पुत्तालियाइ। मोहंधइ मारण-सीलियाइ।
विससह जम्मइ जड रत्तियाइ। किं लच्छिइ विउस-विरत्तियाइ।
संपइ जणु णीरसु णिव्विसेसु। गुणवंतउ जहिं सुरगुरु[1] वि वेसु।
तहिं अम्हइ काणणु जि सरणु। अहिमाणे सहुँ वरि होउ मरण।"
....................पडिवयणु दिण्णु णायर-णरेहिं।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता। "जण-मण-तिमिरोसारण मय-तरु वारण, णिय-कुल-गअण-दिवायर।
भो भो केसव-तणुरुह ! णव-सररुह-मुह कव्व-रयण-रयणाअर ! ।
बंभंड-मंडवारूढ-कित्ति। अणवरय-रइय-जिणणाह-भत्ति।
सुहतुंग-देव-कम-कमल-भसलु। णीसेस-सकल-विण्णाण-कुसलु ॥
पायय-कइ-कव्व-रसाव उद्धु। संपीय सरासइ-सुरहि-दुद्धु।
कमलच्छ अमच्छरु सच्च-संधु। रण-भर-धुर-धरणुग्घुट्ठ-खंधु ॥
सविलास-विलासिणि-हियय-थेणु। सुपसिद्ध-महाकइ-कामधेणु।
काणीण-दीण-परिपूरियासु। जस-पसर-पसाहिय-दस-दिसासु ॥
पर-रमणि-परं-मुहु सुद्ध-सीलु। उण्णय-मइ सुयणुद्धरण-लीलु।
गुरु-यण-पय-पणविय-उत्तमंगु। सिरिदेवि-यंब-गब्भुब्भवंगु ॥
अण्णइय-तणय-तणुरुहु पसत्थु। हत्थि'व दाणोल्लिय-दीह-हत्थु ॥
दुव्वसण-सीह-संघाय-सरहु। ण वियाणहि किं णामेण भरहु ॥

---

[1] पुष्पदंतका उपनाम भी शायद

सो सुनिय भनै अभिमान-मेरु[१]। "वरु खाइय गिरि-कंदरे कसेरु।
नहिँ दुर्जन-भौँहाँ-वंकिमाइँ। देखहूँ कलुष-भावांकिताइँ।
घत्ता। वरु नरवर धवलक्षि हो उ, न कुक्षिहि, मरौ शोणित मुँह निर्गमे।
खल-कुक्षित-प्रभु-वचना भृकुटित-नयना न निहारौँ सूरोद्गमे ॥३॥
चमरानिलहीं उडेऊँ गुणाइँ। अभिषेक-धोँइ सुजनत्तनाइ[२]।
अविवेकहू दर्पोत्तालियाइँ। मोहांधतों-मारण-शीलियाइँ।
विषसँग जनमी जड रक्तियाइ। की लक्ष्मी विदुष-विरक्तियाइ।
संप्रति जन नीरस निर्विशेष। गुणवंतउ[३] जहँ सुरगुरुहु वेष।
तहँ हमरेँहिं काननही शरणा। अभिमान-सहित वरु होँहु मरणा।"
..................। प्रतिउत्तर दियेँउ नागर-नरेहिँ।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता। "जन मन-तिमिर-अपसारण मदतरु-वारण, निज-कुल-कमल-दिवाकर।
हे हे केशव-तनुरुह-नव सररुह मुख काव्य रतन-रतनाकर!
ब्रह्मांड-मंडपारूढ-कीर्त्ति। अनवरत-रचित-जिननाथ-भक्ति।
शुभतुंग-देव-क्रम-कमल-भ्रमर। निःशेष-सकल-विज्ञान-कुशल।
प्राकृत-कवि-काव्य-रसावलुब्ध। संपीय सरस्वति-सुरभि-दुग्ध।
कमलाक्ष अमत्सर सत्यसंध। रणभर-धुर-धरण्-उद्घुष्ट-स्कंध।
सविलास-विलासिनि-हृदय-स्तेन। सुप्रसिद्ध-महाकवि-कामधेनु।
कानीन-दीन-परिपूरिताश। यशप्रसर-प्रसाधित-दश-दिशास।
पररमणि-पराङ्मुख शुद्धशील। उन्नत-मति सुजनोद्धरण-लील।
गुरुजन-पद-प्रणमित-उत्तमांग। **श्रीदेवि**-अंब-गर्भोद्भवांग।
अन्नइय-केर-तनुरुह प्रशस्त। हस्ति 'व दानोल्लित-दीर्घहस्त।
दुर्व्यसन-सिंह-संघात-शरभ। न विजानसि का नामही **भरत**।

---

[१] **पुष्पदंत** [२] **सुजनता** [३] **गणहीनउ**

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवंतु दिट्ठु भरहेण केम। वाई-सरि-सरि-कल्लोल जेम।
पुणु तासु तेण विरइउ पहाणु। घर आयहो अब्भागय विहाणु।
संभासणु पिय-वयणेहिँ रम्मु। णिम्मुक्क-डंभु णं परमधम्मु।
"तुहुँ आयउ णं गुण-मणि-णिहाणु। तुहुँ आयउ णं पंकयहो भाणु।"
पुण एव भणेप्पिणु मणहराइँ। पहरीण-झीण-तणु-सुहयराइँ।
वर-ण्हाण-विलेवण-भूसणाइँ। दिण्णइँ देवंगइँ णिवसणाइँ।
अच्चंत-रसालइँ भोयणाइँ। गलियाइँ जाम कइवय-दिणाइँ।
देवी-सुएण कइ भणिउ ताम। "भो पुप्फयंत! ससिलिहिय-णाम!
णिय-सिरि-विसेस-णिज्जिय-सुरिंदु। गिरि-धीरु-वीरु भइरव-णरिंदु।
पइँ मण्णिउ वण्णिउ वीर-राउ। उप्पण्णउ जो मिच्छत्त-राउ।
पच्छित्त तासु जइ करहि अज्जु। ता घडइ तुज्झु परलोय-कज्जु॥"..........
......................। ता जंपइ वर-वाया-विलासु।
"भो देवी-णंदण जयसिरीह! किं किज्जइ कव्वु सुपुरुस-सीह।
घत्ता। "णउ महु बुद्धि-परिग्गहु णउ सय-संगहु णउ कासुवि करेउ बलु।
भणु किह करमि कइत्तणु ण लहमि कित्तणु जगु जि पिसुण-सय-संकुलु।"
—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कोंडिण्ण-गोत्त-णह-दिणयरासु। **वल्लह**-णरिंद-घर-महयरासु।
णण्णेहो मंदिरि णिवसंतु संतु। अहिमाण-मेरु कइ पुप्फ-यंतु।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३)

भणु भणु सिरिपंचमि-फलु गहीरु। आयण्णहिँ णायकुमार-वीरु।
ता **वल्लह**-राय-महंतएण। कलि-विलसिय-दुरिय-कयंतएण।
कोंडिण्ण-गोत्त-णह-ससहरेण। दालिद्द-कंद-कंदल-हरेण।
वर-कव्व-रयण-रयणायरेण। लच्छी-पोमिणि-माणस-सरेण।
कुंदव्व-भरह-दिय-तणुरुहेण।.....................
णण्णेण पवुत्तु महाणुभाव।......................
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४)

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवंत दीस भरतेहिं किमी। वापी-ससि-सर-कल्लोल जिमी।
पुनि तासु तेहिं विरचे प्रधान। घर आयेँहु अभ्यागत विहान।
संभाषण प्रिय-वचनेहिं रम्य। निर्मुक्त-दंभ जनु परमधर्म।
"तुहुँ आयउ जनु गुण-मणि-निधान। तुहुँ आयउ जनु पंकजहु भानु।"
पुनि ऐस भनियई मनहराईं। अहरीण झीन-तनु-सुखकराईं।
वर-स्नान-विलेपन-भूषणाईं। दीनी देवांगहिं निवसनाईं।
अत्यंत-रसालईं भोजनाईं। बीतेहु जिमि कतिपय-दिनाईं।
देवी-सुत कविहिं भनेउ तब्ब।"भो पुष्पदंत! शशि-लिखित नाम।
निज-श्री-विशेष-निर्जित-सुरेन्द्र। गिरि-धीर वीर **भैरव-नरेन्द्र**।
तैं मानेंउ वर्णेंउ वीर-राज। उत्पादेंउ जो मिथ्यात्व-राग।
प्राँश्चित्त तासु यदि करसि आज। तो घटै तोर परलोक-कार्य।.."
.....................। तो जल्पै वरवाचा-विलास।
"हे देवीनंदन जय-सिरीह! का कीजै काव्य सुपुरुष-सींह।
घत्ता। ना मम बुद्धि-परिग्रह न सत-संग्रह ना काहु केरेंउ बल।
भनु किमि करौं कवित्वन न लहौं कीर्त्तन, जगहु पिशुन-शत-संकुल॥"
—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कौंडिन्य-गोत्र-नभ-दिनकरास। **वल्लभ**-नरेन्द्र-गृह-मख-करास।
नान्यहु मंदिरें निवसंत संत। अभिमान-मेरु कवि **पुष्पदंत**।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३)

भनु भनु श्री-पंचमि-फल गंभीर। आकर्णहिं नागकुमार-वीर।
तो वल्लभराय-महंतकेहिं। कलि-विरलिय-दुरित-कृतांत केहिं।
कौंडिन्य-गोत्र-नभ-शशधरेहिं। दारिद्रय-कंद-कंदल-धरेहिं।
वर-काव्य-रतन-रतनाकरेहिं। लक्ष्मी-पद्मिनि-मानससरेहिं।
कुंदें इव भरत द्विज-तनुरुहेहिं।................
नान्येहिं प्रवृत्तु महानुभाव।.................
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४)

२–काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अत्थमिइ दिणेसंरि जिह सउणा। तिह पंथिय थिय माणिय-सउणा।
जिह फुरियउ दीवय-दित्तियउ। तिह कंताहरणह-दित्तियउ।
जिह संभा-राएँ रंजियउ। तिह वेसा-राएँ रंजियउ।
जिह भुवणुल्लउ संतावियउ। तिहँ चक्कुल्लुवि[१] संतावियउ।
जिह दिसि-दिसि तिमिरइँ मिलियाइँ। तिह दिसि-दिसि जारइ मिलियाइँ।
जिह रयणिहि कमलइँ मउलियाइँ। तिह विरहिणि-वयणइँ मउलियाइँ।
जिह घरहँ कवाडइँ दिण्णाइँ। तिह वल्लह-संवइँ दिण्णाइँ।
जिह चंदे णिय-कर पसरु किउ। तिह पिय-केसहिँ कर-पसरु किउ।
जिह कुवलय-कुसुमइँ वियसियइँ। तिह कीलय-मिहुणइँ वियसियइँ।
जिह पीयइँ पाणइँ महुराइँ। तिह अहरहँ महु-रस-महुराइँ।
जिह जिह गलंति जामिणि-पहर। तिह तिह विइण्ण मउरइ पहर।
जिह णहि सुक्कुग्गमु दरिसियउ। तिह चिडि सुक्कुग्गमु दरिसियउ।
घत्ता। ता चक्क-उलहँ पंकयहँ तंब-किरण-पूरिय-भुवणोयरु।
विरयहँ णर-णारी-यणहँ जीविउ देंतु समुग्गउ दिणयरु ॥८॥

—आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

बिस-कालिंदि-काल-णव-जलहर-पिहिय-णहंतरालओ।
धुय-गय-गंड-मंडलुड्डाविय-चल-मत्तालि-मेलओ।
अविरल-मुसल-सरिस-थिरधारा-वरिस-भरंत-भूयलो।
हय-रवियर-पयाव-पसरुग्गय-तरु तण-णील-सद्दलो।
पडु-तडि[२]-वडण-पडिय-वियडायल-रुंजिय-सीह-दारुणो।
णच्चिय-मत्त-मोर-गलकल-रव-पूरिय-सयल-काणणो।

---

[१] चकवा-चकई [२] तडित्

२—काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अस्तमे दिनेश्वरें जिमि शकुना। तिमि पंथिक ठिउ माणिक शकुना।
जिमि फुरियेउ दीपक-दीप्तियऊ। तिमि कांताभरणहिँ दीप्तियऊ।
जिमि संध्या-रागें रंजियऊ। तिमि बेशा-रागें रंजियऊ।
जिमि भुवनल्लउ संतापियऊ। तिमि चक्कुल्लौ संतापियऊ।
जिमि दिशि-दिशि तिमरहिँ मिलियाईं। तिमि दिशि-दिशि जारहि मिलियाईं।
जिमि रजनिहिँ कमलिनि मुकुलिताईं। तिमि विरहिनि-वदनइँ मुकुलिताईं।
जिमि घरह कपाटउ दिन्नाईं। तिमि वल्लभ-संपति दिन्नाईं।
जिमि चंदेंहि निज-कर-प्रसर-कियेंउ। तिमि पिय-केशहिँ कर-प्रसर कियेंउ।
जिमि कुवलय-कुसुमा विकसियऊ। तिमि कीरय-मिथुना विकसियऊ!
जिमि पीयैं पानहिँ मधुराईं। तिमि अधरह मधुरस-मधुराईं।
जिमि जिमि वीतैं यामिनि-प्रहरा। तिमि तिमि विकीर्ण मृदु-रति-प्रहरा।
जिमि नहिँ शुक्रोदय दरसियऊ। तिमि चिड़ि शुक्रोद्गम दरसियऊ।
घत्ता। तो चक्कुलहँ पंकजहँ ताम्रकिरण-पूरित-भुवनोदर।
विरही नर-नारीजनहू जीवन देंत सम्-ऊगेउ दिनकर॥८॥
—आदिपुराण (पृ० २२८-२६)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

विश-कालिंदि-काल-नवजलधर-छादित नभंतरालआ।
धुत-गज-गंड-मंडल-उड्डाविय चल-मत्ता-लि-मेलआ।
अविरल-मुसल-सदृश थिर धारा वर्ष भरंत-भूतला।
हत-रविकर-प्रताप-प्रसर-उद्गत-तरु कँह नील शाद्वला।
पटु तडि[१]-पतन-पतित-विकट-ाचल कुपित सिंह-दारुणा।
नाचत मत्त-मोर-कलकल-रव-पूरित-सकल-काननना।

---

[१] बिजली

गिरि-सरि-दरि-सरंत-सरसर-भय-वाणर-मुक्क-णीसणो ।
महियल-घुलिय-मिलिय-दुंदुह-सयवय-सालूर[1]-पोसणो ।
घण-चिक्खल्ल-खोल्ल-खणि-खेइय-हरिण-सिलिंव-कय-वहो ।
वियसिय-णव-कलंब-कुसुमुग्गय-रय-पिंजरिय-दिसिवहो ।
सुर-वइ-चाव-तोरणालंकिय-घण-करि-भरिय-णहरुहो ।
विवर-मुहोयरंत-जल-पवहारोसिय-सविस-विसहरो ।।
"पिय-पिय-पिय"-लवंत-बप्पीहय-मग्गिय-तोय-बिंदुओ ।
सर-तीरुल्ललंत-हंसावलि-झुणि-हल-बोल-संजुओ ।।
चंपय-चूय-चार-चव-चंदण-चिंचिणि-पीणियाउसो ।
वुट्ठो झत्ति जस्स कालम्मि जएँ सुहयारि पाउसो ।।
मुग्ग-कुलत्थ-कंगु-जव-कलव-तिलेसी-वीहि-मासया ।
फलभर-णविय-कणिस-कण-लंपड-णिवडिय-सुय-सहासया ।।
ववगय-भोय-भूमि-भव-भूरुह-सिरि-णरवइ-रमा सही ।
जाया विविह-धण्ण-दुम-वेल्ली-गुम्म-पसाहणा मही ।
—आदिपुराण (२९-३०)

खंधावारहु उप्परि अहणिसु । ता णायहिँ वेउव्विउ पाउसु ।
मय-उलु तसइ रसइ वरिसइ घणु । पीयलु सामलु विरसइ सुरधणु ।
महि-णीहरिउ हरिउ बड्ढइ तणु । पवसिय-पियहि पियहि तप्पइ मणु ।
फुल्ल-कलंब-तंबु दीसइ वणु । तिम्मइ तम्मइ मणि जूरइ जणु ।
तडि तडयडइ पडइ रुंजइ हरि । तरु कडयडइ फुडइ विहडइ गिरि ।
जलु परियलइ घुलइ घुम्मइ दरि । अइरय सरइ भरइ पूरें सरि ।
जलु थलु सयलु जलुजि संजायउ । मग्गु अमग्गु ण किंपि वि णायउ ।
सरु कूसुम-सरु णिररिउ संधइ । विरहें पंथिय पंथिय विंधइ ।
—आदिपुराण (पृ० २४०)

---

[1] एक प्रकारका कंद

गिरि-सरि-दरि सरंत सरसर-भय-वानर मोचु निःस्वना।
महियल घुलेउ-मिलेँउ दुंदुभि शतपत्र-शालूर-पोषणा।
घन-कीचड़-खोल-खन-खेदित हरिन-शिलिब-कदंब-वहा।
विकसित-नवकदंब-कुसुम-ोद्गत-रज-पिंजरेउ दिशि-पथा।
सुर-पति-चाप-तोरणालंकृत घन-करि-भरित नभ-थला।
विवर-मुख-ोदरांत-जलप्रवह-ारोसेँउ सविष-विषधरा।
"पिय पिय पिय" लपंत पपीहा, माँगेँउ तोय-बिंदुआ।
सरतीर-ोल्ललंत-हंसावलि-ध्वनि-हलहल-संयुता।
चंपक-चूत-चार-चव-चंदन-चिंचिनि-श्रीणितायुधा।
उट्ठेँउ झट जासु कालेँहिँ जो सुखकारि पावसा।
मूँग-कुल्थि-काँगुन-जौ-करॉय-तिल-तीसी-धान-माषआ।
फल-भर नमेँउ मँजरि कण लंपट निबडेँउ शुक सहस्रआ।
व्यपगत-भोग भूमि-भव-भूरुह-श्री-नरपति-रमा-सखी।
हुई विविध-धान्यद्रुम-वेली-गुल्म-प्रसाधना मही।
—आदिपुराण (२९-३०)

स्कंधावारेंह[१] ऊपर अहनिश। तो नादहिँ बिकारिया पावस।
मृगकुल त्रसै-रसै बरसै घन। पीयल श्यामल बिलसै सुर-धनु।
महि नीखरिउ हरित बाढे तनु। प्रवसित-प्रियहि पियहिँ तप्पै मन।
फुल्लु कदंब ताम्र दीसै वन। तीमै तामै मणि भूरै जनु।
तड़ि तड़तड़ै पडै रागै हरि। तरु कड़कड़ै फुटै विहरै गिरि।
जल परिचलै घुरै घूमै दरि। अतिरय सरै भरै पूरै सरि।
जल-थल सकल जलहि सं-जायेँउ। मार्ग-अमार्ग न कछुअहु जानेँउ।
शर-कूसुम-सर नितांत साँधैं। बिरहे पंथिक पंथिय बिंधै।
—आदिपुराण (पृ० २४०)

---

[१] फौजी पड़ाव

३—भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

सीयल्ल-बेल्लि-तरुवर-गहणि । हिमवंतहो दाहिण-गिरि-गहणि ।
जहिँ वग्घ-सीह-गय-गंडयाइँ । मय-दुग्गह-करि-भल्लू-सयाइँ ।
संवर-वेउल्लइँ रोहियाइँ । एणइँ जहिँ पुल्लिहिँ छोहियाइँ ।
जहिँ संचरंति वहु-मुग्गसाइँ । गत्ताइँ जहिँ णिरु घग्घुसाइँ ।
जहिँ परडा कोक्कंता भमंति । झिल्लिरि खच्चेल्लइँ गुमगुमंति ।
जहिँ भिल्ल-पुलिंदइँ णाहलाइँ । वीणंतइँ तरु-वेल्ली-हलाइँ ।
जहिँ कुक्कुरंति साहामयाइँ[१] । झुल्लंतइँ तरु-साहा-गयाइँ ।
उड्डुणसीला तंबोल-लग्ग । जहिँ हरि खज्जंता कहिँ 'मि भग्ग ।
जहिँ घुरुहरंत दाढा-कराल । सूलच्छहिँ सहुँ जुज्झंसि कोल ।
कंदुल्ल-गहर-गड्ढब्भु जेत्थु । हरि-हुल्लिहिँ जहिँ दूसियउ पंथ ।
पंचासहिँ थूणइ दारियाइँ । जहिँ भिल्ली हरिणइँ मारियाइँ ।
जहिँ गहिरइँ धारइँ परिभमंति । णिरु वायउ-उल(ईं) चुमचुमंति ।
जहिँ वेल्लिहिँ वेठिय तरुवराइँ । णं कीलहिँ अवरुंडण-पराइँ ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

सेणा-सेणाहिय,परियरिय । हिमवंतु धरेप्पिणु संचलिय ।
सोहइ गच्छंती पुव्वमुह । कुरुवंस-णाह-पत्थिव-पमुह ।
दीसइ सेलत्थलि काणणउँ । महिसी-दुद्ध'व साहा-घणउँ
णाणा-महिरुह-फल-रस-हरइँ । कत्थइ किलिगिलियइँ वाणरइँ ।
कत्थइ रइरत्तइँ सारसइँ । कत्थइँ तव-तत्तइँ तावसइँ ।
कत्थइ झरझरियइँ णिज्झरइँ । कत्थइ जल-भरियइँ कंदरइँ ।
कत्थइ वीणिय वेल्ली-हलइँ । दिट्ठइँ भज्जंतइँ णाहलइँ ।
कत्थइ हरिणइँ उल्ललियाइँ । पुणु गोरी-गेयहु वलियाइँ ।

---

[१] वानर

३—भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

शीतल्ल-बेलि तरुवर-गहना । हिमवंतहु दक्षिण-गिरि-गहना ।
जहँ व्याघ्र-सिंह-गज-गैंड आईं । मृग दुर्ग्रह करि-भालू-शताईं ।
साँभर बेकुल्ला रोहिताईं । एणी जहँ पुलकित कूदियाईं ।
जहँ संचरईं बहु मूँगुसाईं । गर्त्ताहिं जहाँ निर घर्षसाईं ।
जहँ परडा कोक्कंता भ्रमंति । झिल्ली खच्चेल्लें गुमगुमंति ।
जहँ भील-पुलिंदा नाहराईं । बीनंता तरु-बल्ली-फलाईं ।
जहँ कुक्करंति शाखामृगाईं । झूलंता तरु-शाखा-गताईं ।
उड्डन-शीला तांबूल-लागु । जहँ हरि खादंता कतहुँ भागु ।
जहँ घुरघुरंति दाठा-कराल । शूलाक्षहिँ सँग जूझंति कोल[1] ।
कंदुल्ल-गह्वर गर्दभा जहाँ । हरि हुल्लिहिँ जहँ दूषियेँउ पंथ ।
पंचासहु थूनें विदारिताईं । जहँ भीली हरिनहिँ मारियाईं ।
जहँ गहिरे धारें परिभ्रमंति । नित बादल-कुलहीं चुमचुमंति ।
जहँ बेली-वेष्टित तरुवराईं । जनु कीडै अवगुंठन पराईं ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

सेना सेनाधिप-परिचरिता । हिमवंत धरा-वन-संचलिता ।
सोहै सो जांती पूर्वमुखा । कुरुवंशनाथ-पार्थिव-प्रमुखा ।
दीसै शैल-स्थलि-काननऊ । महिषी दुग्ध् इव शाखा-घनऊ ।
नाना महिरुह-फल-रस-धरईं । कतहूँ किलकिलहीं वानरहीं ।
कतहूँ रसरक्ता सारसईं । कतहूँ तप तप्पैं तापसईं ।
कतहूँ झरझरिया निर्झरईं । कतहूँ जल-भरिया कंदरईं ।
कतहूँ बीनैं बेली-फलईं । दीसैं भाजंता नाहरईं ।
कतहूँ हरिना उल्ललियाईं । पुनि गौरी-गेहहु बलियाईं ।

---

[1] सूअर

कत्थइ हरि-णह-रुक्कत्तियइँ। करि-कुंभुच्छलियइँ मोत्तियइँ।
कत्थइ सुम्मइ जक्खिणि-झुणिउँ। खयरी-कर-वीणा रणरणिउँ।
कत्थइ भसल-उलहिँ रुणरुणिउँ। कत्थइ सुएण किं किं भणिउँ।
घत्ता। कत्थइ किंणरहिँ गाइज्जइ सवण-पियारउ।
रिसह-णाह-चरिउ फणि-णर-सुर-लोयहु सारउ ॥१॥

—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-सेंधव-कोंकण-कोसल। टक्क-हीर-कीर-खस-केरल।
अंग-कलिंग-गंग-जालंधर। वच्छ-जवण-कुरु-गुज्जर-बब्बर।
दविड-गउड-कण्णाड-वराडँवि। पारस-पारियाय-पुण्णाडवि।
सूर-सुरट्ठ-विदेहा लाडँवि। कोंग-वंग-मालव-पंचालँवि।
मागह-जट्ट-भोट्ट-णेवालँवि। उड्ड-पुंड-हरिकुरु-भंगालँवि।

—आदिपुराण (पृ० ८८)

सुरसिंधु सरिहिँ देहलिय धरिवि, पइसरणु करिवि।
पुव्वावरेसु परिसंठियाइँ, बइरट्ठियाइँ।
वेयड्ढ गिरिहि ओइल्लयाइँ, सुघणिल्लयाइँ।
चंडाइँ मेच्छ-खंडाइँ ताइँ, दोसाहियाइँ।
करवाले णिज्जिउ अज्ज-खंडु, पट्ठविवि दंडु।
मालव-मागह-वंग-ंगंग, कालिंग-कोंग।
पारस-बब्बर-गुज्जर-वराड, कण्णाड-लाड।
आहीर-कीर-गंधार-गउड, णेवाल-चोड।
चेईस-चेर-मरु-दद्दुरंडि, पंचाल-पंडि।
कोंकण-केरल-कुरु-कामरूव, सिंहल पहूय।
जालंधर-जायव-पारियाय, णिज्जिणिवि राय।
पव्वंत-वासि णीसेस लेवि, णिय-मुद्द देवि।
हेलाइ तिखंडावणि हरेवि, असि करि करेवि।

—आदिपुराण (पृ० २३०-३१)

कतहूँ हरि-नख-फारियइँ। करि-कुंभ उछरिया मौक्तिकाइँ।
कतहूँ सुनियै यक्षिणि-धुनिऊ। खेचरि-करेँ वीणा हनहनिऊ।
कतहूँ भ्रमर-कुल रुन-भुनिऊ। कतहूँ शुकेहिँ का का भनिऊ।
घत्ता। कतहुँ किन्नरहिँ गाइऊ, श्रवण-पियारहूँ।
ऋषभनाथ-चरित, फनि-नर-सुर-लोकहु सारऊ।

—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-सैंधव-कोकण-कोसल। टक्क-अहीर-कीर-खस-केरल।
अंग-कलिंग-गंग-जालंधर। वत्स-यवन-कुरु-गुर्जर-बर्बर।
द्रविड-गौड-कर्नाट-बराडउ। पारस-पारियात्र-पुन्नाडउ।
शुर-सौराष्ट्र-विदेहा लाटउ। कोंग-वंग-मालव-पंचालउ।
मागध-जाट-भोट-नेपालउ। उड्-पुड्-हरिकेल-भँगालउ।

—आदिपुराण (पृ० ८८)

सुरसिंधु-सरिहिँ देहलिय धरव, प्रतिसरन करवी।
पूर्वावरेहिँ परिसंस्थिताइँ, वैरस्थिताइँ।
वेताढ़ गिरिहिँ ओइल्लयाइँ, सुधनिल्लयाइँ।
चंडाइँ म्लेच्छ-खंडाइँ ताइँ, दुःसाधियाइँ।
करवालेँ जीतेँउ आर्यखंड, प्रस्थापि दंड।
मालव-मगध-वंग-'ङ्ग-गंग, कालिंग-कोंग।
पारस-बर्बर-गुर्जर, बराड, कर्नाट-लाट।
आभीर-कीर-गंधार-गौड़, नेपाल-चोल।
चेदीश-चेर-मरु-दर्दुरंडि, पंचाल-पंडि।
कोंकण-केरल-कुरु-कामरूप, सिंहल प्रभूय।
जालंधर-यावव-पारियात्र, जीतेँहु राय।
प्रत्यंतवासि निःशेष लेइ, निज मुद्रों देइ।
हेलहिँ तिरखंडा'वनि हरेइ, असि करेँ करेइ।

—आदिपुराण (पृ० २३०-३१)

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

वित्थिण्णए जंबुदीवि भरहें। खर-किरण-करावलि-भूरि-भरहें।
जोहेयउ णामिं अत्थि देसु। णं धरणिएँ धरियउ दिव्व वेसु।
जहिं चलइँ जलाइँ स-विब्भमाइँ। णं कामिणि-कुलइँ स-विब्भमाइँ।
भंगालइँ णं कुकइत्तणाइँ। जहिं णील-णेत्त-णिद्धहिं तणाइँ।
कुसुमिय-फलियइँ जहिं उववणाइँ। णं महि-कामिणि-णव-जोव्वणाइँ।
गोवाल-मुहालुंखिय-फलाइँ। जहिं महुरइँ णं सुकयहोँ फलाइँ।
मंथर-रोमंथण[1]-चलिय-गंड। जहिं सुहि णिसिण्ण गो-महिसि-संड।
जहँ उच्छु-वणइँ रस-दंसिराइँ। णं पवण-वसेउ पणच्चिराइँ।
जहँ कण-भर-पणविय पक्क-सालि। जहिं दीसइ सयदलु सदलु सालि।
जहिं कणिसु कीर-रिंछोलि चुणइ। गहवइ-सुयाहि पडिवयणु भणइ।
छोक्करण-राव-रंजिय-मणेण। पहि पउ ण दिण्ण पंथिय-जणेण।
जहिं दिण्णु कण्णु वणि मयउलेण। गोवाल-गेय-रंजिय-मणेण।
जहिं जण-धण-कण-परिपुण्ण गाम। पुर-णयर-सुसीमाराम साम।
घत्ता। रायउरु मणोहरु रयणंचिय घरु, तहिं पुरवरु पवणुद्धयहिं।
चल-चिंधहि मिलियहिं णहयलि घुलियहिं, छिवइ'व सग्गु सयंभुअहिं।
जं छण्णउँ सरसहिं उववणेहिं। णं विद्धउँ वम्महृ-मग्गणेहिं।
कय-सद्दहिं कण्ण-सुहावएहिं। कणइ'व सुर-हर-पारावएहिं।
गय-वर-दाणोल्लिय वाहियालि। जहिं सोहइ चिरु पवसिय पियालि।
सर-हंसइँ जहिं णेउर-रवेण। मउ चिक्कमंति जुवई-पहेण।
जं णिय-भुयासि-वर-णिम्मलेण। अण्णुवि दुग्गउ परिहा-जलेण।
पडिखलिय-वइरि-तोमर-भसेण। पंडुर-पायारिं णं जसेण।
णं वेढिउ वहु-सोहग्ग-भारु। णं पुंजीकय-संसार-सारु।
जहिं विलुलिय-मरगय-तोरणाइँ। चउदारइँ णं पउराणणाइँ।

---

[1] चर्वितचर्वण (जुगाली करना)

(२) यौधेय-भूमि-वर्णन

विस्तीर्णे जंबुद्वीप-भरते। खरकिरण-करावलि भूरि भरित।
यौधेय नाम है (एक) देश। जनु धरणी धारेंउ दिव्य-वेष।
जहँ चलैं जलाइँ स-विभ्रमाइँ। जनु कामिनि-कुलइँ स्व-विभ्रमाइँ।
भृंगालै[1] जनु कुकवित्तनाइँ। जहँ नीलनेत्र-स्निगधतनाइँ।
कुसुमित-फलितहँ जहँ उपवनाइँ। जनु महि कामिनि नवयौवनाइँ।
गोपाल-मुखा चुनिया फलाइँ। जहँ मधुरइँ सुकृतहू फलाइँ।
मंथर-रोमंथन-चलित-गंड। जहँ सुख-निषण्ण गोमहिष-संड।
जहँ इक्षु-वनइँ रस-दंशिराइँ। जनु पवन बसेउ पनच्चिराइँ।
जहँ कण[2]-भर-प्रनमी पक्वशालि। जहँ दीसै शतदल-सदल-शालि।
जहँ मंजरि कीर-पंक्ती चुनै। गृहपति-सुताहिँ प्रतिवचन भनै।
छोक्करन-राज-रंजित-मनेहिँ। पथ पद न दीन पंथिक-जनेहिँ।
जहँ दीय कर्ण वनें मृगकुलेहिँ। गोपाल-गीत-रंजित-मनेहिँ।
जहँ जन-धन-कण-परिपूर्ण ग्राम। पुर-नगर-सुषीमाराम श्याम।
घत्ता। राजपुर मनोहर रत्नांचित घर, तहँ पुरवर पवनोद्धतहिँ।
चल-चिन्हहिँ[3] मिलिया नभतले घुरियहिँ, छुवें इव सर्ग स्वयंभुजहिँ ॥३॥
जो छादित सरसेंहिँ उपवनेहिँ। जनु विद्धेंउ मन्मथ-मार्गणेहिँ।
कल-शब्दहिँ कर्ण-सुखावहेहिँ। क्वणें इव सुरघर-पारावतेहिँ।
गज-वर-दानोल्लित-वाँहिय-ालि। जहँ सोहै चिर-प्रवसित-प्रियालि।
सर-हंसहँ जहँ नूपुर-रवेहिँ। सृग चिक्कमंति युवती-प्रभेहिँ।
जो निज-भुज-ासि-वर-निर्मलेहिँ। अन्यउ दुर्गंह परिखा-जलेहिँ[4]।
प्रतिखलित-वैरि-तोमर-झषेहिँ। पांडुर प्राकारा जनु यशेहिँ।
जनु बेठेंउ वहु-सौभाग्य-भार! जनु पुंजीकृत संसार-सार।
जहँ विलुलित-मरकत-तोरणाइँ। चौद्वारहिँ जनु पौराननाइँ।

---

[1] भृंग-आलय [2] दाना [3] ध्वजा [4] तीर

जहिँ धवल-मंगलुच्छव-सराइँ। दु-ति-पंच-सत्त-भोमइँ[1] घराइँ।
णव-कुंकुम-रस-छडयारुणाइँ। विक्खित्त-दित्त-मोत्तिय-कणाइँ।
गुरु-देव-पाय-पंकय-वसाइँ। जहिँ सव्वइँ दिव्वइँ माणुसाइँ।
सिरिमंतइँ संतइँ सुत्थियाइँ। जहिँ कहि 'मि ण दीसहि दुत्थियाइँ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४, ५)

(४) मगधभूमि-वर्णन

खेडाम-गाम-पुरवर-विचित्तु। तहों दाहिणि दिसि थिउ **भरह** खेत्तु।
तहिँ **मगह**-देसु सुपसिद्ध अत्थि। जहिँ कमल-रेणु-पिंजरिय हत्थि।
जहिँ सुरवर-तरु-णंदण-वणाइँ। जहिँ पक्क-सालि धण्णइँ तणाइँ।
वय-सय-हंसावलि-माणियाइँ। जहिँ खीरसमाणइँ पाणियाइँ।
जहिँ कामधेणु-सम गोहणाइँ। घडदुद्धइँ णेहारोहणाइँ।
जहिँ सयल-जीव-कय-पोसणाइँ। घण-कण-कणि-सालइँ करिसणाइँ
जहिँ दक्खा-मंडवि दुद्द मुयंति। थलपोमोवरि पंथिय सुयंति।
जहिँ हालिणि-कलरव-मोहियाइँ। पहि पहियइँ-हरिणा इव थियाइँ।
पुंडुच्छु-वणइँ चउ-दिसु चलंति। जहिँ महिस-सिंग-हय रस गलंति।
जहिँ मणहर-मरगय-हरिय-पिंछ। मायंद-गोंछि गोंदलिय रिंछ।
घत्ता। तहिँ पुरवरु णामें **रायगिहु**, कणय-रयण-कोडिहिँ घडिउ।
बलिबंड धरंतहों सुरवइहिँ, णं सुर-णयरु गयण-पडिउ ॥६॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

एत्थत्थि **अवंती** णाम विसउ। महिवहु भुंजाविय जेण'वि सउ।
घत्ता। णंदंतहिँ गामहिँ विउलारामहिँ, सरवरकमलहिँ लच्छि-सही।
गलकल-केक्कारहिँ हंसहिँ मोरहिँ, मंडिय जेत्थु सुहाइ मही ॥२०॥

---

[1] दो-तीन-पाँच-सात तल्लेवाले (मकान)

जहँ धव-मंगल-ोत्सव-सराइँ। दुइ-पंच-सप्त-भूमिक घराइँ।
नव-कुंकुम-रस-छट-आरुणाइँ। विखरीय-दीप्त-मौक्तिक-कणाइँ।
गुरु-देव-पादपंकज-वशाइँ। जहँ सब्बै दिव्यै मानुषाइँ।
श्रीमन्तहिँ संतहिँ सुस्थिताइँ। जहँ कतहुँ न दीसै दुःस्थिताइँ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४, ५)

(४) मगध भूमि-वर्णन

खेड़ाउ-ग्राम-पुरवर-विचित्र। तहँ दक्षिणदिशि ठिउ भरत-क्षेत्र।
तहँ मगध-देश सुपसिद्ध अस्ति। जहँ कमल-रेणु-पिंजरित हस्ति।
जहँ सुरवर-तरु-नंदनवनाइँ। जहँ पक्व-शालि धान्यहिँ तनाइँ[१]।
व्रज-शत-हंसावलि-माणिकाइँ। जहँ क्षीरसमाना पानियाइँ।
जहँ कामधेनु-सम गोधनाइँ। घट-दूधी स्नेहारोधनाइँ।
जहँ सकल-जीव-कृत-पोषणाइँ। धन-कण-कणिशालहँ[२] कर्षणाइँ।
जहँ द्राक्षामंडपेँ दुध-मुचंति। स्थलपद्मोपरि पंथिक सोँवंति।
जहँ हालिनि[३]-कल-रव-मोहिताइँ। पथेँ पंथिक हरिना इव ठिताइँ।
पुंड्-इक्षु-वना चौदिशि चलंति। जहँ महिष शृंग-हत रस गिरंति।
जहँ मनहर-मरकत-हरित-पिच्छ। माकंद-गुच्छ चविता वृक्ष।
घत्ता। तहँ पुरवर नामे राजगृह, कनक-रतन-कोटिहिँ गढेँऊ।
बलिवंड-धरंतह सुरपतिहँ, जनु सुर-नगर गगन पड़ेँऊ ॥६॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

इहँ अहै **अवंती** नाम विषय। महि वहु भोगेँउ जेहिहि सवय।
घत्ता। नंदतेँहिँ ग्रामेँहिँ विपुलारामेँहिँ, सरवर-कमलेहिँ लक्ष्मि-सखी।
कलकल-केकारेँहिँ हंसेहिँ मोरेँहिँ, मंडित यत्र सुहाइ मही ॥२०॥

---

[१] तनाइ=केरी [२] फल-मंजरी [३] हलवाहेकी बहू

जहिँ चुमचुमंति केयार-कीर । वर-कलम-सालि-सुरहिय-समीर ।
जहिँ गोउलाइँ पउ विक्किरंति । पुंडुच्छु[1]-दंड-खंडइँ चरंति ।

जहिँ वसह-मुक्क-ढेक्कार-धीर । जीहा-विलिहिय-णंदिणि-सरीर ।
जहिँ मंथर-गमणइँ माहिसाइँ । दह-रमणुड्डाविय-सारसाइँ ।

काहलिय[2]-वंस-रव-रत्तियाउ । बहुअउ घर कम्मि गुत्तियाउ ।
संकेय-कुडुंगण-पत्तियाउ । जहिँ भीणउ विरहिँ तत्तियाउ ।

जहिँ हालिणि-रूव-णिबद्ध-चक्खु । सीमावडु ण मुअइ कोवि जक्खु ।
जिम्मइ जहिँ ऍंवहि पवासिएहिँ । दहि कूरु खीरु घिउ देसिएहिँ ।

पव-पालियाइ जहिँ बालियाइ । पाणिउ भिंगार-पणालियाइ ।
दितिएँ मोहिउ णिरु पहिय-विंदु । चंगउ दक्खालि'वि वयण-चंदु ।

जहिँ चउपयाइँ तोसिय-मणाइँ । धण्णइ चरंति णहु पुणु तिणाइँ ।
उज्जेणि णाम तहिँ णयरि अत्थि । जहिँ पाणि पसारइ मत्त-हत्थि ।

—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४–सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

रज्जहु कारणि पिउ मारिज्जइ । बंधवहू मी संचारिज्जइ ।
जिह अलि-गंधे गउ संघारहु । तिह रज्जेण जीउ तं वारहु ।

भड-सामंत-मंति-कय-भायउ । चिंतिज्जंतउ सव्वु परायउ ।
तंडुल-पसयहु कारणि राणा । णरइ पडंति काइँ अ-वियाणा ।

डज्झउ रज्जु'जि दुक्खु गुरुक्कउ । जइ सुहु कि ताएँ मुक्कउ ।

—आदिपुराण (पृ० २६५)

---

[1] लाल लाल और मोटे गन्ने [2] झांझ (थालीनुमा कांसेका बाजा)

जहँ चुमचुमंति केदार-कीर। वर-कलम-शालि-सुरभित-समीर।
जहँ गोकुलाइँ पय विक्षरंति। पुंड्-ईख-दंड खंडहिँ चरंति।
जहँ वृषभ मुक्त-होँक्काड-धीर। जीभा-विलिहित-नंदिनि-शरीर।
जहँ मंथर गमनै माहिषाइँ। ह्लद-रमण्-उड्डायउ सारसाइँ।
काह्ली वंशि-रव-रक्तियाउ। बधुआ घरकर्मं गुप्तियाउ।
संकेत-कुडच-ंगिण-पंक्तियाउ। जहँ झीनउ विरहे तप्तियाउ।
जहँ हालिनि-रूप-निबद्ध-चक्षु। सीमावट न मुवै कोइ यक्ष।
जेवँ जहँ ऐस प्रवासिनेहिँ। दधि-गूड-क्षीर-धिउ-दुस्सए[1]हिँ।
प्रप-पालिकाहिँ[2] जहँ बालिकाहिँ। पानिय-भृंगार[3]-प्रणालिकाहिँ।
देतिअँ मोहेँउ अति पथिकवृन्द। चंगा द्राक्षालि'व वदनचन्द्र।
जहँ चौपदाइँ तोषित-मनाइँ। धान्यै चरंति नहि पुनि तृणाइँ।
उज्जेनि नाम तहँ नगरि अस्ति। जहँ पाणि प्रसारै मत्त-हस्ति।

—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४—सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

राज्यहि कारणँ पितु मारिज्जै। बांधवहँ (पुनि) संचारिज्जै।
जिमि अलि-गंधे गउ संहारा। तिमि राज्येहि जीवितऊँ वारा।
भट-सामंत-मंत्रि-कृत भायउ। चिंतीयंतउ सब उपरागउ।
तंडुल-पसरहँ कारणँ राना। नरक पडंति काइँ अ-विजाना।
जारहु राज्यहु दुःख-गुरुकउ। यदी सुक्ख का तेहीँ मूकउ।

—आदिपुराण (पृ० २९५)

---

[1] कपड़ा थान [2] पौसरेपर पानी पिलानेवाली [3] जलकी झारी

(२) राज-दर्बार[1]

अत्थाण-भूमि[2] गउ मणि विसण्ण। कणय-मय-रयण-विट्ठरि णिसण्णु।
दो-वासइँ चमरइँ महु पडंति। बहु-दुक्ख-सहासइँ णं घटंति।
सह-मंडवि खुज्जय-वावणाइ। णच्चंतइ णिरु कोड्डावणाइँ।
वीणा-वंसइँ गेयइँ भुणंति। बेयालिय फंफावय थुणंति।
एयाइँ जइवि णिरु सुहयराइँ। महु पुणु सुविरत्तहोँ दुहयराइँ।
पोत्थय-वायणु आढत्त सरसु। मण-सवणहँ जं जणि जणइ हरिसु।
तहिँ अवसरिँ पडिहारिं वरेण। कणय-मय-दंड-मंडिय-करेण।
पइसारिय भड-सामंत-मंति। अणवरय भमइ जगि जाँह कित्ति।
पय-जुयलु णविउ महु णरवरेहि। मउडग्ग-कोडि-चुंबिय-धरेहि।
अवलोइय णर-वइ मइँ णवंत। पडियावयाइँ णावइ कुमित्त।
गोविट्ठि-णिविट्ठ णरिंद सव्व। णिविडत्थवंत णं सुकइ-कव्व।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

काम-भोय-सुह-रस-वसहोँ। तहु वसुमइहि काइँ वण्णिज्जइ।
जं जं चिंतइ किंपि मणे। तं तं सयलु' वि खणि संपज्जइ॥
जक्ख-पंको दढं वल्लहालिंगणं। मालई-मालिया कुंकुमालेवणं।
उंचओ मंचओ चारु-सेज्जा-यलं। आवरोहारि सोम्हं थणाणं थलं।
उण्हयं भोयणं तुप्प-धारा-हरं। रत्तओ कंबलो छण्णरंधं घरं।
पुव्वपुण्णेण सव्वं पि संजुत्तयं। सीय-यालम्मि तेणेरिसं भुत्तयं।
चंदणं चंदपाया पिया णेहली। मल्लिया-दामयं तार-हारावली।
दाहिणो मंथरो मारुओ सीयलो। रुक्ख-कीलाणिओ पल्लवो कोमलो।
वल्लरी-मंडवो पोमजुत्तो सरो। वीयणं दोलणालीणओ सीयरो।
थद्ध-थद्धं दहिं सीययं पाणियं। उण्हयालम्मि तेणेरिसं माणियं।

---

[1] राजकुल [2] राजप्रांगण

(२) राज-दर्बार

आस्थान[1]-भूमि गउ मन-विषण्ण। कनकमय-रतन-विस्तर-निषण्ण।
दो पासेँहि चमरा मुहु पडंति। बहु-दुःख सहसैँ जनु घडंति।
सभ-मंडपेँ कुब्जा-वामनाइ। नाचंतै अतिकोटावनाइ[2]।
बीणा-वंशिहि गीतहि ध्वनंति। वैतालिक फंफावै स्तुवंति।
एताइँ यदपि बहु सुख-कराइँ। मुहु पुनि सुविरक्तह दुखकराइँ।
पुस्तक-वाचन आरभेँउ सरस। मन-श्रवहँ जनु जनेँ जनै हरष।
तेँहि अवसर प्रतिहारेँहिँ बरेहिँ। कनकमय-दंड-मंडित-करेहिँ।
पइसारेउ भट-सामंत-मंत्रि। अनवरत भ्रमै जग जाहु कीर्त्ति।
पद-युगल नमेँउ मुहु नरवराहिँ। मुकुटाग्र-कोटि-चुंवित-धराहिँ।
अवलोकेँउ नरपति मोहिँ नमंत। आ-पड़िईँ न्याइँ कुमित्र।
गोष्ठीहिँ निविष्ट नरेन्द्र सर्व। निविडार्थवंत जनु सुकवि-काव्य।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

कामभोग-सुख-रस-वसहु, तेँहि वसुमतिहिँ किमि वर्णिज्जै।
जो जो चितै कछु मने, सो सो सकलहु क्षणेँ संपज्जै॥
यक्षपंको (?) दृढं वल्लभालिंगनं। मालती-मालिका कुंकुमालेपनं।
ऊँचओ मंचओ चारु-शय्यातलं। आवरोहारि सूक्ष्म स्तनाहूँ तलं।
उष्णओ भोजना तोपि धाराधरं। रक्तओ कंवलो वंद-रंध्रं घरं।
पूर्वपुण्येहिँ सर्व हि संयुक्तकं। शीतकालेहि तेँहि इंदृशं भुक्तकं।
चंदनो चंद्रपादा प्रिया स्नेहिली। मल्लिका-दामकं तार-हारावली।
दाहिने मंथरो मारुतो शीतलो। वृक्षक्रीडानियो पल्लवो कोमलो।
वल्लरी-मंडपो पद्म-युक्तो सरो। वीजना-दोलना नीरको शीकरो।
गाढ-गाढं दही शीतलं पानियं। उष्णकाले हि तेँहिँ ईदृशं मानियं।

---

[1] दर्बार [2] उत्साहनाईं

फुल्लियासा-कयंबोह-धूलीरओ। मत्त-माऊर-वंदस्स केयारओ।
णीर-धारा मुयंतंबु-वाहज्झुणी। संगया सूहवा पासि सीमंतिणी।
णिग्गलं मंदिरं णिक्कियं भूयलं। धावमाणं रयालं पणाली-जलं।
इट्ठ-गोट्ठी-विसिट्ठेहिं विण्णाययं। दिव्व-गंधव्वयं कव्वयं पाययं।
विज्जु-माला-फुरंतं णहं दिप्पहं। तस्स मेहागमे तंपि सोक्खावहं।......
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेसा-वाडइं झत्ति पइट्ठउ। मयरकेउ पुरवेसहिं दिट्ठउ।
कावि वेस चिंतइ गय-सुण्णा। ए थण एयहों णहहिं ण भिण्णा।
कावि वेस चिंतइ किं वड्ढिय। णीलालय एएण ण कड्ढिय।
कावि वेस चिंतइ किं हारें। कंठु ण छिण्णउ एण कुमारें।
कावि वेस अहरग्गु समप्पइ। झिज्जइ खिज्जइ तप्पइ कंपइ।
कावि वेस रइ-सलिलें सिंचिय। वेवइ वलइ घुलइ रोमंचिय।...
घत्ता। ता वीणा-कलरव-भासिणिए देवदत्तए रायविलासिणिए।
हिय-उल्लए कामदेउ ठविउ कय-पंजलि-हत्थें विण्णविउ॥१॥
"परमेसर! कारुण्णु वियप्पहि। जिह मणु तिह घर-पंगणु चप्पहि।
तं णिसुणिवि उवयरियउ तेत्तहें। तं तहें रमणिहें मंदिरु जेत्तहें।
आणु दिण्णु णिसण्णउ रयणिहिं। णिव्वत्तिय-मज्जण-भूसण-विहि।
भोयणु भुत्तउ मत्ता-जुत्तउ। सरसु कइंदें कव्वु'व उत्तउ।
कामें कामिणि भणिय हसेप्पिणु। ....
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुयर-सहुँ चलिउ जाव। पारंभिय थुइ णग्गुडिहिं ताव।
णच्चंति विलासिणि गीउ रम्मु। गायण गायंतिहिं सुकिय-कम्मु।
गय णंदण-वणि मंडव-दुवारु। वर-तोरण-मंडिउ रयण-फारु।
तहिं किउ जं जोग्गु पुरोहिएण। आयारु कुमग्गणि रोहिएण।

फूलि-आशा कदंब- घ-धूली-रजो। मत्त-मायूर-वृन्दों कों केकारवो।
नीरधारा मुचंत्-अंबुवाह्-द्-धुनी। संगता सूद्भवा पास सीमंतिनी।
नि'र्गलं मंदिरं निष्क्रियं भूतलं। धावमानं रजालं प्रणाली-जलं।
इष्ट-गोष्ठी-विशिष्टेहिँ विद्याचयं। दिव्यगंधर्वकं काविय पाययं।
विज्जुमाला-फुरंतं नभं दिक्प्रभं। तासु मेघागमे सोउ सौख्यावहं।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेश्यावाटहिँ झट्ट पइट्ठेॅउ। मकरकेतु-पुरवेषहिँ देखेॅउ।
कोइ वेश्य चिंतै गति-शून्या। ए थन एतहँ नखेॅहि न भिन्ना।
कोइ वेश्य चिन्तै का वाढिय। नीलालक एतेहिँ न काढिय।
कोइ वेश्य चिन्ता की हारेँ। कंठ न छिन्देॅउ एहिँ कुमारेँ।
कोइ वेश्य अधराग्र समर्पै। झिज्जै-खीझै-तापै-कंपै।
कोइ वेश्य रति-सलिलेँ सींचिय। वेपै वलै घुरै रोमांचिय।
घत्ता। तो वीणा-कल-रव-भाषिणिया देवदत्तआ राज-विलासिनिया।
हिय-उल्लया कामदेव थापेॅउ कृत-प्रांजलि-हाथेँ विज्ञापिया ॥१॥
"परमेश्वर! कारुण्य-वियापै। जेॅहि मन तेॅहि घर-आँगन प्रापै।"
सो सुनिया उपकरियउ तेॅत्तहिँ। सो तेॅहि रमणिहिँ मंदिर जेॅतहिँ।
अन्यो दीनु निषण्णउ रजनिहिँ। पूरावेॅउ मज्जन-भूषण-विधि।
भोजन भुक्तउ मात्रायुक्तउ। सरस कवीन्द्रेँ काव्य'व उक्तउ।
कामेँ कामिनि भनियो हंसिके। ....

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुमर-सँग ले चलेॅउ जब्ब। प्रारंभेउ स्तुति नग्गुडिहिँ तब्ब।
नाचंति विलासिनि गीत रम्य। गायन गायंती सुकृत-कर्म।
गउ नंदनवन-मंडप-दुवार। वरतोरण-मंडित रतन-स्फार।
तहँ किउ जो योग्य पुरोहितहीँ। आचार कुमार्ग-निरोधिहहीँ।

सुपइट्ठउ मंडव-मज्झि जाम। वरु दिट्ठउ सज्जण-जणहिं ताम।
चउरिइ[1] णिविट्ठ कंदप्प-मुत्ति। पासेहि णिवेसिय तासु पत्ति।
अग्गइ पयक्खु किउ धूमकेउ। किउ होमु हुणेप्पिणु तिव्व-तेउ।
अम्मय-मइ पाणि करेण गहिउ। सीयारु पमेल्लिउ ताह अहिउ।
तहों दिण्ण कण्ण विरइउ विवाहु। सव्वेहिं उच्चरिउ "साहु साहु"।
णवयारिवि मायरि कण्ण सहिउ। णिग्गउ वरु एहु विवाहु कहिउ।
—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोंका जीवन

क'वि अलय-तिलय देविहि करइ। क'वि आदंसणु अग्गइ धरइ।
क'वि अप्पइ वर-रयणाहरणु। क'वि लिप्पइ कुंकुमेण चरणु।
क'वि णच्चइ गायइ महुर-सरु। क'वि पारंभइ विणोउ अवरु।
क'वि परिरक्खइ णिसियासि करी। क'वि वारि परिट्ठिय दंडधरी।
अक्खाणउ कावि किंपि कहइ। दिण्णउँ कणइल्लु कावि वहइ।
क'वि वार वार विणएँ णवइ। क'वि सुरसरि-सर-सलिलहिं ण्हवइ।
क'वि मालउ चेलिउ उज्जलउ। ढोयइ सव-लहणु सुपरिमलउ।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

ताहि घरणि मरुएवि भडारी। जाहि रूव-सिरि अइ-गरुयारी।
अमरहँ पंतिउ पय-पणवंतिउ। लंघियाइँ अम्हइँ णहयंतिउ।
कमयलराएँ काइँ गविट्ठउ। एम णाइँ णेउरहिँ पघुट्ठउ।
पण्हिहि रत्तउ चित्तु पदंसिउँ। अंगुलियहिँ सरलत्तु पयासिउँ।
अंगुट्ठुण्णईइ जं गूढइँ। गुप्फइँ तं किर पिसुणइँ मूढइँ।
णीरोमउ विसिरिउ वट्टुलियउ। मसिणउ सोहियाउ उज्जलियउ।
जंघउ कमहाणिइ ओहरियउ। दिट्ठउ णं खल-मित्तहँ किरियउ।

---

[1] चबूतरेपर

सु-पईठेउ मंडप-माँझ जब्ब। वर देखेँउ सज्जन-जनेँहिँ तब्ब।
चउरेँ निविष्ट कंदर्प-मूर्त्ति। पासेहिँ निवेसेउ तासु पत्नि।
आगेँहिँ प्रदक्षणेँउ धूमकेतु। किउ होम होँमावन तीव्र-तेज।
अमृतमय-पाणि करेहिँ गहेँउ। शीत्कार प्रमेलत[1] स ाहि अहिउ।
तहँ दियउ कन्याँ विरचेँउ विवाहु। सर्वेहिँ उच्चरेँउ "साधु साधु"।
नवकारिहु मायेर कन्याँ-सहित। निर्-गउ वर एहु विवाह कथित।
—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोंका जीवन

कोँइ मलय-तिलक देविहिँ करई। कोँइ आरसिहीँ आगे धरेँई।
कोँइ अपैँ वर-रतनाभरना। कोँइ लेपै कुंकुमहीँ चरणा।
कोँइ नाचै गावै मधुर-स्वरा। कोँइ प्रारंभै विनोद अपरा।
कोँइ परि-रक्षै निशित-असि करी। कोँइ द्वारेँ परिट्-ठिउ दंडधरी।
आख्यानहु कोँइ किछू कहई। दीनेँउ कनइल्लु[2] कोँइ बहई।
कोँइ बार बार विनये नमई। कोँइ सुरसरि-सर-सलिलेँहिँ स्नपई।
कोँइ मालउ चोलिउ उज्ज्वलऊ। धोवै सब लहण[3] सुपरिमलऊ।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

ताहि घरनि मरुदेवि भटारी[4]। जाहि रूपश्री अति गुरुकारी।
अमरन् पंक्तिहिँ पद-प्रणमंतिइ। लंघायऊ हमरो नख-पंक्तिइ।
कमतल राये काह गवेषिउ। ऐँहि न्याईँ नूपुरेहि प्रघोषिउ।
पर्ण्णिहिँ रक्तउ चित्त प्रदर्शेउ। अंगुलियहिँ सरलत्त्व प्रकाशिउ।
अंगुठ-उन्नति ही जिमि गूढा। गुल्फउ सो फुर पिशुना मूढा।
नी-रोमउ विसिरिउ वर्त्तुलियउ। मसृणउ सोहियाउ अंगुलियउ।
जंघउ क्रमहानी अव-धरियऊ। दीसेँउ जनु खल-मित्रहँ किरियउ।

---

[1] छोड़ती [2] कर्ण-फूल [3] लहँगा (?) [4] भट्टारिका=महाराणी

गूढइं णरवइ-मंता भासइं। वायरणाइं व रइय-समासइं।
णिविड-संधि-बंधइं णं कव्वइं। देविहि जण्हुयाइं[1] अइभव्वइं।
ऊरुय-खंभ-णराहिव-दमणहु। तोरण खंभाइं'व रइ-भवणहु।
जेण स-सुर-णरु तिहुयणु जित्तउ। कामतच्चु जं देवहिं वुत्तउ।
दिण्ण थत्ति तहु सोणी बिंबहु। किं वण्णमि गरुयत्तु नियं बहु।

घत्ता। गंभीर णाहि तहि मज्झु किसु, उयरु स-तुच्छउ दिट्ठु मइं।
संसग्गवसे गुणु कासु हुउ, जो णवि जायउ जम्मि सइं ॥१५॥

तिवली-सोवाणेहिं चडेप्पिणु। रोमावलि-कुहिणी लंघेप्पिणु।
सिहिण-गिरिंदारोहण-दोरइ। लग्गहु वम्महु मोत्तिय-हारइ।
पिय-वसियरणु वसइ भुय-मूलइ। सुइ-सोहग्गु जाहि हत्थयलइ।
णेह-बंधु मणि-बंधि परिट्ठिउ। लायण्णें समुद्दु णं संठिउ।
जाहि तणउं तं जणिय-वियारउं। महुरउ इयरउ केरउ खारउ।
कंठलीह णउ कंबु पावइ। पर-सास-ऊरिउ कहिं जीवइ।
णियउ णिविट्ठउ जिय-ससि-कंतिहि। धोयहि धवलहि णाइं पवालउ।
अहर-बिंबु रेहइ रायालउ। मुक्तावलियहि णाइं पवालउ।
अम्हहिं ठाइ कयाइ ण संमुहु। उज्जुहु णासावंसु वि दुम्मुहु।
भउंहउं बंकत्तणु' वि ण सहियउ। णयणहिं जंपि'व कण्णहुं कहियउ।
णिसि-दिणि ससि रवि गयण बिलंबिय। विण्णि'वि गंडयलइ पडिबिंबिय।
कुंडल-सिरि वहंति धवल-च्छिहि। जिण-जणणियहि सलक्खण-कुच्छिहि।
कुडिलालय भाल-यलि णिरंतर। मुह-कमलहु घुलंति णं महुयर।
अवरु' वि ताहं भारु विवरेरउ। मुह-ससहर-भएण णं तमरउ।
तरुणिहे पिट्ठि पइट्ठउ दीसइ। कुसुम-रिक्ख-मीसियउ विहासइ।

—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

---

[1] जाह्नवी (गंगा)

गूढा नरपति-मंत्रा भाषा। व्याकरणहिँ इव रचित-समासा।
निविड-संधि[1]-बंध जनु काव्या। देवि जाह्नवी इव अतिभव्या।
ऊरु-खंभ नराधिप-दमनहँ। तोरण-खंभा इव रति-भवनहँ।
जातेँ स-सुर-नर-त्रिभुवन जीतउ। कामतत्त्व जो देवेँहिँ उक्तउ।
दीन थाप तेँहि श्रोणीबिंबहु। का बरनौ गरुअत्त्व नितंबहु।
घत्ता। गंभीर नाभि तहि माँझ कृश, उदर स-तुच्छउ देखु मईँ।
संसर्गं वशे गुण कासु हुयेउ, जो नहि जायेउ जन्मतेँईँ ॥१५॥
त्रिवली-सोपानेहि चढेविय। रोमावलि केँहुनी लंघेविय।
स्तनक-गिरीन्द्रारोहण-डोरा। लागहु मन्मथ मौक्तिकहारा।
प्रिय-वशिकरण वसै भुज-मूलहिँ। शुचि सौभाग्य जाहि हत्थतलहिँ।
स्नेहबंध मणिबंध परिट्-ठिउ। लावण्ये समुद्र ना सं-ठिउ।
जाहिकेर सो जनित-विकारा। मधुरउ इतरहु-केरउ खारा।
कंठलीहिँ नहिँ कंबू पावै। पर-श्वासा-पूरित किमि जीवै।
निकट-निविष्टउ जित-शशि-कान्तिहिँ। धोवै धवलहि न्याइ प्रवालहिँ।
अधर-बिंब रोचै रागालउ। मुक्तावलियहिँ न्याईं प्रवालउ।
हमरे ठहर कदाचि न संमुख। ऋज्जुहु नासा-वंशउ दुर्मुख।
भौँहउँ वंकपनहु नहि सहियउ। नयनहिँ जल्पिय कर्णहँ कहियउ।
निशि-दिन रवि-शशि गगने लंबिउ। दोऊ गंड-तलैँ प्रतिबिंबति।
कुंडल-श्री वहंत धवलाक्षिहिँ। जिन-जननियेहि स-लक्षण-कुक्षिहिँ।
कुटिलालक भालतले निरंतर। मुखकमलहु घुरंति जनु मधुकर।
अवरउ ताहँ भार विवरेरउ। मुख-शशधरभरेहिँ जन तमसउ[2]।
तरुणिहिँ पृष्ठ पईठेउ दीसै। कुसम-ऋक्ष-मिश्रितउ बिभासै।
—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

---

[1] सर्ग (अपभ्रंश काव्योंमें संधि और कडवका क्रम होता है)　　[2] अंधकार

राएँ गउ णिय-सिविरहु तरंतु । . . . । पत्तउ सुरसरि-जल-मज्झ-ठाणु ।
जोयवि गंगहि सारसहँ जुयलु । जोयइ कंतहि थण-कलस-जुयलु ।
जोयवि गंगहि सुललिय-तरंग । जोयइ कंतहि तिवली-तरंग ।
जोयवि गंगहि आवत्त-भवँणु । जोयइ कंतहि वर-णाहि-रमणु ।
जोयवि गंगहि पप्फुल्ल-कमलु । जोयइ कंतहि पिउ-वयण-कमलु ।
जोयवि गंगहि वियरंत मच्छ । जोयइ कंतहि चल-दीहरच्छ ।
जोयवि गंगहि मोत्तियहु पंति । जोयइ कंतिहि सिय-दसण-पंति ।
जोयवि गंगहि मत्तालि-माल । जोयइ कंतहि धम्मेल्ल णील ।
घत्ता । णिय-गेहिणि वम्महु-वाहिणि, देवि सुलोयण जेही ।
मंदाइणि जण-सुह-दाइणि, दीसइ राएँ तेही ।।७।।

—आदिपुराण (पृ० ४६)

(क) नारी-नख-शिख—

णिय वणिणा कणय-उरहो मयच्छि । दिट्ठा वरेण णं मयणलच्छि ।
जो कंतह णह-यलि दिट्ठु राउ । मुहु भावइ सो णह-यर-णिहाउ ।
चारत्तु णहहँ एए कहंति । अंगुट्ठय परमुण्णय वहंति ।
गुप्फइँ गूढत्तणु जं धरंति । णं भुअणु जिणहु मंतु'व करंति ।
जंघा-जुयलउ णेउर-दुएण । वण्णिज्जइ णं घोसें हुएण ।
वग्गइ वम्महु वहु-विग्गहेण । जण्हुय संधाएँ परिग्गहेण ।
ऊरु-थंभहिँ रइघरु अणेण । रेहइ मणि-रसणा[1] तोरणेण ।
कडियल-गरुयत्तणु तं पहाणु । जं धरिया मयण-णिहाण-ठाणु ।
मणि चितवंतु सय-खंडु जाहि । तुच्छोयरि किह गंभीर-णाहि ।
सो सिय ससि-वयणहे तिवलि-भंग । लायण्ण-जलहो णावइ तरंग ।
थण-थड्ढत्तणु परमाण णासु । भुय-जुयलउ कामुय-कंठ-पासु ।
गीवहे गइवेयउ हियय-हारि । बद्धउ चोरु'व रूवावहारि ।
अहरुल्लउ वम्महु-रस-णिवासु । दंतहि णिज्जिउ मोत्तिय-विलासु ।

---

[1] कांची (करधनी)—कटिका आभूषण

राय गऊ निज शिविरेहिँ तुरंत । . . . । . पायउ सुरसरि-जल-माँझ थान ।
जोयउ गंगहिँ सारंसहँ युगल । जोवै कांता-स्तन-कलश-युगल
जोयउ गंगहिँ सुललित-तरंग । जोवै कांता-त्रिवली-तरंग ।
जोयउ गंगहिँ आवर्त्त-भ्रमण । जोवै कांता-वर-नाभि-रमण ।
जोयउ गंगहीँ प्रफुल्ल कमल । जोवै कांता-प्रियवदन-कमल ।
जोयउ गंगहिँ बिचरंत मच्छ । जोवै कान्ता-चल-दीर्घ-अक्ष ।
जोयउ गंगहिँ मोतियहु पाँति । जोवै कान्ता-सित-दशन-पाँति ।
जोयउ गंगहिँ मत्तालिमाल । जोवै कान्ता-धम्मिल्ल[1]-नील ।
घत्ता । निज-गेहिनि मन्मथ-वाहिनि, देवि सुलोचन जैसी ।
मंदाकिनि जन-सुख-दायिनि, दीसै राजहिँ तैसी ।।७।।

—आदिपुराण (पृ० २६)

(क) नारी-नख-शिख—

निज वर्णं कनक-उरहोँ मृगाक्षि । दीसति वरेहि जिमि मदन-लक्ष्मि ।
जो कंतहु नभ-तल देखु राव । मुहु भावै सो नभचर-निधाव ।
चारुत्व नभहँ ईँहै कहंति । अंगुट्ठक-परमुन्नत वहंति ।
गुल्फा गूढत्तन जो धरंति । जनु भुवन-विजय मंत्र इव करंति ।
जंघा-युगलउ नूपुर-द्वयेहिँ । वणिज्जै जनु घोषेँ हुयेहिँ ।
वलौ मन्मथ वहु - विग्रहेहिँ । जानू संधान - परिग्रहेहिँ ।
ऊरु-थंभहिँ रतिघर एँहीहिँ । राजै मणि-रसना-तोरणेहिँ ।
कटितल गरुत्तन सो प्रधान । जनु धरिय मदन-निधान-थान ।
मणि चितवत शतखंड जाहु । तुच्छोदरि कहँ गंभीर नाभि ।
शेषिय शशिवदनहँ त्रिवलि-भंग । लावण्य जलहँ नदिही तरंग ।
स्तन-कठिनत्वहु परमान-नाश । भुज-जुगलउ कामुक-कंठपाश ।
ग्रीवहेँ गतिवेगउ हृदयहारि । बद्धउ चोर इव रूपापहारि ।
अधरुल्लउ मन्मथ-रस-निवास । दंतेहिँ जीतेँउ मौक्तिक-विलास ।

---

[1] केशपाश

घत्ता । जइ भउहाँ-कुडिलत्तणेण, णर सुरधणुरुहेण पहयमय ।
तो पुणु वि काइँ कुडिलत्तणहों, सुंदरि-सिरि धम्मिल्ल-गय ॥१७॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० १२)

(च) कुपिता नायिका—

'हेट्ठामुह बहु वरेण भणिया । किं हुइ तुहूँ मलिणाणणिया ।
घणु सोहइ एक्कइ विज्जुलइ । वणु सोहइ एक्कइ कोइलइ ।
इह सोहमि हउँ एक्काइ पइँ । गुरु-वयणु करेवउ तोवि मइँ ।
मा रूसहि सज्जण-वच्छलिइ । अलि-णील-कुडिल-भउँ-कोंतलिइ ।
तें वयणें रोस-णियत्तणउँ । जायउँ तहि रम्मु पेम्मु घणउँ ।
वप्पिल संपाइउ रमण-वसा । तडि-रय-तडि-वेयहु तणिय ससा ।
चल-णयण-जुयल-णिज्जिय-हरिणि । रइकंता मयणवई तरुणि ।
—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

ते णव बंधव सहुँ परिवारें । सोउ करंति दुक्ख-वित्थारें । . . . .
सा सिवएवि रुयइ परमेसरि । "हा देवर ! पर-भड-गय-केसरि ।
हा किं जीविउँ तिणु परिगणियउँ । कोमल-वउ हुय-वहि किं हुणियउँ ।
हा पयाइ किं किउँ पेसुण्णउँ । हा किं पुरि-परिभमहुँ ण दिण्णउँ ।
हा कुल-धवल केंव विद्धंसिउ । हा जय-सिरि विलासु किं णिरसिउ ।
हा पइँ विणु सोहइ ण घरंगणु । चंद-विवज्जिउँ णं गयणंगणु ।
हा पइँ विणु दुक्खें पुरु रुण्णउँ । हा पइँ विणु माणिणि-मणु सुण्णउँ ।
हा पइँ विणु को हारु थणंतरि । को कीलइ सरहंसु'व सरवरि ।
पइँ विणु को जण-दिट्ठिउ पीणइ । कंदुय-कील देव को जाणइ ।
हा पइँ विणु को एवहिँ सूहउ । पइँ आपेक्खिवि मयणु'वि दूहउ ।

---

[1] निम्नमुख, नतमुख

घत्ता। यदि भौंहाँ-कुटिलत्तनेहिँ, नर सु-धनु रुहेहिँ प्रभामय।
तो पुनिहु काइँ कुटिलत्तनहीँ, सुंदरि श्री-धम्मिल्ल-गत ॥१७॥

—णायकुमार-चरिउ (पृ० १२)

(च) कुपिता नायिका—

हेट्ठामुँह बधु वरेहिँ भनियाँ। "का हुइ तुहूँ मलिनाननिया।
घन सोहै एकइ विज्जुलई। वन सोहै एकइ कोइलई।
ऐँहिँ सोहौं मैं एकइ तुहईं। गुरुवचन करेवउ तोउ मईं।
ना रूसहु सज्जन-वत्सलिई। अलि-नील-कुटिल-भौँ-कुन्तलिई।
तव वदने रोषयित्तनऊ। जायउ तहँ रम्य-प्रेम-घनऊ।
बप्पिल सं-पायेउ रमण-वशा। तडि-रज-तडि-वेगहँकेर स्वसा।
चल-नयन-युगल-निर्जित-हरिनी। रतिकंता मदनवती तरुणी।"

—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

सो नव-बांधव-सँग परिवारेँ। सोउ करंति दुःख विस्तारेँ।
सा शिवदेवि रोवै[1] परमेश्वरि। "हा देवर! परभट-गज-केसरि।
हा का जीवित तृण परिगणियउ। कोमल-वय हुतवहेँ का होँमियउ।
हा प्र-जाइ का किउ पैशुन्यउ। हा का पुरि-परिभ्रमउ न दीनेँउ।
हा कुल-धवल कैस विध्वंसेँउ। हा जयश्री विलास का निरसेँउ।
हा तैँ विनु सोहै न घरांगन। चंद्र-विवर्जित जनु गगनांगन।
हा तैँ विनु दुःखे पुर रुन्नउ। हाँ तैँ विनु मानिनि-मन सुन्नउ।
हा तैँ विनु को हार थनंतरेँ। को क्रीडै सरहंस'व सरवरेँ।
तैँ विनु को जनदृष्टिहिँ प्रीणै। कंदुक-क्रीड देव! को जानै।
हा तैँ विनु को ऐसो सूखउ। तैँ आपेक्षिय मदनउ दूखउ।

---

[1] रोयेउ

हा पइँ विणु णिय-गोत्त-ससंकहु। को भुय-वलु समुद्द-विजय-कहु।
हा पइँ विणु सुण्णउँ हियउल्लउँ। को रक्खइ मेरउ कडउल्लउँ।
छार-रासि हूयउ पविलोयउ। एंव वंधुवग्गें सो सोइउ।
पंजलीहिँ मीणावलि-माणिउँ। ण्हाइवि सव्वहिँ दिण्णउँ पाणिउँ।

—उत्तरपुराण (पृ० ३४)

(५) युद्ध

छुडु गज्जिय गुरु-संगाम-भेरि। णं भुक्खिय तिहु-यण गिलिबि मारि।
छुडु णिग्गउ भुय-वलि साहिमाणि। छुडु एत्तहि पत्तउ चक्कपाणि।
छुडु कालें णीणिय दीह-जीह। पसरिय माणुस-मंसासणीह।
थिय लोयवाल जीविय-णिरीह। डोल्लिय गिरि रुंजिय गहणि सीह।
छुडु भड-भारें ढलहलिय धरणि। छुडु पहरण-फुरणें हरिउ तरणि।
छुडु चंदबलाइँ पलोइयाइँ। छुडु उहयवलाइँ पधावियाइँ।
छुडु मच्छर-भरियइँ बड्ढियाइँ। छुडु कोसहु खग्गहिँ कड्ढियाइँ।
छुडु चक्कइँ हत्थुग्गमियाइँ। छुडु सेल्लइँ भिच्चहिँ भीमयाइँ।
छुडु कोंतइँ धरियइँ संमुहाइँ। धूमंधइँ जायइँ दिम्मुहाइँ।
छुडु मुट्ठि-णिवेसिय लउडि-दंड। छुडु पुंखुज्ज-गुणि णिहिय कंड।
छुडु गय कायर थरहरिय-प्राण। छुडु ढोइय संदण णं विमाण।
छुडु मेंठ-चरण-चोइय-मयंग। छुडु आसवार-वाहिय-तुरंग।
घत्ता। छुडु छुडु कारणि वसुमइहि सेण्णइँ जाम हणंति परोप्परु।

—आदिपुराण (पृ० २८८)

जयसिरि[१]-रामालिंगण-लुद्धहँ। एक्कमेक्क पहरंतहँ कुद्धहँ।
असि-संघट्टणि उट्ठिउ हुयवहु। कढकढंतु सोसिउ सोणिय-दहु।
दसवि दिसा सइँ तेण पलित्तइँ। पक्खर-चमरइँ चिंधइँ छत्तइँ।
ता पडिवक्ख-पहर-भय-तट्ठउँ। महुमहवलु दस-दिसि वह णट्ठउँ।

---

[१] **कृष्ण-जरासंधका युद्ध**

हा तैं विनु निजगोत्र-शशांकहु । को भुज-बल-समुद्र-विजयांकहु ।
हा तैं विनु सुन्नउ हृदयुल्लउ । को राखै मेरो कडयल्लउ ।
क्षार-राशि होयउ प्र-विलोकउ । इमि वंधू-वर्ग सो सोयउ ।
प्रांजलीहिँ मीनावलि-मानिउ । स्नाइब सर्वहिँ दिन्नउ पानिउ ।
—उत्तरपुराण (पृ० ३४)

(५) युद्ध

यदि गर्जिय गुरु-संग्राम-भेरि । जनु भुक्खिय त्रिभुवन गिलबि मारि ।
यदि निर्-गउ भुजबलें साभिमान । यदि एतहिँ आयउ चक्रपाणि ।
यदि कालें लेलिय दीर्घ-जीह । पसरिय मानुष-मांसाश[1]नीह ।
ठिय लोकपाल जीवित-निरीह । डोलिय गिरि गजिय गहनें सींह ।
यदि भटभारें दलदलिय धरणि । यदि प्रहरणु-फुरणे हरेंउ तरणि ।
यदि चंद्र-बलाइँ प्रलोकिताइँ । यदि उभय-बलाइँ प्रधाविताइँ ।
यदि मत्सर-चरितहँ बढ्ढियाइँ । यदि कोपहँ खड्गहु कढ्ढियाइँ ।
यदि चक्रैं हाथ्-उट्ठाइयाइँ । यदि सेलइँ भृत्येहिँ भ्रमियाइँ ।
यदि कुन्तइँ धरियइँ सँमुखाइँ । धूमंधा जावैं दिग्मुखाइँ ।
यदि मुष्टि-निवेशिय लउरि-दंड । यदि पुंख्-उज्-ज्यागुणें निहित-कांड ।
यदि गज कायर थरहरिय प्राण । यदि ढोइय स्यंदन जनु विमान ।
यदि मेंठ[2]-चरण-चोदित-मतंग । यदि आसवार-चालिय-तुरंग ।
घत्ता । यदि यदि कारणे वसुमतिहि, सेनइ जब्ब हनंति परस्पर ।
—आदिपुराण (पृ० २८८)

जय-श्री-रामा-’लिंगन-लुब्धहँ । एक-एक प्रहरंतेंह क्रुद्धहँ ।
असि-संघट्टनें उट्ठेंउ हुतवह । कडकडंत शोषेंउ शोणित-दह ।
दसउ दिशाशइँ तेहिँ प्रलिप्तहँ । पक्खर-चमरैं चिन्हैं छत्रहँ ।
सो प्रतिपक्ष-प्रहर-भय-त्रस्तउ । मधुमथ-बल दशदिशि पथ नष्टउ ।

---

[1] नरमांसभक्षी　　[2] महावत

पोरिस-गुण-विभाविय-वासउ। "हणु" भणंतु सइँ धाइउ केसउ।
णरहरि तुरय-रहिण संचूरइ। सारइ दारइ मारइ जूरइ।
धीरइ हक्कारइ पच्चारइ। हणइ वणइ विहुणइ विणिवारइ।
दमइ रमइ परिभमइ पयट्टइ। संघट्टइ लोट्टइ आवट्टइ।
सरइ धरइ अवहरइ ण संचइ। खंचइ कुंचइ लुंचइ वंचइ।
उल्लालइ बालइ अप्फालइ। रूसइ दूसइ पीलइ हूलइ।
ईहइ संखोहइ आवाहइ। रोहइ मोहइ जोहइ साहइ।
अंत ललंतइँ गाढइँ ताडइ। रुंड-मुंड-खंडोहइँ[१] पाडइ।
वेढइ उव्वेढइ संदाणइ। रक्खइ भुक्खारीणइँ पीणइ।
वग्गइ रंगइ णिग्गइ पविसइ। दलइ मलइ उल्ललइ ण दीसइ।

घत्ता। कुस-पास-विलुंचइ हय-वरहँ, गल-गिज्जउँ तोडइ गयवरहँ।
वर-बीर रणंगणि पडिखलइ। मंडलियहँ रयण-मउड दलइ ॥८॥

—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्धवंत वहुमच्छरो भडो। हत्थि-खंभ-हत्थो महाभडो।
चरण-चार-चालिय-धरायलो। धाइयो भुया-तुलिय-मयगलो।
ता कयंतेहि तेण दारुणं। परियलंत-वण-रुहिर-सारुणं।
मलिय-दलिय-पडिखलिय-संदणं। णिविड-गय-घडा-वीढ-मद्दणं।
अरिदमणु पधायउ साहिमाणु। "हणु हणु" भणंतु कड्ढिवि किवाणु।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४७-४८)

संगाम-भेरीहिँ, णं पलयमारीहिँ। भुअणं गसंतीहिँ, गहिरं रसंतीहिँ।
सण्णद्ध-कुद्धाइँ; उद्धुद्ध-चिंधाइँ। उववद्ध-तोणाइँ, गुण-णिहिय-बाणाइँ
करि-चडिय-जोहाइँ, चल-चामरोहाइँ। छत्तंधयाराइँ, पसरिय-वियाराइँ।
वाहिय-तुरंगाइँ, चोइय-मयंगाइँ। चल-धूलि-कविलाइँ, कप्पूर-धवलाइँ।
मयणाहि-कसणाइँ, कय-वइरि-वसणाइँ। भड-दुण्णिवाराइँ, रह-दिण्ण-धाराइँ।
रोसाव उण्णाइँ, चलियाइँ सेण्णाइँ। तिहुअण-रईसस्स, अंतर-णरिन्दस्स।

---

[१] टुकड़े-टुकड़े करता है

पौरुष-गुण-वीभावित-वासव। "हन" भनंत स्वं धायेंउ केशव।
नरहरि तुरग-रथेहिं सं-चूरै। सारै दारै मारै जूरै।
थीरै हक्कारै प्रच्-चारै। हनै वनै विधुनै विनिवारै।
दमै रमै परिभ्रमै-प्रवर्तें। संघट्टै लोटै आवर्त्तें।
सरै धरै अपहरै न संचै। खंचै कुंचै नोचै वंचै।
उल्लालै बालै आस्फालै। रूषै दूषै पीडै हूलै।
ईहै संक्षोभै आबाधै। रोधै मोहै जोधै साधै।
अंत ललंतै गाढें ताडै। रुंड-मुंड-खंडोघैं पाटै।
वेठै[1] उद्वेठै संदानै[2]। रक्खै भूखापीडिय प्रीणै।
वलै रंगै निर्-गै प्रविशै। दलै मलै उल्ललै न दीसै।
घत्ता। कुशपाशउ नोचै हयवरहँ, गलगिज्जउँ तोडै गजवरहँ।
वरबीर-रणंगनें प्रतिस्खलै। मण्डलिकहँ रत्नमुकुट दलै ॥८॥

—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्-धॉवंत वहुमत्सरा भटा। हस्ति-खंभ-हस्ता महाभटा।
चरन-चार-चालित-धरातला। धायऊ भुजा-तुलित-मदकला।
तो कृतान्तेंहिं तेहि दारुणं। परिचलंत-व्रण-रुधिर-सारुणं।
मलिय दलिय प्रति-स्खलिय स्यंदनं। निविड-गजघटा-पीठ-मर्दनं।
अरिदमन प्रधायउ साभिमान। "हन हन" भनंत काढे कृपाण।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४७-४८)

संग्राम-भेरिहिं जनु प्रलय-मारीहिं। भुवनहँ ग्रसंतीहिं, गंभिर-रसंतीहिं।
सन्नद्ध-क्रुद्धाइँ उर्ध्वोर्ध्व चिन्हाइँ[3]। उपबद्ध-तूणाइँ, गुण-निहित-वाणाइँ।
करि-चढिय-योधाइँ चल-चामरोघाइँ। छत्रं-धकाराहिं, प्रसरिय विकाराहिं।
चालिय तुरंगाइँ, चोदिय मतंगाइँ। चूल-धूलि-कपिलाइँ, कर्पूर-धवलाइँ।
मृगनाभि-कृष्णाइँ, कृत-वैरि-वसनाइँ। भट-दुर्विवाराइँ, रथे दीय-धाराइँ।
रोषावपूर्णाइँ, चलिताइँ सेनाइँ। त्रिभुवन-रतीशाह, अन्तर-नरेन्दाह।

---

[1] घेरै [2] चढ़ाई करै [3] पताका

दुग्गावहारेण, जण-पाय-भारेण। धरणी'वि संचलइ, मंदरु'वि टलटलइ।
जलणिहि'व झलझलइ, विसहरुवि चलचलइ।
जिगि-जिगिय खग्गाइँ, णिद्दलिय मग्गाइँ।
समरेक्क-चित्ताइँ, गिरि-णयरु-पत्ताइँ। सुकयाइँ फलियाइँ, मित्ताइँ मिलियाइँ।..
घत्ता। आयउ चंडप-पजोउ, अरिवम्मु'वि सण्णज्झइ।
धीय ण देइ महंतु, बलवंतें सहु जुज्झइ ॥५॥
सण्णज्झंतु भणइ भडु वच्चमि। अज्जु वइरि-सीसें रणु अच्चमि।
कड्ढिवि अज्जु वइरि-वण-सोणिउ। बड्ढउ असिवरें मेरउ[1] पाणिउ।
कोवि भणइ उज्जुय-पय देप्पिणु। पिसुण-कव्वु पहु-पुरउ लुणेप्पिणु।....
कोवि भणइ लइ सत्थइँ सिक्खिउ। अज्जु वराणणें हउँ रणें दिक्खिउ।..
कोवि भणइ खल वेसावाडउ[2]। खाउ अज्जु सिव हियउ महारउ।
सामिहें केरउ रिणु आवग्गउ। कोवि भणइ महुँ वट्टइ लग्गउ।
खट्टा-मरणे काइँ करेसिमि। कोवि भणइ सर-सयणें मरेसमि।
भड-मुह-मुक्क-हक्क-लल्लक्कइँ। भोसिय-सुक्क-सक्क-चंदक्कहिँ।
वज्ज-मुट्ठि-चूरिय-सीसक्कइँ। उर-थल-भरिय-फुरिय-चल-चक्कइँ।
सुरकामिणि-यण-णयण-णिरिक्कइँ। विजयलच्छि-सुर-गणिय-मिरिक्कइँ।...
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ७४-७५)

(६) हस्ति-युद्ध-क्रीड़ा

दावंतु दंत करु करि घिवइँ। आलिंगइ सव्वंगइँ छिवइ।
मणु रक्खइ मेलेप्पिणु दमइ। पुणु ढुक्कइ चउपासहिँ भमइ।
स-रयणु-वहु-रयण-विहूसणहु। अणुहरइ हत्थि कामिणि जणहु।
चलु चतु-चरणंतरि पइसरइ। हक्कइ हुंकारइ 'णीसरइ।
लंघइ आसंघइ कुंभयलु। पावइ पुच्छुप्पलु वच्छयलु।
दस-दिसिहिँ 'वि हिंडइ कुंजरहु। पहु विज्जु-पुंजु णं जलहरहु।

---

[1] मेलउ [2] वेशवाट (नगरका प्रधान पथ)

दुर्गा-'पहारेहिं, जन पाद-भारेहिं। धरणीउ संचलै, मंदरहु टलटलै।
जलनिधिउ झलझलै, विषधरउ चलचलै।
जिगजिगिय खड्गाइँ, निर्दलिय मार्गाइँ।
समर्-एक-चित्ताइँ गिरि-नगर प्राप्ताइँ। सुकृताइँ फलिताइँ मित्राइँ मिलिताइँ। . .
घत्ता। आयउ चंडप्रजोत, अरिवर्मउ सन्नद्धई।
धीयाँ न देइ महंत, बलवंतें सँग जुज्झई ॥५॥
"सन्नद्धहहु" भनंत भट वर्चों। आज वैरि-शीशे रण अर्चों।
काढबि आज वैरि-व्रण-शोणित। बाढहु असिवर मेरहु पाणिउ।
कोइ भनै "ऋज्जुअ पद देइय। पिशुन-काव्य प्रभु-पुरब लुनेविय।"
कोइ भनै "लेइ शस्त्रइँ सीखेउ। आज वराननें हौं रणें देखेंउ।" . . .
कोइ भनै "खल वेश्या-वाटउ। खाउ आज सोंइ हृदय हमारउ।
स्वामिहिँ केरउ ऋण आवगउ"। कोइ भनै "मैं वाटे लग्गउ।
खाटे मरने काइँ करीहौं"। कोइ भनै "शर-शयन मरीहौं।" . . . .
भट-मुँह मुंच हाँक-ललकारइँ। भीषित शुक्र-शक्र-चंद्राकइँ।
वज्र-मुष्टि चूरिय शीशक्कइँ। उर-तल भरिय फुरिय चल-चक्रइँ।
सुर-कामिनि-जन-नयन-निरीक्षैं। विजय-लक्ष्मि सुर गनिय पुलक्कैं[१]।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ७४-७५)

(६) हस्ति-युद्ध-क्रीड़ा

दाबंत दंत कर करि देवई। आलिंगै सर्वांगहँ छुवई।
मन राखै मेलियई दमई। पुनि ढूकै चौपासे भ्रमई।
स-रचन-बहुरतन-विभूषणहीं। अनुहरै हस्ति कामिनि जनहीं।
चलु चतु-चरणांतर पइसरई। हक्कै हुंकारै निःसरई।
लंघै आसंघै कुम्भ-तलू। पावै पुच्छोत्पल-वक्षतलू।
दशदिशहिंहु हिंडै कुंजरहू। प्रभु-विज्जु-पुंज जनु जलधरहू।

---

[१] **मुस्कराये**

णिम्महइ गहीर-सरेण सरु। रंगंतु धरेइ करेण करु।
आकुंचिय-तणु वंचण-कुसलु। अक्कमिं'वि कमेण दसण-मुसलु।
बलिणा बलेण णिव्वूढ-बलु। जुज्झेप्पिणु सुइरु महंत-बलु।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

५—धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौन ?

बणि-वाणिज्जारउ जाणियउँ। किसियरु हलधारउ भाणियउ।....
सो सोत्तिउ जो ण दुट्ठु भणइ। सो सोत्तिउ जो णउ पसु हणइ।
सो सोत्तिउ जो हियएण सुइ। सो सोत्तिउ जो परमत्थ-रुइ।
सो सोत्तिउ जों ण मास गसइ। सो सोत्तिउ जो ण सुयणि भसइ।
सो सोत्तिउ जो जणु पहि थवइ। सो सोत्तिउ जो सुतवें तवइ।
सो सोत्तिउ जो संतहुँ णवइ। सो सोत्तिउ जो ण मिच्छु चवइ।
सो सोत्तिउ जो ण मज्जु पियइ। सो सोत्तिउ जो वारइ कुगइ।
सो सोत्तिउ जो जिण-देसियउ। पण्णा-सतिकिरियहिँ भूसियउ।
घत्ता। जो तिल-कप्पासइँ दव्वविसेसइँ, हुणिवि देव गह पीणइ।
पसु-जीव ण मारइ मारय वारइ, परु अप्पु'वि समु जाणइ॥६॥
—उत्तरपुराण (पृ० ३०९-१०)

(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म

तहि जगह भयाउल अलिय-रासि। भइरउ-अहिणामि सव्वगासि।
तहि भमइ भिक्ख अरु देइ सिक्ख। अणुगयहँ जणहँ कुल-मग्ग-दिक्ख।
बहु-सिक्खहिँ सहियउ डंभधारि। घरि घरि हिंडइ हुंकारकारि।
सिरि टोप्पी दिण्णर वण्ण-वण्ण। सा झंपबि संठिय दोण्णि कण्ण।
अंगुल-दुतीस-परिमाणु दंडु। हत्थें उप्फालिवि गहइ चंडु।
गलि जोग-वट्टु सज्जिउ विचित्तु। पाउडिय जुम्मु पइँ दिण्णु दित्तु।

निर्मथै गँभीर स्वरेहिँ सरा। रंगंत धरेइ करेहिँ करा।
आकुंचित-तनु बंचन-कुशला। आक्रमेउ क्रमेँहिँ दशन-मुसला।
बलिना बलेन निर्व्यूढ-बला। जुज्झेबिउ स्वरै महंत-बला।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

५–धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौन ?

बनिय-बनिजारउ जानियऊँ। कृषिकर-हलधारउ भानियऊँ।
सो श्रोत्रिय जो न दुष्ट भनई। सो श्रोत्रिय जो ना पशु हनई।
सो श्रोत्रिय जो हृदयेहिँ शुची। सो श्रोत्रिय जो परमार्थ-रुची।
सो श्रोत्रिय जो न मांस ग्रसई। सो श्रोत्रिय जो न सुजनेँ भषई।
सो श्रोत्रिय जो जन पथेँ थपई। सो श्रोत्रिय जो सुतपेँ तपई।
सो श्रोत्रिय जो सन्तहँ नमई। सो श्रोत्रिय जोँ न मिथ्य बोँलइ।
सो श्रोत्रिय जोँ न मद्य पिवइ। सो श्रोत्रिय जो वारै कुगती।
सो श्रोत्रिय जो जिन-देशितऊ। प्रज्ञा-सत्क्रियहिँ भूषितऊ।
घत्ता। जो तिल-कप्पासैँ द्रव्य-विशेषैँ, हुतिय देव-ग्रह प्रीणई।
पशु-जीव न मारै मारत वारै, पर-आपन सम जानई ॥६॥
—उत्तरपुराण

(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म

तहँ जगहँ भयाकुल अलिक-राशि। भैरव अभि-नामी सर्वग्रासि।
तहँ भ्रमै भिक्ष अरु देइ शिक्ष। अनुगतहँ जनहँ कुल-मार्ग-दीक्ष।
बहु-शिक्षहिँ सहितउ दंभधारि। घर-घर हिंडै हुंकार-कारि।
शिरेँ टोपी दीनेहु वर्ण-वर्ण। तहि झंपेँउ सं-ठिय दोउ कर्ण।
अंगुल-बत्तिस-परिमाण दंड। हाथे उत्फालिवि गहेँउ चंड।
गलेँ योगपट्ट साजेँउ विचित्र। पावडी-युग्म पद दियोँ दीप्त।

तड-तड-तड-तड-तडतडिय सिंगु । सिंगग्गु छेवि किउ तेण चंगु ।
अप्पि अप्पहों माहप्पु दप्पु । अण-उंछिउ जंपइ थुणइ अप्पु ।
"महु पुरउ पसप्पिय जुय चयारि । हउँ जरइँ ण घिप्पमि कप्प-धारि ।
णल-णहुस-वेणु-मंधाय जेवि । महि भुंजिवि अवरइँ गयइँ तेवि ।
मइँ दिट्ठ राम-रावण-भिडंत । संगाम-रंगि णिसियर पडंत ।
मइँ दिट्ठु जुहिट्ठिलु बंधु-सहिउ । दुज्जोहणु ण करइ विण्हु[1]-कहिउ ।
हउँ चिरजीविउ मा करहु भंति । हउँ सयलहँ लोयहँ करमि संति ।
हउँ थंभमि रविहि विमाण जंतु । चंदस्स जोण्ह छायमि तुरंत ।
सव्वउ विज्जउ महु विप्फुरंति । वहु तंत-मंत अग्गइ सरंति ।'
पेसियउ महल्लउ गुण-वरिट्ठु । गउ तेण भइरवाणंदु दिट्ठु ।
"आएसु करेबिणु" भणइ मंति । "तुह दंसणि रायहों होइ संति" ।
सिग्घउ गउ जहिँ ठिउ णरवरिंदु । सह-मज्झि परिट्ठिउ णं उविंदु ।
दिट्ठउ जोईसरु णरवरेण । सीहासणु मेल्लिर हासिरेण ।
संमुहु जाएविणु धरणि पडिउ । दंडुव्व दंडपडिवाइ णडिउ ।
आसीसिउ णरवइ भइरवेण । "हउँ भइरव तुट्ठउ णियमणेण ।"
उच्चासणि वइसाविवि तुरंतु । सलहणहँ लग्गु तहों पइ पडंतु ।
"तुहुँ देव ! सिद्धि-संहार-कारि । तुहुँ जोईसरु कुल-मग्ग-चारि ।
तुहुँ चिरजीविउ जं हुवउ किंपि । पयउहि जं होसइ कज्जु तंपि ।
तुहुँ महु उप्परि साणंद भाउ । वियरहि हो सामि महापसाउ ।"
घत्ता । जोईसरु मणि तुट्ठउ चिंतइ, "दुट्ठउ इंदिय-सुहु महु पुज्जइ ।
जं जं उद्देसमि तं भुंजेसमि 'आएसहु संपज्जइ ।।६।।
ता चवइ जोइ "महु सयल रिद्धि । विप्फुरइ खणंतरि विज्ज-सिद्धि ।
हउँ हरण-करण-कारण-समत्थु । हउँ पयडु धरायलि गुण-पसत्थु ।
जं जं तुहुँ मग्गहि किंपि वत्थु । तं तं हउँ देमि महापयत्थु ।"
पप्फुल्ल वयणु ता चवइ राउ । "महु खेयरत्त करिवि हिय-छाउ ।"

---

[1] कृष्ण

तड़-तड़-तड़-तड़-तड़तड़िय शृंग। शृंगाग्र छेदि किउ तेन चंग।
आपुहिं आपन माहात्म्य-दर्प। अन-पूँछेँउ जल्पै स्तुवै आप।
"मम सँमुहाँ बीतेँउ युग चतारि हौं जरौं न, ठहरौं कल्पधारि।
नल-नहुष-वेणु-मंधात जोउ। महि भुंजिय औरेउ गयउ सोउ।
मैं दीखु राम-रावण-भिड़ंत। संग्राम-रंगें निशिचर पड़ंत।
मैं दीखु युधिष्ठिर बंधु-सहित। दुर्योधन न करै विष्णु-कथित।
हौं चिरजीवी ना करहु भ्रांति। हौं सकलहँ लोकहँ करौं शांति।
हौं थाम्हौं रविहि विमान-यंत्र। चंद्रह ज्योत्स्ना छादौं तुरंत।
सर्वा विद्या[1] मम विस्फुरंति। बहु तंत्र-मंत्र आगे सरंति।" . . . .
प्रेषेँऊ महल्लक गुण-गरिष्ट। गउ सोउ भैरवानंद दृष्ट।
"आयसु करेबी" भनै मंत्रि। "तव दर्शनें राजह होइ शांति।"
शीघ्रै गउ जहँ ठिउ नर-वरेन्द्र। सभ-माँझ बईठो जनु उपेन्द्र।
दीखेँउ योगीश्वर नरवरहीं। सिंहासन मेलेँउ[2] रभसरहीं।
संमुख जाईय धरणि पड़ेँउ। दंड 'व दंड-प्रतिपात नटेँउ।
आशीषेँउ नरपति भैरवेहिं। "हौं भैरव तुष्टउँ निज-मनेहिं।"
उच्चासनें बैसायो तुरंत। श्लाघहीं लागु तहँ पद-पडंत।
"तुहँ देव! सृष्टि-संहार-कारि। तुहुँ योगीश्वर कुलमार्ग-चारि।
तुहुँ चिरजीवी जो हुओ किछुउ। प्रकटहु जो होइहि कार्य सोउ।"
तुहुँ मम ऊपर सानंद भाव। विचरहु होँहु स्वामि-महाप्रसाद।"
घत्ता। योगीश्वर मनें तुष्टउ चिंतै, दुष्टउ इंद्रियसुख मोँहिं पूज्यइ।
जो जों उदेसौ सों भोगेबौं, आदेशहु संपद्यइ ॥६॥
तब बदै योगि "मोहिं सकल ऋद्धि। विस्फुरै क्षणंतरें विद्योंसिद्धि।
हौं हरन-करन-कारन-समर्थ। हौं प्रथित धरातलें गुण-प्रशस्त।
जो जो तू माँगै कोइ वस्तु। सो सो हौ देउँ महापदार्थ।"
प्रफ्फुल्ल-वदन तब बदै राव। "मम खेचरत्व करब हिये छाव।"

---

[1] मंत्र-विद्या　　[2] छोड़ेँउ

"तुइ खेयरत्तु[१] हउँ करमि वप्प ! परमोवएसु जइ णिव्वियप्प ।
भो भो णिव-कुल-कुवलय-मयंक ! दुव्वार-वइरि-वारण असंक ।
मा णिसुणहि णिय-परिवार-वयणु । णिस्संके लब्भइ गयण-गमणु ।
जइ देवि पुज्ज आगमिण उत्त । जइं जुयल-जुयल जीवेहिँ जुत्त ।
णहयर थलयर जलयर अणेय । पसु-पक्खि-मिहुण वहु-वण्ण-भेय ।
जइ णर-मिहुणुल्लउ अवय-पुण्णु । देवी-मंडउ तुहुँ करहि पुण्णु ।
तुह एम करंतहों बलिविहाणु । हउँ तूस मित्तु चंडियसमाणु ।
ता तुज्झ होइ खेयरिय-सत्ति । विज्जाहर सेविहिँ अतुल-सत्ति ।
तुह खग्गि वसइ जयसिरि सछाय । अमरत्तु होइ तह अजर काय ।"......
छेल-मिहुण-सूयरा । रोभ-हरिण-कुंजरा ।
बाल-वसह-रासहा । मेस-महिस-रोसहा ।
घोड-करह-भल्लुया । सीह-सरह-गंडया ।
वग्घ-ससय-चित्तया । एवं बहु-चउप्पया ।
कंक-कुरर-मोरया । हंस-वलय-चउरया ।
घूय-सरड-काउला । कोडि - पूस - कोइला
कुम्म-मयर-गोहया । गाभ-झसय-रोहया ।
जीव सयल जाणिया । तीएँ पुरउ आणिया ।..
कडिवद्ध-चल-चीरिया-चिंघ-जालाइँ । कर-धरिय-विप्फुरिय-कत्तिय-कवालाइँ ।
पायडिय-णिय-गुरुकमारूढ-लिंगाइँ । कुल-घोसमय चम्म-पच्छाइ अंगाइँ ।
मुद्दा विसेसेण दूरं णमंताइँ । पय-घग्घरोलीहिँ घव-घव-घवंताइँ ।
कह-कह-कहंताइँ सवियार-वेसाइँ । मुक्कट्ट हासाइँ झंपडिय-केसाइँ ।
जहिँ विविह-भेयाइँ कउलाइँ मिलियाइँ । कीलंति डड्ढरइँ अट्ठंग-वलियाइँ ।
जहिँ करड-पटहाइँ वज्जंति वज्जाइँ । इट्ठाइँ मिट्ठाइँ पिज्जंति मज्जाइँ ।
छिज्जंति सीसाइँ णिवंडंति भीसाइँ । रस-वस-विमीसाइँ खज्जंति माँसाइँ ।
गिज्जंति गेयाइँ चामुंड-चंडाइँ । गहिऊण तुंडेण रुंडस्स खंडाइँ ।

---

[१] आकाशगामिता

तोंहि खेचरत्व हौं करौं बाबु। परमोपदेश यदि निर्विकल्प।
हे हे निजकुल-कुवलय-मृगांक। दुर्वार-वैरि-वारन-अशंक।
मति सुनिहौ निज-परिवार-वचन। निःशंकें लब्भै गगन-गमन।
यदि देवि पूजु आगमे उक्त। यदि युगल-युगल-जीवेहिं युक्त।
नभचर-थलचर-जलचर अनेक। पशु-पक्षि-मिथुन बहु-वर्णभेद।
यदि नर-मिथुनुल्लो वयव'-पूर्ण। देवी-मंडप तुहुँ करहि पूर्ण।
तुहुँ ऐस करंतह बलि-विधान। हौ तुष मित्र ! चंडी-समान।
तब तोहिं होइ खेचरी-शक्ति। विद्याधर सेवहिं अतुल-शक्ति।
तव खड्गें बसै जयश्री सच्छात्। अमरत्व होइ तिमि अजर-काय।"......
छेरि-मिथुन-शूकरा। रोज[1]-हरिन-कुंजरा।
बाल-वृषभ-रासभा। मेष-महिष-रोसहा।
घोड-करभ-भल्लुआ। सिंह-शरभ-मैंडआ।
बाघ-शशक-चित्तआ। एहि विध चतुष्पदा।
कंक-कुरर-मोरआ। हंस-बलक-चतुरका।
घूघ-शरट-काउला। कोटि-पूस-कोइला।
कूर्म-मकर-गोहआ। गाभ-झषक-रोहआ।
जीव सकल जानिया। तेहिं संमुख आनिया।...
कटिबद्ध-चल-चीरिया-चिन्ह-जालाइं। कर धरिय विस्फुरित-कृत्तिक-कपालाइं।
प्राकटिय निज गुरु-क्रमारुढ लिंगाइं। कुल-घोष-मद-चर्म प्रच्छादि अंगाइं।
मुद्रा-विशेषेहिं दूरं नमंताइं। पद-घर्घरोलीहिं घव-घव-घवंताइं।
कह-कह-कहंताइं सविकार-वेषाइं। मुक्त-'ट्टहासाइं झंपडिय केशाइं।
जहँ विविध-भेदाइं कौलाइं मिलिताइं। क्रीडंति ढड्ढरें अष्टांग-बलियाइं।
जहँ करड-पटहाइं बाजंति वाद्याइं। इष्टाइं मिष्टाइं पीयंति मद्याइं।
छिद्यन्त शीशाइं निपतंति भीषाइं। रस-वश-विमिश्राइं खायंत मांसाइं।
गीयंत गीताइं चामुंड-चंडाइं। गहियाउ तुंडेहिं रुंडाइ खंडाइं।

---

[1] घोडरोज (नीलगाय)

दुप्पेच्छ-रत्तच्छ-विच्छोह-दाइणिउ । णच्चंति जोइणिउ साइणिउ डाइणिउ ।
पसु-रुहिर-जल-सित्त-पंगण-पएसम्मि । पसु-दीह-जीहा-दलच्चण-विसेसम्मि ।
पसु-अट्ठि-कय-पिट्ठु-रंगावलिल्लम्मि । पसु-तेल्ल-पज्जलिय-दीवय-जुइल्लम्मि ।. . .

—जसहर-चरिउ (पृ० ६-१३)

६—कृष्ण-लीला

(१) गोपियोंके साथ

दुवई । धूलीधूसरेण वर-मुक्क-सरेण तिणा मुरारिणा ।
कीला-रस-वसेण गोवालय-गोवी-हियय-हारिणा ॥
रंगंतेण रमंत-रमंते । मंथउ धरिउ भमंतु अणंते ।
मंदीरउ तोडिवि आ-वट्टिउँ । अद्धविरोलिउँ दहिउँ पलोट्टिउँ ।
कावि गोवि गोविंदहु लग्गी । एण महारी मंथणि भग्गी ।
एयहि मोल्लु देउ आलिंगणु । णं तो मा मेल्लहु मे अंगणु ।
काहिंवि गोविहि पंडुरु चेलउँ । हरि-तणु तेएँ जायउँ कालउँ ।
मूढ जलेण काइँ पक्खालइ । णिय-जडत्तु सहियहिँ दक्खालइ ।
थण्णरसिच्छिरु छायावंतउ । मायहिँ संमुहुँ परिधावंतउ ।
महिस-सिलंबउ हरिणा-धरियउ । णं कर-णिबंधणाउ णीसरियउ ।
दोहउ दोहण-हत्थु समीरइ । मुइ मुइ माहव कीलिउँ पूरइ ।
कत्थइ अंगण-भवणा-लुद्धउ । वालवच्छु वालेण णिरुद्धउ ।
गुंजा-भेंडुय-रइय-पओएँ । मेल्लाविउ दुक्खेहिँ जसोएँ ।
कत्थइ लोणिय-पिंडु[१] णिरिक्खिउ । कण्हें कंसहु णं जसु भक्खिउँ ।
घत्ता । पसरिय-कर-यलेहिँ सद्दंतिहिँ सुइ-सुहकारिणिहिँ ।
भद्दिइ णियडि थिए धरयम्मु ण लग्गइ णारिहिँ ॥६॥. .

—उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

---

[१] नवनीत-पिंड

दुष्प्रेक्ष्य-रक्ताक्ष-विच्छोभ-दायिनिउ। नाचंति योगिनिउ शाकिनिउ डाइनिउ।
पशु-रुधिर-जल-सिक्त-प्रांगण-प्रदेशेहिँ। पशु-दीर्घजिह्वा-दलार्चन-विशेषेहिँ।
पशु-अस्थि-कृत-पिष्ट-रंगावलिल्लंहि। पशु-तैल-प्रज्वलित-दीपक-द्युतिल्लंहि।...

—जसहर-चरिउ (पृ० ६-१३)

६—कृष्ण-लीला

(१) गोपियोंके साथ

द्विपदी। धूली-धूसरेहिँ वर-मुक्त-शरेहिँ तेँहि मुरारिहीँ।
क्रीडा-रस-वशेहिँ गोपालक-गोपी-हृदय-हारिहीँ॥
रंगंतेहिँ रमंत-रमंते। पंथश्र धरिउ भ्रमंत अनंते।
मंदीरउ[1] तोडिय आ-वट्टिउँ। अर्ध-विलोनिय दधिय पलोट्टिउँ।
कोइ गोपि गोविंदहँ लागी। "इनहिँ हमारी मंथनि भाँगी।
एतहँ मोल देउ आलिंगन। ना तो न आवहु मम आँगन।"
कोइहु गोपिहि पांडुरु चोली। हरि तनु तेँही जायउ काली।
मूढ जलेहिँ काइँ प्रक्षालै। निज-जडत्व सखियन देक्खावै।
स्तन्य-रसि-त्थिर छायावंतउ। मातहिँ संमुख परिधावंतउ।
महिष-शृंगहू हरिहीँ धरियउ। न कर-निबंधनाउ नीसरियउ।
दोहहु दोहन-हाथ समीरै। मुदि मुदिँ माधव क्रीडिउ पूरै।
कतहूँ आँगन-भवन-लुब्धउ। बाल-वत्स वालेहिँ निरुद्धउ।
गुंजा-गुच्छक-रचित प्रयोगेँ। मेल्लाविउ दुःखेहिँ यशोदेँ।
कतहूँ नैनू-पिंड निरेखेँउ। कृष्णेँ कंसहु जनु यश भक्षेउ।
घत्ता। प्रसरित करतलेहिँ शब्दंतिहिँ शुचि-सुखकारिणिहीँ।
भद्रिइ निकट स्त्री धरइ न लागै नारिहीँ॥६॥

—उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

---

[1] मथानी

(२) पूतना-लीला

जाणिइ अरिवरि, ता तहिँ अवसरि। कंसाएसें, माया-वेसें।
बल मायाविणि, धाइय जोइणि। वच्छर-वाउलु, गय तं गोउलु।
जयसिरि-तण्हहु, णव-मह कण्हहु। पासि पवण्णी, झत्ति णिसण्णी।
पभणइ **पूयण**, "हे महुसूयण। पिय-गरुडद्धय, आउ थणद्धय।
दुद्ध-रसिल्लउ, पियहि थणुल्लउ।" तं आयण्णिवि[1], चंगउ मण्णिवि।
चुय-पय-पंडुरि, वयणु पयोहरि। हरिणा णिहियउँ, राहुं गहियउँ।
णं ससि-मंडलु, सोहइ थणयलु। सुरहिय परिमलु, णं णीलुप्पलु।
सिय-कलसुप्परि, विंभिउ मणि हरि। कडुएँ खीरें, जाणिय वीरें।
"जणणि ण मेरी, विप्पियगारी। जीविय-हारिणि, रक्खसि वइरिणि।
अज्जु'जि मारमि, पलउ समारमि।" इय चिंतंतें, रोसु वहंतें।
माण महंतें, भिउडि करंते। लच्छीकंतें, देवि अणंतें।
दंतहिँ पीडिय मुट्ठिइ ताडिय। दिट्ठिइ तज्जिय, थामें णिज्जिय।
अणुवि णं मुक्की, णहहिँ विलुक्की। खलहि रसंतहि, सुण्णु हसंतहि।
भीमें बालें, कयकल्लोलें। लोहिउँ सोसिउँ, पलु आकरिसिउँ।
दाणव-सारी, भणइ भडारी। "हिय-रुहिरासव, मुइ मुइ केसव।
णंदाणंदण, मेल्लि जणद्दण। कंसु ण सेवमि, रोसुण दावमि।
जहिँ तुहुँ अच्छहि, कील-समिच्छहि। तहिँ णउ पइसमि, छलु ण गवेसमि।"
घत्ता। इय रुयंति कलुणु कह, कहव गोविंदें मुक्की।
गय देवय कहिँमि, पणु णंद-णिवासि ण ढुक्की ॥६॥

(३) ओखल-बंधन

दुवइ। वर-काहलिय-वंस-रव-वहिरए, गाइय गेय-रस-सए।
रोमंथंत - थक्क - गो - महिसि - उल - सोहिय - पएसए ॥

---

[1] सुन कर

(२) पूतना-लीला

जानिय अरिवर, सो तेहि अवसर। कंसादेशें, मायावेषें।
वल-मायाविनि, धाइय जोगिनि। वत्सर बावल, गउ सो गोकुल।
जयश्री-तृष्णहँ, नवमधु कृष्णहँ। पास प्रवर्णी, भट्ट निषण्णी।
प्रभनै पूतन, "हे मधुसूदन! प्रिय गरुडध्वज, आउ धनध्वज।
दूध-रसिल्लउ, पियहु स्तनुल्लउ।" .. सो आर्काणय, चंगा मानिय।
चुव-पय-पांडुर, वदन-पयोधर। हरिहीं निहितउ, राहुँहि गहियउ।
जनु शशि-मंडल, सोहै स्तनतल। सुरभित परिमल, जनु नीलोत्पल।
सित-कलशोपरि, विस्मेउ मनें हरि। कडुये क्षीरें, जानिय बीरें।
जननि न मेरी, विप्रियकारी। जीवित-हारिणि, राक्षसि वैरिणि।
आजुहि मारौं, प्रलय समारौं।" इमि चिंतंता, रोष वहंता।
मान महंता, भृकुटि करंता। लक्ष्मीकंता, देव अनंता।
दाँतहिं पीडिय, मुट्ठिहिं ताडिय। दृष्टिइं तर्जिय, स्थामें[1] जीतिय।
भनहु न मुक्की[2], नभहिं वि-लुक्की। खलहिं रसंतहिं, शून्य हसंतहिं।
भीमा बाला, किउ कल्लोला। लोहिउ शोषेंउ, बल आकर्षेंउ।
दानव सारी, भनै भटारी। "हिय-रुधिरासव, मुइ मुइ केशव।
नंदानंदन, छोड़ु जनार्दन। कंस न सेवौं, रोष न देवौं।
जहँ तुहँ आछहि[3], क्रीडा-इच्छहि। तहँ ना पइसौं, छल न गवेषौं।"
घत्ता। इमि रोवंति करुण कथ, कहव गोविंदें मुक्की[4]।
गइ देवत कहँहि, पुनि नंद-निवास न ढुक्की ॥६॥

(३) ओखल-बंधन

द्विपदी। वर-काहलिय-वंशि-रव-बधिरए, गाइय गीत-रस-सए।
रोमंथंत थाक[5] गो-माहिषि-कुल-शोभित-प्रदेशए ॥

---

[1] बलसे [2] छूटी [3] रहो [4] छोड़ी [5] रहे

अण्णहिँ पुणु दिणि, तहिँ णिय-पंगणि । जण-मणहारी, रमइ मुरारी ।
घोट्टइ खीरं, लोट्टइ णीरं । भंजइ कुंभं, पेल्लइ डिंभं ।
छंडइ महियं, चक्खइ दहियं । कड्ढइ चिंच्चि, धरइ चलंच्चि ।
इच्छइ केलि, करइ दुवालि । तहिँ अवसरए, कीलाणिरए ।....
दुवइ । मरु-हय-महीरुहेहिँ पहि चप्पिउ गद्दह-तुरय चूरिओ ।
अवरु उड्हलम्मि पइँ बद्धउ जाणहुँ वालु मारिओ ॥
धाइय तासु जसोय विसंठुल । कर-यल-जुयल-पिहिय-चल-थण-यल ।
बद्धउ उक्खलु मेल्लिवि घल्लिउ । महु जीविएण जियहि सिसु वोल्लिउ ।
फणि-णर-सुरहँमि अइ सइयउ । हरि-मुहि चुंबिवि कडियल लइयउ ।
किं खरेण किं तुरएँ दट्ठउ । मायइ सयलु अंगु परिमट्ठउँ ।........

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गईं

महुरापुरि घरि घरि वण्णिज्जइ । णंद-गोट्ठि पत्थिवहु कहिज्जइ ।
तहु देवइ मायरि उक्कंठिय । पुत्तसिणेहेँ खणु विणु संठिय ।
गो मुह-कूवउ सहउ चउत्थी । लोयहु मिसु मंडिवि वीसत्थी ।
चलिय णंद-गोँउलि सहुँ णाहेँ । सहुँ रोहिणि-सुएण चंदाहेँ ।
घत्ता । मायइ महु-महणु वहु गोवहँ मज्झि णिरिक्खिउ ।
वय-परिवेठियउ कलहंसु जेम ओलक्खिउ ॥१३॥....
भायउ सिसु कीला-रय-रंगिउ । हलहरेण दिट्ठिइ आलिंगिउ ।
भुय-जुयलउँ पसरंतु णिरुद्धउँ । जायउँ हरिसे अंगु सिणिद्धउँ ।
चिंतिवि तेण कंस-पेसुण्णउँ । आलिंगणु देंतेण ण दिण्णउँ ।
गाढ़-सिणेह-वसेण णवंतइ । आणाविय रसोइ गुणवंतइ ।
गंध-फुल्ल-दीवउँ संजोइउ । भोयणु मिट्ठउँ मायइ ढोइउँ ।
अल्लय-दल-दहि-ओल्लिय-कूरहिँ । मंडय-पूरणेहिँ घियपूर[1]हिँ ।
णाणा-भक्ख-विसेसहिँ जुत्तउँ । सरसु भावि भूणाहेँ भुत्तउँ ।....

---

[1] घेवर

अन्यहि पुनि दिन, तहँ निज प्रांगने। जन-मन-हारी, रमै मुरारी।
घोट्टै क्षीरं, लोट्टै नीरं। भंगै कुंभं, पेल्लै डिंभं।
छाडै महियं, चाखै दहियं। काढै चींचीं, धरै चल-चिं।
इच्छै केलि, करै दुवारि। तेंहि अवसरए, क्रीडा निरते।....

द्विपदी। मरुहत-महिरुहेहिँ पथि चांपेउ गद्दह तुरग चूरिया।[1]
अवर ओखलिहिँ तैं बांधेउ, जानहु बाल मारिया॥

धाइय ताहँ यशोद विसंस्थुल[1]। करतल-युगल-ढाँकि चल-स्तनतल।
"बाँधेंउ ओखलि मेल्लिय घालेंउ। मम जीवनहिँ जियै शिशु" बोलेउ।
फणि-नर-सुरहँहु अतिशय यउ। हरि-मुख चुंबी कटितल लइयउ।
की खरेंहिँ की तुरगें देखेउ। मातइ सकल-अंग परिमर्षेंउ।....

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गईं

मथुरापुरि घर घर वणिज्जै। नंद-गोष्ठें पार्थिवहँ कहिज्जै।
तहँ देवकि माता उत्कंठियं। पुत्र सिनेहें क्षण विनु सं-ठिय।
गोमुख-कूप उत्सवइ चतुर्थी। लोकहँ मिस मंडिय विश्वस्ती।
चलिय नंद-गोकुल-सँग नाथे। सँग रोहिणि-सुतेहिँ चद्राभें।

घत्ता। मायइ मधुमथन बहु गोपहँ माँझ निरेखियऊ।
वत परिवेठियउ, कलहंस-जिमि ओलख्-खियऊ॥१३॥

भाइय शिशु क्रीडा-रज-रंगिउ। हलधरेहिँ देखिय आलिंगउ।
भुज-युगलउ पसरंत निरुद्धउ। जायउ हर्षे अंग सिनिग्धउ।
चिंतिय सोइ कंस-पैशुन्यउँ। आलिंगन देंतऊ न दिन्नउँ।
गाढ - सिनेह - वशेहिँ नमंतै। ले आइय रसोइ गुणवंतै।
गंध-फूल-दीपउँ संजोयउ। भोजन मिट्ठउँ मायें देयउ।
अल्लयदल-दधि ओल्लिय गूडहिँ। मंडा-पूरणेहिँ घृतपूरहिँ।
नाना भक्ष्य-विशेषेहिँ युक्तउ। सरस भावें भू-नाथें भुक्तउ।

---

[1] अस्तव्यस्त

(५) गोवर्धन-धारण

जलु गलइ, झलझलइ। दरि भरइ, सरि सरइ।
तडयडइ, तडि पडइ। गिरि फुडइ, सिहि णडइ।
मरु चलइ, तरु घुलइ। जलु थलु'वि, गोउलु'वि।
णिरु रसिउ, भय-तसिउ। थरहरइ, किरमरइ।
जाव ताव, थिर भाव—। धीरेण, वीरेण।
सर-लच्छि-जयलच्छि-तण्हेण, कह्लेण।
सुर थुइण, भुय-जुइण। वित्थरिउ, उद्धरिउ।
महिहरउ, दिहियरुउ। तम जडिउँ, पायडिउँ।
महि-विवरु, फणि-णियरु। फुप्फुवइ, विसु मुयइ।
परिघुलइ, चलवलइ। तरुणाँइ, हरिणाइँ।
तट्ठाइँ, णट्ठाइँ। कायरइँ, वणयरइँ।
हिंसाल-चंडाल-चंडाइँ, कंडाइँ।
तावसइँ, परवसइँ। दरियाइँ जरियाइँ।
घत्ता। गो-वद्धण-परेण गो-गोमि-णिभारु व जोइउ।
गिरि गोवद्धणउ गोवद्धणेण उच्चाइयउ ॥१६॥....

(६) कालिय-दमन

वइरि जसोयहि पुत्तु, इय कंसें मणि परिछिण्णउ।
कमलाहरणु रउद्दु तें, णंदहु पेसणु दिण्णउँ॥ ध्रुवकं॥
सिहि-चुरुलि-भूउ, गउ राय-दूउ। तें भणिउ णंदु, मा होहि मंदु।
जहिँ गरल-गाहि, णिवसइ महाहि। जउणा सरंतु, तं तुहुँ तुरंतु।
जायवि जपेण, कय-जण-रवेण। आणहि वराइँ, इन्दीवराइँ।
ता णंदु कणइ, सिर-कमलु धुणइ। जहिँ दीण-सरणु, तहिँ ढुक्कु[1] मरणु।

---

[1] प्रविष्ट हुआ

(५) गोवर्धन-धारण

जल गलै झलझलै। दरि भरै, सरि सरै।
तड़तड़ै तड़ि पड़ै। गिरि फुटे शिखि नटै।
मरु चलै तरु घुरै। जल-थलहु, गोकुलहु।
अतिरसित भय-त्रसित। थरथरै किलमिलै।
जाव ताव स्थिर भाव, धीरेहिँ वीरेहिँ।
सर - लक्ष्मि - जयलक्ष्मि - तृष्णेहिँ कृष्णेहिँ।
सुर-स्तुतिहिँ भुजयुगहिँ, बिस्तारेउ उद्धारेउ।
महिधरउ दिशिचरउ, तम जडेँउ प्राकटेँउ।
महि-विवर फणि-निकर, फुफ्फुवै विष मुचै।
परि-घुरैँ चलवलैँ, तरुणाइँ हरिनाइँ।
तत्-स्थाइँ नष्टाइँ, कातरइँ बनचरइँ।
पडियाइँ रडियाइँ, क्षिप्ताइँ त्यक्ताइँ। हिंसाल-चंडाल-चंडाइँ काँण्डाइँ।
तापसैँ परवशैँ, दारिताइँ जीर्णाइँ।
घत्ता। गो-वर्धन परेहि गो-गोपिणि[1] भार इव-जोयउ।
गिरि गोवर्धनउ गोवर्धनेहिँ ऊँचाइयउ ॥६॥

(६) कालिय-दमन

वैरि यशोदापुत्र, ऐँहु कंसह मनेँ परि-आइयउ।
कमलाहरण रउद्र तैँ, नंदह प्रेषण दीनेऊ ॥ ध्रुवक ॥
शिखि चुरुकि भूत, गउ राजदूत। सो भनेउ "नंद ! ना होहु मंद।
जहँ गरले-ग्राहि, निवसै महा'हि। जमुना सरंत तहँ तुहुँ तुरंत।
जायबि जवेहिँ कृत-जन-रवेहिँ। आनहि बराइँ इन्दीवराइँ।
तब नंद कँदै, शिरकमल धुनै। जहँ दीन शरण, तहँ ढुक्कु मरन।

---

[1] गोपाल

जहिँ राउ हणइ, अण्णाउ कुणइ । किं धरइ अण्णु, तहिँ विगय-मण्णु ।
हउँ काइँ करमि, लइ जामि मरमि । फणि सुट्ठु चंडु, तं कमल-संडु ।
को करिण छिवइ, को झंप घिवइ । धगधगधगंति, हुयवहि जलंति ।
उप्पण्ण-सोय, कंदइ जसोय । "महु एक्कु पुत्तु, अहिमुहि णिहित्त ।
मा मरउ बालु, मइँ गिलउँ कालु ।" इय जा तसंति, दीहर ससंति ।
पियरइँ रसंति, ता विहिय संति । अलिकाय-कंति, रणधीरु मंति ।
पभणइ उविंदु[1], "णिहणवि फणिंदु । णलिणाइँ हरमि, जलकील करमिं ।"

घत्ता । इय भाणिवि कण्हु संप्राइउ जउणा सरवरु ।
उब्भड-फड-वियडंगु यम-पासु बाव धाइउ विसहरु ॥१॥

णं कंस-कोव-हुयवहहु धूमु । णं णइ-तरुणी-कडि-सुत्त-दाम ।
णं ताहि जि केरउ जल-तरंगु । णं कालमेहु दीही कयंगु ।
सिय-दाढा-बिज्जुलियहिँ फुरंतु । चल-जमल-जीहु विस-लव मुयंतु ।
हरि सउहुँ फडंगुलि रयण णक्खु । पसरिउ जमेण करु घाय-दक्खु ।
णं दंड-दाणु सर-सिरिड मुक्कु । गइ-वेयउ कण्हहु पासि ढुक्कु ।
फणि फुप्फुयंतु चल जुज्झ-लोलु । णं तिमिरहु मिलियउ तिमिर-लोलु ।
दीसइ हरि देहि भसलउल-कालु । णं अंजण-गिरिवरि णव-तमालु ।
तणु-कंति-परज्जिय-घण-तमासु । णक्खइँ फुरंति पुरिसोत्तमासु ।
सिरि माणिक्कइँ विसहर-वरासु । दीसंतइँ देंति 'व देहणासु ।
तंवेहिँ कुसुम-मणि-यरहिँ तंबु । णं सरि वेल्लिहि पल्लउ पलंबु ।
अहि घुलिउ अंगि महुसूयणासु । णं कत्थूरी-रेहा-विलासु ।

घत्ता । विसहर-घोलिर-देहु, सरि भमंतु रेहइ हरि ।
कच्छालंकिउ तुंगु, णं मयमत्तउ दिस-करि ॥२॥. . . .

---

[1] विष्णु, कृष्ण

जहँ राव हनै, अन्याय करै। की धरै अन्य तहँ विगत-मन्यु।
हौं काहँ करौं, लेइँ जाउँ मरौं। फणि अतिव चंड, सो कमल-षंड।
को करेँहिँ छुवै, को झंप देवै। धगधगधगंत हुतवह ज्वलंत।
उत्पन्न-शोक क्रंदै यशोद। "मम एकपुत्र अहिमुख नि-क्षिप्त।
ना मरउ बाल, मैं गिरौं काल।" इमि श्रसंति दीरघ श्वसंति।
पियरहिँ रसंति तो विहित-शांति। अलिकाय-कांति रणधीर मंति।
प्रभनै उपेन्द्र निहनब फणींद्र। नलिनाइँ हरौं, जलक्रीड़ करौं।

घत्ता। इमि भनिय कृष्ण (तहँ) गयऊ यमुना-सरिवर।
उद्भट-फण-विकटांग यमपाश इव धायेँउ विषधर ॥१॥

जनु कंस-कोप-हुतवहह धूम। जनु नदि-तरुणी-कटि-सूत्रदाम।
जनु ताहिय केरउ जलतरंग। जनु कालमेघ दीर्घीकृतरांग।
सित-दाढा विज्जुलियहिँ फुरंत। चल-यम-जीभ विषलव मुचंत।
हरि सँमुहँ फणांगुलि-रतन-नक्ख। पसरेँउ जमहीं कर घात-दक्ष।
जनु दंडदान सर-श्रीहि मुक्क। जा वेगहिँ कृष्णहँ पास ढुक्क।
फण फुफ्फुवंत चल युद्धलोल। जनु तिमिरहँ मिलियौ तिमिर लोल।
दीसै हरि तहँ भसल[1]-कुल-काल। जनु अंजन-गिरिवरें नवत-माल।
तनु-कांति-पराजिय घन-त मास। नक्खैं फुरंति पुरुषोत्तमास...।
शिर माणिक्यहिँ विषधर-वराहँ। दीसंतै देंति'व देह-नाश।
ताम्रेहिँ कुसुम-मणि-करहिँ ताम्र। जनु सरें वेल्लिहि प्रलंब।
अहि घूरेँउ अंग मधुसूदनाहँ। जनु कस्तूरी-रोवा-विलास।

घत्ता। विषधर-घोलिर देह, शिर भ्रमंत राजै हरि।
कक्षालंकृत तुंग-जनु मदमत्तउ दिश-करि ॥२॥....

---

[1] भ्रमर

(७) कृष्ण-महिमा

कण्हेण समाणउ कोवि पुत्तु। संजणउ जणणि विद्दविय-सत्तु।
दुर्धर-भर-रण-धुर-दिण्ण-खंधु। उद्धरिय जेण णिवडंत वंधु।
भंजिवि नियलइँ गय-वर-गईह। सहुँ माणिणीइ पोमावईह।
कइवय दियहहिँ रइ-कीलिरीहिँ। बोल्लाविउ पहु गोवालिणीहिँ।

७–कविका संदेश

"संगुत्तउँ पइँ माहव सुहिल्लु। कालिंदितीरि मेरउँ कडिल्लु।
एवहिँ महुरा-कामिणिहिँ रत्तु। महुँ उप्परि दीसहि अथिर चित्तु।"
क'वि भणइ "दहिउ मंथंतियाइ। तुहुँ मइँ धरियउ उब्भंतियाइ।
लवणीय-लित्तु करु तुज्झ लग्गु। क'वि भणइ पलोयइ मज्झु मग्गु।
"तुहुँ णिसि णारायण सुयहिँ णाहिँ। आलिंगिउ अवरहिँ गोवियाहिँ।
सो सुयरहि किं ण पउण्ण-वंधु। संकेय-कुडंगुड्डीणु रिंछु।"
घत्ता। कावि भणइ "णासंतु उद्धरिवि खीर-भिंगारउ।
किं वीसरियउ अज्जु जं मइँ सित्तु भडारउ॥१०॥
इय गोवी-यण-वयणाइँ सुणंतु। कीलइ परमेसरु दरहसंतु।
संभासिउ मेल्लिवि गव्व-भाउ। "इह जम्महु महुँ तुहुँ ताय ताउ।
परिपालिउ थण-थण्णेण[1] जाइ। वीसरमि ण खणु मि जसोय माइ।......
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८६)

(१) गरीबी

वक्कल-णिवसणु कंदर-मंदिरु। वण-हल-भोयणु वर तं सुंदरु।
वर दालिद्दु सरीरहु दंडणु। णउ पुरिसह अहिमाण-विहंडणु।
पर-पय-रय-धूसर किंकर-सरि। असुहाविणि णं पाउस-सिरि-हरि।
णिव-पडिहार-दंड-संघट्टणु। को विसहइ केरण उर-लोट्टणु।

---

[1] स्तन्य=दूध

(७) कृष्ण-महिमा

कृष्णेहिँ समानो कोइ पुत्र। संजनेँउ जननि विद्रविय शत्रु।
दुर्धर-भर-रणधुर दीनु खंध। उद्धरिय जेहिँ निपतंत बंधु।
भंजवि नियरैँ गजवर-गईह। सँम्मननीहि पद्मावतीह।
कतिपय-दिवसैँ रति क्रीडिरीहिँ। बोलावेउ प्रभु गोपालिनीहि।

७—कविका संदेश

"-संगुप्तउ तैँ माधव सुहिल्ल। कालंदि तीरेँ मेरउ करिल्ल[1]।
अब्बहिँ मथुरा कामिनिहिँ रक्त। मम ऊपर दीसै अथिर-चित्त।"
कोँइ भनै "दही मंथंतियाई। तुहुँ मोहिँ धरियउ उद्भ्रंतियाइ।
नवनीत-लिप्त कर तोहिँ लाग।" कोँइ भनै विलोकै मध्य मार्ग।
"तुहुँ निशि नारायण सुतहि नाहिँ। आलिंगेँउ अपरहिँ गोपियाहिँ।
सो-सुकरहि की न प्रद्युम्न-बंधु। संकेत-कुडंग[2]-उड्डीन रिछ[3]।
घत्ता। कोइ भनै "नाशत उद्धरिव क्षीर-भृंगारउ।
की विसरियउ आज, जो मैँ सिंचु भटारउ[4] ॥१०॥
एहु गोपीजन वचनइँ सुनंत। क्रीडै परमेश्वर दर हसंत।
संभाषेँउ मेलिय गर्वभाव। "एँहि जन्महुँ मम तव ताप ताउ।
परिपालेँउ स्तन-स्तन्येहिँ जाहि। विसरौँ न क्षणहुँ यशोद माइ।"........
—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(७) गरीबी

वल्कल निवसन कंदर मंदिर। वन-फल भोजन वर सो सुंदर।
वर दारिद्र शरीरह दंडन। नहिँ पुरुषह अभिमान-विखंडन।
परपद-रज-धूसर-किंकर-सर। अ-सोँहावनि जनु पावस-श्री-धर।
नृप-प्रतिहार-दंड-संघट्टन। को विसहै करेहिँ उर-लोट्टन।

---

[1] उत्सव उत्कर्ष [2] एक खेल [3] कल्लोलना [4] भट्टारक

को जोयइ मुँहु भूभंगालउ। कि हरिसिउ किं रोसें कालउ।
पहु आसण्णु लहइ धिट्ठत्तणु। पविरल-दंसणु णिण्णेहत्तणु।
मोणें जडु भडु खंतिइ कायरु। अज्जवु वसु पंडियउ पलाविरु।

—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(२) नीति-वचन

जो रसंतु वरिसइ सो णव-घणु। जं वंकउं दीसइ तं सुरधणु।
जो गिरि दलइ चलइ साविज्जुल। चंचरीय-चुंविय कोमंलदल।

—आदिपुराण (पृ० ३०)

अंधे वट्टं वहिरे गीयं। ऊसर-छेत्ते ववियं बीयं।
संढे[1] लग्गं तरुणि-कडक्खं। लवण-विहीणं विविहं भक्खं।
अण्णॉणें तिव्वं तव चरणं। बल-सामत्थ-विहीणे सरणं।
असमाहिल्ले सल्लेहणयं। णिद्धण-मणुए णव-जोव्वणयं।
णिब्भोइल्ले[2] संचिय-दविणं। णिण्णेहे वर-माणिणि-रमणं।
अविय अपत्ते दिण्णं दाणं। मोह-रयंधे धम्म-क्खाणं।

—जसहर-चरिउ (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहइ जलहरु सुर-धणु-छायएँ। सोहइ णर-वरु सच्चएँ वायएँ।
सोहइ कइ-यणु कहएँ सुबद्धएँ। सोहइ साहउ विज्जएँ सिद्धएँ।
सोहइ मुणि-वंदु मण-सुद्धिएँ। सोहइ महि-वइ णिम्मल-बुद्धिएँ।
सोहइ मंति मंतविहि दिट्ठिएँ। सोहइ किंकरु असि-वर-लट्ठिएँ।
सोहइ पाउसु सास-समिद्धएँ। सोहइ विहउ स-परियण-रिद्धिएँ।
सोहइ माणुसु गुण-संपत्तिएँ। सोहइ कज्जारंभु समत्तिएँ।
सोहइ महिरुह कुसुमिय-साहए। सोहइ सुहडु सुपोरिस-राहएँ।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

---

[1] नपुंसक [2] कंजूस

को जोवै मुख भ्रूभंगलऊ। की हर्षेउ की रोषे कालउ।
प्रभु आसन्न लहै धृष्टत्त्वन। प्रविरल दर्शन निःस्नेहत्वन।
मौने जड भट क्षंतिइँ कायर। आर्जव पशु पंडितउ पलायिर।

—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८९)

(२) नीति-वचन

जो रसंत बरिसइ सो नवघन। जो बंकउ दीसै सो सुरधनु।
जो गिरि दलै चलै सो विज्जुल। चंचरीक-चुंवित कोमल-दल।..

—आदिपुराण (पृ० ३०)

अंधे वाटउ बहिरे गीत। ऊसर खेत्ते बीजब बीज।
षंढे लग्गा तरुणि-कटाक्ष। लवण-विहीना विविधा भक्ष।
अज्ञाने तीव्रं तपचरनं। बल-सामर्थ्य-विहीने शरणं।
असमाधिल्ले सल्लेखनय[1]। निर्धनमनुजे नवयौवनय।
निर्भोगिल्ले संचित-द्रविणं। निर्नेहे वर-मानिनि-रमणं।
अपि अपात्रे दिन्नं दानं। मोह-रजांधे धर्माख्यानं।

—जसहर-चरिउ (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहै जलधर सुरधनु-छायएँ। सोहै नरवर साँचहि वाचएँ।
सोहै कवि-जन कथइ सुबद्धइ। सोहै साधक विद्यहिँ सिद्धए।
सोहै मुनिवरेन्द्र मन-शुद्धिएँ। सोहै महिपति निर्मल-बुद्धिएँ।
सोहै मंत्रि मंत्रविधि दृष्टिएँ। सोहै किंकर असिवर-लट्ठिएँ।
सोहै पावस सस्य-समृद्धिएँ। सोहै विभव स्वपरिजन-ऋद्धिएँ।
सोहै मानुष गुण-संपत्तिएँ। सोहै कार्यारंभ समाप्तिएँ।
सोहै महिरुह कुसुमित-शाखैँ। सोहै सुभट सु-पौरुष-राखएँ।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

---

[1] भूखे मरना

(४) दर्शन-वेदान्त

"किं खण-विणासि किं णिच्चु एक्कु। किं देहत्थुवि कम्मेण मुक्क।
किं णिच्चेयणु चेयण-सरूउ। किं चउभूयहँ संजोय-भूउ।
किं णिग्गुणु णिक्कलु णिव्वियारि। किं कम्महँ कारउ किं अकारि।
ईसर-वेसण किं रय-वसेण। संसरइ देव ! संसारिकेण।
परमाणु-मेत्तु किं सव्वगामि। अप्पउ कहेँउ भणु भुवण-सामि।"
................। "जइ[१] खण-विणासि अप्पउ णिरुत्त।
तो किं जाणइ णिहियउँ णिहाणु। वरिसहँ सएवि णिहिदव्वठाणु।
णिच्चहु किर कहिँ उप्पत्ति मच्चु। जंपइ जणु रइ-लंपडु, असच्चु।
जइ एक्कु जि तइ को सग्गि सोक्खु। अणुहुंजइ णरइ महंतु दुक्ख।
जइ भूय-वियारु भणंति भाउ। तो फिर किं लब्भइ मइ-विहाव।
णिक्किरियहु कहिँ करणइँ हवंति। कहि पयइ-बंधु जुत्ति'वि थवंति।
जइ सिव-वसु हिंडइ भूय-सत्थु। तो कम्म-कंडु सयलु'वि णिरत्थु।
घत्ता। जइ अणुमेत्तउ जीवो एहउ। तो सज्जीवउ किह करि देहउ॥७॥

—उत्तरपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

माणुस-सरीरु दुह-पोट्टलउ। धायेउ धायेउ अइ-विट्टलउ।
वासिउ वासिउ णउ सुरहि मलु। पोसिउ पोसिउ णउ धरइ बलु।
तोसिउ तोसिउ णउ अप्पणउ। मोसिउ मोसिउ धरभायणउ।
भूसिउ भुसिउ ण सुहावणउ। मंडिउ मंडिउ भीसावणउ।
वोल्लिउ वोल्लिउ दुक्खावणउ। चच्चिउ चच्चिउ चिलिसावणउ।
मंतिउ मंतिउ मरणहों तपइ। दिक्खिउ दिक्खिउ साहहुँ भसइ।
सिक्खिउ सिक्खिउ 'वि ण गुणि रमइ। दुक्खिउ दुक्खिउ 'वि ण उवसमइ।
वारिउ वारिउ 'वि पाउ करइ। पेरिउ पेरिउ 'वि ण धम्मि चरइ।

---

[१] बौद्ध दर्शनके क्षणिकवादकी आलोचना

(४) दर्शन-वेदान्त

"की[1] क्षण-विनाशि की नित्य एक। की देहस्थउ कर्मेहिँ मुक्त।
की निश्चेतन चेतन-स्वरूप। की चतु-भूतहँ संयोग-भूत।
की निर्गुण निष्कल निर्विकार। की कर्महँ कारक की अ-कार।
ईश्वर-वसेहिँ की रज-वशेहिँ। संसरै देव! संसारिकेहिँ।
परमाणु-मात्र की सर्वगामि। आत्मा कहेँउ, भनु भुवन-स्वामि?"
.... । "यदि क्षण-विनाशि आत्मा कहिय।
तो की जानै निहितउँ निधान। वर्षंह शतेउ निधि द्रव्य थान।
नित्यह्न फुर कहँ उत्पत्ति-मृत्यु। जल्पै यदि रज-लंपट असत्त्य।
यदि एकै ता को सर्गें सौख्य। अनुभोगै नरकें महंत दुःख।
यदि भूत-विकार भनंत भाव। तो फुर की लब्भै मति-विभाव।
निष्क्रियह्न कहँ करणेहि[2] भवंति। कहँ प्रजावंधु युक्तिउ थपंति।
यदि शिव-वश हिंडै भूत-सत्त्य। तो कर्मकांड सकलह्न निरर्थ।
घत्ता। यदि अणुमात्रे जीव एहो। तो सज्जीवउ कहँ करेँ देहो॥७॥

—आदिपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

मानुष-शरीर दुख-पोट्टलऊ। धोयो धोयो अति विट्टलऊ[3]।
बासेँउ बासेँउ ना सुरभि मलू। पोसेँउ पोसेँउ ना धरै बलू।
तोषेउ तोषेउ ना आपनऊ। मोषेँउ मोषेँउ धर भायनऊ।
भूषेउ भूषेउ न सोँहावनऊ। मंडेउ मंडेउ भीषावनऊ।
बोलेँउ बोलेँउ दुःखावनऊ। चर्चेँउ चर्चेँउ चिरियावनऊ।
मंत्रेँउ मंत्रेँउ मरणहँ भसई। दीक्षेँउ दीक्षेँउ साधुहिँ भषई।
शिक्षेँउ शिक्षेँउ न गुणे रमई। दुःखेँउ दुःखेँउ ना उपशमई।
वारेँउ वारेँउ ह्न पाप करै। प्रेरेँउ प्रेरेँउ ह्न न धर्म चरै।

---

[1] क्या [2] उपचार [3] मलिन

अब्भंगिउ[1] अब्भंगिउ फरिसु। रक्खिउ रक्खिउ आमइ-सरिसु।
मलियउँ मलियउँ वाएँ घुलइ। सिंचिउ सिंचिउ पित्ति जलइ।
सोसिउ सोसिउ सिंभि गलइ। पच्छिउ पच्छिउ कुट्ठहँ मिलइ।
चम्मे बद्धु वि कालि सडइ। रक्खिउ रक्खिउ जममुहि पडइ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अंतेउरु अंतेउरु हणइ। खय-कालहों आयहों कि कुणइ।
सण्णाहु-कय तहों किं करइ। छत्ते छायहु कि उवयरइ।
णउ कहिँ मि मरण-दिणें उब्वरइ। चमराणिलु सासाणिलु धरइ।
सुहु राय-पट्ट-बंधे वसइ। किं आउ-णिवंधणु णउ ल्हसई।
ण रहेहिँ रहिज्जइ जमहु वहु। कि मणुयहँ लग्गउ रज्जगहु।
होइवि जाइवि सहसत्ति किह। रायत्तणु संझाराउ जिह।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

बाहिल्ल ते भिल्ल ते मूअ ते लल्ल। ते पंगु ते कुंट बहिरंध ते मंट।
ते काण काणीण धण-हीण ते दीण। दुहरीण बल-खीण।
णिक्काम णिद्धाम णिच्छाम णिण्णाम। णित्तेय णिप्पाण चंडाल ते पाण।
ते डोंब कल्लाल मंच्छंधि णीवाल। दाढाल ते कोल ते सीह-सद्दूल।
ते सिंगि वियराल ते णह-पहराल। ते पक्खि पिंछाल।
ते सप्प रत्तच्छ मंसासिणो मच्छ। छिंधणइँ रुंधणइँ बंधणइँ बंचणइँ।
लुंचणइँ खंचणइँ कुंचणइँ लुट्टणइँ। कुट्टणइँ घट्टणइँ वट्टणइँ।
पउलणइँ पीलणइँ हूलणइँ चालणइँ। तलणाइँ दलणाइँ मलणाइँ गिलणाइँ।
णिरएसु णरएसु मणुएसु रुक्खेसु। दुक्खाइँ भुंजंति सग्गं कहं जंति।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३४)

---

[1] मालिश

अभ्यंगे॑उ अभ्यंगे॑उ परुषा। रोके॑उ रोके॑उ आम्रइ-सरिसा।
मलिये॑उँ मलिये॑उँ वाते॑ घुलई। सिंचे॑उ सिंचे॑उ पित्ते॑ जलई।
शोषे॑उ शोषे॑उ श्लेष्महिँ गलई। पाछे॑उ पाछे॑उ कुष्टहँ मिलई।
चर्मे बद्धउ काले सड़ई। रक्षिय रक्षिय यम-मुखे॑ पड़ई।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अंतःपुर अंतः उर हनई। क्षय-कालह आयउ की करई।
सन्नाहक्कत तहु की करई। छत्ते छायउ की उपकरई।
ना कतहुँ मरन-दिन ऊबरइ। चमरानिल श्वासानिल धरइ।
सुख राजपट्ट-बंधे बसई। की आयु निबंधन ना ह्रसई।
न रथेहिँ रहिज्जै यमहुँ वहू। की मनुजहँ लागउ राज्य-ग्रहू।
होइब जाइब सहसाहि किमि। राजत्वन संध्याराग-जिमि।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

बहेल्ल[1] ते भिल्ल ते मूक सो लल्ल[2]। ते पंगु ते कुंट बधिर'न्ध ते मंट।
ते कानौं कनीन धन-हीन ते दीन। दुखरीन बलहीन।
निकाम निधाम नि-छाम नि-नाम। नि-तेज नि-प्राण चँडाल ते प्राण।
ते डोम कलाल मछंधि नि-बाल[3]। दढाल ते॑ कोल ते सीँह-शदूल।
ते शृंगी विकराल ते नभ-पथराल। ते पक्षि पिछाल।
ते सर्प रक्ताक्ष मांसाशिन माच्छ। छिन्दनै॑ रुंधनै॑ बंधनै॑ वंचनै॑।
लुंचनै॑ खंचनै॑ कुंचनै॑ लुट्टनै॑। कुट्टनै॑ घट्टनै॑ वट्टनै॑।
प्रोलनै॑ पीडनै॑ हूलनै॑ चालनै॑। तलनाइँ दलनाइँ मलनाइँ गिलनाइँ।
तिर्यंकेनारके मनुजे औ वृक्षे। दुःखाइँ भुंजंति स्वर्ग कहाँ जांति।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३४)

---

[1] बहेलिया [2] लोलुप, सतृष्ण [3] मच्छीमार बच्चे

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु[1] द्वीप

घत्ता। णिच्चु जि उच्छवु णिच्च दिहि, णिच्चु जि तणु तारुण्णु णवल्लउ।
भोय - भूमिरुह - माणुसहँ, जं जं दीसइ तं तं भल्लउ।
ण दुज्जणु दूसिय सज्जण-वासु। ण खासु ण सोसु ण रोसु ण दोसु।
ण छिंक ण जिंभणु णालसु दिट्ठु। ण णिद्द ण णेत्त-णिमीलणु सुट्ठु।
ण रत्ति ण वासरु थंतु ण घम्मु। ण इट्ठु-विओउ ण कुच्छिय कम्मु।
अयालि ण मच्चु ण चिंतु ण दीणु। कयाइ कहिंपि सरीरु ण भीणु।
पुरीस-विसग्गु ण मुत्त-पवाहु। ण लालु ण सिंभु ण पित्ति वि डाहु।
ण रोउ ण सोउ ण सेउ विसाउ। किलेसु ण दासु ण कोइवि राउ।
सुरुव सुलक्खण माणव दिव्व। अगव्व सुभव्व समाण जि सव्व।
सुहाउ विणीसउ सासु सुयंधु। कलेवरि वज्ज समट्ठिय-बंधु।
ति-पल्ल-पमाणु थिराउ-णिबंधु। करीसर केसरि तेविहु वंधु।
ण चोरु ण मारि ण घोरु वसग्गु। अहो कुरु-भूमि निसंसइ सग्गु।
—उत्तरपुराण (पृ० ४०९-१०)

§ २१. शान्तिपा

(कलिकाल-सर्वज्ञ रत्नाकरशान्ति)। काल—१००० ई०
(विग्रहपाल-महीपाल ९६०-८८-१०३८)।

(रहस्यवाद)

(राग रामक्रीं)

सअ-संवेअण-सरुअ विआरेँ अलक्ख लक्ख ण जाइ।
जे जे उजुवाटे गेला[2] अण्ण वाटे भइला सोइ॥

---

[1] आर्योका पूर्वनिवास [2] मैथिली

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु द्वीप

घत्ता । नित्यहिँ उत्सव नित्य देहि, नित्यहि तनु तारुण्य नवल्ल ।
भोग-भूमि रुह मानुषहँ, जो जो दीसै सो सो भल्ल ।

न दुर्जन-दूषित सज्जन-वास । न खाँस न शोष न रोष न दोष ।
न छींक न जम्भा न आलस दृष्ट । न निद्र न नेत्र निमीलन सुष्ट ।
न राति न वासर धंद न घाम । न इष्ट-वियोग न कुक्षिय काम ।
भयासि न मृत्यु न चिंत न दीन । कदापि कहूँहु शरीर न भीन[1] ।
पुरीष-विसर्ग न मूत्रप्रवाह । न लाल न श्लेष्म न पित्तह डाह ।
न रोग न शोक न सेतु विषाद । किलेश न दाश न कोउह राज ।
सुरूप सुलक्षण मान दिव्य । अगर्व सुभव्य समानहिँ सर्व ।
मुखाहं विनीसै श्वास सुगंध । कलेवरे वज्र समस्थिय बंध ।
त्रिपल्ल प्रमाण थिराय-निबंध । करीश्वर केसरि तेहुअउ बंधु ।
न चोर न मार न घोर उपसर्ग[2] । अहो कुरु भूमि निसंशय स्वर्ग ।
—उत्तरपुराण (पृ० ४०९-१०)

§ २१. शान्तिपा

देश—मगध । कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१२), राजगुरु ।
कृति—सुखदुःखद्वय-परित्यागदृष्टि ।

(रहस्यवाद)

(१५—राग रामक्रीं)

स्वसंवेदन स्वरूप विचारे । अलख लख्यो ना जाई ।
जो जो ऋजुवाटे गइला, अन्यवाटे भइला सोई ॥

---

[1] क्षीण [2] उपद्रव, खुराफात

काअरुअ ण बुज्झिअ मूढहि उजुवाट संसारा।
(महुअरेहि एक्क अन्न राजहि कणकधारा।)
माआ मोह समुद्द अन्त बुज्झसि ताहा।
आगे णाव नभेला दीसइ भन्ति न पुच्छसि णाहा॥
सूनापान्तर ऊह न दीसइ, भान्ति न वासने जान्ते।
एषा अट्ठ महासिज्झि सिज्झइ उजुवाटे जाअन्ते॥
वाम दाहिण दो वाटा छाडी शान्ति बोलथेउ संकेलिउ।
घाट ण शुक्क खडतडि ण होइ आँखें बुज्झिअ वाट जाइउ॥१५॥

(२६—राग शबरी)

तुला धुणि धुणि अंशूहि अंशू। अंशू धुणि धुणि णिरवर सेसू।
तउ से हेतुअ ण पाविअइ। सान्ति भणइ कि स भाविअइ॥
तुला धुणि धुणि सुण्णे आहारिउ। पुण लइअ अप्पण चटारिउ।
वहल वढ! दुइ भाग ण दीशअ। शान्ति भणइ वालग्ग ण पइसइ।
काज ण कारण ण एहु जुगती। सअ-संवेअण बोलथि[1] सान्ती॥२६॥
—चर्यापद

§२२. योगीन्दु (जोइंदु)

काल १०००। देश—राजस्थान (?)। कुल—जैन साधु। कृतियाँ—

(१) ज्ञान-समाधि

जो जाया झाणग्गिएँ, कम्म-कलंक डहेवि।
णिच्च-णिरंजण-णाणमय ते परमप्प णवेवि॥१॥
ते हँउ वंदउँ सिद्ध-गण, अच्छहिँ जे वि हवंत।
परम-समाहि-महग्गियएँ, कम्मि-धणइँ हुणंत॥३॥

---

[1] मगही क्रियापद

कायरूप ना बूझै मूढहिं ऋजु वाटा संसारा।
मधु-करहिं एक भक्ष्य, राजहिं कनकधारा ॥
मायामोह समुद्रहि अन्त न बूझसि थाहा।
आगे (न) नाव नभेला दीसै, भ्रान्तिहिं पूछसि न नाथा ॥
शून्य-प्रान्तर ऊह न दीसै भ्रान्ति न वासने जाये।
एही अष्ट महासिद्धि सिद्धै, ऋजुवाटेहीं जाये ॥
वायें दहिन दो बाट छाडी शान्ति बोलेउ संकेरिय।
घाटे न शुल्क खरतरी न होइ, आँखि बुयभिबाट जाइय ॥१५॥

(२६—राग शबरी)

तुला धुनि धुनि रेशहि रेशा। धुनि धुनि निरवर शेषू।
तउ सो हेतु न पाइयइ। शान्ति भनै की सो भवियइ।
तुल धुनि धुनि शून्ये बारेउ। पुनि लेइय आपन चट्टारिउ।
बहुत मूढ़ ! दुइ भाग न दीसै। शान्ति भनै बालाग्र न पइसै।
कार्य न कारण न एहु जुगती। स्वक-संवेदन बोलै शान्ती ॥२६॥

—चर्यापद

§ २२. योगीन्दु (जोइंदु)

परमात्म-प्रकाश दोहा, योगसार-दोहा[1]।

(१) ज्ञान-समाधि

जे जायेँउ ध्यानाग्नियेहिँ, कर्म-कलंक डहाइ।
नित्य-निरंजन-ज्ञानमय, ते परमात्म नमामि ॥१॥
तिन हौं वन्दौ सिद्धगण, रहें जोउ होवन्त।
परम-समाधि महाग्नियेहिँ, कर्मेन्धनहिँ होमन्त ॥३॥

---

[1] ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित (श्री रायचंद्र जैन-शास्त्र-माला १०, बम्बई १९३०)

भाविं पणविवि पंचगुरु, सिरि-जोइंदु-जिणाउ।
भट्टपहायरि विण्णविउ, विमलु करे विणु भाउ ॥८॥
गउ संसारि वसंतहँ, सामिय काल अणंतु।
पर मइँ किंपि ण पत्तु सुहु, दुक्खुजि पत्तु महंतु ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

तिहुयण-वंदिउ सिद्धि-गउ, हरि-हर झायहिं जोजि।
लक्ख, अलक्खें धरिवि थिरु, मुणि परमप्पउ सोजि ॥१६॥
णिच्चु णिरंजणु णाणमउ, परमाणंद-सहाउ।
जो एहउ सो संतु सिउ, तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१७॥
जो णिय-भाउ ण परिहरइ, जो पर-भाउ ण लेइ।
जाणइ सयलुवि णिच्चु पर, सो सिउ संतु हवेइ ॥१८॥
जासु ण वण्णु ण गंधु रसु, जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि, णाउ णिरंजणु तासु ॥१९॥
जासु ण कोहु ण मोहु मउ, जासु ण माय ण माणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय, सोजि णिरंजणु जाणु ॥२०॥
अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु, अत्थि ण हरिसु विसाउ।
अत्थि ण एक्कुवि दोसु जसु, सोजि णिरंजणु भाउ ॥२१॥
जासु ण धारणु धेउ णवि, जासु ण जंतु ण मंतु।
जासु ण मंडलु मुद्द णवि, सो मुणि देउँ अणंतु ॥२२॥

(३) आत्मा

हउँ गोरउ हउँ सामलउ, हउँजि विभिण्णउ वण्णु।
हउँ तणु-अंगउँ थूलु हउँ, एहउँ मूढउ मण्णु ॥८०॥
हउँ वरु बंभणु वइसु हउँ, हउँ खत्तिउ हउँ सेसु।
पुरिसु णउंसउ इत्थि हउँ, मण्णइ मूढु विसेसु ॥८१॥
अप्पा गोरउ किण्हु णवि, अप्पा रत्त ण होइ।
अप्पा सुहुमु वि थूलु णवि, णाणिउ जाणें जोइ ॥८६॥

भावहिँ प्रणवों पंचगुरु, श्री योगीन्दु जिनाव।
भट्टप्रभाकर वीनवेँउ, निर्मल करिके भाव ॥८॥
गयउ संसार वसंतहीँ, स्वामी काल अनन्त।
पर मैं किछु पायउँ न सुख, दुःखइ पायउँ महन्त ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

त्रिभुवन-वंदित सिद्धिगत, हरि-हर ध्यावें जेहि।
लक्ष्य अलक्ष्ये धरिवि थिर, मुनि परमात्मा सोइ ॥१६॥
नित्य निरंजन ज्ञानमय, परमानंद स्वभाव।
जो ऐसो सो शान्त शिव, तासु मनिज्जै भाव ॥१७॥
जो निज भाव न परिहरै, जो परभाव न लेइ।
जानै सकलउ नित्य पर, सो शिव शान्त हवेइ ॥१८॥
जासु न वर्ण न गंध रस, जासु न शब्द न स्पर्श।
जासु न जन्म न मरणहू, नाम निरंजन तासु ॥१९॥
जासु न क्रोध न मोह मद, जासु न माय न मान।
जासु न थान न ध्यान जिय, सोइ निरंजन जान ॥२०॥
अहै न पुण्य न पाप जसु, अहै न हर्ष विषाद।
अहै न एकहु दोष जसु, सोइ निरंजन भाव ॥२१॥
जासु न धारण ध्येय नहिँ, जासु न यंत्र न मंत्र।
जासु न मंडल मुद्र नहिँ, सो मॉनु देव अनन्त ॥२२॥

(३) आत्मा

हौँ गोरो हौँ सामलो, हौँ हि विभिन्नउ वर्ण।
हौँ तनु-अंगो स्थूल हौँ, ऐसो मूढै मन्व ॥८०॥
हौँ वर-ब्राह्मण वैश्य हौँ, हौँ क्षत्रिय हौँ शेष।
पुरुष नपुंसक इस्त्रि हौँ, मानै मूढ विशेष ॥८१॥
आत्मा गोरा कृष्ण नहि, आत्मा रक्त न होइ।
आत्मा सूक्ष्महु स्थूल नहिँ, ज्ञानी ज्ञाने जोइ ॥८६॥

अप्पा पंडिउ मुक्खु णवि, णवि ईसरु णवि णीसु ।
तरुणउ बूढउ बालु णवि, अण्णुवि कम्म-विसेसु ॥९१॥

पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु, धम्माधम्मु वि काउ ।
एक्कुवि अप्पा होइ णवि, मेल्लिवि चेयण-भाउ ॥९२॥

अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय, अण्णु जि गुरुउ म सेवि ।
अण्णुजि देउ म चिंति तुहुँ, अप्पा विमलु मएवि ॥९५॥

अप्पा णिय-मण णिम्मलउ, णियमें वसइ ण जासु ।
सत्थ-पुराणइँ तव-चरणु, मुक्खुवि करहिँ कि तासु ॥९८॥

(४) परमात्म-तत्त्व

जे दिट्ठें तुट्टंति लहु, कम्मइँ पुव्व कियाइँ ।
सो परु जाणहि जोइया, देहि वसंतु ण काइँ ॥२७॥

देहा-देवलि जो वसइ, देउ अणाइ-अणंतु ।
केवल णाण-फुरंत-तणु, सो परमप्पु णिभंतु ॥३३॥

देहें वसंतुवि णवि छिवइ, णियमें देहुवि जोजि ।
देहें छिप्पइ जोवि णवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥३४॥

जसु अब्भंतरि जगु वसइ, जग-अब्भंतरि जोजि ।
जगिजि वसंतुवि जगु जिणवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥४१॥

जसु परमत्थें बंधु णवि, जोइय णवि संसारु ।
सो परमप्पउ जाणि तुहुँ, मणि मिल्लिवि ववहारु ॥४६॥

णवि उप्पज्जइ णवि मरइ, बंधु ण मोक्खु करेइ ।
जिउ परमत्थें जोइया, जिणवरु एउँ भणेइ ॥६८॥

छिज्जउ भिज्जउ जाउ खउ, जोइय एहु सरीरु ।
अप्पा भावहि णिम्मलउ, जिं पावहि भवतीरु ॥७२॥

जोइय अप्पें जाणिएँण, जगु जाणियउ हवेइ ।
अप्पहँ केरइ भावडइ, बिंबिउ जेण वसेइ ॥९९॥

आत्मा पंडित मूर्ख नहिँ, नहि ईश्वर न अनीश ।
तरुण बूढ बालहु नहीं, अन्यहु कर्मविशेष ॥९१॥
पुण्यउ पापउ काल नभ, धर्माधर्महु काय ।
एकहु आत्मा होइ नहिँ, छडि ऐँक चेतनभाव ॥९२॥
अन्यहि तीर्थ न जाहि जिय, अन्यहिँ गुरुहिँ न सेव ।
अन्यहिँ देव न चित तुहुँ, छाँडि एक विमलात्मांहिँ ॥९५॥
आत्मा निजमन निर्मले, नियमेहिँ वसै न जासु ।
शास्त्र-पुराणहु तप-चरण, मोक्ष कि करिहै तासु ॥९८॥

(४) परमात्म-तत्त्व

जेहि देखे टूटै तुरत, कर्मा पूर्वकृताइँ ।
सो पर जानहि जोगिया, देह वसंत कि नाहिँ ॥२७॥
देह-देवले जो वसै, देव अनादि अनन्त ।
केवल ज्ञान-फुरंत-तनु, स परमात्म निर्भ्रान्ति ॥३३॥
देह वसंतहु नहि छुवै, नियमेहिँ देहै जोइ ।
देहे छिप्यो जोइ नहिँ, मॉनु परमात्मा सोइ ॥३४॥
जासु भीतरे जग वसै, जगत्-भीतरे जोइ ।
जगहिँ वसंतहु जग जोँ नहिँ, मॉनु परमात्मा सोइ ॥४१॥
जसु परमार्थे बंध नहिँ, जोगी ! नहिँ संसार ।
तहि परमात्मा जान तुम, मन छाडी व्यवहार ॥४६॥
नहि उपजै नाही मरै, बंध न मोक्ष करेइ ।
जिउ परमार्थे जोगिया, जिनवर ऐस भनंति ॥६८॥
छीजहु भीजहु जाहु क्षय, जोगी एहु शरीर ।
आपा भावै निर्मलहिँ, जेहिँ पावे भवतीर ॥७२॥
जोगी ! आपा जानिये, जग जानियत ह्वेइ ।
आत्मा केरी भावनहि, बिंबित येन वसेइ ॥९९॥

अप्पु पयासइ अप्पु परु, जिम अंबरि रवि-राउ ।
जोइय एत्थु म भंति करि, एहउ वत्थु-सहाव ॥१०१॥
तारा-यणु जलि बिंबियउ, णिम्मलि दीसइ जेम ।
अप्पएँ णिम्मलि बिंबियउ, लोयालोउ 'वि तेम ॥१०२॥
सो पर वुच्चइ लोउ परु, जसु मइ तित्थु वसेइ ।
जहिँ मइ तहिँ गइ जीवहँजि, णियमें जेण हवेइ ॥१११॥
जहिँ मइ तहिँ गइ जीव तुहुँ, मरणु वि जेण लहेहि ।
तें परबंभु मुए वि मँह, मा पर-दव्वि करेहि ॥११२॥
जइ णिविसद्धुवि कुवि करइ, परमप्पइ अणुराउ ।
अग्गि-कणी जिम कट्ठगिरि, डहइ असेसु 'वि पाउ ॥११४॥

(५) निरंजन-योग

मेल्लिवि सयल अवक्खडी जिय णिच्चिंतउ होइ ।
चित्तु णिवेसहि परमपएँ, देउ णिरंजणु जोइ ॥११५॥
जोइय णिय-मणि णिम्मलएँ, पर दीसइ सिउ संतु ।
अंबरि णिम्मलि घण-रहिएँ, भाणु जिजेम फुरंतु ॥११६॥
जसु हरिणच्छी हियवडएँ, तसु णवि बंभु वियारि ।
एक्कहि केम समंति बढ, बे खंडा पडियारि ॥१२१॥
णिय-मणि णिम्मलि णाणियहँ, णिवसइ देउ अणाइ ।
हंसा सरवरि लीणु जिम, महु एहउ पडिहाइ ॥१२२॥
देउ ण देउलें णवि सिलएँ, णवि लिप्पइ णवि चित्ति ।
अखउ णिरंजणु णाणमउ, सिउ संठिउ सम-चित्ति ॥१२३॥
हरि-हर बंभुवि जिणवरवि, मुणि-वर-विंदवि भव्व ।
परम-णिरंजणि मणु धरिवि, मुक्खुजि झायहिँ सव्व ॥१३१॥
मुत्ति-विहूणउ णाणमउ, परमाणंदु-सहाउ ।
णियमिं जोइय अप्पु मुणि, णिच्चु णिरंजणु भाउ ॥१४१॥
जो णवि मण्णइ जीउ समु, पुण्णुवि पाउवि दोइ ।
सो चिरु दुक्खु सहंतु जिय, मोहहिँ हिंडइ लोइ ॥१७८॥

आत्म प्रकाशै आत्म पर, जिमि अंबरे रवि-राग ।
जोगी ! इहाँ न भ्रान्ति करु, एही वस्तु-स्वभाव ॥१०१॥
तारागण जले बिंबित, निर्मल दीसै जेमि ।
आत्महिँ निर्मल बिंबितं, लोकालोकउ तेमि ॥१०२॥
सो पर कहियत लोक पर, जसु मति तहाँ वसेइ ।
जहँ मति तहँ गति जीव की, नियमें हि क्यों कि हवेइ ॥१११॥
जहँ मति तहँ गति जीव तुहुँ, मरणउ क्योंकि लभेइ ।
ता परब्रह्महिँ छाडि जनि, मति परद्रव्य करेइ ॥११२॥
यदि निमिषार्द्धउ कोइ करै, परमात्महिँ अनुराग ।
अग्नि कणी जिमि काठे गिरि, डहे अशेषहिँ पाप ॥११४॥

(५) निरंजन-योग

मेली सकल अपेक्षडी, जिव निश्चिन्ता होइ ।
चित्त निवेशै परमपदे, देव निरंजन जोइ ॥११५॥
जोगी ! निजमन निर्मले, **पर** दीसै शिव शान्त ।
अंबरे निर्मल घनरहित, भानू जेमि फुरन्त ॥११६॥
जसु हरिणाक्षी हृदयमें, तासु न ब्रह्म विचार ।
एकहिँ मूढ ! समाय किमि, दो खड्गा प्रतिकारि ॥१२१॥
निजमन निर्मले ज्ञानि के, निवसै देव अनादि ।
हंसा सरवर लीन जिमि, मोहिँ ऐसहि प्रतिभाति ॥१२२॥
देव न देवले नहि शिलहिँ, नहि लेप्य नहिँ चित्र ।
अक्षय निरंजन ज्ञानमय, शिव समचित्ते थित्त ॥१२३॥
हरि-हर ब्रह्महु जिनवरहु, मुनिवर वृन्दहु-भव्य ।
परम-निरंजने मन धरी, मोक्षहि ध्यावैं सर्व ॥१३१॥
मुत्तिविहीना ज्ञानमय, परमानंद स्वभाव ।
नियमेहिँ जोगी ! आप मनु, नित्य निरंजन भाव ॥१४१॥
जो नहिँ मानै जीव सम, पुण्यहु पापहुँ दोय ।
सो चिर दुःख सहंत जिव, मोहेहिँ हिंडै लोक ॥१७८॥

(६) पंथ-पोथी-पत्राकी निंदा

देवहँ सत्थहँ मुणिवरहँ, भत्तिऍं पुण्णु हवेइ ।
कम्म-क्खउ पुणि होइ णवि, अज्जउ संति भणेइ ॥१८४॥

देउ णिरंजणु इँउ भणइ, णाणि मुक्खु ण भंति ।
णाणविहीणा जीवडा, चिरु संसारु भमंति ॥१९६॥

सत्थ पढंतुवि होइ जडु, जो ण हणेइ वियप्पु ।
देहि वसंतुवि णिम्मलउ, णवि मण्णइ परमप्पु ॥२०६॥

तित्थइँ तित्थु भमन्तहँ, मूढहँ मोक्खु ण होइ ।
णाण-विवज्जिउ जेण जिय, मुणिवरु होइ ण सोइ ॥२०८॥

चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिँ, तूसइ मूढु णिभंतु ।
एयहिँ लज्जइ णाणियउ, बंधहँ हेउ मुणंतु ॥२११॥

भल्लाहँवि णासंति गुण, जहँ संसग्ग खलेहिँ ।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ, तें पिट्टियइ घणेहिँ ॥२३२॥

रूवि पयंगा सद्दि मय, गय फासहि णासंति ।
अलि-उल गंधहिँ मच्छ रसि, किम अणुराउ करंति ॥२३५॥

देउलु देउवि सत्थु गुरु, तित्थुवि वेउ वि कव्वु ।
वच्छु जु दीसै कुसुमियउ, इंधणु होसइ सव्वु ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पँचहँ णायकु वसि करहु, जेण होंति वसि अण्ण ।
मूल विणट्ठइ तरुवरहँ, अवसइँ सुक्कहिँ पण्ण ॥२६३॥

सुण्णउँ पउँ झायंतहँ, वलि वलि जोइय जाहँ ।
समरसि-भाउ परेण सहु, पुण्णुवि पाउ ण जाहँ ॥२८२॥

उव्वस बसिय जो करइ, वसिया करइ जु सुण्ण ।
वलि किज्जउँ तसु जोइयहिँ, जासु ण पाउ ण पुण्ण ॥२८३॥

(६) पंथ-पोथी-पत्राकी निंदा

देव-शास्त्र-मुनिवरन की, भक्तिहिं पुण्य हवेइ ।
कर्मक्षय पुनि होइ नहिं, आरज शान्ति भनेइ ॥१८४॥

देव निरंजन यों भनै, ज्ञानेंहि मोक्ष न भ्रान्ति ।
ज्ञानविहीना जीवडा, चिर संसार भ्रमंति ॥१९६॥

शास्त्र पढंतौ होइ जड, जो न हनेइ विकल्प ।
देह वसंतउ निर्मलउ, नहि माने परमात्म ॥२०६॥

तीर्थहिं तीर्थ भ्रमन्तकहिं, मूढहिं मोक्ष न होइ ।
ज्ञानविवर्जित जो कि जिव, मुनिवर होइ न सोइ ॥२०८॥

चेला-चेली-पोथियहिं, तूषै मूढ निभ्रान्त ।
एतहिं लज्जै ज्ञानियउ, बंधन हेतु बुझन्त ॥२११॥

भलन केरहू नशैं गुण, जहँ संसर्ग खलेहिं ।
वैश्वानर लोहहिं मिल्लेउ, तेहि पिट्टियइ घनेहिं ॥२३३॥

रूपें पतंगा शब्दें मृग, गज स्पर्शे नाशंति ।
अलिकुल गन्धे, मत्स्य रसें, किमि अनुराग करंति ॥२३५॥

देवल देवउ शास्त्र गुरु, तीर्थहु वेदहु काव्य ।
वृक्ष जों दीसै कुसुमित, इंधन होइहै सर्व ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पंच नायकन वश करहु, जेन होहिं वश अन्य ।
मूल विनष्टे तरुवरहि, अवशि सूखिहै पर्ण ॥२६३॥

शून्य पदहिं ध्यायन्तहें, बलि बलि जोगिय जावें ।
समरसभाव परेन सहँ, पुण्य पाप ना जाहि ॥२८२॥

उवसा बसिया जो करै, बसिया करै जों शून्य ।
बलि जाऊँ तेहि जोगियहिं, जासु न पाप न पुण्य ॥२८३॥

णास-विणिग्गउ साँसडा, अंबरि जेत्थु विलाइ।
तुट्टइ मोह तडत्ति तहिं, मणु अत्थवणहँ जाइ ॥२८५॥
मोहु विलिज्जइ मणु मरइ, तुट्टइ सासु-णिसासु।
केवल-णाणु वि परिणमइ, अंबरि जाहँ णिवासु ॥२८६॥
घोरु करंतु'वि तव-चरण, सयल'वि सत्थ मुणंतु।
परम-समाहि-विवज्जियउ, णवि देक्खइ सिउ संतु ॥३१४॥
जो परमप्पउ परम-पउ, हरि-हर-बंभुवि बुद्धु।
परम-पयासु भणंति मुणि, सो जिण-देउ विसुद्धु ॥३२३॥

—परमात्मप्रकाश[1]

(८) योग-भावना

संसारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसयाहँ।
अप्पा-संबोहण-कयइ, दोहा एक्कमणाहँ ॥३॥
णिम्मलु णिक्कलु सुद्ध जिणु, विण्हु बुद्धु सिव संतु।
सो परमप्पा जिण भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु ॥९॥
जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हँउ सो परमप्पु।
इउ जाणे विणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु ॥२२॥
जाव ण भवहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ।
ताव ण लब्भइ सिव-गमणु, जहिं भावइ तहि जाउ ॥२७॥
मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति।
देहा देवलि देउ जिणि, सो बुज्झहि समचित्ति ॥४४॥
धम्मु ण पढियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ।
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्थालुंचियइँ ॥४७॥
जेहइ मण विसयहँ रमइ, तिमि जइ अप्प मुणेइ।
जोइं भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥५०॥

---

[1] ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित रायचंद्र जैन-शास्त्र-माला, बम्बई १९३७ ई०

नासहिँ निकस्या साँसडा[1], अंबर जहाँ बिलाइ।
टूटै मोह तुरंत तहँ, मन अस्तमने जाइ ॥२८५॥
मोह बिलाये मन मरै, टूटै श्वास-निश्वास।
केवल ज्ञानहु परिणमै, अंबर जासु निवास ॥२८६॥
घोर करन्ते तपचरण, सकलहु शास्त्र जाँनन्त।
परम समाधि विवर्जित, नहि देखै शिव-शान्त ॥३१४॥
जो परमात्मा परम-पद, हरि-हर-ब्रह्मा-बुद्ध।
परमप्रकाश भनंति मुनि, सो जिन-देव विशुद्ध ॥३२३॥

—परमात्मप्रकाश

(८) योग-भावना

संसारहँ भयभीत जे, मोक्ष लालसा जाहि।
आत्मा-संबोधन कियउ, दोहा एकमनाहि ॥३॥
निर्मल निष्कल शुद्ध जिन, विष्णु बुद्ध शिव शान्त।
सो परमात्मा जिन भन्यो, एहउ जानु निभ्रान्त ॥९॥
जो परमात्मा सोइ हौं, जो हौं सो परमात्म।
एह जाने विनु जोगिया, अन्य न करहु विकल्प ॥२२॥
जौ न भावै जीव तुहुँ, निर्मल आत्मस्वभाव।
तौ न लहै शिवगमनहिँ, जहँ भावै तहँ जाव ॥२७॥
मूढ ! देवले देव नहिँ, शिलहिँ लेप्य नहि चित्रे।
देह देवले देव जिन, सो बूझै समचित्त ॥४४॥
धर्म न पढिया होइ, धर्म न पोथा पिच्छियहिँ।
धर्म न मठप्रवेश, धर्म न माथा-लुंचियहिँ ॥४७॥
जैसे मन विषयहिँ रमै, तिमि यदि आत्म लगेइ।
योगि भनै हे योगियो, तुरत निबाण लहेइ ॥५०॥

---

[1] श्वास

णासग्गिँ अब्भिन्तरहँ, जे जोवहिँ असरीरु।
बहुडि[1] जम्मि ण संभवहिँ, पिवहिँ ण जणणी-खीरु ॥६०॥

जो जिण सो हउँ सोजि हँउ, एहउ भाउ णिभंतु।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥७५॥

जो सम-सुक्ख-णिलीणु वहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ।
कम्मक्खउ करि सोवि फुडु, लहु णिब्बाणु लहेइ ॥९३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो सिउसंकरु विण्हु सो, सो रुद्'वि सो बुद्ध।
सो जिणु ईसरु बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु ॥१०५॥

एवँहि लक्खण-लक्खियउ, जो पर णिक्कलु देउ।
देहहँ मज्झहिँ सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ ॥१०६॥

—योगसार

§२३. रामसिंह

काल—१००० ई० (?)। देश—राजपूताना (?)। कुल—जैन साधु।

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

अप्पायत्तउ जोजि सुहु, तेण जि करि संतोसु।
पर सुह वढ! चिंततहं, हियइ ण फिट्टइ सोसु ॥२॥

जं सुहु विसय परंमुहउ, णिय अप्पा भायंतु।
तं सुहु इंदु वि णउक लहइ, देविहिँ कोडि रमंतु ॥३॥

घर वासउ मा जाणि जिय, दुक्किय वासुउ एहु।
पासु कयंते मंडियउ, अविचल णवि संदेहु ॥१२॥

---

[1] फिर

नासाग्रे अभ्यन्तरहिं, जे जावै अशरीर।
बहुरि जन्म ना संभवै, पिवै न जननी-क्षीर ॥६०॥
जो जिन सो हौं सोइहौं, एही भाव निभ्रान्त।
मोक्षइं कारण जोगिया, अन्य न तंत्र न मंत्र ॥७५॥
जो शम-सुक्ख-निलीन वहु, पुनि पुनि आत्म मनेइ।
कर्मक्षय करि सोइ फुर, तुरत निवाण लहेइ ॥९३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो शिव-शंकर विष्णु सो, सो रुद्रउ सो बुद्ध।
सो जिन ईश्वर ब्रह्म सो, सो अनंत-सो सिद्ध ॥१०५॥
ऐसे लक्षण-लक्षितउ, जो पर निष्कल देव।
देह-मध्यही सो वसै, तासु नहीं है भेद ॥१०६॥
—योगसार

§ २३. रामसिंह

कृति—पाहुड-दोहा[१]

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

आत्मायत्तउ जोहि सुख, तेनहि करु सन्तोष।
पर सुख चिन्तत मूढ़ रे, हृदय न छूटइ सोच ॥२॥
जो सुख विषय-पराङ्मुख, निज आत्मा ध्यायन्त।
जो सुख इन्दुहु ना लहइ, देवन् कोटि रमन्त ॥३॥
घरवास हु न जानु जिय, दुष्कृत-वासहु एहु।
पाश कृतांतेहि फेंकियउ, अविचल नहि संदेह ॥१२॥

---

[१] करंजा जैन-ग्रंथमाला, करंजा (वरार)

सप्पि मुक्की कंचुलिय, जं विसु तं ण मुएइ ।
भोय न भाउ न परिहरइ, लिंगग्गहणु करेइ ।।१५।।

अथिरेण थिरा मइलेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारा ।
काएण जा विढप्पइ सा किरिया किण कायव्वा ।।१६।।

वर विसु विसहरु वरु जलणु, वरु सोविउ वणवासु ।
णउ जिणधम्म-परम्मुहउ मित्थत्तिय सहवासु ।।२०।।

हंउ गोरउं हउं सामलउ हउं मि विभिण्णउ वण्णि ।
हउँ तणु-अंगउ थूलु हउँ एहउ जीव म मण्णि ।।२६।।

(२) निरंजन-साधना

वण्ण-विहूणउ णाणमउ, जो भावइ सब्भाउ ।
संतु णिरंजणु सो जि सिउ तहिं किज्जइ अणुराउ ।।३८।।

उपलाणहि जोइय करहुलउ, दावणु छोडहि जिम चरइ ।
जसु अखइ णिरामइँ गयउ, मणु सो किम वुहु जगिरइ करइ ।।४२।।

पंच वलद्दण रक्खियइँ, णंदणवणु ण गओसि ।
अप्पु ण जाणिउ ण वि परु'वि, एमइ पव्व इओसि ।।४४।।

पंचहि बाहिरु णेहडउ, हलि सहि लग्गु पियस्स ।
तासु न दीसइ आगमणु, जो खलु मिलिउ परस्स ।।४५।।

मणु जाणइ उवएसडउ, जहिँ सोवेइ अचंतु ।
अचितहो चित्तु जो मेलवइ, सो पुणु होइ णिचिंतु।।४६।।

वट्टडिया अणुलग्गयहँ, अग्गड़ जोयंताहँ ।
कंटउ भग्गइ पाउ जइ, भज्जउ दोसु ण ताहं ।।४७।।

मणु मिलियउ परमेसरहो, परमेसर जि मणस्स ।
विण्णि' वि समरसि हुइ रहिय, पुंज चडावउँ कस्स ।।४६।।

देहादेवलि जो वसइ, सत्तिहि सहियउ देउ ।
को तहिँ जोइय सत्तसिउ, सिग्घु गवेसहिँ भेउ ।।५३।।

सर्पहिँ मोची केंचुली, जो विष सो न मुंचेइ।
भोगहि भाव न परिहरइ, भेस-ग्रहण करेइ ॥१५॥

अथिरेहिँ थिरा मइलेहि निर्मला निर्गुणहिँ गुणसारा।
कायेहि जा वढइ सा क्रिया कीन कर्तव्या ॥१६॥

वरु विष, विषधर वरु ज्वलन, वरु सेबिब वनपास।
ना जिन-धर्म-पराङ्मुख, मिथ्याइय-सहवास ॥२०॥

हौं गोरा, हौं श्यामला, हौंहि विभिन्नो वर्ण —।
हौं तनु-अंगो, स्थूल हौं, एहउ जीव न मान ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वर्ण-विहूनहिँ ज्ञानमय, जो भावइ सद्भाव।
संत निरंजन सोइ शिव, तहिँ कीजइ अनुराग ॥३८॥

उत्पला नहीं जोइ करि कला दामहिँ छोडी जिमि चरइ।
जस अक्षय निरामहिँ गयउमन, सो किमि वह जगरति करइ ॥४२॥

पाँच वरद्दन राखियउ, नन्दन-वन न गयोसि।
आत्म न जानेँउ नापि पर, एवंइँ प्रव्रज्योसि ॥४४॥

पंचहिँ बहिर नेहड़ा, हे सखि लगेँउ पियेहिँ।
तासु न दीसइ आगमन, जो खल मिलेँउ परेहि ॥४५॥

मन जानइ उपदेसडहिँ, जहँ सोवई अचिन्त।
अचिते चित्त जो मेलवइ, सो पुनि होइ निचिन्त ॥४६॥

वटिया अनुसरतन्तहेँ, आगे जोयन्ताहँ।
काँटा लागइ पाय यदि, लागहु दोष न ताह ॥४७॥

मन मिलिया परमेश्वरहिँ, परमेश्वरहु मनाहिँ।
दोऊ समरस ह्वै रहेँउ, पूज चढाउँ काहिँ। ॥४९॥

देह-देवले जो बसइ, शक्ति सहितो देव।
को तहँ जोगी! शक्ति-शिव, शीघ्र गवेसहु भेद ॥५३॥

सिव विणु सत्ति ण वावरइ, सिउ पुणु सत्ति-विहीणु ।
दोहिँ मि जाणहिँ सयलु जगु, बुज्झइ मोह-विलीणु ॥५५॥

अब्भिन्तर चित्ति वे मइलियइ, बाहिरि काइं तवेण ।
चित्ति णिरंजणु कोवि धरि, मुच्चहि जेम मलेण ॥६१॥

देह महेली एह वढ ! तउ सत्ता वइ नाम ।
चित्तु णिरंजणु परिणसिहुं, समरसि होइण जाम ॥६४॥

सइं मिलिया सइ विह डिया जोइय, कम्मणि भंति ।
तरल सहावहिँ पंथियहिँ, अण्णु कि गाम वसंति ॥७३॥

(३) पाखंड-खंडन

वक्खाणडा करंतु बुहु, अप्पि ण दिण्णुणु चित्तु ।
कणहिँ जि रहिउ पयालु जिम, पर संगहिउ वहुत्तु ॥८४॥

पंडिय पंडिय पंडिया, कणु छंडिवि तुस कंडिया ।
अत्थे गंथे तुट्ठोसि, परमत्थु ण जाणहि मूढोसि ॥८५॥

अक्खरडेहि जि गव्विया, कारणु तेण मुणंति ।
वंस-विहत्था डोम जिम, परहत्थडा धुणंति ॥८६॥

बहुयइं पढियइं मूढपर, तालू सुक्कइ जेण ।
एक्कुजि अक्खरु तं पढहु, सिवपुरि गम्मइ जेण ॥९७॥

हउँ सगुणी पिउ णिग्गुणउ, णिल्लक्खणु णीसंगु ।
एकहिँ अंगि वसंतयहँ, मिलिउ ण अंगहिँ अंगु ॥१००॥

मूलु छंडि जो डाल चडि, कहँ तह जोयाभासि ।
चीरुणु वुणणहं जाइ वढ ! विणु ङहियईं कपासि ॥१०९॥

छह दंसण धंधइ पडिय, मणहं ण फिट्टिय भंति ।
एक्कु देउ छह भेउ किउ, तेण ण मोक्खहं जंति ॥११६॥

हलि सहि काइं करइ सो दप्पणु । जहिँ पडिबिंबु ण दीसइ अप्पणु ॥
धंधवालु मो जगु पडिहासइ । धरि अच्छंतु ण घरवइ दीसइ ॥१२२॥

शिव बिनु शक्ति न व्यापरइ, शिव पुनि शक्ति-विहीन ।
दोउहिं जाने सकल जग, बूझिय मोह-विलीन ॥५५॥
अन्तहि चित्तहि मइलियहि, वाहिर काह तपेहिं ।
चित्ते निरंजन कोंइ धरु, मुंचहि जिमी मलेहि ॥६१॥
देह मेहरिया एह मूढ, तोहिं सतावइ ताव ।
चित्त निरंजन परहिं सों, समरस होइ न जाव ॥६४॥
स्वयं मिल्लेंउ, स्वयं वीछुडेंउ, योगी ! कर्म न भ्रान्ति ।
तरल स्वभावहि पथिकहीं, अन्य कि गाँव वसन्ति ॥७३॥

(३) पाखंड-खंडन

व्याख्यानड़ा करन्त बहु, आत्महि दियउ न चित्त ।
कणहिउँ रहित पुआल जिमि, पर संग्रहेंउ बहुत्त ॥८४॥
पंडित पंडित पंडिता, कण छाडेंउ तुष कूटिया ।
अर्थहिं ग्रंथहिं तुष्टोसि, परमार्थ न जानइ मूढोसि ॥८५॥
अक्खरडेहिं जे गर्विया, कारण ते न जानंत ।
वांस-विहूनो डोम जिमि, पर हाथडा धुनंत ॥८६॥
बहुतहि पढिया मूढ पर, तालू सूखइ जेहिं ।
एकइ अक्षर सो पढहु, शिवपुर जावे जेहिं ॥९७॥
हौं सगुणी प्रिय निर्गुण, निर्लक्षण, निस्संग ।
एकहि अंक वसंतहुँ, मिलेंउ न अंगहि अंग ॥१००॥
मूल छोडि जो डाल चढ़ि, कहँ तेहि योगाभ्यास ।
चीर न बीनेंउ जाइ मुढ़, विनु ओटिया कपास ॥१०९॥
खटदर्शन धंधे पडी, मतहिं न टूटी भ्रान्ति ।
एक देव छ भेद किय, ताते मोक्ष न यान्ति ॥११६॥
हे सखि ! काह करिय सो दर्पण । जहँ प्रतिबिंब न दीसइ आपन ॥
धंधवाल मोहि जग प्रतिभासइ । घर अछते णा घरपति दीसइ ॥१२२॥

जसु जीवंतहँ मणु मुवउ, पंचेन्दियहिँ समाणु ।
सो जाणिज्जइ मोक्कलउ, लद्धउ पहु णिव्वाणु ॥१२३॥

मुंडिय मुंडिय मुंडिया । सिरु मुंडिउ चित्तु ण मुंडिया ।
चित्तहँ मुंडण जि कियउ । संसारहु खंडणु ति कियउ ॥१३५॥

पोत्था पढणि मोक्खु कहँ, मणुवि असुद्धउ जासु ।
बहुयारउ लुद्धउ णवइ, मूलट्ठिउ हरिणासु ॥१४५॥

भल्ला णवि णासंति गुण, जहिँ सहु संगु खलेहिँ ।
बइसाणरु लोहहँ मिलिउ, पिट्टिज्जइ सघणेहिँ ॥१४८॥

मुंडु मुँडाइवि सिक्ख धरि, धम्महँ बद्धी आस ।
णवरि कुडुंबउ मेलियउ, छुडु मिल्लिया परास ॥१५३॥

जे पढिया जे पंडिया, जाहिँ मि माण मरट्टु ।
ते महिलाणहि पिंडि-पडिय, भमियइँ जेम घरट्टु ॥१५६॥

देवलि पाहणु तित्थि जलु, पुत्थइँ सव्वइँ कव्वु ।
वत्थुज दोसइ कुसुमियउ, इंधणु होसइ सव्वु ॥१६१॥

तित्थइँ तित्थ भमंतयहँ, किण्णेहा फल हूव ।
बाहिरु सुद्धउ पाणियहँ, अब्भितरु किम हूव ॥१६२॥

तित्थइँ तित्थ भमेहि वढ़ ! धोयउ चम्मु जलेण ।
एहु मणु किम धाएसि तुहुँ, मइलउ पाव-मलेण ॥१६३॥

(४) गुरु-महिमा

जं लिहिउ ण पुच्छिउ कहव जाइ । कहियउ कासु वि णउ चित्ति ठाइ ।
अह गुरु उवएसे चित्ति ठाइ । तं तेम धरंतिहि कहिँ मि ठाइ ॥१६६॥

बे भंजेविणु एक्कु किउ, मणहं ण चारिय विल्लि ।
तहि गुरुपहि हउँ सिस्सिणी, अण्णहिं करमि ण लल्लि ॥१७४॥

अग्गइँ पच्छइँ दहदिहिंहि, जहि जोवउ तहि सोइ ।
ता महु फिट्टिय भंतडी, अवसणु पुच्छइ कोइ ॥१७५॥

जासु जीवनहि मनु मुयो, पंचेन्द्रियहिं समान।
सो जानीयइ मोचलउ, लाहेँउ पथनिर्वाण ॥१२३॥

मुँडिया-मुँडिया-मुंडिया, सिर मूँडेउ चित्त न मूँडिया।
चित्तहि मुंडन जिन कियउ, संसारहि खंडन तिन कियो ॥१३५॥

पोथा पढनी मोक्षकहँ मनहि असुद्धउ जास।
बधकारक लुब्धक नवै, मूले ठिय हरिणास ॥१४६॥

भल न काह नाशइ गुण, जहँ लह संग खलेहि।
वैस्वानर लोहहिं मिलेँउ, पिट्टीयत सुघनेहिं ॥१४८॥

मूँड मुँडाइवि सीख धरि, धर्महि बाँधी आस।
न निक कुटुंवहि छोडियह, छोड फेँकान पराश ॥१५३॥

जे पढ़िया, जे पंडिया, जेहि कि मान मर्याद।
ते मेहरी पिंडहि पड़ी, भ्रमियत जेम घरट्ठ ॥१५६॥

देवल पाहन तीर्थ जल, पोथिहि सर्वहि काव्य।
वस्तु जो दीसइ कुसुमित, इंधन होइहै सर्व ॥१६१॥

तीर्थहि तीर्थ भ्रमंतयहँ, किछु नाहीं फल होत।
बाहिर सुद्धो पानियहँ, अभ्यन्तर किमि होत ॥१६२॥

तित्थइँ तित्थ भ्रमेँउ मूढ, धोयेँउ चाम जलेहि।
एहु मन किमि धोयेसि तुहूँ, मइलउ पाप-मलेहि ॥१६३॥

(४) गुरु-महिमा

जो लिखेँउ न पूछेँउ कहुं पि जाइ, कहियउ काहुपि न चित्त ठाइ।
अथ गुरु-उपदेसे चित्तु ठाइ, सो तिमि धारंतोहि कहुँपि ठाइ ॥१६६॥

दो भंजाविय एक किय, मनहिं न चारी वेलि।
तेहि गुरुवहि हउँ शिष्यणी, अन्यहि करउँ न लाल ॥१७४॥

आगेहिं, पाछेहिं, दसदिसिहिं, जहँ जोवउँ तहँ सोइ ॥
सो मम काटी भ्रांतडी, अवश न पूछिय कोइ ॥१७५॥

मूढा जोवइ देवलइँ, लोयहिँ जाइँ कियाइँ।
देह ण पिच्छइ अप्पणिय, जहिँ सिउ-संतु ठियाइँ ॥१८०॥
वामिय किय अरु दाहिणिय, मज्झइँ वहइँ णिराम।
तहिं गामडा[1] जु जोगवइ, अवर वसाइव गाम ॥१८१॥
अप्पा परहँ ण मेलयउ, आवागमणु ण भग्गु।
तुस कंडंतहँ कालु गउ, तंडुलु हत्थि ण लग्गु ॥१८५॥
उव्वस वसिया जो करइ, वसिया करइ न सुण्णु।
बलि किज्जइ तसु जोइयहि, जासु ण पाउ ण पुण्णु ॥१९२॥

(५) मंत्रतंत्र-ध्यान आदि बेकार

मंतु ण तंतु ण धेउ ण धारणु। ण वि उच्छासह किज्जइ कारणु ॥
एमइ परम सुक्खु मुणि सुव्वइ। एही गलगल कासु ण रुच्चइ ॥२०६॥
वे पंथेहि ण गम्मइ वे-मुह सूई ण सिज्जए कंथा।
विण्णि ण हुंति अयाणा इंदिय सोक्खं च मोक्खंच ॥२१३॥
वादविवादा जे करहिं, जाहिं ण फिट्टिय भंति।
जे रत्ता गउ पावियइँ, ते गुप्पंति भमंति ॥२१७॥
कालहि पवणहि रवि, ससिहिँ-चहु एक्कठइँ वासु।
हउँ तुहि पुच्छउँ जोइया, पहिले कासु बिणासु ॥२१९॥
—पाहुड-दोहा

§ २४. धनपाल

काल—१००० ई० (?)। देश—माएसर (गुजरात ?)। कुल—धाकड़

१—कवि-परिचय

वसिवि धरासमि हल्लुत्तालि। विरइउ एउ चरिउ धणवालि।
बिहि खंडहि बावीसहिँ सन्धिहिँ। परिचिंतिय निय हेउनिबंधिहिँ।

---

[1] राजस्थानी और गुजराती

मूढा ! जोवइ देवलहँ, लोगहिं जाहिं कियाइ ।
देह न पेखइ आपणी, जहँ शिव-संत थिताइ ॥१८०॥
वामे कियेँउ अरु दाहिने, माँझिय वहइ निराम ।
तहँ गामएँ जो जोगपति ! अवर बसावइ ग्राम ॥१८१॥
आत्मा परहिं न मेलियउ, आवागमन न भाग ।
तुष कूटंते काल गउ, तंदुल हाथ न लाग ॥१८५॥
उज्जड बसिया जो करइ, बसिया करइ जो सुन्न ।
बलिहारी तेहि जोगियहिं, जासु न पाप न पुन्न ॥१९२॥

(५) मंत्रतंत्र-ध्यान आदि बेकार

मंत्र न तंत्र न ध्येय न धारण । नापि उछासहिं कीजिय कारण ॥
इमिहि परम-सुख मुनि सोवइ । एही गडबड कासु न रूचइ ॥२०६॥
दो पंथहिं न गमियइ पंथा, दो मुँह सुई न सीइय कंथा ।
दोउ न होहिं अजाना ! इन्द्रिय-सुख अरु मोक्षहू ॥२१३॥
वाद-विवाद जे करहिं, जाहु न फाटी भ्रान्ति ।
जे रक्ता गोपायित, ते गोप्यन्त भ्रमन्ति ॥२१७॥
कालहिं पवनहिं रविशशिहिं, चहु एकट्ठइ वास ।
हउँ तोहि पूँछउ जोगिया, पहिले कासु विनाश ॥२१९॥

—पाहुड-दोहा

§ २४. धनपाल

वैश्य। कृति—भविसयत्त कहा[1] (भविष्यदत्त-कथा)

१—कवि-परिचय

वसिय गृहाश्रमें हल्लुत्तालें, विरचेँउ एउ चरित धनपालेइँ ।
दुइ खंड बईसहिँ संधिहिँ, परिचिंतिय निजहेतु-निबंधहिँ ।

---

[1] गायकवाड ओरियंटल सिरीज, बडोदा, १९२३

घत्ता । धक्कड वणिवंसि माएसरहों समुब्भविण ।
धणसिरिदेवि-सुएण,विरइउ सरसइ-संभविण ।

—भविसयत्त-कहा पृ० १४८

२—भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल[1] देश

एह भरहखित्ति सुन्दर पएसु । कुरु-जंगल नामि मही विसेसु ।
वण्णिज्जइ संपय काइँ तासु । जहिँ निवसइ जणु अमुणिय पयासु ।
आरामछित्तघरवित्ति विद्धु । परिपक्ककलमि - गोहूण - समिद्धु ।
जहिँ पुरइँ पवड्ढिय कलयलाइँ । धम्मत्थ-काम संचिय फलाइँ ।
जहिँ मिहुणइँ मयण-परव्वसाइँ । अवतुप्प तुपरिवडिया रसाइँ ।
उवभोय भोय-सुह सेवयाइँ । गामइँ कुक्कुड संडे वयाइँ ।
जहि जलइँ कयावि न सुसियाइँ । मयरंद-रेणुवामीसियाइँ ।
जहिँ सरइँ कमल-पहं-तंबिराइँ । कारंड-हंस-चय-चुंबिराइँ ।
जहिँ पथिय तत्तु छायहिँ भमंति । जत्थत्थमियइँ तहिँ णिसि गमंति ।
पामर वियड्ढि वयणइँ णियंति । पुंडुच्छु-रसइँ लीलइँ पियंति ।

—वहीं पृ० २,३

(२) गज (हस्तिना)-पुर

घत्ता । तहिँ गयउरु णाउँ पट्टणु, जणजणियच्छरिऊ ।
णं गयणु मुएवि सग्गखंडु महि अवयरिऊ ॥
तं गयउरु को वण्णणहँसमत्थु । जं वुहइह मंडलु णं पसत्थु ।
जं भुत्तु मउड-कुंडलधरेहिँ । मेहे सराइ बहु-णरवरेहिँ ।
महवा चक्केसतु जित्थु आसि । जें भुन्त वसुंधरि जेम दासि ।
पुणु सणकुमातु णिहिरयणवालु । छक्खंडवसुह सुह सायिसालु ।

---

[1] कुरु देश

घत्ता । धक्कड वनिक-वंशे" माएसरहँ समुद्भवेहिँ ।
धनश्रीदेवि सुतेहिँ विरचेउ सरस्वतिसंभवेँहिँ ।।

—भविसयत्तकहा पृ० १४८

२—भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल देश

एहु भरत-क्षे"त्रे" सुंदर प्रदेश । कुरुजंगल नामे महि-विशेष ।
वानिज्जै संपति काइँ तासु । जहँ निवसै जन अमुनिय-प्रयास ।
आराम-क्षेत्र - घरवित्त - वृद्ध । परिपक्वकलम - गोधन - समृद्ध ।
जहँ पुरें" प्रवर्द्धिय कलकलाइँ । धर्मार्थ-काम-संचित-फलाइँ ।
जहँ मिथुनै मदन-परव्वशाइँ । अवतृप्तेउ पाकरके रसाइँ ।
उपभोग - भोग - सुख - सेवयाइँ । ग्रामो कुक्कुट - संसेवयाइँ ।
जहँ जलै" कदापि न शोषियाइँ । मकरंद-रेणुवा-मिश्रिताइँ ।
जंहँ सरहिँ कमल-प्रभ-ताम्रकाइँ । कारंड-हंस-चय-चुंविताइँ ।
जहँ पथिक तप्त छायहिँ भ्रमंति । यत्र अस्त मिया तहँ निशि गमंति ।
पामर विदग्धे" वचनै नियंति । पुँड्र-इक्षु-रसै" लीलै" पिवंति ।

—वहीँ पृ० २,३

(२) गज पुर[१]

घत्ता । तहँ गजपुर[१] नामे पट्टन, जन-जनिता'श्चरिऊ ।
जनु गगन मुँचिय स्वर्ग-खंड, महि अवतरिऊ ।।
सो गजपुर को वर्णन-समर्थ । जो पुहुमिह मंडन जनु प्रशस्त ।
जो भुक्तु मुकुट-कुंडल-धरेहिँ । मेघेश्वरादि-वहु-नरवरेहिँ । . . . .
मघवा चक्रेशत यत्र आसि[२] । जेहि भुक्तु वसुंधर जेम दासि ।
पुनि सनकुमार निशिरतन-पाल । छै खंड वसुध शुभ स्वामिसाल । . .

---

[१] हस्तिनापुर [२] थे

जहँ अण्णवि णर णरवइ महंत। सग्गापवग्गवर सुहइँ पन्त।
जसु कारणि णिय-सुहि तंडवेहिँ। कुरुखेत्ति भिडिउ कुरु-पंडवेहिँ।
घत्ता। जहिँ तुंग तवंगि संठिउ संख-कुंद-धवलू।
जणु सुतुवि उद्धु देखइ गंगाणइहिँ जलु॥

—वहीं पृ० ३

३—वाणिज्य-सार्थ

(१) बंधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरिउ गमण-सामग्गि पयासिय। सुइ-सत्थत्थवंत संभासिय।
जाणाविउ भूवाल-णरिंदहों। समइ परिट्ठिउ सण्णणविंदहों।
हट्ट-मग्गि कुल-सील-णिउत्तहँ। घोसंण[1] दिण्ण पुरउ वणिउत्तहँ।
"चल्लउ जो चल्लइ कयविज्जें। बंधुअत्तु संचलिउ वणिज्जें।
साहुमाणि वणिउत्तहँ चाहइ। अधणहँ भंडुल्लइ संबाहइ।"
तं णिसुणेवि पमाय-पउत्तहँ। मंतिउ थोव-विहव-वणिउत्तहँ।
"अहों पुर-जण-मण-णयणाणंदणु। सेवहों धणवइ-सेट्ठिहिँ णंदणु।
पइसहुँ अंतरेउ सहुँआएँ। अवसिं लच्छि होइ ववसाएँ।
वणि-तणुरुह-रहसेण समागय। सज्जिय करह-वसह-महिसह सय।"

—वहीं पृ० १६-१७

(२) भविष्यदत्तकी मांका विरोध

माइ महल्ल महुज्जम विज्जें। बंधुअत्तु संचलिउ वणिज्जें।
तेण समाण मइँमि जाइव्वउ। तं बोहित्थु तीरि लाइव्वउ।
देसंतर-पवासु माणिव्वउ। णियपुण्णहँ पमाणु जाणिव्वउ।
दयिवायत्तु जइवि बिलसिव्वउ। तो पुरिसिं ववसाउ करिव्वउ।
तं णिसुणेवि सगग्गिर-वयणी। भणइँ जणेरि जलद्दिय-णयणी।
हा इउ पुत्त! काइँ पइँ जंपिउ। सिविणंतरिवि णाहिँ महु जंपिउ।

---

[1] डुगडुगी पिटवाई=घोषणा की

जहँ अन्यउ नर नरपति महंत। स्वर्गापवर्ग वर सुखहिँ प्राप्त।
जसु कारणेँ निज-सुखेँ तांडवेहिँ। कुरुक्षेत्र भिडेँउ कुरु-पांडवेहिँ।
घत्ता। जहँ तुंग तपांगेँ सं-ठिउ, शंख-कुन्द-धवलू।
जनु सूती ऊर्ध्वं देवइ, गंगानदिहि जल॥

—वहीँ पृ० ३

३—वाणिज्य-सार्थ

(१) बंधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरत गमन-सामग्रि प्रकाशिय। शुचि-सार्थ-र्थवंत संभाषिय।
जनवायउ भूपाल-नरेन्द्रहँ। समयहँ पूछेँउ सज्जन-वृन्दहँ।
हाट-मार्ग-कुल-शील-नियुक्तहँ। घोषण दीन पुरहँ वणि-पुत्रहँ।
"चल्लो, जो चल्लै क्रय-वेँचे। वंधुदत्त संचलेउ वनिज्जे।
साधु मानि वणिपुत्तहँ चाहै। अ—धनहँ भंडुल्लइ[1] सं-वाहै[2]।"
सो सुनियाहि प्रमाद-प्रयुक्तहँ। मंत्रेउँ थोड़-विभव-वणिपुत्रहँ।
"अहोँ पुर-जन-मन-नयन-नंदना। सेवहु धनपति-श्रेष्ठिहिँ नंदन।
पइसहु अंतरेउ सहुआयेँ। अवशि लक्ष्मि होई व्यवसायेँ।
वणि-तनुरुह रभसेहिँ[3] समा-गउ। साजेँउ करभ-वृषभ-महिषइ सौ।

—वहीँ पृ० १६-१७

(२) भविष्यदत्तकी मांका विरोध

"माइ! महल्ल-महोद्यम-विद्येँ। बंधुदत्त सं-चलेउ वनिज्जेँ।
तेही संगेँ हमहूँ जाइब्बो। सो बोहित-तीरेँ लाइब्बो।
देशांतर-प्रवास मानिब्बो। निज-पुण्यहँ प्रमाण जानिब्बो।
दैवायत्त यदपि विलसिब्बउ। तहूँ पुरु व्यवसाय करिब्बउ।"
सो सुनियाहि सगद्‌गद-वदनी। भनै जनेरि[4] जलार्दित-नयनी।
हा ई पुत्र! काह तैँ जल्पेउ। स्वप्नंतरेउ नाहिँ मोहिँ जल्पेउ।

---

[1] सौदा [2] देवै [3] तुरंत [4] माता

एक्क अकारणि कुविय-वियप्पें। दिण्णु अणंतु दाहु तउ वप्पें।
अण्णुवि पइं देसंतरु जंतहों। को महु सरणु हियइ पजलंतहों।
अण्णुवि तेण समउ तउ जंतहों। णिव्वुइ खणु'वि णाहिं महुचित्तहों।

घत्ता। को जाणइ कण्ण महाविसइ, अणुदिणु दुम्मइ मोहियइं।
सम-विसम-सहावहिं अंतरइं, दुट्ठसवत्ति[1]हि दोहियइं॥

एक्कुमिक्कु ववसाउ करंतहं। समसाहिट्ठिउ भंडु भरंतहं।
विहि पडिकूलु अम्ह पडिसंक्कइ। अत्थहं छेउ करिबि को सक्कइ।
एक-दव्व-अहिलास-विचित्तइ। को जाणइं दाइयहं चरित्तइ।
जइ सरूव दुट्ठत्तणु भासइ। बंधुअत्तु खल वयणहिं वासइ।
जो तउ करइ अमंगलु जंतहों। मूलु'वि जाइ लाहु चिंतंतहों।"
जंपइ मामहु महुरकलाएं। "चंगउ वुत्तु पुत्त! कमलाएं।
अम्हह एत्थु-वसंतहों तेहउ। को'वि ण मित्तु पहाणु सणेहउ।
बंधुअत्तु पुरमज्झि सइत्तउ। राउलि सण्णमाणु धणयत्तउ।

घत्ता। जइ-जणणि-वयण विस-विस-मगइ, दाइय-मच्छरु मणि वहई।
तो तुम्हहं अम्हहं सयणहमि, वंचिबि कुलि परिहउ करई॥"

भविसयत्तु विहसेविणु जंपइ। "तुम्हहं भीरत्तणिण समप्पइ।
अइयारि वामोहु ण किज्जइ। समवय-जणि पोढत्तणु हिज्जइ।
अइणएण जणि कायरु वुच्चइ। अइभएण जइ-लच्छिएं मुच्चइ।
अइमएण दप्पुब्भडु णावइ। अइघिएण भोयणु'वि ण भावइ।
अइरूवि तिय-रयणु विणासइ। अइयारिं सव्वहों गुणु णासइ।
जइ ववसाइ दाउ णउ दिज्जइ। तो णायरहं मज्झि लज्जिज्जइ।
जइ सो कहव सवत्तिहि जायउ। तो'वि ताँयहों सरीरि संभूयउ।
एक्कु सरीरु जाउ विहि भायहिं। तहिं किर काइं राय-वेयारहिं।

---

[1] सौत [2] पूंजी

एक अकारण कुपित विकल्पे। दीन अनंत-दाह तव बापें।
अन्यउ तैं देशान्तर जातह। को मम शरण हृदय-प्रज्वलंतह।
अन्यउ तेहिं संग तव जातह। निर्वृति[1] क्षणहु नाहि ममचित्तह।

घत्ता। को जानै कर्ण महाविषइँ, अनुदिन दुर्मति-मोहितइँ।
सम-विषम स्वभावहिं अंतरइँ, दुष्ट सौतियह दोहितइँ॥

एकमेक व्यवसाय करंतहँ। सम-साझेहीँ भांड भरंतहँ।
विधि-प्रतिकूल समर-प्रतिसक्कै। अर्थहँ छेद करबि को सक्कै।
एक द्रव्य-अभिलाष-विचित्रा। को जानै दैवयहँ चरित्रा।
यदि स्वरूप दुष्टत्वउ भासै। बंधुदत्त खल-वचनहिं वासै।
जो तव करै अमंगल जांतह। मूलउ जाइ लाभ चितंतहँ।"
जंपै मामहँ मधुरकलायें। "चंगउ उक्त पुत्र ! कमलायें।
हमरे इहाँ वसंतह तेही। कोउ न मित्र प्रधान सिनेही।
बंधुदत्त पुर-मांझ स्वयत्तउ। राउले[2] सर्व्वमान धनदत्तउ।

घत्ता। यदि जननि-वचन-विष-विषमगति, दर्शित मत्सर मनें वहई।
तो तुम्महँ हम्महँ स्वजनहउ, वंचिय कुलें परिभव करई।"

भविषदत्त विहंसि जल्पियई। "तुम्हहँही भीरुता-समर्पियई।
अतिचारे व्यामोह न किज्जै। सम-वय-जनें प्रौढत्वं हीज्जै[3]।
अतिगमने जनें कायर उच्चै। अतिभयेहिं जयलक्ष्मी मुंचै।
अतिमदेहिं दर्पोद्भट नावै। अतिघिवेहिं भोजनउ न भावै।
अतिरूपें तिय-रतन विनाशै। अतिचारें सर्व्वउ गुण नाशै।
यदि व्यवसाय दाव ना दिज्जै। तो नागरहँ मांझ लज्जिज्जै।
यदि सो कहब सौतीको जायो। तोपि तातहँ शरीर-संभूतो।
एक शरीर जाउ दोउ भाई। तहँ फुर काईं राग-विचारी।

---

[1] चैन [2] राजकुल (=दर्बार) [3] कम होना

अण्णु'वि तहिँ कुल-सील-निउत्तहँ। होसहिँ पंच-सयइँ वणिउत्तहँ। . . . .
अण्णुवि अम्हह तेण समाणु। किंपि ण पुव्व-विरोह-विहाणु।
घत्ता। मं माइ चित्तु कायरु करहि, फुडु कम्मइँ कम्महु कारणु।
खुट्टइ जीविज्जइ जेम णवि, तेम अखुट्टइ नउ मरणु।"

—वहीं पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता। जोव्वण-वियार-रस-वस-पसरि, सो सूरउ सो पंडियउ।
चल-मम्मणवयणुल्लावएहिँ, जो परतियहिँ ण खंडियउ ॥१८॥
पुरिसिं पुरिसिव्वउ पालिव्वउ। परधणु परकलत्तु णउ लिव्वउ।
तं धणु जं अविणासिय-धम्में। लब्भइ पुव्वक्किय-सुह-कम्में।
तं कलत्तु परिओसिय-गत्तउ। जं सुहि पाणिग्गहणि विढत्तउ।
णिय-मणि जेण संक उप्पज्जइ। मरणंति'वि ण कम्मु तं किज्जइ।
अण्णु-'वि भणमि पुत्त! परमत्थें। जइवि होहि परिपुण्ण महत्थें।
तरुणि तरल लोयण मणि भाविउ। पहु-सम्माण-दाण गुण गाविउ।
तहिँमि कालि अम्हहिँ सुमरिज्जहि। एक्कवार महु दंसणु दिज्जहि।
पर-धणु पायधूलि भणिज्जहि। परकलत्तु मइँ समउ गणिज्जहि।

—वहीं पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

अग्गेय दिसइँ मल्हंति जंति। **कुरुजंगलु** महिमंडलु मुअंति।
लंघंति वियण-काणण-पलंब। पुर - गाम-खेड - कव्वड - मडंब।
जउणानइ सलिलु समुत्तरेबि। जल-दुग्गइँ थल-दुग्गइँ सरेवि।
अन्नन्न-देस-भासइँ नियंत। रयणायरें वेला-उलइ पत्त।
लक्खिउ समुद्दु जल-लव-गहीरु। सप्पुरिसु'व थिरु गंभीरु धीरु।
आसीविसो[१]'व्व विस-विसम-सीलु। वेला-महल्ल कल्लोल-लीलु।

---

[१] साँप

अन्यउ तहँ कुल-शील-सँयुक्ता। होइहैं पंचशता वणिपुत्रा।....
अन्यउ हम्मउ तेहि समाना। किछुउ न पूर्व-विरोध-विधाना।
घत्ता। मति मा ! चित्त कातर करहि, फुर कर्मइ कर्महँ कारण।
खुट्टइ[1] जीविज्जै जेम नहिँ, तेम अखुट्टइ ना मरण।"
—वहीँ पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता। "यौवन-विकार-रस-वश- प्रसर, सो शूरा सो पंडित।
चल-मन्मथ-वचनोल्लापएहिँ, जो परतियहिँ न खंडित ॥१॥
पुरुषेँ पुरुषत्त्वउँ पालिब्बउ। परधन-कलत्र नाहीँ लिब्बउ।
सो धन जो अविनाशिय धर्मे। लब्भै पूर्वकृत-शुभकर्मेँ।
सो कलत्र परि-योषित-गात्रउ। जो सुखेँ पाणिग्रहण विहित्तउ।
निज मनेँ जातेँ शंक उत्पज्जै। मरतेहूँ न कर्म सो किज्जै।
अन्यउ भनउँ पुत्र ! परमार्था। यदपि होइ परिपूर्ण महार्था।
तरुणि-तरल-लोचन मनेँ भाविउ। प्रभु-सम्मान-दान-गुण गाविउ।
तेँहउ काल मोहिहि सुमरिज्जै। एक बार मोहिँ दर्शन दिज्जै।
परधन पाद-धूलि भन्निज्जै। परलत्र मोँहिँ सम गण्णिज्जै।
—वहीँ पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

आग्नेय दिशहिँ छोडंति जांति। कुरुजंगल महिमंडल मुँचंति।
लंघंति विजन-कानन-प्रलंब। पुर-ग्राम-खेड-कव्वड-मडंप।
यमुना नदि सलिल सम्-उत्तरेउ। जल-दुर्गहिँ थल-दुर्गहिँ सरेउ।
अन्यान्य-देश-भाषहिँ नियत्त। रत्नाकर-वेलाकुलहिँ प्राप्त।
लक्खेउ समुद्र जल-लव-गँभीर। सत्पुरुष 'व थिर गंभीर धीर।
आशीविष इव विष-विषम-शील। वेला-महल्ल-कल्लोल-लील।

---

[1] आयु घटनेपर

दिट्ठइँ विउलइँ वेलावलाइँ। कय-विक्कय-रय-वयणाउलाइँ।
धम्मत्थ-कामकंखिर सुहाइँ। सुवियड्ढ-वयण विलयामुहाइँ।
तहि थाइवि जलजंतइँ कियाइँ। परिहरिबि वसह-महिसय-सयाइँ।
जलजंता कम्मंतरु करेवि। करणइह पियवयणहिँ संवरेवि।
वहणहिँ[1] आरूढ महापहाण। वणिवरहँ सयइँ पंचहिँ समाण।

—वहीं पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घत्ता। णिज्जावयवयणुज्जुअमुहइँ, किखवइँ णंणं भडइँ।
सचल्लइ रयणायरहों जलि, खरपवणाहय-धय-वडइँ॥

दिढ़-बधइँ जिह मल्लर-गणाइँ। णिल्लोहइँ जिह मुणिवर-मणाइँ।
णिब्भिण्णइँ जिह सज्जण-हियाइँ। अकियत्थइँ जिह दुज्जण-कियाइँ।
वहणइँ वहंति जलहर-रउद्दि। दुत्तरि अत्थाहि महासमुद्दि।
लंघंतइँ दीवंतर-थलाइँ। पिक्खंति विविह कोऊहलाइँ।
इय लीलइँ वच्चंताहँ ताहँ। उच्छाह-सत्ति-विक्कम पराहँ।
दुप्पवणें घणतरुवर-समीवें। वहणइँ लग्गइँ मयणाय-दीवें।
कल्लोल-बोल-जलरव वमालें। असगाह-गाह गहणंतरालें।
तीरंतरें जं सघट्ट पोय। उत्तरिय तरिव पमुहाइ लोय॥....

घत्ता। तं वयणु सुणिवि णायर-जणहु, नं सिरि वज्जदंडु पडिऊ।
वोहित्थइँ लेवि दुरास खलु, गहिर महासमुद्दि चडिऊ॥२५॥

पमुक्के कुमारे दुरायारिएहिँ। अमोहे जलोहे वहंतेहिँ तेहिँ।
थियं विंभियं त वणिदाण विंद। वियप्पाउरं करयलुग्गिण्ण-मुद्दं।
अहो सुंदरं होइ एयाण कज्जं। अगम्मंपि गंतूण खद्ध अखज्जं।
गयं णिप्फलं ताम सव्वं वणिज्जं। छुवं अम्ह गोत्तम्मि लज्जावणिज्जं।

---

[1] बड़ी नाव, महापोत (बजरा)

दीसैं विपुलैं वेलाकुलाइं। क्रय-विक्रय-रत-वचनाकुलाइं।
धर्मार्थ-काम-कांक्षी सुखाइं। सुविदग्ध-वचन बनिता-मुखाइं।
तहँ थायेंउ[1] जलपोतहिँ केताहिँ। परिहरेउ वृषभ-माहिष-शताहिँ।
जलपोता कर्मांतर करेउ। करनै प्रियवचनहिँ संवरेउ।
वहनहिँ आरूढ महाप्रधान। वणि-वरहिँ शतहिँ-पंचहि समान[3]।

—वहीं पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घत्ता। विद्या-वय-वचन ऋजुकमुखा, की खला, नाना भटई।
संचल्लै रत्नाकर जले, खर-पवनाहत-ध्वज-पटई॥

दृढ बंधाइं जिमि मल्लर[4]-गणाइं। निर्लोभी जिमि मुनिवर-मनाइं।
निर-भिन्ना जिमि सज्जन-हियाइ। अकृतार्था जिमि दुर्जन-क्रियाइं।
वहनैं वहंति जलधर-रउद्र। दुस्तर अथाह महासमुद्र।
लंघंता द्वीपांतर-थलाइं। पेखंता विविध कुतूहलाइं।
इमि लीलै वाँचत ताँह ताँह। उत्साह-शक्ति-विक्रम-पराह।
दुप्-पवने घन-तरुवर-समीपें। प्रवहण लागेंउ मैनाकद्वीपें।
कल्लोल-बोल-जल-रव-भ्रमरे। असंख ग्राह ग्राह गहनं-'तरालें।
तीरंतरे जो संघट्ट पोत। उत्तरेंउ तरी-प्रमुखादि लोग।....

घत्ता। सो वचन सुनिय नागरजनहु, जनु शिरें बज्रदंड पडेंऊ।
वोहितेहिँ लेइ दुराश खल, गहिर महासमुद्र चढेंऊ॥२५॥

प्रमुंचे कुमारे दुराचारियेहि। अमोघे जलोघे वहंतेहि तेहि।
ठिआ विस्मिता सो वणीन्द्रान-वृन्दा। विकल्पातुरा करतलो दुगीर्ण-मुद्रा।
"अहो सुंदरो होइ एहु न काजा। अगम्याहु गन्तु असद्याउ खाद्या।
गओ निष्फला एह सर्व्वा वनिज्या। छयो अम्ह गोत्रेहुं लज्जावनीया।

---

[1] रहेउ　　[2] प्रवहण (जहाज)　　[3] सहित　　[4] पहलवान

ण जत्ता ण वित्तं ण मित्तं ण गेहं । ण धम्मं ण कम्मं ण जीयं ण देहं ।
ण पुत्तं कलत्तं ण इट्ठं पि दिट्ठं । गयं गयउरे[1] दूरदेसे पइट्ठं ।
खयं जाइ नूणं अहम्मेण धम्मं । विणट्ठेण धम्मेण सव्वं अकम्मं ।
कयं दुक्कियं दोहएण हएण । सुहायारभट्ठेण दुट्ठेण एणं ।
अणिट्ठं कणिट्ठं भुअं सप्पहायें । समुद्दे रउद्दे खयं तुम्ह जायें ।

—वहीं पृ० २२, २३

४—सामंती वणिक्समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता । एत्तहि महुमासहो आगमणु, एत्तहि पियपुत्त-समागमणु ।
परमोच्छवि रोमंचिय भुवहो, मुहु वियसिउ धणयत्तहों सुवहो ॥८॥
जिम तित्थु तेम पंचहि सएहि । किय भवण सोह निव्वुइ गएहि ।
घरि-घरि मंगलइ पघोसियाइँ । घरिघरि मिहुणइ परिओसियाइँ ।
घरिघरि तोरणइँ पसाहियाइँ । घरिघरि सयणइ अप्पाहियाइँ ।
घरिघरि बहुचंदण-छडय दिन्न । मरु-कुंब-बणय-दवणय-पइन्न ।
घरिघरि सरेणु-रइ-पिंजरीउ । सोहंति चूयतरु-मंजरीउ ।
घरिघरि चच्चरि कोऊहलाइँ । घरिघरि अंदोलय सोहलाइँ ।
घरिघरि कय-वत्थाहरण सोह । घरिघरि आरद्ध-महाजसोह ।
घरिघरि सरूव-रंजिय-मणाइ । जुवइहि जोइयइ सदप्पणाइ ।
घत्ता । घरिघरि जलमंगलकलस किय, घरिघरि घरदेवय अवयरिया ।
घरिघरि सिंगार-वेसु धरिवि, नच्चिउ वर-जुवइहि उत्थरिवि ॥९॥
तं गयउरु सो पउर-समागमु । सो सियपक्खु वसंतहो आगमु ।
ताइ निरंतराइँ चुअ वणइँ । ताइ धवलपुंजवियड भवणइँ ।

---

[1] हस्तिनापुर

न यात्रा न वित्तो न मित्रो न गेहो । न धर्मो न कर्मो न जीवो न देहो ।
न पुत्रो कलत्रो न इष्टोउ दष्टो । गयउ गजपुरे दूरदेशे पइट्ठो ।
क्षयो होइ निश्चय अधर्मेहि धर्मो । विनष्टेहि धर्मेहि सर्वो अकर्मो ।
करेंउ दुष्कृतं दोहकेहि हतेहि । शुभाचारभ्रष्टेहि दुष्टेहि एहि ।
अनिष्टो कनिष्टो भुजो संग्रहाइ । समुद्र रउद्रे क्षयो तुम्ह जाइ ।

—वहीं पृ० २, २३

४—सामंती वणिक्समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता । इतहू मधुमासह आगमनू । इतहू प्रियपुत्र-समागमनू ।
परमोत्सवें रोमांचित-भुजहू । मुह विकसिउ धनदत्तह सुतहू ॥८॥
जिम तीर्थं तेमि पंचहु शतेहिँ । कियउ भवन सोह निर्वृति-गतेहिँ ।
घरघर मंगलइ प्रघोषिताइँ । घरघर मिथुनै परितोषिताइ ।
घरघर तोरणै प्रसाधिताइँ । घरघर स्वजनै अल्पाधिकाइँ ।
घरघर बहुचंदन-छटा दीन । मरु-कुन्द-वनय-दवना-प्रकीर्ण ।
घरघर स-रेणु[१]-रज-पिंजरीउ । सोहंति चूत तरु-मंजरीउ ।
घरघर चर्चरि कौतूहलाइँ । घरघर अंदोलै सोहलाइँ ।
घरघर कृत-वास्त्राभरण सोह । घरघर आरब्ध महायशोघ ।
घरघर स्वरूप-रंजित-मनाइँ । युवती जोवैं (मुँह) दर्पणाइँ ।
घत्ता । घरघल जल-मंगल-कलश किय, घरघर देवय अवतदिणा ।
घरघर शृंगारवेष धरेंऊ, नाचेउ वरयुवतिहिँ उच्छलिया ॥९॥
सो गजपुर सो पौरसमागम । सो सित-पक्ष वसंतहँ आगम ।
सोइँ निरंतराइँ चूत-वनइँ । सोइ धवलपुंजवियइँ भवनइँ ।

---

[१] पटवास, सौगंधिक चूर्ण

सो बहु परिमलट्ठु वण-तूरउ । पिय-सुह-सीयलु दाहिण मारुउ ।
सो पुर-सोह कासु उवमिज्जइ । जा पिक्खवि सुर हमिरइ दिज्जइ ।
जहिँ उज्जाण-पुरइ सुहसंचिय । दाहिणपवन पहय-कुसुमंचिय ।
जहिँ मरुकुंद-कुसुम संचलियउ । दवणय-मंजरीउ नव हरियउ ।
जहिँ आयंबिर फुल्लप लासउ । सोहइ नाइ पलित्तु हुवासउ ।
जहिँ वहु रस-विसेस-वस-कमलइ । बहु-कुसुमइ धुणंति भमर-उलइ ।

घत्ता । जहिँ मालइ-कुसुमामोयरउ, चुंबंतु भमइ वणि महुअरऊ ।
अइमुत्तए'वि जहि रइ करइ, सो वरवसंतु को न सरई ॥१०॥

—वहीं पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दिट्ठि कुमारि वियणि सोवणघरि । लच्छि नाइँ नव-कमल-दलंतरि ।
जिण-सासणि छज्जीव दया इव । पंडिय-मरणि सुगइ वरिमाइव ।
मुहुमारुइण मलय-वणराइव । सिंहलदीवि रयणविख्याइव ।
सोहइ दप्पणि कील करंती । चिहुर-तरंग-भंग विवरंती ।
सो फलिहंतरेण सा पिक्खइ । सावि तासु आगमणु न लक्खइ ।

घत्ता । नं वम्मह भल्लि विंधण-सील जुवाण-जणि ।
तहि पिक्खिवि कंति , विंभिउ झत्ति कुमारमणि ॥८॥

उप्पल दल-दीहर-पायहिँ । नह-मणि-किरण-करंबिय-छायहिँ ।
जंघोरुय गुज्झंतर पासइँ । सुणियत्थइँ णिझीण परिवासइँ ।
पोतंतर उब्भिन्न पयासइँ । तं विहसंति पिहिय परिहासइँ ।
वियडु नियंब-बिंबु सोहिल्लउ । रेहइ अद्धाइद्ध कडिल्लउ ।
रोमावलि वलि अंगि विहावइ । थिय पिपीलि-रिछोलि'व नावइ ।
रसणादाम निबंधणु सोहइ । किंकिणरणझणंतु मणु खोहइ ।
समचक्कलु कडियलु किसु मज्झइ । नज्जइ करयल मुट्ठिहि गिज्झउ ।
तिवलि-तरंगइँ नाही - मंडलु । नं आवत्ता - इद्धु महाजलु ।

सो वहुपरिमलाढ्य-वन-तूयंउ । प्रिय-सुख-शीतल-दक्षिणमारुतु ।
सो पुर-शोभौं कासु 'पमिज्जै । जा पेखिय सुर अचरज दिज्जै ।
जहँ उद्यानपुरै सुख-संचित । दक्षिण-पवन-प्रहत-कुसुमंचित ।
जहँ मरु-कुंद-कुसुम संचलियउ । दवना-मंजरीउ नव-हिलियउ ।
जहँ आताम्रहु फुल्लपलाशउ । सोहै न्याइँ प्रदीप्त-हुताशउ ।
जहँ-वहुरस विशेष-शव कमलइँ । वहुकुसुमैं धुनंति भ्रमरकुलइँ ।

घत्ता । जहँ मालति-कुसुमामोदरत, चुंवंत भ्रमैं वनें मधुकरऊ ।
अतिमुक्तएउ जहँ रति करई, सो वर-वसंत को न स्मरई ॥१०॥

—वहीं पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दीख कुमारि विजनें सोवनघरें । लक्ष्मि न्याइँ नवकमल-दलंतरें ।
जिन-शासने छै जीव-दया इव । पंडित मरनें सुगति-वरिमा इव ।
मुख-मारुतें मलय-वन-राजि'व । सिंहलद्वीपें रतन-विख्याति'व ।
सोहै दर्पणें क्रीडौं करंती । चिकुर - तरंग - भंग विवरंती ।
सो स्फटिकांतरेहिँ तहिँ पेखइ । सापि तासु आगमन न लक्खई ।

घत्ता । जनु मन्मथ-भल्ल-विधानशील युवान-जनें ।
ताहि पेखिय कांति, विस्मेउ भट्ठु कुमार मनें ॥८॥

उत्पलदल-दीरघ-पायहिँ । नख-मणि-किरण-करंवित-छायहिँ ।
जंघ-उरू-गुह्यान्तर-पासइँ । सुनिवसितैं भीन परिवासइँ ।
पोतांतर-उद्भिन्न-प्रयासइँ । तेहिँ वह संति पिहित-परिहासैं ।
विकट - नितव-बिंब सोहिल्लउ । राजै अर्द्धोर्द्ध कटिल्लउ ।
रोमावलि वलि अंगें विभावै । थिउ पिपीलि-रेखा इव नावै ।
रसना-दाम-निबंधन सोहै । किंकिणि रण-झणंत मन क्षोभै ।
सम-चक्कर कटितट कृश-मध्यउ । आवे करतल-मुष्टिहु ग्राह्यउ ।
त्रिबलि-तरंगइ नाभीमंडल । ननु आवंता ऋद्धि-महाजल ।

पीणुन्नय-निबिडइँ थणवट्टइँ। निब्भिदइँ हारावलि थट्टइँ।
मालइ-माला कोमल-बाहुउ। रयण-कडय-केऊर-सणाहुउ।
सरलंगुलि सुरेह कोमल कर। संभा-वयव नाइँ नहतंबिर।
रयणाहरण विहूसिय कंठि। वेलासिरि'व उयहि-उवकंठि।
किउ अपमाणु णिउत्तु मुहुल्लउ। अहरउ नावइ दाडिम-हुल्लउ।
उत्तुंगि तिक्खग्गें नासिं। पच्छन्नेण'व अमुणिय सासें।
कन्निहिँ कुंडल-जुअ-गंडयलिहिँ। नयणिहिँ दीह-कसण-चलधवलिहिँ।
भउहा-जुअलएण सुविहत्तें। भालयलेण अद्ध-ससिपत्तें।
महुपिय-पेसल महुरालावि। सिरु आवंचिय केस-कलावि।
सो पिक्खेवि अणोवमरूवें। अच्छेरइँ विब्भम संभूवें।
बोल्लाविय नायइ-परिहासइँ। मणहर-कामुक्कोवण-भासइँ।
"हे मालूर[1]-पवर-पीवर-थणि। अच्छहिँ काइँ इत्थु वज्जिय जणि।
कारणु काइँ नयरु ज सुन्नउँ। मढ-विहार-देहुरहिँ रवन्नउँ।
राणउ कवणु आसि इह राउलि। धय-तोरण-मणि-खंभ-रमाउलि।"
तं निसुणेवि सलज्जिय-वयणी। थिय हिट्ठामुह पगलिय-नयणी।
मइल-कवोल कज्जला-मीसिय। नियकुल-देवयाइँ मं भीसिय।
घत्ता। वरइत्तु पुत्तियहु तउतणउ, मुहकमलु निहालहिँ करि विणउ।
लइ जलु पक्खालहि लोयणइँ, मं चिरु करि दुक्खुक्कोयणइँ॥
—वहीं पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निय-पुत्त-विढत्तु पिक्खिवि अतुलु महाविहउ।
वड्ढिउ सिंगारु पइ परिहरिउ, परिहरिबिगउ॥
कमलइँ पुत्त-पयाव फुरंतिए। लइउ दिव्वु आहरणु तुरंतिए।
वद्धु कडिल्लि अलक्खिय नामउ। उप्परि पीडिउँ रसणादामउ।

---

[1] कपित्थ (कैथ)

पीनोन्नत-निविडइँ स्तनवट्टे । निर्भिंदे हारावलि ठट्टे ।
मालति-माला - कोमल - बाहउ । रतन - कटक - केयूर - सनाथउ ।
सरलांगुलि-सुरेख कोमल कर । सन्ध्या'वयव न्याइँ नभ-तामर ।
रतनाभरण - बिभूषित कंठे । वेलाश्री'व उदधि - उपकंठे ।
किउ अपमान अनूप-मुखल्लउ । अधरउ नावइ दाडिम-फुल्लउ ।
उत्तुंगे तीक्ष्णाग्रे नासे । प्रच्छन्नेहिं 'व अज्ञात श्वासे ।
कर्णो कुंडल-युग गण्ड-स्थले । नयनेहिँ दीर्घ-कृष्ण-चल-धवले ।
भौंहा युगलएहिँ सुविभक्ते । भाल-तलेहिँ अर्ध-शशि-पत्रे ।
मधु-प्रिय-पेशल-मधुरालापे । शिर आछादिय केश-कलापे ।
सो पेखिया अनूपमरूपा । अप्सराइँ विभ्रमसं-भूता ।
बोलेरू नागर-परिहासइँ । मनहर-कामु-त्कोपन-भाषइँ ।
"हे मालूर प्रवर-पीवर-थनि ! आछेहि[1] काह इहाँ वर्जित-जनें ।
कारन काइँ नगर जो सूना । मठ-विहार-देवलहिँ रमन्ना ।
राना कवन आसि[2] एहि राउले । ध्वज-तोरण-मणिखंभ समाकुले ।"
सो सुनियाउ सलज्जिय-वदनी । थिउ हेट्ठामुख पघरिय-नयनी ।
मइल-कपोल कज्जला-मिश्रिय । निजकुलदेवताइँ जनु भीषिय ।
घत्ता । बरयात पुत्रियह तवकेरउ, मुखकमल-निहारहिँ करि विनय ।
लेइँ जल पक्खारै लोचनइँ, जनु चिर करि दुःखुत्कोचनइ ॥
—वहीं पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निज पुत्र विदग्धता पेखि, अतुल महाविभव ।
वाटेँउ श्रृंगार पति परिहरेँउ गउ ॥
कमला पुत्र-प्रताप स्फुरंतिएँ । लयेँउ दिव्य-आभरण तुरंतिएँ ।
वाँधु कटिल्लि अलक्षित-नामउ । ऊपर पीडेँउ रसनादामउ ।

---

[1] रमणीय [2] हो

मुक्कउ किंकिणीउ नउ संकिउ। भरिबि रयण-कंचुकउ तडक्किउ।
मुद्ध मराल-जुयलि किउ छन्नउँ। कंबुकंठ कंदलिए रवन्नउँ।
पीण-घणत्थण-मंडल-हारिं। सिरु धम्मिल्ल-कुसुम-पब्भारिं।
कन्नहिँ कुंडलाइँ आइद्धइँ। उप्परि वेडियाइँ पहँचिधइँ।
पूरिउ रयण-चूडु मणि-वलयहों। दिन्नइँ केंउरइँ बाहु-लयहो।
अंगुलीय मणि मुज्जावत्तउ। बीसहिँ अंगुलीहिँ पक्खित्तउ।
पय-मणिबद्धय नेउर-जुयलउ। सुह-संजनिय महुर-रव-मुहलउ।
जंघाजुयलि रयण पज्जत्तउ। कडियलि[1] रसण-कणय-कडि-सुत्तउ।
मुहि मणि-चूडहों कंकण जुयलउ। सोहिउ अद्धहारि वच्छयलउ।
एमाहरणु लेवि सविसेसिं। थिय नंदणहों बियडि परिओसिं।

—वहीं पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

घत्ता। तो वुच्चइ अहरु पुरंतियइँ णिवसंतिहि तउतणइँ घरि।
उप्पाइय केणवि भंति पहु, जा सा कहि मं हियइ धरि ॥७॥
तुहुँ पुरवरहों सव्व-साहारणु। जाणहिँ कज्जाकज्ज-वियारणु।
णवर णिरारिउ विप्पियगारउ। सुहियउ होइ संगु तुम्हारउ।
सेविज्जंति विचित्त सणेहउ। मंछुडु तुहुँ जिण जम्मिवि एहउ।
तो वरइत्ति वुत्तु अवंकउ[2]। को सक्कइ तउ करिवि कलंकउ।
हउमि णाहि तउ विप्पिय-गारउ। जाणहिँ तुहुँ जि संगु अम्हारउ।
णवर ण जाणमि काइमि कारणु। जाउ असत्थ पियम्म निवारणु।
केम कंतिपइँ मणिण कलंकमि। खणमित्तु'वि देक्खणहँ न सक्कमि।
मउ-चलंति णिघंतहों णयणइँ। अणशमऊ करंति तव वयणइ।
घत्ता। अच्छंतु ताम पियविप्पियइँ, एक्कंगणिबि म रइ करहि।
परियाणिबि एही कज्जई, ज जाणहिँ त मणि धरहि ॥८॥

---

[1] कटितल [2] अ-कुटिल

मुक्तउ किंणीउ ना शकेंउ। भरिउ रतन-कंचुकउ तड़क्कउ।
मूर्ध मराल-युगलें किउ छन्नउ। कंबुकठ-कदलिएँ रमन्नउ[1]।
पीन-घन-स्तनमडल-हारें। शिर-धम्मिल-कुसुम-प्रब्-भारें।
कर्णहिं कुंडलाइं आबद्धें। ऊपर बेठियाइं प्रभ-चिन्हें।
पूरेंउ रतन-चूड मणि-वलयहों। दीनी केयूरइं वाहुलतहों।
अंगुलीय-मणि मुंजावर्त्तउ। वीसहिं अंगुलीहि प्रक्षिप्तउ।
पद-मणि-बद्धेउ नूपुर-युगलउ। सुख-संजनित मधुर-रव-मुखरउ।
जंघा-युगलें रतन-प्रज्-जुत्तउ। कटितलें रसन-कनक-कटिसूत्रउ।
मुखें मणि-चूडहों कंकण-युगलउ। सोहेंउ अर्धहार वक्षतलउ।
ए आभरण लेइ सविशेषें। ठिय नंदनहों बिकट परितोषें।

—वहीं पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

घत्ता। तो वोले अधरफुरंतियइं, निवसंतिहि तवकेर घरे।
उत्पादिय कैसेंहुँ भ्रान्ति प्रभु, या सा काहि न हृदय घरे।।७।।
तव पुरवरहों सर्व-साधारण। जानैं कार्याकार्य-विचारन।
केवल अत्यन्त विप्रिय-कारउ। सुहृदउ होइ संग तुम्हारउ।
सेविज्जइं विचित्र-सनेहउ। मत्सर तोहि न जन्मेंउ एहउ।
तो बरयातो बोल अवंकउ। को सक्कै तव करब कलंकउ।
हौंहु नाहि तव विप्रिय-कारउ। जानै तुहुंहु संग हम्मारउ।
केंवल न जानौं काहुउ कारण। जाउ अस्वस्थ प्रियम्म्[2]-निवारण।
केम कांति तेइँ मनेहिं कलंकउँ। क्षणमात्रउ देखवहु न सक्कउँ।
मद चलंति देखंते नयनइं। अनरामउ[3] करंति तव वदनइं।
घत्तो। रहै तांह प्रिय-विप्रियइं, एकांगनेहु न रति करहि।
परि-जानिय ऐंहि कार्यगती, जो जानहि सो मनें धरहि।।८।।

---

[1] था [2] प्रेम, प्रियतम [3] अनभीष्ट

णिसुणिवि तासु परम्मुह वयणइँ । मुहुँ मउलिउ जलभरियइँ णयणइँ ।
हियवइ निब्भरु मणु सम्मारिउ । "दुक्खु दुक्खु" पुणु मणु साहारिउ ।
थिय गरुयाहिमाणि मणु लाइवि । मच्छरु माणु मरट्टु पमाइवि ।
णउ पहसइ णउ तणुसिंगारइ ।
णउ केणवि सहु णयण-कडक्खइ । णउ कासुवि गुणदोसइँ अक्खइँ ।
तोवि ताहँ घरवइ ण सुहावइ । अवसेरतु पुणुवि बोल्लावइ ।
अच्छहिँ काइँ एत्थु दुक्कदिरि । णीसरु कंति जाहि पियमंदिरि ।
त दुव्वयण वासु असहंती । णिग्गय परिमणु आउच्छंती ।
—वहीं पृ० १०-११

५—सामन्त-समाज

(१) राजद्वार, राजांगण

रायगणंगणि पयडिवि दुट्ठहों दुच्चरिउ ।
तं निसुणहु जेम भविसयत्ति-जसु वित्थरिउ ।
दाइय दुप्पपंचु आयन्निवि । माण-कसाय-सल्लु मणिमन्निवि ।
हरियत्तहों संकेउ समासिवि । कमलदलच्छि लच्छि संवासिवि ।
नियय जणेरि वयण संपेसिवि । पुव्वावर संकेउ गवेसिवि ।
बहु नवल्ल पाहुडइँ समारिवि । चदप्पहुँ जिणवरु जयकारिवि ।
निग्गउ वणिवंरिदु पहुवारहों । भडथड-निवह-विसम-संचारहों ।
जहिँ गय गुलगुलंति पिहु जंगम । हिलिहिलंति तुक्खार-तुरंगम ।
जहिँ मंडलिय सक्क-सामंतहँ । निवडिय कणयदंडु पइसंतहँ ।
गलइ माणु अहिमाणु न पुज्जइ । निय-सच्छंद-लील नउ जुज्जइ ।
जहिँ अब्-भोट्ट[1] जट्ट जालंधर । मारुअ-टक्क-कीर-खस-बब्बर ।
मरु-बेयंग-कुंग-बेराडवि । गुज्जर-गोड-लाड-कन्नाडवि ।
इय एमाइ अउव्व-वसुंधर । अवसरु पडिवालंति महानर ।

---

[1] देशोंके नाम

सुनिया तासु परामुख-वचनै । मुख मुकुलेँउ जल भरियउ नयनै ।
हियवइ निर्भर मन संभारेँउ । "दुःख दुःख" पुनि मन संधारेँउ ।
ठिउ गरुआभिमान मन लाइय । मत्सर-मान-दर्प प्र-मार्जेउ ।
ना प्रहसै ना तनु शृंगारै । .... ।
ना काहुहिँ सँग नयन कटाक्षै । नहि कासुउँ गुण-दोषै आखै[1] ।
तोहु ताहँ घरपति न सोँहावै । अपमानँत पुनिहू बोलावै ।
"अछहि काहँ इहाँ दुष्-कंदिरेँ । नीसरु कांत ! जाहि प्रियमंदिरेँ ।"
सो दुर्वचन-वास असहंती । निर्-गउ परिजन आ-पूछंती ।
—वहीँ पृ० १०-११

५—सामन्त-समाज

(१) राजद्वार राजांगण

राजांगण जाई प्रकटिउ दुष्टहँ दुश्चरितू ।
सो सुनहु जिमि भविषदत्त-यश विस्तरिउ ॥
दर्शिय दुष्प्रपंच आकर्णिय । मान-कषाय-शल्य मनेँ मानिय ।
हरिदत्तहोँ संकेत समासेँउ । कमलदलाक्षि-लक्ष्मि संवासेँउ ।
निजहिँ जनेरि-वचन संप्रेषिय । पूर्वापर संकेत गवेषिय ।
बहु नवल्ल पाहुरइँ[2] सँभारिय । चंद्रप्रभ-जिनवर जयकारिय ।
निर्-गउ वणि-वरेंद्र प्रभु-द्वारहोँ । भट-ठट-निवह-विषम-संचारहोँ ।
जहँ गज गुलगुलंति पृथु जंगम । हिलहिलंति तूषार-तुरंगम ।
जहँ मडलियेँ शक्र-सामन्तहँ । वारेउ कनकदंड पइसंतहँ ।
गलै मान अभिमान न पुज्जै । निज-स्वच्छंद लील ना जुज्जै ।
जहँवाँ भोट-जट्ट-जालंधर । मारुव-टक्क-कीर-खस-बर्बर ।
मरुवे - अंग - कुंग - वैराटउ । गुर्जर - गौड - लाट - कर्नाटउ ।
ई एताइं अपूर्व-वसुंधर । अवसर प्रतिपालंति महानर ।

---

[1] बोलै   [2] प्राभृत (=भेंट)

घत्ता । सामंत-सएँहिं जं सेविज्जइ रत्तिदिणु ।
तं रायदुवारु पिक्खिवि कासु न खुट्टइ मणु ॥

—वहीं पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता । चिन्हइँ दरिसंतु महत्तरइँ, सज्जण-जण-हियवउ भरइ ।
आणंद णंदि-कलयल-रवेण, उज्झासाल पईसरइ ॥
तहिवि तेण गुतु वयण णिउत्ति[1]। परमागम-कल-गुण-संजुत्ति ।
पुणि अक्खर संकेय-कयत्थें । बहु वायरण-सद्द-सत्थ-त्थें ।
सयलकला-कलाव-परियाणिय । अवगाहण-सत्तिए लहु जाणिय ।
जोइस-मंत-तंत बहु-भेयइँ । धणु-विन्नाण बाण-गुण-छेयइँ ।
विविहाउहइँ विविह-संवरणइँ । रणि हत्थापहत्थ-वावरणइँ ।
दिण्ण पहर पडिपहर पमुक्कइ । लक्खण-चलण-चंचला ढुक्कइँ ।
मल्लजुज्झ आवग्गण-संचइ । ढोक्कर-कत्तरि करण पवंचइँ ।
गय-तुरंग-परिवाहण संभइँ । सारासार-परिक्खण गब्भइँ ।
घत्ता । एमाइ विसिट्ठइँ अण्णहिंमि अंगउ गुणिहिं तासु वरिउ ।
जिण महिम पुज्ज दाणोच्छविण उज्झासालहिं णीसरउ ॥२॥
उज्झासाल मुएँवि घरु आयहों । थिर-गंभीर-गुणिहिं विक्खायहों ।

—वहीं पृ० ८

(३) युद्ध (भविषदत्तका)

पढमउँ पहरंतएँ सामिसालि । परिभमिय विसम-भंडण-करालि ।
भडथडु अप्पं परिहोइ जाम । पाइक्कहों पसरु न होइ ताम ।
तं मंतिहु वयण सुणेवि तेण । अवलोइय नर हरिसियभुएण ।
दिट्ठइँ सम्माणइँ जोह जाम । पाइक्कहों पसरु न होइ ताम ।

---

[1] ग्रहण करते हैं

घत्ता। सामंत शतेँहिँ जो सेविज्जै रात्रिदिन।
सो राजदुवारहँ पेखि कासु न खुट्टै मंन ॥

—वहीँ पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता। चिन्हैँ दर्शन्त महत्तरहिँ, सज्जन-जन-हृदयउ भरै।
आनंदनंदि-कलकल-रवेहिँ, पाध्या-शाला[1] पईसरै ॥
तहीँ तेहिँ गुरुवचन-नियुक्ते। परमागम-कलों-गुण-संयुक्ते।
पुनि अक्षर-संकेत-कृतार्थे। बहु व्याकरण-शब्द-शास्त्रार्थे।
सकल-कला-कलाप-परिजानिय। अवगाहन शक्तिएँ बहु जानिय।
ज्योतिष-मंत्र-तंत्र बहुभेदइँ। धनु-विज्ञान वाण-गुण-छेदइँ।
विविध-आयुधइँ विविध-संवरणैँ। रणेँ हस्त-पहस्त व्यापरणैँ।
दीनु प्रहर प्रतिप्रहर प्रमुंचइँ। लक्षण-चलन-चंचला-ढुक्कइँ।
मल्लयुद्ध आवल्गन संचइँ। ढोक्कर-कर्त्तरि-करन प्रपंचइँ।
गज-तुरंग-परिवाहन संज्ञइँ। सारासार-परीक्षण गिन्नइँ।
घत्ता। एताइँ विशिष्टइँ, अन्यहँउ अंगउ, गुणेहिँ तासु बरिऊ।
जिन-महिम-पूज-दानोत्सवेँहिँ, पाध्याशालहिँ नीसरिऊ।
पाध्याशाल मुंचि घर आयउ। थिर-गंभीर-गुणेँहिँ विख्यायउ।

—वहीँ पृ० ८

(३) युद्ध (भविषदत्तका)

प्रथमउँ प्रहरंतउ स्वामिशाल। परिभ्रमिय विषम-भंडन कराल।
भट-ठट आपा-परिहोइ जाहँ। पायक्कहोँ पसर न होइ ताहँ।
सो मंत्रिहु वचन सुनीय तेहिँ। अवलोकेँउ नर हर्षित-भुजेहिँ।
दृष्टैँ सम्मानैँ योध जाहँ। पाइक्कहोँ प्रसर न होइ ताहँ।

---

[1] उपाध्यायशाला, पाठशाला

पसरइ साकेय-नरिंद-सिन्नु । रोमंच उच्च कंचुअ पवन्नु ।
हरि-खर-खुर-रवि खोणी खणंतु । गयपय पहारि धरदरमलंतु ।
"हणु मारि मारि" कलयलु करालु । सन्नद्ध बद्ध भड-थडव मालु ।
तं निएँवि सधणु अहिमुहुँ चलंतु । धाइउ कुरु साहणु पडिखलंतु ।

घत्ता । कलयल-गंभीरइँ दिन्नसरीरइँ, हय-रणभेरि-भयंकरइँ ।
कुरुपोयणवल्लहँ अणिहय-मल्लहँ भिडियइँ बलइँ समच्छरइँ ॥

दुवई । सो हरि-खर-खुरग्ग-संघट्टि छाइउ रणु अतोरणे ।
णं भड-मच्छरग्गि-संधुक्कण धूमतमंधयारणे ॥

धूलीरउ गयणंगणु भरंतु । उट्ठिउ जगु अंधारउ करंतु ।
नउ दीसइ अप्पु न परु स-खग्गु । न गइंदु न तुरउ न गयणमग्गु ।
तेहवि काले अविसट्ट-मोह । हुंकारहु पहरु मुअंति जोह ।
किवि आहणंति दिसि बहु मुणेवि । गय-गज्जिउ हय-हिंसिउ सुणेवि ।
किवि कोक्किवि पडिसद्दहों चलंति । असि-मुट्ठिए निय-लोयण मलंति ।
धावंतु कोवि अहियाहिमाणु । गयदंतहिँ भिन्नु अपिच्छमाणु ।
कत्थइ पहराउर[1] अयसमोह । गयघड पयट्ट निहणंति जोह ।
रउ नट्ठु विहिंडिउ भडबलेण । महि मुद्दिय वण-सोणिय-जलेण ।

घत्ता । तो गय-घड पिल्लिउ सुहडहिँ मिल्लिउ अवरुप्परि कप्परियतणु ।
सरजालो मालिउ पहर करालिउ, भमरावत्तिं भमिउ रणु ॥

दुवई । तो इक्कवयकन्न-पंगुरणहिँ सुहडहिँ नारसिंहहिँ ।
दढ-दाढा-कराल-मुह-भासुर लोलललंत जीहाहिँ ॥१॥

खज्जंतु भमिउँ करवट्टु सिन्नु । ओसारु निविड गयघडहिँ दिन्नु ।
तेहइ वि कालि सोंडीर-वीर । पहरंति सुहड संगाम-धीर ।
केणवि कासुवि असिधाउ दिन्नु । उरु सिरु स-खग्गु भुअ-दंडु छिन्नु ।
असि वाहइ कोवि गलद्ध सेसु । हत्थेण धरेवि पडंतु सीसु ।

---

[1] प्रहार से पीडित

पसरै साकेत-नरेन्द्र शीर्ण। रोमांच उच्च-कंचुक प्रॉवरण।
हरि-खर-खुर-रवें क्षोणी खनंत। गजपदप्रहरें धर दरदरंत।
"हन, मार,मार" कलकल-कराल। सन्नद्ध बद्ध भटठटहँ माल।
सो निजहु स-धनु अभिमुख चलंत। धायें उ कुरु-साधन[1] प्रतिखलंत।

घत्ता। कलकल-गंभीरइँ, दीर्णशरीरइँ, हत-रणभेरि-भयंकरइँ।
कुरुउनवल्लभ, अनिहत-मल्लहँ, भिडियें बलइँ समत्सरइँ॥

द्विपदी। तो हरि-खॉर-खुराग्र-संघट्टें, छाइउ रणुअतोरणे।
जनु भट-मत्सर-'ग्नि-संधुक्षण धूमतम'न्धया रणे॥
धूली-रज गगनांगणें भरंत। उट्ठेउ जग-अंधारउ करंत।
ना दीसै आपु न पर स-खड्ग। न गयंद न तुरग न गगन-मार्ग।
तेहिइ काले अ-विसृष्ट-मोह। हुंकारहु "प्रहरु" मुँचंति योध।
केउ आ-हनंति दिशि-बधु मॉनेइ। गज-गर्जन हय-हिन्हिन सुनेइ।
केउ कोक्किउ प्रतिशब्दहु वदंति। असि-मुष्टिहिँ निज-लोचन मलंति।
धावंत कोंइ अधिकाभिमान। गजदंतहिँ भिन्दु आपृच्छमान।
कतहूँ प्रहरातुर अयश-मोह। गजघट-प्रवृत्त नि-हनंति योध।
रज नष्टउ हिंडिउ भटबलेहिँ। महि मुद्रिय व्रण-शोणित-जलेहिँ।

घत्ता। गजघट पेंल्लेंउ सुभदेहिँ मिल्लेंउ, अपरोपरि कर्परिय तनू।
शरजालो मालेउ, प्रहर करालेउ, भ्रमरावर्त्तें भ्रमेंउ रणू॥

द्विपदी। तो एकहिँ एक प्रागुरणहि सुभटहिँ नरसिंहहिँ।
'दृढ दंष्ट्रा-कराल मुख-भासुर लोलललंत जीभहिँ॥
खाद्यंत भ्रमिउ कर-वाहँ-शीर्ण। ओसार निबिड गजघटहिँ दिन्न।
तेहिँइ काल शौंडीर-प्रवीर। प्रहरंति सुभट संग्राम-धीर।
केहुउ काहुहिँ असिघाउ दिन्न। उरु-शिर स-खड्ग भुजदंड छिन्न।
असि वाहै कोउ गलार्ध-शेष। हाथेहिँ धरेउ पडंत-शीश।

---

[1] सेना

केणवि आरोडिउ लंबकन्नु । वंचेवि फरसु कुंतेण भिन्नु ।
केणवि रणि तज्जिउ एक्कवाउ । विज्जाहर करणिं दिन्नु घाउ ।
केणवि दुक्कंतु ललंतु जीहु । दोखंडिवि पाडिउ नारसीहु ।
कत्थइ कडु आविय गयहँ पंति । परिभमिय सुहड सीसइँ दलंति ।
कत्थइ पहराउर दुन्निवार । हिंडिय[1] तुरंग पडि आसवार ।
कत्थइ सरोहु वण सोणियंधु । सुरहिउ करि नरकेसरिहि खंधु ।
एहइ वट्टंतए रणि असक्कि । मंतणउँ जाउ महिवाल चक्कि ।
"अहो ! अच्छइ हु काइँ निरावसन्न । कुरुवइहि ओँसारिय लंबकन्न ।
मंछुडु दुज्जउ भूवाल राउ । दीसइ धणवइ-सुउ बहु-पसाउ" ।
तं मंतिवयणु हियवइ धरेवि । उट्ठिय सयलवि समहरु करेवि ।
घत्ता । महिवइ सामंतिहिँ समरि भिडंतिहिँ कुरुवइ साहणु ओसरिउ ।
दिढ पहर करालिउ समरस-जालिउ, रणमहि मिल्लिवि नीसरिउ ॥१५॥
दुवई । भग्गइ सामि सिन्नि पइसंतए पसरिबि निययमंडले ।
निरु खलभलिय गाम-पुर-पट्टण, तहिँ कुरुभूमि-जंगले ॥

—वही पृ० १०२-१०३

४ : ग्यारहवीं सदी

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००९-४२) ।

१–तैलप-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पश्चात्ताप

इणि राजिइँ नहु काजु, भोज-गुणागर तूह विणु ।
काठ दिवारउ आज, जिम जरई भोजह मिलूँ ॥

---

[1] भटका फिरता है

काहुहि आलोडेँउ लंबकर्ण। वंचाइ परशु-कुंतेहिँ भिन्न।
काहुहिँ रणेँ तर्जेँउ एक बाव। विद्याधर-कर्णे दिन्न घाव।
काहुहि ढुक्कंत ललंत जीभ। दोखंडउ पातेँउ नारसीह।
कतहूँ कउ आवी गजहँ पंक्ति। परिभमिय सुभट शीशैँ दलंति।
कतहूँ प्रहरातुर दुर्निवार। हिंडिय तुरंग, पडिया सवार।
कतहूँ सरोष व्रण-शोणित'न्ध। सुरभिउ करि नरकेसरिहि खंध।
ऐसेँहँ होवंते रणेँ असक्कें। मंत्रण हुई महिपाल-चक्र।
"अहोँ! आछै काइँ निरावसन्न। कुरुपतिहिँ ओसारेँउ लंबकर्ण।
निश्चय दुर्जय भूपाल राव। दीसै धनपति-सुत बहु-प्रसाद।"
सो मंत्रिवचन हृदयहिँ धरेइ। उट्ठिय सकलउ समहर करेइ।
घत्ता। महिपति सामंतहिँ समर-भिडंतहिँ, कुरुपति-साधन अपसरेऊ।
दृढ-प्रहरकरालउ, समर-सज्वालेँउ, रण-महि, मेलिय नीसरेऊ ॥१५॥
द्विपदी। भागै स्वामि शीर्ण पइसंतएँ पसरेँइ निजय-मंडले।
अति-खलबलिय ग्राम-पुर-ट्टपन, तहँ कुरुभूमि-जंगले ॥
—वही पृ० १०२-१०३

४ : ग्यारहवीँ सदी

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००६-४२)।

१—तैलप[1]-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पश्चात्ताप

एहि राजहिँ नहिँ काज, भोज गुणागर ताहि विनु।
काठ दिवारउ आज, जिमि जाई भोजहँ मिलौँ ॥

[1] चालुक्यराज तैलप

सामिय अतिहिँ अजाणु, जं इण परिबोलइ हियइ ।
जाण्या एहु प्रमाणु, कीधउँ जं न कयत्थियइ ॥
—[1]प्रबंध चिंतामणि, पृ० २२

(२) रुद्रादित्यकी तैलप पर न चढ़नेकी सलाह

देव ! अम्हारी सीष, कीजइ अवगणिअइ नहीं ।
तूँ चालंती भीष , इणि मंत्रिहिँ हुस्यइ सही ॥
रुलियउँ रायह राजु, तइँ बइठइ मइँ लंघियइ ।
ए पुणि वडउँ अकाजु, तूँ जाणे मालव-धणी ॥
सामी मुह तउ वीनवइ, ए छेहलउ जुहारु ।
अम्ह आइसु हिय सीसि, तुह पडतउँ देषूँ छारु ॥
—प्र० चि० पृ० २२

(३) मुंजसे तैलपका भीख मँगवाना

झोली तुट्टवि किं न मुअ, किं हुउ न छारह पुंजु !
हिण्डइ दोरी दोरियउ, जिम मंकडु तिम मुंज ॥
चित्ति विसाउ न चिंतियइ, रयणायर गुण-पुंजु ।
जिम जिम वायइ विहिपडहु, तिम नाचिजइ मुंजु ।
सायरु षाईं लंकगढु, गढवइ दसशिरु राउ ।
भग्ग षई सो भंजि गउ, मुंज म करिसि विसाउ ॥
गय गय रह गय तुरयगय, पायक्कडानि भिच्च ।
सग्गट्ठिय करि मंतणउँ, महता रुद्दाइच्च ॥
—प्र० चि०, पृ० २३

---

[1] प्रबंध-चिंतामणि, विश्व-भारती, शांति-निकेतन (संवत् १९८९)

स्वामिय अतिहि अजान, जो इन पर बोलै हिय।
जान्या एहु प्रमाण, कीधौं जो न कदर्थियइ ॥
—प्रबंध चिंतामणि, पृ० २२

(२) रुद्रादित्यकी तैलप पर न चढ़नेकी सलाह

देव ! हमारी सीख, कीजै औगनियै नहीं।
तू चालंती भीख, इन मंत्रिहिं होइह सखी ॥
रुलियउ राजहँ राज, तैं बइठे मैं लंघियइ।
ए पुनि बडो अकाज, तू जाने मालव-धनी ॥
स्वामी मुखतें वीनवै, यह पाछिउ जुहार।
मोहिं आयसु हिय शीश तुह, पडतो देखूं छार ॥
—प्र० चि०, पृ० २२

(३) मुंजसे तैलपका भीख मँगवाना

झोली टुट्टी की न मुअ, कि हुअ न छारह पुंज।
हिंडै[1] डोरी डोरियउ, जिमि मर्कट तिमि मुंज ॥
चित्तें विषाद न चिंतियइ, रतनाकर गुण-पुंज।
जिमि जिमि बाजै विधि-पटह, तिमि ना चिज्जै मुंज ॥
सागर खाईं लंक-गढ़, गढपति दश-शिर राव।
भाग्य क्षयी सो भंजि गउ, मुंज ! न करहि विषाद ॥
गयें गज रथ गयें तुरग गयें पायकडानउ भृत्य।
सर्गे ठिउ करि मंत्रणां, महता रुद्रादित्य ॥
—प्र० चि०, पृ० २३

---

[1] घूमता है, भटकता है

२—सुखी कुटुंब

भोली मुन्धि म गव्वु करि, पिक्खवि पहु-रुवाइँ ।
चउदह-सइँ छहुत्तरइँ, मुंजह गयह गयाइँ ॥
च्यारि बइल्ला धेनु दुइ, मिट्ठा-बुल्ली नारि ।
काहू मुंज कुडंबियहँ, गयवर बज्झइँ वारि ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

३—दासी[1]-प्रेम-निंदा

दासिहिँ नेह न होइ, नाना निरहीँ जाणियइ ।
राउ मुँजेसरु जोइ, घरिघरि भिक्खु भमाडियइ ॥[2]
वेसा छंडि वडायती, जे दासिहिँ रच्चंति ।
ते नर मुंजनरिन्द-जिम, परिभव घणा सहंति ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

४—नीति-वाक्य

जे थक्का गोला नई, हूँ बलि कीजूँ ताह ।
मुंज न दिट्ठउ विहलिऊ, रिद्धि न दिट्ठ खलाहँ ॥
जा मति पच्छइ सम्पजइ, सा मति पहिली होइ ।
मुंज भणइ मुणालवइ, विघन न बेढइ कोइ ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

५—वैराग्य

कसु करु रे पुत्त कलत्त धी कसु करु रे करसण वाडी ।
एकला आइबो एकला जाइबो हाथ-पग बेहु झाडी ॥
—प्रबंधचितामणि, पृ० ५१

---

[1] मृणालवती　　[2] घुमाती है

२—सुखी कुटुंब

भोली मुग्धे ! न गर्व करु, पेखेंवि प्रति-रूपाइँ ।
चौदहसै छेहत्तरा, मुंजह गजह गताइँ ॥
चारि बइल्ला धेनु दुइ, मिट्ठा-बोली नारि ।
काह मुंज ! कुटुंबियइँ, गज-वर बांधे द्वारि ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

३—दासी-प्रेम-निंदा

दासिहिं स्नेह न होइ, नाना निरखी जानियइ ।
राव मुँजेस्वर जोइ, घर-घर भीख भ्रमावई ॥
वेसा छाडि बडायती, जे दासिहिं रंजंति ।
ते नर मुंज-नरेन्द्र जिमि, परिभव घना सहंति ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

४—नीति-वाक्य

जे थाके[1] गोदा नदी, हौं वलि कीजौं ताह ।
मुंज न देखेउ विहरियउ, ऋद्धि न दीसु खलाहँ ॥
जा मति पाछे ऊपजै, सा मति पहिले होइ ।
मुंज भनै मृणालवति, विघन न बाढै कोइ ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

५—वैराग्य

कासुकर रे पुत्र-कलत्र-धी कासुकर रे कर्षण-वाडी ।
एकले आइव एकले जाइव हाथ-पग दोनों झाडी ॥
—प्रबंध चिंतामणि, पृ० ५१

---

[1] ठैर रह्यो, ठहर जाय

§ २६. अब्दुर्रह्मान[1]

काल—१०१० ई०। देश—मुल्तान। कुल—जुलाहा (मीरसेन। मीरहसन)

१–परिचय

अणुराइयरयिहरु कामिय-मणहरु, मयण मणह-पह-दीवयरो।
विरहिणिमइरद्धउ सुणहु विसुद्धउ, रसियह रस-संजीवयरो ॥२२॥
अइणेहिण भासिउ रइमइवासिउ, सवणसकुलियह अमिय सरो।
लइ लिहइ वियक्खणु अत्थह लक्खणु, सुरइ-संगि जु विअड्ढ-नरो ॥२३॥

२–प्रोषितपतिकाका संदेश

(प्रोषितपतिका पथिकको रोकती है)

धम्मिलउ मुक्कमुह, विज्जंभइ अरु अंगु मोडई।
विरहानलि संतविअ, ससइ दीह कर-साह तोडई ॥
इम मुद्धह विलवंतियह महि चलणेहि छिहंतु।
अद्धुड्डीणउ तिणि पहिउ पहि जोयउ पवहंतु ॥२२॥
तं जि पहिय पिक्खेविणु पिअ-उक्कंखिरिया,
मंथर-गय सरलाइवि उत्तावलि चलिया।
तह मणहर चल्लंतिय चंचलरमणभरि,
छुडवि खिसिय रसणावलि किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥
तं जं मेहल ठवइ गंठि णिट्ठुर सुहय,
तुडिय ताव थूलावलि णवसर-हारलय।
सा तिवि किवि संवरिवि चइवि किवि संचरिया,
णेउर चरण-विलग्गिवि तह पहि पंखुडिया ॥२७॥

---

[1] पच्चाए सि पहूओ पुव्वपसिद्धो य मिच्छ्ं देसो त्थि।
तह विसए संभूओ आरद्दो मीरसेणस्स ॥३॥

§ २६. अब्दुर्रह्मान

पुत्त अद्दहमाण) (आरद्द) । कृति——संनेह-रासय (संदेश-रासक), शृंगारी कवि ।

१—परिचय

अनुरागी-रतिघर कामी-मनहर, मदनमना पथ-दीपकरो ।
विरहिणि-मकरध्वज सुनहु विशुद्धउ रसिकन रस संजीवकरो ॥२२॥
अतिस्नेहहिँ भाषेँउ रतिमतिवासित, श्रवण-शष्कुलिहिँ अमृतसरो ।
लये लिखै विचक्षण अर्थहिँ लक्षण, सुरति-संगेँ जोँ विदग्ध-नरो ॥२३॥

२—प्रोषितपतिकाका संदेश

(प्रोषितपतिका पथिक को रोकती है)

केशमुक्तमुख जँभाये अरु अंग मोडई ।
विरहानलेँ संतपिय, श्वसै दीर्घ-कर-शाख तोडई ॥
इमि मुग्धा विलपंती महिहिँ चरणेहिँ छुवन्ती ।
अर्धोद्विग्ना सा पथिक पथेँ जोयउ चलतो ॥२५॥
तहि पथिकहिँ पेखिया प्रियहिँ उत्कंठितिका,
मंथर-गति सरलाइय उत्तावलि चलिया ।
तिमि मनहर चल्लन्ती चंचलरमणभरी,
छुटी खिसकि रसनावलि, किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥
ता मेखलहिँ राखि गाँठेँ निष्ठुर सुभगा,
टुटी तबहिँ स्थूलावलि नव-सर-हार-लता ।
वह तेहिँ किछुक उठाइ किछुक तजि संचलिता,
नूपुर चरण लपटिया इमि पथि आ-पडिया ॥२७॥

तह तणयो कुलकमलो पाइय कव्वेसु गीय विसयेसु ।
अद्दहमाण पसिद्धो संनेहय रासयं रइयं ॥४॥
—संदेशरासक (भारतीय विद्या (बंबई) मार्च १९४२ ई०)

पडिउट्ठिय सविलक्ख-सलज्जिर संभसिया,
तउ सय सच्छ णियसण मुद्धहवि वलसिया।
तं संवरि अणुसरिय पहिय पावयणमणा,
फुडवि णित्त कुप्पास विलग्गिय दर सिहणा ॥२८॥
छायंती कह कह व सलज्जिर णिय करहीं,
कणय-कलस झंपंती णं इंदीवरहीं।
तो आसन्न पहुत्त सगग्गिर-गिरवयणी,
कियउ सद्दु सविलासु करुण दीहरनयणी ॥२९॥
ठाहि ठाहि णिमिसद्धु सुथिरु अवहारि मणु,
पिसुणि किंपि जं जंपउँ हियइ पसिज्जि खणु।
एय वयण आयन्नि पहिउ कोऊहलिउ,
णेय णिअत्तउ तासु कमद्धु'वि णहु चलियउ ॥३०॥
गाहा तं निसुणेविणु राय-मराल-गइ,
चलणंगुट्ठि धरत्ति सलज्जिर उल्लिहइ।
तउ पंथिउ कणयंगि तत्थ बोलावियउ,
"कहि जाइसि हिव पहिय कहँ व तुह आइयउ" ॥४१॥
"णयरणामु सामोरु सरोरुहदलनयणी,
णायर-जन-संपुन्नु हरिस ससिहरवयणी।
धवल-तुंग-पायारिहिँ तिउरिहि मंडियउ,
णहु दीसइ कुइ मुक्खु सयलु जणु पंडियउ ॥४२॥
तवण-तित्थु चाउद्दिसि मियच्छि वखाणियइ,
मूलत्थाणु[१] सुपसिद्धउ महियलि जाणियइ।
तिह हुंतउ हउँ इक्किण लेहउ पेसियउ,
खंभाइत्तइँ वच्चउँ पहु-आएसियउ" ॥६५॥

---

[१] मुल्तान (मूलस्थान=मूलत्राण ?)

पडि उट्ठी सविलक्ष सलज्जिल संभ्रमिया,
तब सित-स्वच्छ-वसन मूर्धहिँ खसिया।
ढाँकि ताहि अनुसरी पथिक-मिल्लन-मनसा,
फटी कंचुकी क्षुद्र-छिद्र तहँ झलक कुचा ॥२८॥
ढाँकंती कैसहूँ सलज्जिल निज-करहीँ,
कनक-कलश झाँपती मनहुँ इंदीवरहीँ।
नियरे पुनः पहुँचि सगद्गद-गिर-वदनी,
कहेँउ शब्द सविलास करुण-दीरघ-नयनी ॥२९॥
"ठहर ठहर निमिषार्ध सुथिर अवधारु मने,
सुनु जो किछु मैँ भाखौँ हियहिँ पसीजु क्षणे।"
एह वचन सुनि पुनि पथिक कौतूहलियउ,
तुरतहिँ लौटेँउ तासु पदार्धउ ना चलियउ ॥३०॥
गाथा ताहि सुनाइय, राज-मराल-गती,
चरणांगुष्ठहिँ भूमि सलज्जिलसोँ खनती।
इमि पथिकहिँ कनकांगि वहाँ बोलाइयऊ,
"कहँ जाइस हे पथिक! कहाँसि आइयऊ" ॥४१॥
"नगर नाम सामोरु[१] सरोरुहदलनयनी!
नागरजनसंपूर्ण अहै शशिधरवदनी!
धवल-तुंग-प्राकारेँहिँ त्रिपुरेँहिँ मंडितऊ,
नहिँ दीसै कोँइ मूर्ख सकल जन पंडितऊ ॥४२॥
तपन-तीर्थ चौदिसहिँ मृगाक्षि! बखानियई,
मूलतान सुप्रसिद्धउ महितलेँ जानियई।
तहँते मोहिँ केहु लेख देइ भेजावियऊ,
खंभातहिँ मैँ जाउँ प्रभूप्रेषियत हुँवँ" ॥६५॥

---

[१] शाम्बपुर=मुल्तान

एय वयण आयन्नवि सिंधुब्भववयणी,
सससिवि सासु दीहुन्हउ सलिलुब्भवनयणी।
तोडि करंगुलि करुण सगग्गिर-गिर पसरु,
जालंधरि व समीरिण मूंथ थरहरिय चिरु ॥६६॥
रुइवि खणद्धु फुसावि नयण पुण वज्जरिउ,
"खंभाइत्तहँ णामि पहिय तणु जज्जरिउ।
तह मह अच्छइ णाहु विरह-उल्हावयरु,
अहिय कालु गम्मियउ ण आयउ णिद्दयरु ॥६७॥
पउ मोडवि निमिसिद्धु पहिय जइ दय करही,
कहउँ किंपि संदेसउ पिय तुच्छक्खरही"।
पहिउ भणइ "कणयंगि ! कहहु कि रुन्नयण,
झिज्जंती णिरु दीसहि उव्विन्नमियनयण" ॥६८॥
"जसु णिग्गमि रेणुक्करडि, कीअ ण विरहदवेण।
किम दिज्जइ संदेसडउ, तसु णिट्ठुरइ मणेण ॥६९॥
जंसु पवसंत ण पवसिआ, मुइअ विओइ ण जासु,
लज्जिज्जउँ संदेसडउ, दिंती पहिय पियासु" ॥७०॥
लज्जवि पंथिय जइ रहउँ, हिअउ न धरणउ जाइ।
गाह पढिज्जसु इक्क पिय, कर लेविणु मन्नाइ ॥७१॥
तुह विरहपहर संचूरिआइँ, विहडंति जं न अंगाइँ।
तं अज्ज-कल्ल-संघडण-ओसहे णाह तग्गंति ॥७२॥
कहवि इय गाह पंथिय ! मन्नाएवि पिउ।
दोहा पंचकहिज्जसु, गुरुविणएण सेंउ ॥७४॥
पिअ-विरहानल संतविउ, जइ वच्चइ सुरलोइ।
तुअ छड्डिवि हिय अट्ठियह, तं परिवाडि ण होइ ॥७५॥
कंत जु तइ हिअयट्ठियह, विरह विडंबइ काउ।
सप्पुरिसह मरणाअहिउ, परपरिहव-संताउ ॥७६॥

एह वयन काने सुनि सिंधूद्भववदनी,
लेइ दीर्घोष्ण-निश्वास सलिलसंभववदनी।
फोडि करांगुलि करुण सगद्गद-गिरा कही,
मुग्धा वातेहिँ कदली जिमि थहराय रही ॥६६॥
रोइ क्षणार्द्धहिँ पोँछि नयन पुनि बोलियऊ,
"खम्भातहि को नाम पथिक ! तनु जर्जरिऊ।
तहँ मम आछै नाथ विरह-उल्लासकर,
अधिक काल चलि गयउ, न आयउ निर्दयर ॥६७॥
पद मोड़हु निमिषार्ध पथिक ! यदि दया करी,
कहौँ किमपि संदेश प्रियहिँ तुच्छाक्षरहीँ।"
पथिक भनै "कनकांगि ! कहहु किमि रुदिययनी,
खिन्ना दीसै वहु उद्विग्निल मृगनयनी" ॥६८॥
"जेहि निकसे भस्मोत्कर, कीय न विरहदवेहिँ,
किमि दीजै संदेसड़ा, ताँसु निष्ठुरहि मनेहिँ ॥६९॥
जासु प्रवास न प्रवसिया, मुई वियोग न जेहि।
लज्जीअउँ संदेसडउ, देती पथिक ! प्रियेहिँ ॥७०॥
लज्जिय पंथिक ! यदि रहौँ, हियहु न वारिय जाइ।
गाथा पढियहु एक प्रिय, कर गहि लेहु मनाइ ॥७१॥
'तव बिरहचोटहिँ चूरचूर" नष्ट जो ना अँग हुये।
सो आजकल-मिलन-उत्सहेँहिँ नाथ ठहरे हुये ॥७२॥
कहियउ ऍह गाथा पथिक, मनायो प्रिय।
दोहा पाँच कहीजो, वहुविनयेहिँ सह ॥७४॥
प्रिय-विरहानल संतपित, यदि जाओँ सुर-लोक।
तोँहि छाड़ी हृदयस्थितहँ, सो पुनि नीक न होइ ॥७५॥
कन्त ! जोँ तोँहिँ हृदयस्थितहिँ, विरह पराजै काहु।
सत्पुरुषहिँ मारणाधिक, पर-परिभव-संताप ॥७६॥

गरुअउ परिहवु कि न सहउ, पइ पोरिस-निलएण ।
जिहि अंगिहि तू विलसियउ, ते दद्धा विरहेण ॥७७॥

विरह-परिग्गह छावडइ, पहराविउ निरवक्खि ।
तुट्टी देह ण हुउ हियउ, तुअ संमाणिय पिक्खि ॥७८॥

मह ण समत्थिम विरहसउ, ता अच्छहु विलवंति ।
पालीरूअ पमाण पर, धण सामिहि घुम्मंति ॥७९॥

संदेसडउ सवित्थरउ, पर मइ कहण न जाइ ।
जो काणंगुलि मूँदडउ, सो बाहडी समाइ ॥८१॥

ल्हसिउ अंसु उद्धसिउ, अंगु विलुलिय अलय,
हुय उव्विर वयण खलिय विवरीय गय ।

कुंकुम कणय-सरिच्छ कंति कसिणा वरिया,
हुइय मुंध तुय विरहि णिसायर णिसियरिया" ॥८७॥

पहिउ भणइ "पडिउंजि जाउ ससिहरवयणी,
अहवा किंवि कहणिज्जसु मह कहु मियनयणी" ।

"कहउ पहिय ! कि ण कहउ कहिसु किं कहियवण,
जिण किय एह अवत्थ णेहरइ-रहिय-यण ॥९१॥

जिणि हउ विरहह कुहरि एव करि घल्लिया,
अत्थलोहि अकयत्थि इकल्लिय मिल्हिया ।

संदेसड़उ सवित्थरु तुहु उत्तावलउ,
कहिय पहिय ! पिय गाह वत्थु तह डोमिलउ ॥९२॥

पिअ-विरह-विओए संगमसोए, दिवस-रयणि झूरंत मणे,
णिरु अंगु सुसंतह बाह फुसंतह, अप्पह णिद्दय किंपि भणे ।

तसु सुयण निवेसिय भाइण पेसिय, मोहवसण बोलंत खणे,
मह साइम वक्खरु हरि गउ तक्खरु, जाउ सरणि कसु पहिय ! भणे" ।

इहु डोमिलउ भणेविणु निसितम-हरवयणी,
हुइय णिमिस णिप्फंद सरोरुहदलनयणी ।

गरुओ परिभव किन सहौं, तोंहिं पौरुष-निलयेंहिं ।
जेहि अंगेंहिं तु विलासियौ, सो डाहेंउ विरहेंहिं ॥७७॥
विरह-परिग्रह देहरिहिं, प्रहरेउ निरपेक्षि ।
टूटी देह न हनेंउ हृदय- तुव संमानहिं पेखि ॥७८॥
मैं न समर्था विरह-सँग, सो रहऊँ बिलपन्ति ।
पालिय रूप प्रमाण पुनि, घनि स्वामीहिं घुमन्ति ॥७९॥
संदेसड़ो सविस्तरो, पर मोहिं कहेंउ न जाइ ।
जो कनगुरिया मूँदड़ी, सो बाँहडी समाइ ॥८१॥
ह्लसेंउ तेज उहसेंउ अंग बिखरिय अलकें,
हुअ फिक्कंफिक वदन स्खलित-विपरीत-गती ।
कुंकुम-कनक-सदृश कान्ति कलुषावृतिया,
हुइ मुग्धा तुव विरहें निशाचर निशिचरिया" ॥८७॥
पथिक भनै "तैं भेजु जाउँ शशिधरवदनी,
अथवा किछु कथनीय सों मोंहिं कहु मृगनयनी" ॥८८॥
"कहौं पथिक ! कि न कहौं, कह्यु की कहँकहिया,
जिन किय एहु अवस्थ नेहरतिरहितैया ॥९१॥
जिन हौं विरहकुहरें इमि करि छड़िया,
अर्थलोभि अकृतार्थ इकल्ली मुंचड़िया ॥
संदेसड़ो सविस्तर, तुहुँ उत्तावलऊ,
कहेंहु पथिक प्रिय गाथों वस्तु तहँ डोमिलऊ ॥९२॥
प्रिय-विरह-वियोगे संगम-शोके, दिवस-रजनि झूरंत मने,
अति-अंग सुखन्तहँ वाष्पाश्रु बहंतहँ आपुहिं निर्दय किमपि भने ।
तसु सुजन निवेशिय, भावहिं पेखिय मोहवशेन वोंलंत क्षणे,
मम स्वामिय वक्तरु हरि गउ तस्कर, जाउँ शरण कासु पथिक! भने" ॥९५॥
एहु डोमिलउ भनी पुनि निशितम-हरवदनी,
हुई निमिष निष्पन्द सरोरुहदलनयनी ।

णहु किहु कहइ ण पिक्खइ जं पुणु अवरु जणु,
चित्ति भित्ति णं लिहिय मुंध सच्चविय खणु ॥९६॥
पहिउ भणइ थिरु होहि "धीरु, आसासि खणु,
लइबि वरक्किय ससिसउन्नु फंसहि वयणु"।
तस्स वयणु आयन्नि, विरहभर-भज्जरिया,
लइ अंचलु मुहु पुंछिउ, तह व सलज्जरिया ॥९८॥
"जइ अंबरु उग्गिलइ राय पुणि रंगियइ,
अह निन्नेहउ अंगु, होइ आभंगियइ।
अह हारिज्जइ दविणु, जिणिवि पुणु भिट्टियइ,
पिय विरत्तु हुइ चित्त, पहिय! किम वट्टियइ ॥१०१॥
कहि ण सवित्थरु सक्कउँ मयणाउहवहिया,
इय अवत्थ अम्हारिय कंतइ सिँव कहिया।
अंगभंगि णिरु अणरइ, उज्जग्गउ णिसिहि,
विहलंघलगय मग्ग, चलंतिहि आलसिहि ॥१०५॥
धम्मिल्लइ संवरणु न घणु कुसुमहिँ रइउ,
कज्जलु गलइ कवोलिहि, जं नयणिहि धरिउँ।
जं पिया आसा संगिहि अंगिहिँ पलु चडइ,
विरह-हुयासि झलक्किउ तं पडिलिउ झडइ ॥१०६॥
सुन्नारहु जिम मह हियउ, पिय-उक्कंखि करेइ।
विरह-हुयासि दहेवि करि, आसाजलि सिंचेइ" ॥१०८॥
पहिउ भणइ "पहि जंत अमंगलु महु म करि,
रुयवि रुयवि पुणरुत्त वाह संवरिवि धरि"।
"पहिय! होउ तुह इच्छ अज्ज सिज्झउ गमणु,
मइ न रुन्नु विरहग्गि धूम लोयण सवणु ॥१०९॥
खंधउ दुवइ सुणेबि अंगु रोमंचियउ,
णेय पिम्म परिवडिउ पहिउ मणि रंजियउ।

ना किछु कहै न पेखै जो पुनि अवर जनहीं,
चित्र-भित्ति जिमि लिखित मुग्धों सच्चाइय क्षणहीं ॥९६॥
पथिक भनै "थिर होहि धीर आश्वासु क्षणहिं,
लाउँ लेइ वराकिय शशिसँपूर्ण पोंछहु वदना।"
तासु वचन आकर्णि विरह-भर-भंजलिया,
लेंइ अंचल मुख पोंछु तहँहि सलज्जिलिया ॥९८॥
"यदि अंबर छोड़हि रंग फिनु रंगिअई,
जो निस्नेहउ अंग होइ अभ्यंगिअई।
जो हारिज्जइ धनहिं, जितवि पुनि भेंटिअई,
प्रिय विरक्त ह्वै चित्त पथिक! किमि फरियई ॥१०१॥
कहि न सविस्तर सकौं मदनायुध-वधितहु,
एँहु अवस्थ हम्मारिय कंतहिं सब कहियहु।
अंग-भंग बहु अरती, उज्जग्गौं निशिहीं,
विधिलंघितगति मगहिं, चलन्ती आलसहीं ॥१०५॥
केशनकर संवरण न घन-कुसुमहिं रचउँ,
काजल बहै कपोलहिं जों नयनहिं धरऊँ।
जो प्रिय-आशा संगेंहिं अंगे माँस चटै,
विरहहुताशें झलक्कें उ सो दुगुनोउ झटै ॥१०६॥
सोनारहि जिमि मम हृदय, प्रिय-उत्कंठि करेइ।
विरहहुताशे दहन लगि, आशाजल सिंचेइ" ॥१०८॥
पथिक भनै "पथि जात अमंगल मम न करु,
रोइ रोइ पुनि रुदन-अश्रु लेंहु रोकि धरु।"
"पथिक! होहु तव इष्ट आज सिद्धहु गमनू,
मैं न रोंयों विरहाग्नि-धूम लोचनस्रवणू" ॥१०९॥
खंबहु दुश्रौ सुनीइ, अंग रोमांचितऊ,
नहीं प्रेम परि-पढेउ पथिक मनें रंजितऊ।

तह जंपइ मियनयणि सुणिहि धीरयसु खणु,
किहु पुच्छहु ससिवयणि ! पयासहि फुड वयणु ॥१२१॥
णव-घणरिह-वि-णग्गय निम्मल फुरइ करु,
सरयरयणि पच्चक्खु झरंतउ अमिय-भरु।
तह चंदह जिण णत्थ पियह संजणिय सुहु,
कइयलग्गि विरहग्गिधूमि झंपियउ मुहु ॥१२२॥

३—ऋतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म-वर्णन

"णव गिम्हागमि पहिय ! णाहु जं पविसयउ,
करवि करंजुलि सुहसमूह मह णिवसियउ।
तसु अणु-अंचि पलुट्टि विरह हवि तविय तणु,
वलिवि पत्त णिय-भुयणि विसंठलु-विहल-मणु ॥१३०॥
तह अणरइ रणरणउ असुह असहंतियहँ,
दुस्सहु मलय-समीरणु मयणा-कंतियहँ।
विसमझाल झलकंत जलंतिय तिव्वयर,
महियलि वण-तिण-दहण तवंतिय तरणि-कर ॥१३१॥
जम-जीहइ णं चंचलु णहयलु लहलहइ,
तडतडयड धर तिडइ ण तेयह भरु सहइ।
अइउन्हउ वोमयलि पहंजणु जं वहइ,
तं झंखरु विरहिणिहि अंगु फरिसिउ दहइ ॥१३२॥
हरियंदणु सिसिरत्थु उवरि. जं लेवियउ,
तं सिहणह परितवइ अहिउ अहिसेवियउ।
ठविय विविह विलवंतिय अह तह हारलय,
कुसुम माल तिवि मुयइ, झाल तउ हुइ सभय ॥१३५॥

तव बोलै "मृगनयनि ! सुनहु धीरयहु क्षण,
किछु पूछउँ शशिवदनि ! प्रकाशहिं स्फुट वचन ॥१२१॥
नव-घन-रेख-विनिर्गत निर्मल फुरै करो,
शरद-रजनि प्रत्यक्ष झरंतउ अमृत-भरो।
तेंहि चन्दहिं जयनार्थ प्रियहिं संजनित सुखो,
कबहिं लागि विरहाग्नि-धूम झाँपियउ मुखो" ॥१२२॥

३—ऋतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म-वर्णन

"नव-ग्रीष्मागमें पथिक ! नाथ जब प्रवसितऊ,
करव करांजलि सुख-समूह मम निवसितऊ।
तसु पाछहीं लउट्टि विरह-अगि-तपित-तना,
तवहिं आइ निजभवन विसंस्थुल-विकल-मना"।
तिमि अनरति-रणरणक-असुख असहंतियहीं,
दुस्सह मलय-समीरण मदनाक्रान्तियहीं।
विषमज्वाल झलकंत ज्वलंतिय तीव्रतरा,
महियल वन-तृण-दहन तपंते तरणिकरा ॥१३१॥
यमजिह्वा जिमि चंचल नभतल लहलहई,
तड़तड़तड़ धरा करै न तेजोभर सहई।
अतिउष्णउ व्योमतलें प्रभंजन जो बहई,
सो झंखण विरहिहिं अंग परसेंउ दहई ॥१३२॥
हरिचंदन शीतार्थं उपरि जो लेपितऊ,
सो स्तनकहिं परितपै अहेउ अहि-सेवितऊ।
थपी विविधि विलपंतिय जो तहँ हार-लता,
कुसुममाल तेंउ मुंचै ज्वाल तव हुइ सभया" ॥१३५॥

(२) वर्षा-वर्णन

इम तवियउ बहु गिंभु कहवि मइ बोलियउ,
पहिय ! पत्तु पुण पाउसु धिट्ठु ण पत्तु पिउ ।
चउदिसि घोरंधारु पवन्नउ गरुयभरु,
गयणि गुहिरु घुरहुरइ, सरोसउ अंबुहरु ॥१३९॥
बगु मिल्हवि सलिलद्दहु, तरु-सिहरहि चडिउ,
तंडव करिवि सिहंडिहि, वरसिहरिहि रडिउ ।
सलिलिहि वर सालूरिहि, फरसिउ रसिउ सरि,
कलयलु किउ कलयंठिहि, चडि चूयह-सिहरि ॥१४४॥
मच्छरमय संचडिउ रन्नि गोयंगणहि,
मणहर रमियइ नाहु रंगि गोयंगणिहि ।
हरियाउलु धरवलउ कयंबिण महमहिउ,
कियउ भंगु अंगंगि अणंगिण मह अहिउ ॥१४६॥
झंपवि तम वद्दलिण दसह दिसि छायउ अंबरु,
उन्नवियउ घुरहुरइ घोरु घण-किसणाडंबरु ।
णहह मग्गि णहवल्लिय तरल तडयडिवि तडक्कइ,
दद्दुररडणु रउद्दु सद्दु कुवि सहवि ण सक्कइ ।
निवड-निरंतर नीरहर दुद्धर धर धारोहभरु,
कि सहउँ पहिय-सिहरट्ठियइ दुसहउ कोइल रसइ सरु ॥१४८॥
जामिणि जं वयणिज्ज तुअ, तं तिहुयणि णहु माइ ।
दुक्खिहि होइ चउग्गुणी, झिज्जइ सुहसंगाइ ॥१५६॥

(३) शरद्-वर्णन

इम विलवंती कहव दिण पाइउ,
गेउ गिरंत पढंतह पाइउ ।
पिय-अणुराइ रयणिअ रमणीयव,
गिज्जइ पहिय ! मुणिय अरमणीयव ॥१५७॥

(२) वर्षा-वर्णन

"इमि तपिअउ वहु ग्रीष्म सकौं कस बोलियऊ,
पथिक ! अब पुनि पावस डीठ न आँव पियऊ ।
चौदिसि घोरंधार छाय गउ गरुअ-भरो,
गगन-कुहर घुरघुरै सरोषउ अंबुधरो ॥१३६॥
बक छाड़िय सलिलह्रद तरु-शिखरहिँ चढे़ँऊ,
तांडव करिय शिखंडिहि बरशिखरे रटेँऊ ।
सलिलेहिँ वर शालूरेँहि परसेँउ रसेँउ स्वरेँहि,
कलकल किउ कलकंठहिँ चढ़ि आमहि शिखरे ॥१४४॥
मच्छरभय आ-पडेँउ ठाँव गाई-गणहीँ,
मनहर रमिअइ नाथ रंगेँ गोपांगनहीँ ।
हरियावल धरावलय कदम्बन महमहिऊ,
कियउ भंग अंगांग अनंगेहिँ मम अतिहू ॥१४६॥
झाँपी तम-बद्दली दसहु दिशि छाई अंबर,
उट्ठविउ घुरघुरा घोर घन कृष्णाडंबर ।
नभहि मार्ग नभवल्ली तरल तड़तड़ै तडक्कै,
दर्दुर रटन कठोर शब्द कोँइ सहउ न सक्कै ।
निपट निरंतर नीरधर दुर्धर धर धारौघभर,
किमि सहौं पथिक ! शिखरस्थितहूँ कोइल रसै स्वर ॥१४८॥
यामिनि ! जो बचनीय तुव, सो त्रिभुवन न अमाइ ।
दुक्खिहिँ होई चौगुनी, छीजै सुख-संगाहिँ ॥१५६॥

(३) शरद-वर्णन

इमि विलपंति पछिम दिन पायउ,
गीति गयंत पढंतहु प्राकृत ।
प्रिय-अनुरागि रजनि रमणीया,
गीयइ पथिक ! जानि अरमणीया ॥१५७॥

दक्खिण-मग्गु णियंतइ भत्तिहिँ,
दिट्ठ॰ अइत्थिरि सिउ मइ झत्तिहि।
मुणियउ पाउसु परिगमिअउ,
पिउ परएसि रहिउ णहु रमिअउ ॥१५९॥
गय विद्दवि बलाहय गयणिहि,
मणहर रिक्ख पलोइय रयणिहि।
हुयउ वासु छम्मयलि फणिंदह,
फुरिय जुन्ह निसि निम्मल चंदह ॥१६०॥
सोहइ सलिलु सरिहिँ सयवत्तिहि,
विविह तरंग तरंगिणि जंतिहि।
जं हय हीय गिंभि णवसरयह,
तं पुण सोह चडी णव-सरयह ॥१६१॥
धवपिलय धवल संख-संकासिहि,
सोहइ सरह तीर संकासिहि।
णिम्मलणीर सरिहिँ पवहंतिहिँ,
तड रेहंति विहंगम-पंतिहिँ ॥१६३॥
पडिबिंबउ दरसिज्जइ विमलहिँ,
कद्दमभारु पमुक्किउ सलिलहिँ।
सहमि ण कुंज सद्दु सरयागमि,
मरमि मरालगामि णहु तग्गमि ॥१६४॥
अच्छइ जिह नारिहिँ नर रमिरइ,
सोहइ तरह तीर तिह भमिरइ।
बालय वर जुवाण खिल्लंतय,
दीसइ घरिघरि पडह वजंतय ॥१७४॥
दारय कुंडवाल तंडव करि,
भमहि रच्छि वामंतय सुंदर।

दक्षिण-मार्ग देंखन्ती भक्तिहिं,
देखें अगस्त्य ऋषी मैं झट्टिहिं।
जानेंउ सो पावसहिं गमायउ,
प्रिय परदेश रहेंउ ना रमियउ ॥१५६॥
गउ फाटियइ बलाहक गगनेहिं,
मनहर तारक लोकिय रजनिहिं।
हुयो वास भूमितलें फणीन्द्रा,
फुरिय जुन्ह निशि निर्मल चन्द्रा ॥१६०॥
सोहै सलिल सरन शतपत्रेंहिं,
विविध तरंग तरंगिहिं जातेंहिं।
जो हत हती ग्रीष्में नवसरसहि,
सा पुनि शोभा चढी नवसरसहि ॥१६१॥
धवलित धवल-शंख-संकाशेहिं,
सोहै सरहि तीर संकाशेहिं।
निर्मलनीर सरित प्रवहन्तेहिं,
तट शोभन्त विहंगम-पाँतिहिं ॥१६३॥
प्रतिबिंबउ दरसीयत विमले,
कर्दमभार - प्रमुंचित सलिले।
सहौं न क्रौंच-शब्द शरदागमें,
मरौं मरालागम नहिं ताकौं ॥१६४॥
आछै जहँ नारिहिं नर रमिया,
सोहै सरहिं तीर तेहि भ्रमिया।
बालक-वर-युवान खेंल्लन्ते,
दीसै घर - घर पटह बजन्ते ॥१७४॥
दारक कुंडवाल तांडव करि,
भ्रमहिं रथ्यें वादंता सुंदर।

सोहइ सिज्ज तरुणि जण सत्थिहि,
घरि-घरि समियइ रेह परित्थिहि ॥१७५॥
दितिय णिसि दीवालिय दीवय,
णवससिरेह-सरिस करि . लीअय।
मंडिय भुवण तरुण जोइक्खहिं,
महिलिय दिंति सलाइय अक्खिहिं ॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तह कंखिरि अणियत्ति, णियंतो दिसि पसरु,
लइ ढुक्कउ कोसिल्लि हिमंतु तुसारभरु।
हुइय अणायर। सीयल, भुवणिहि पहिय जल,
ऊसारिय सत्थरहु सयल कंदुट्ठदल ॥१८६॥
सेरंधिहिं वणसारु ण चंदणु पीसयइ,
अहरक ओला लंकिहिं मयणु समीसियइ।
सीहंडिहि वज्जियउ घुसिणु तणि लेवियइ,
चंपएलु मियणाहिण सरिसउ सेवियइ ॥१८७॥
धूइज्जइ तह अगरु घुसिणु तणि लाइयइ,
गाढउ निवडालिंगणु अंगि सुहाइयइ।
अन्नह दिवसह सन्निहि अंगुलमत्त हुय,
मह इक्कह परि पहिय ! णिवेहिय वह्म-जुय ॥१८६॥
हेमंति कंत विलबंतियह, जइ पलुट्टि नासासिहसि।
तं तइय मुक्ख खल पाइ. मइ, मुइय विज्ज किं आविहसि ॥१६१॥

(५) शिशिर-वर्णन

इम कट्ठिहिं मइ गमिउ पहिय ! हेमंत-रिउ,
सिसिरु पहुत्तउ धुत्तु णाहु दूरंतरिउ।
उट्ठिउ झखड गयणि खरफरसु पवणिहय,
तिणि सूडिय झडि करि ओरस तहि रुय गय ॥१६२॥

सोहै शय्य तरुणि-जन साथे,
घर - घर सोहै रेख प्रलिप्ते ॥१७५॥
दीयत निशिहिँ दिवाली दीये,
नव-शिखि-रेख-सदृश कर लीये ।
मंडित भुवन तरुण ज्योतिष्कहिँ,
महिला देहिँ सलाई आँखिहिँ ॥१७६॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तिमि उत्कंठि निरन्तर पेखै दिशि पसरी,
ले ढूकेँउ चातुरिहिँ हिमंतु तुषारभरो ।
हुयउ अनादर-शीतल भुवने पथिक ! जल,
अपसारिय सत्थरेहिँ सकल पद्मनउ दल ॥१८६॥
सैरंध्री घनसार न चंदन पीसैहीँ,
अधर कपोलालंकृत मदन समिश्रैहीँ ।
श्रीखंडेँहिँ विवर्जित कुंकुम लेपियहीँ,
चम्प-तैल मृगनाभि सह सेवियहीँ ॥१८७॥
धूंइज्जै तहँ अगर कुंकुम तन लाइयई,
गाढउ निपटालिंगन अंगेँ सुहाइयई ।
अन्यहिँ दिवसहिँ सन्निधि अंगुलिमात्र हुआ,
मैँ एक्कै पर पथिक ! निवेशिय ब्रह्मयुगा ॥१८९॥
हेमंतेँ कन्त ! विलपंतिय, यदि न लवटि आश्वासिही ।
तालेहीँ मूर्ख ! खल ! पापि ! मोही, मरे वैद्य कि आइयही ॥१९१॥

(५) शिशिर-वर्णन

इमि कष्टेँहिँ मम गयउ, पथिक ! हेमन्त-ऋतू,
शिशिर पहूँचेउ धूर्त्त, नाथ दूरन्तरितू ।
उठेँउ झखड़ गगनेँ, खर-परुष पवन-हतेउ,
तेहिँ छूटेँउ झरि करि अशेष तहँ रूप मिटेँउ ॥१९२॥

छाय-फुल्ल-फल-रहिय असेविय सउणियण,
तिमिरंतरिय दिसाय तुहिण धूइण भरिण।
मग्ग भग्ग पंथियह् ण पविसिहि हिमडरिण,
उज्जाणहँ ढंखर छुअ सोसिय कुसुमवण ॥१९३॥
मत्तमुक्क संठविउ'वि वहुगंधक्करिसु,
पिज्जइ अद्धावट्टउ रसियहि इक्ख-रसु।
कुंद चउत्थि वरच्छणि पीणुन्नय-थणिया,
णियसत्थरि पलुटंति केवि सीमंतिणिया ॥१९५॥
केवि दिंति रिउणाहह उप्पत्तिहि दिणहि,
णियवल्लह करि केलि जंति सिज्जासणिहि।
इत्थंतरि पुण पहिय! सिज्ज इक्कल्लियइ,
पिउ पेसिउ मण दूअउ, पिम्म-गहिल्लियइ ॥१९६॥
मइ घणु दुक्खु सहप्पि मुणवि मणु पेसिउ दूअउ,
णाहु ण आणिउ तेण सु पुणु तत्थव रय हूअउ।
एम भमंतह सुन्नहियय जं रयणि विहाणिय,
अणिरइ कीयइ कम्मि अवसु मणि पच्छुत्ताणिय।
मइ दिन्नु हियउ णहु पत्तुपिउ, हुई उवम इहु कहु कवण।
सिंगत्थि गइय उवाडयणि, पिक्ख हराविय णिअ सवण ॥१९९॥

(६) वसंत-वर्णन

गयउ सिसिरु वणतिण दहंतु, महुमास मणोहरु इत्थ पत्तु।
गिरि-मलय-समीरणु णिरु सरंतु, मयणग्गि-विऊयह् विप्फुरंतु ॥२००॥
वहु विविहराइ घण-मणहरेहिँ, सिय सावरत्त-पुप्फंबरेहि।
पंगुरणिहिँ चच्चिउ तणु विचित्तु, मिलि सहियहि गेउ गिरंति णित्तु ॥२०२॥
महमहिउ अंगि वहु-गंधमोउ, णं तरणि पमुक्कउ सिसिर-सोउ।
तं पिक्खिबि मइ मज्झहि सहीण, लंकोंडउ पढिउ नववल्लहीण ॥२०३॥

छाय-फूल-फल-रहित असेवित शकुनि-जनेंहिं,
तिमिरान्तरित दिशाहिं तुहिन - धूँआ - भरिया ।
मार्ग भागु पंथिकन न प्रवसहिं हिमडरिया,
उद्यानहु ढंखर - सम सूखेंउ कुसुम-वन ॥१९३॥
मात्रमुक्त संथपेंउ वहुत - गंधोत्कर्ष,
पीवैं अर्धोच्छिष्ट रसिक (जन) इक्षु-रस ।
कुन्द - चतुर्थि महोत्सवें पीनोन्नत - थनिया,
निज सेजहिं पलोंटंति कोइ सीमन्तनिया ॥१९५॥
कोइ देहिं ऋतुनाथहँ उत्पत्तिहि दिनहीं,
निज-वल्लभ करि केलि जाइँ शय्यासनहीं ।
ऐँहि समये पुनि पथिक ! सेज एकल्लियई,
प्रियें पठयेंउ मन - दूतउ, प्रेम-गहिल्लयई ॥१९६॥
मैं घनि दुःख-सहाप समुझि मन प्रेषेंउँ दूतहँ,
नाथ न आनेउ तिनि सो पुनि तहँवें रत हूओ ।
इमिहिं भ्रमन्तहिं शून्यहृदय जो रजनि विहानी,
अनसोचे किय कर्म अवशि मन पच्छत्तानी ।
मैं दियउ हृदय ना प्राप्त प्रिय, हुइ उपमा ऐँहु कहु कवन ।
श्रृंगार्थ गई गदही (सो पुनि), पेखु हराई निज श्रवण ॥१९९॥

(६) वसंत-वर्णन

गउ शिशिर वन-तृण-दहंत, मधुमास मनोहर इहाँ प्राप्त ।
गिरिमलय-समीरण वहु वहंत, मदनाग्नि वियोगिहँ विस्फुरंत ॥२००॥
वहु विविध-राग-घन-मनहरेहिं, सित-सर्वरक्त-पुष्पांवरेहिं ।
पंगुरणेहिं चर्चित तनु विचित्र, मिलि सखियाँ गावैं गीत नित्य ।२०२॥
महमहेंउ अंगें वहु गंधमोद, जिमि तरणि प्रमुंचेंउ शिशिर-शोक ।
सो पेखिय मैं मध्ये सखीन, लंकोडउ पढेंउ नव-वल्लभीन ॥२०३॥

किंसुयइ-कसिण घणरत्तवास, पच्चक्ख पलासइ धुय-पलास[१] ।
सवि दुस्सह हूय पहंजणेण, संजणिउ असुहुवि सुहंजणेण ॥२०९॥

निवडंत रेणु धर पिंजरीहि, अहिययर तविय णवमंजरीहि ।
मरु सियलु वाइ महि सीयलंतु, णहु जणइ सीउ णं खिवइ तंतु ॥२१०॥

जसु नामु अलिक्कउ कहइ लोउ, णहु हरइ खणद्धु असोउ सोउ ।
कंदप्पदप्पि संतविय अंगि, सोंहरइ णाहु ण आसहर अंगि ॥२११॥

खणु मुणिउ दुसहु जम-कालपासु, वर-कुसुमिहि सोहिउ दस दिसासु ।
गय णिबउ णिरंतर गयणि चूय, णवमंजरि तत्थ वसंत हूय ॥२१५॥

जल-रहिय मेह संतविअ काइ, किम कोइल कलरउ सहण जाइ ।
रमणी-यण रत्थिहि परिभमंति, तूरा-रवि तिहुयण वाहिरंति ॥२१८॥

चच्चिरिहि गेउ झुणि करिवि तालु, नच्चीयइ अउव्व वसंत-कालु ।
घण-निविड-हार परिखिल्लरीहिं, रुणझुण-रउ मेहल-किंकिणीहिं ॥२१९॥

जइ अणक्खरु कहिउ मइ पहिय !
घणदुक्खाउन्नियह मयण-अग्गि विरहिणि पलित्तिहि,
तं फरसउ मिल्हि तुहु विणय-मग्गि पभणिज्ज झत्तिहि ।

तिम जंपिय जिम कुवइ णहु, तं पभणिय जं जुत्तु ।
आसीसिवि वर-कामिणिहि, उवट्ठाऊ पडिउत्त" ॥२२२॥

तं पढ़ुंजिवि चलिय दीहच्छि, अइ-तुरिय,
इत्थंतरिय दिसि दक्खिण तिणि जाम दरसिय,
आसन्न पहाउरिउ दिट्ठु णाहु तिणि झत्ति हरसिय ।

जेम अचिंतिउ कज्जु तसु, सिद्धु खणद्धि महंतु ।
तेम पढंत सुणंतयह, जयउ अणाइ-अणंतु ॥२२३॥

---

[१] "धुतपलाश पलाशवनं पुरः"—माघ कवि

किंशुकहि कृष्ण घनरक्तवर्ण, प्रत्यक्ष परासै[1] घुत परास।
सब दुःसह हुआ प्रभंजनेहिं, संजनेउ असुख हि सुहंजनेहिं ॥२०९॥

भुइँ पडती रेणू पिंजरीहिं, अधिकतर तपी नवमंजरीहिं।
मरु शितल वहै महि शीतलंत, न होइ शीत न नशै ताप ॥२१०॥

जसु नाम अलीकै कहै लोक, ना हरे क्षणार्द्ध अशोक शोक।
कंदर्प-दर्प-संतपित अंग, साहाँरै नाथान सहकार अंग ॥२११॥
क्षण बुझेँउ दुसह यम-कालपाश, बरकुसुमहिं सोहै दश-दिशासु।

गये निविड-निरंतर-गगनें चूत, नवमंजरि तहाँ वसन्त हूअ ॥२१५॥
जल-रहित मेघ सन्तपैं काय, किमि कोइल कल-रव सहेँउ जाय।

रमणी-गण रथ्येँहिं परिभ्रमंति, तूरी-रव त्रिभुवन बधिरयंति ॥२१८॥
चाचरिहिं गीत-ध्वनि करिय ताल, नाचीय अपूर्व-वसंत-काल।

घन-निबिड-हार परिवेष्टितेहि, रुनझुन-रव मेखल-किंकिणीहिं ॥२१९॥

यदि अनक्षर कहेँउँ पथिक ! मैं।
घनदुःखपूर्ण मदनाग्नि विरहेहिं प्रलिप्ता,
सो परुष छोडि विनयमार्ग-मत भणियहु।

तिमि बोलेहु जिमि कोपु नाहि सो बोलेहु जो युक्त।"
आशीषिय बरकामनिहिं, बट्टोही विनियुक्त ॥२२२॥

तेहिं पठाइ चली दीर्घाक्षि अति तुरतैं,
एँहि बिच दिश दक्षिण तेहि याम दरसी,
पास रोकि पथ दीठेँउ नाथ, (तिय) झट हर्षिय।

जिमि अचिंतहु कार्य तसु सिझेँउ क्षणार्ध महन्त।
तैस पढंत सुनन्तयहँ, जयतु अनादि अनन्त ॥२२३॥

---

[1] राक्षस

§ २७. बब्बर

काल—१०५० ई० (कर्ण कलचूरी १०४०–७० ई०)। देश—त्रिपुरी

१–जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबीका जीवन

सिअ विट्ठी किज्जइ, जीआ लिज्जइ, बाला बुड्ढा कंपंता।
बह पच्छा बाअह, लग्गे काअह, सव्वा दीसा झंपंता।
जइ जड्डा रूसइ, चित्ता हासइ, पेटे अग्गी थप्पीआ।
कर पाआ संभरि, किज्जे भित्तरि, अप्पा-अप्पी लुक्कीआ ॥१९५॥ (५४५)
ताव बुद्धि ताव सुद्धि, ताव दाण ताव माण, ताव गव्व,
जाव जाव हत्थ णच्च, विज्जु-रेह-रंग णाइ, एक दब्ब।
एत्थ अंत अप्प-दोस, देव-रोस होइ णट्ठ, सोइ सब्ब;
कोइ बुद्धि कोइ सुद्धि, कोइ दाण कोइ माण, कोइ गव्व ॥११९॥ (५५४)

(२) सुखी जीवन

पुत्त पवित्त बहुत्त धणा, भत्ति कटुंबिणि सुद्ध मणा।
हक्क तरासइ भिच्च-गणा, को कर **बब्बर** सग्ग मणा ॥९५॥ (४०५)
सुधम्म-चित्ता गुणवन्त-पुत्ता, सुकम्म-रत्ता विणआ कलत्ता।
विसुद्ध-देहा धणबंत-गेहा, कुणंति के बब्बर सग्ग-णेहा ॥११७॥ (४३०)
सो माणिअ पुणवन्त, जासु भत्त पंडिअ तणय।
जासु घरिणि गुणवंति, सोवि पुहवि सग्गह णिलअ ॥१७१॥ (२७९)
उच्चउ छाअण विमल घरा, तरुणी घरिणि विणअपरा।
वित्तक पूरल मुद्दहरा, बरिसा समआ सुक्खकरा ॥१७४॥ (२८३)

---

[१] "प्राकृत पैंगल" चन्द्रमोहन घोष द्वारा Biblco thica Indica (1902) में संपादित। जिन कविताओंमें बब्बरका नाम नहीं, वह बब्बरकी हैं, इसमें

§ २७. बब्बर

(चेदी)। कुल--(कर्णका दर्बारी कवि)। कृतियाँ--स्फुट कवितायें[१]

१--जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबीका जीवन

शीँत वृष्टी कीजिय, जीवा लीजिय, बाला-बूढा कंपंता।
वह पछुवाँ वाता, लागे कायहँ, सर्वा दिशा झाँपंता।
यदि जाडा रूपै, चित्ता ह्रासै, पेटे अग्नी थप्पीया।
कर-पादा संहरि, कीजै भीतरि, आपा-अप्पी लुक्कीया ॥१६५॥
तौ लोँ बुद्धी तौलोँ शुद्धी, तौ लोँ दाना तौलोँ माना, तौलोँ गर्वा।
जौलोँ जौलोँ हाथे नाचै, विज्जूरेखारंगा न्याईँ, एका द्रव्या।
एही बीच आत्मदोषेँ, दैव-रोषेँ होइ नष्ट, सोइ सर्व।
कोई बुद्धि कोई शुद्धि, कोई दान कोई मान, कोई गर्व ॥१६६॥

(२) सुखी जीवन

पुत्र पवित्र बहूत धना, भक्ताँ कुटुंबिनि[१] शुद्ध-मना।
हाँके त्रसई भृत्य-गणा, को करेँ बब्बर स्वर्गेँ मना ॥६५॥
स्वधर्म-चित्ता गुणवन्त पुत्ता, सुकर्म-रक्ता विनता कलत्ता।
विशुद्ध-देहा धनवंत-गेहा, करंति के बब्बर स्वर्ग-नेहा ॥११७॥
सो मानिय पुणवंत, जासु भक्त-पंडित तनय।
जासु घरनि गुणवंति, सोउ पुहुमि स्वर्गह निलय ॥१७१॥
ऊँची छाजन वि-मल घरा, तरुणी घरनी विनयपरा।
वित्तकेँ पूरल मूँदघरा, वर्षा समया सुक्खकरा ॥१७४॥

सन्देह है, मगर कर्ण-कालीन जरूर है		[१] भार्या

पिअ-भत्ति पिआ, गुणवंत सुआ।
धण-जुत्त घरा, वहु-सुक्ख-करा ॥४४॥ (३६२)
गुणा जासु सुद्धा, वहू रूअमुद्धा।
घरे वित्त जग्गा, मही तासु सग्गा ॥५३॥ (३६८)
कमल-णअणि, अमिअ-वअणि।
तरुणि घरणि, मिलइ सुपुणि ॥५७॥ (३७१)
गुरुजण-भत्तउ, वहुगुण-जुत्तउ।
जसु जिअ पुत्तउ, सउ पुणवंतउ ॥६१॥ (३७४)
ओग्गर-भत्ता रंभअ-पत्ता, गाइक घित्ता दुध्ध-सँजुत्ता।
मोइल-मच्छा नालिय-गच्छा, दिज्जइ कंता खा पुणवंता॥९३॥(४०३)

२–सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा[1] स्त्री

भोँहा कविला उच्चा निअला, मज्झा पिअला णेत्ता जुअला।
रुक्खा वअणा दंता विरला, केसे जिविला ताका पिअला ॥९७॥ (४०८)

(२) नारी-सौंदर्य

रे धणि ! मत्त-मअंगज-गामिणि, खंजण-लोअणि चंदमुही।
चंचल जोँव्वण जात ण जाणहि, छइल समप्पहि काइ णही ॥१३२॥ (२२७)
सुंदरि गुज्जरि णारि, लोअण दीह-विसारि।
पीण-पओहर-भार, लोलिअ मोत्तिअ-हार ॥१७८॥ (२८६)
हरिण-सरिस्सा णअणा, कमल-सरिस्सा वअणा।
जुवअण-चित्ता-हरिणी, पिय-सहि ! दिट्ठा तरुणी ॥७९॥ (३८९)
चल-कमल-णअणिआ, खलिअ-थण-वसणिआ।
हसइ पर-णिअलिआ, असइ धुअ वहुलिआ ॥८३॥ (३१३)

---

[1] कुरूप भी

प्रिय-भक्त प्रिया गुणवंत सुता ।
धनवंत घरा, बहु सुक्ख-करा ॥४४॥
गुणा जासु शुद्धा, वधू रूप-मुग्धा ।
घरे वित्त जग्गा, मही तासु स्वर्गा ॥५३॥
कमल - नयनि, अमिय - वयनि ।
तरुणि घरनि, मिलै सुपुणि ॥५७॥
गुरुजन - भक्तउ, बहुगुण - युक्तउ ।
जसु जिय पुत्रउ, सोइ गुणवंतउ ॥१६॥
ओगर[1]-भत्ता रंभा-पत्रा, गायके घीवा दुग्ध-संयुक्ता ।
मोंगुर-मच्छा नालिय-शाका, दीजै कांता खाइ पुणवंता ॥६३॥

२—सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा स्त्री

भौंहा कपिला ऊँच लिलारा । माँझे पियरा नेत्रा-युगला ।
रुक्षा वदना दंताविरला । कैसे जीविय ताका प्रियला ॥६७॥

(२) नारी-सौंदर्य

रे धनि ! मत्त-मतंगज-गामिनि, खंजन-लोचनि चंद्रमुखी ।
चंचल-यौवन जात न जानै, छैल समपैं काहे नहीं ॥१३२॥
सुंदरि गुर्जरि नारि, लोचन दीर्घ-विसारि[2] ।
पीन-पयोधर-भार, लोलिय मौक्तिक-हार ॥१७८॥
हरिन-सरीखा नयना, कमल-सरीखा वदना ।
युवजन-चित्ता-हरणी, प्रिय सखि ! दृष्टा तरुणी ॥७६॥
चल-कमल-नयनिया, स्खलित-थन-वसनिया ।
हसै पर-नियरिया, असति ध्रुव बहुरिया ॥८३॥

---

[1] वासमती (?)   [2] विस्तारी

महामत्त-माअंग-पाए ठवीआ, महातिक्ख-बाणा कडक्खे धरीआ।
भुआ पास भोँहा धणूहा समाणा, अहो णाअरी कामराअस्स सेणा ॥२६॥ (४४३)

तुह्र जाहि सुंदरि ! अप्पणा, परितेज्जि दुज्जण थप्पणा।
विअसंत केअइ-संपुडा, णिहु एहु आविह बप्पुडा ॥६१॥ (४०१)

खंजण-जुअल णअण-वर-उपमा, चारु-कणअ-लइ भुअ-जुअ सुसमा।
फुल्ल-कमल-मुहि गअ-वर-गमणी, कासु सुकिअ-फल विहि गढु तरुणी।१५३।(४७७)

तरल-कमल-दल-सरि-जुअ-णअणा, सरअ-समअ-ससि-सुअरिस-वअणा।
मअगल-करि-वर-सअलस-गमणी, कवण सुकिअ-फल विहि गठ रमणी।१६७।(४६६)

पाअ-णेउर[1] झंझणक्कइ, हंस-सद्द-सुसोहणा,
थोर-थोर-थणग्ग णच्चइ, मोँत्ति-दाम-मणोहरा।
वाम-दाहिण-धारि धावइ, तिक्ख-चक्खु-कडीक्खआ,
काहु णाअर-गेह-मंडिणि, एहु सुंदरि पेक्खिआ ॥१८५॥ (५२३)

(३) ऋतु-वर्णन

(क) ग्रीष्म

तरुण-तरणि तवइ धरणि, पवण वहइ खरा,
लग्ग णाहि जल बड मरुथल, जण-जिअण-हरा।
दिसइ चलइ हिअअ दुलइ, हम इकलि बहू,
घर णहि पिअ सुणहि पहिअ ! मण इछइ कहू ॥१९३॥ (५४१)

(ख) पावस

वरिस जल भमइ घण गअण सिअल पवण मणहरण,
कणअ-पिअरि णचइ विजुरि फुल्लिआ णीवा।
पत्थर वित्थर हिअला पिअला णिअलं ण आवेइ ॥१६६॥ (२७३)

णच्चइ चंचल विज्जुलिआ सहि ! जाणएँ,
मम्मह खग्ग, किणीसइ जलहर-साणएँ।

---

[1] नूपुर

महामत्त-मातंग-पादे थपीया, तथा तीक्ष्ण-बाणा कटाक्षे धरीया।
भुजापाश भौंहा धनूहा-समाना, अहो नागरी कामराजाहँ सेना ॥१२६॥
तुहुँ जाहु सुंदरि आपना, परित्यजिय दुर्जन स्थापना[1]।
विकसंत-केतकि-संपुटा, चुप एहु आयहु बापुरा ॥९१॥
खंजन-युगल नयनबर-उपमा, चारु-कनक-लत भुज-युग-सुषमा।
फुल्लकमल-मुखि गजवर-गमनी, कासु सुकृत-फल विधि गढ़ तरुणी ॥१५३॥
तरल-कमलदल-सर-युगनयना, शरद-समय-शशि-सुसदृश-वदना।
मदगल-करिवर-स-अलस-गमनी, कवन सुकृत-फल विधि गढ रमणी ॥१६७॥
पाद-नूपुर झंझनक्कै, हंस शब्द-सुसोहना।
थोर-थोर-थनाग्र नच्चै, मोति-दाम-मनोहरा।
वाम-दाहिन-धारें धावै, तीक्ष्ण-चक्षु-कटाक्षिया।
काह नागर-गेह-मंडनि, एहु सूंदरि पेखिया ॥१८५॥

(३) ऋतु-वर्णन

(क) ग्रीष्म

तरुण-तरणि तपै धरणि, पवन वहै खरा।
लाग नाहिँ जल बड़ मरुथल, जन-जीवन-हरा।
दिश चलै हृदय डुलै, हम ऍकली बधू।
घरें नहिँ पिय सुनहि पथिक ! मन-इच्छै कहू ॥१९३॥

(ख) पावस

बरिस जल भ्रमै घन गगन, शीतल-पवन मन-हरन।
कनक-पियरि नचै बिजुरि, फूलिया निवा।
पत्थर-बिस्तर-हियरा पियरा, नियर न आवई ॥१६॥
नाचै चंचल विज्जुरिया सखि ! जाइ,
मन्मथ - खग्गहँ घरसै जलधर - शानै।

---

[1] मत

फुल्लं कग्रंबग्र ग्रंबर डंबर दीसएँ,
पाउस पाउ घणाघण सुमुहि ! वरीसएँ ॥१८८॥ (३००)
फुल्ला णीबा भम भमरा, दिट्ठा मेहा जल समला।
णच्चे विज्जू पिग्र-सहिग्रा, ग्रावे कंता कहु कहिग्रा ॥८१॥ (३९१)
जं णच्चे विज्जू मेहंधारा, पप्फुल्ला णीवा सद्दे मोरा।
वाग्रंता मंदा सीग्रा वाग्रा कंपंता काग्रा कंता णाग्रा ॥८९॥ (३९९)

(ग) शरद्-वर्णन

णेत्ताणंदा उग्गो चंदा, धवल-चमर-सम-सिग्र-ग्ररविंदा,
उग्गे तारा तेग्रा-सारा, विग्रसु कुमुग्र-वण-परिमल-कंदा।
भासे कासा सव्वा ग्रासा, महुर-पवण लहु-लहिग्र करंता,
हंसा सद्दे फुल्ला बंधू, सरग्र-समग्र सहि ! हिग्र ग्रहरंता।२०५। (५६६)

(घ) शिशिर-वर्णन

जं फुल्लु कमल-वण वहइ लहु पवण, भमइ भमरकुल दिसिविदिसं,
झंकार पलइ वण रवइ कुहिल-गण, विरहिग्र हिग्र हुग्र दर-विरसं।
ग्राणंदिग्र जुग्रजण उलसु उठिग्र मण, सरस, णलिणि-दल किग्र सग्रणा,
पलट सिसिररिउ दिग्रस दिहर भउ, कुसुम-समग्र ग्रवतरिग्र वणा॥२१३॥(५८१)

(क) वसंत-वर्णन

भमइ महुग्रर फुल्ल-ग्ररविंद, नवकेसु काणण जुलिग्र,
सव्वदेस पिक-राव चुल्लिग्र, सिग्रल-पवण लहु वहइ,
मलग्र-कुहर णव-वल्लि पेल्लिग्र।...
चित्त मणोभव सर हणइ, दूर-दिगंतर कंत।
किम परि ग्रप्पउ धारिहउ, ऍम परिपलिग्र दुरंत॥१३५॥ (२३३)
फुल्लिग्र महु भमर वहु रग्रणि पहु किरण लहु ग्रवग्रह वसंत।
मलग्र गिरि कुसुम धरि पवण वह, सहव कत सुणु सहि ! णिग्रल णहि कंत।१६३।(२७०)
चडि चूग्र कोइल-साव, महु-मास पंचम गाव।
मण-मज्झ वम्मह ताव, णहु कंत ग्रज्जवि ग्राव॥८७॥ (३९७)

फुल्ल-कदंबक अंबर-डंबर दीसै,
पावस आउ घनाघन सुमुखि ! वरीसै ॥१८८॥
फुल्ला निंबा भ्रम भ्रमरा, दिट्ठा मेघा जल-श्यामला ।
नाचै विज्जू प्रिय-सखिया ! आवे कंता कहु कहिया ॥८१॥
जो नाचै विज्जू मेघंधारा, प्रप्फुल्ला निंबा शब्दइ मोरा ।
वीजंता मंदा शीता वाता, कंपंता काया कंत न आया ॥८९॥

(ग) शरद्-वर्णन

नेत्रानंदा ऊगो चंद्रा, धवल-चमर-सम सित-अरविंदा ।
ऊगे तारा तेजस्सारा, बिकसु कुमुद-वन-परिमल-कंदा ॥
भासै काशा सर्वा आशा, मधुर पवन लहलहिय करंता ।
हंसा शब्दै फूला बंधू, शरद-समय सखि ! हिय हहरंता ॥२०५॥

(घ) शिशिर-वर्णन

जो फूलु कमल-वन वहै लघु पवन, भ्रमै भ्रमर-कुल दिशिविदिशं ।
झंकार परै वन रवै कोँइल-गण, बिरहिय-हिय हुओँ डर-विरसं ॥
आनंदिय युवजन उलस उठिय मन, सरस-नलिनि-दल कृत-शयना ।
बीतउ शिशिरउ दिवस दिरघ भउ, कुसुम-समय अवतरिय वना ॥२१३॥

(ङ) वसंत-वर्णन

भ्रमै मधुकर फुल्ल-अरविंद, नव-किंशु-कानन ज्वलिया ।
सर्वदेश पिक-राव चुल्लिय, शीँतल-पवन लघु बहै ॥
मलय-कुहर नव-बेलि पेरिय ।
चित्तेँ मनोभव-शर हनै, दूर-दिगंतर कंत ।
किमि परि अपहिँ धारिहउ, इमि परि-पडिय दुरंत ॥१३५॥
फुल्ल मधु, भ्रमर बहु, रजनि-प्रभु-किरण लघु अवतरु वसंत ।
मलयगिरि-कुसुम धरि पवन बह, सहब कत सुनु सखि ! नियर नहिँ कंत ॥१६३॥
चढ़ि चूतेँ कोँइल-शाव मधु-मास पंचम गाव ।
मन-माँझ मन्मथ-ताप, नहिँ कंत आजउ आव ॥८७॥

कश्रा भउ दुव्वरि तेज्जि गरास, खणे खण जाणिश्र दीह णिसास।
कुहू-रव-ताव दुरंत वसंत, कि णिद्दश्र काम कि णिद्दश्र कन्त ॥१३४॥ (४५३)

वहइ दक्खिण-मारुश्र सीश्रला, रवइ पंचम-कोमल कोइला।
महुश्ररा महु-पाण महूसवा, भमइ सुंदरि! माहव संभरा ॥१४०॥ (४६०)

णव-मंजरि लिज्जिश्र चूश्रह गाछें, परिफुल्लिश्र केसु णश्रा वण श्राछे।
जइ एत्थि दिगंतर जाइहि कंता, किश्र वम्मह णत्थि कि णत्थि वसंता ।१४४।(४६५)

जहि फुल्ल किंसु-असोश्र-चंपश्र-मंजुला, सहश्रार-केसर-गंध लुद्धउ भम्मरा।
वहु-दक्ख दक्खिण-वाउ माणह भंजणा, महु-मास आविश्र लोश्र-लोश्रण-रंजणा ॥१६३(४९१)॥

वहइ मलश्र-वाश्रा हंत! कंपंत काश्रा,
हणइ सवण-रंधा कोइला-लाव-बंधा।
सुणिश्र दहदिहासु भिंग-झंकार-भारा,
हणिश्र हणइ हञ्जे! चंड-चंडाल-मारा ॥१६५॥ (४९३)

वहइ मलश्राणिला विरहि-चेउ-संतावणा,
रश्रइ पिक-पंचमा विश्रसु किंसु-फुल्ला वणा।
तरुण-तरु-पल्लवा मउलु माहवी वल्लिश्रा,
वितर सहि! णेत्तश्रा समश्र माहवा[१] पत्त श्रा ॥१७९॥ (५१३)

अमिश्र-कर-किरण धरु फुल्लु णव-कुसुम-वण,
कुविश्र भइ सर ठवइ काम णिश्र धणु धरइ।
रइ पिक समश्र णिश्र कंत तुश्र थिर हिश्रलु,
गमिश्र दिण पुणु ण मिलु जाहि सहि! पिश्र-णिश्रलु ॥१९१॥ (५३७)

जह फुल्ल केश्रइ चारु-चंपश्र-चूश्र-मंजरि-वंजुला,
सव दीसदीसइ केसु-काणण पाण वाउल भम्मरा।
वह पोम्म गंध विवंधु वंधुर मंद मंद समीरणा,
णिश्र केलि-कोतुक-लास-लंगिम लग्गिश्रा तरुणी जणा ॥१९७॥ (५५०)

---

[१] चैत्रमास

काँया-भउ दूबरि त्तेज्जिय श्वास। क्षणे-क्षण जानिय दीर्घ-निश्वास।
कुहू-रव ताप दुरंत बसंत। कि निर्दय काम कि निर्दय कंत ॥१३४॥

वहइ दक्खिन मारुत्त शीतला, रवइ पंचम कोमल कोइला।
मधुकरा मधुपान-महोत्सवा, भ्रमइ सुंदरि! माधव सम्मरा ॥१४०॥

नवमंजरि लिज्जिय चूतह गाछे, परिफुल्लित किशु नवा वन आछे[1]।
यदि आहि दिगंतर जाइब कंता, किअ मन्मथ नाहिं कि नाहि वसंता ॥१४४॥

जहँ फुल्ल किंशु-अशोक-चंपक-मंजुला, सहकार-केसर-गंध-लुब्धउ भ्रम्मरा।
वहुदक्ष दक्षिण-वात मानहुँ भंजना, मधुमास आयउ लोक-लोचन-रंजना ॥१६३॥

वहइ मलय-वाता हंत कंपंत काया।
हनइ श्रवण-रंध्रा कोकिलालाप-बंधा।
सुनिय दशदिशासु भृङ्ग-झंकार-भारा।
हनिय हनै ओरे! चंड-चंडाल मारा ॥१६५॥

वहै मलियानिला विरहि-चेत-संतापना,
रवै पिक पंचमा विकसु किंशु फुल्ला वना।
तरुण-तरु-पल्लवा मुकुलु माधवी-वल्लिया,
वितर सखि! नेत्रवा समय माधवा आइया ॥१७६॥

अमियकर किरण धरु फुल्लु नवकुसुम वन,
कुपित भइ शर थवइ काम निज धनु धरै।
रवइ पिक समय निज कंत तव थिर हृदय,
गयउ दिन पुनि न मिलु, जाहि सखि! पिय-नियर ॥१९१॥

जहँ फूल्ल केतकि चारु-चंपक-चूत-मंजरि-वंजुला,
सब दीस दीसै किंशु कानन प्राण व्याकुल भ्रम्मरा।
वहै पद्म गंध-विबंध-बंधुर मंद-मंद समीरणा,
निज केलि-कौतुक-लास-भंगिम लागिया तरुणी जना ॥१९७॥

---

[1] है

फुल्लिअ केसु चंद तह विअसिय, मंजरि तेज्जइ चूआ;
दक्खिण-वाउ सीअ भइ पवहइ, कंप विओइणि हीआ।
केअइ-धूलि सब्ब दिस पसरइ, पीअर सब्वउ भासे,
आउ वसंत काह सहि ! करिअइ, कंत ण थाकइ पासे ॥२०३॥ (५६३)

(४) वीर-प्रशंसा

सुरअरु सुरही परसमणि, णहि वीरेस समाण।
ओ वक्कल अरु कठिण तणु, ओ पसु ओ पासाण ॥७६॥ (१३६)

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चल गुज्जर कुंजर तेज्जि मही, तुअ **बब्बर** जीवण अज्जु णही,
जइ कुप्पिअ कण्ण-णरेंदवरा, रण को हरि को हर वज्जहरा ॥१३०॥ (४७८)
कण्ण चलंते कुम्म चलइ पुहवि[१] असरणा,
कुम्म चलंते महि चलइ भुअण-भअ-करणा।
महिअ चलंते महिहरु तह असुरअणा,
चक्कवइ चलंते चलइ चक्क तह तिहुअणा ॥९६॥ (१६५)
जे गंजिअ **गोलाहिवइ** राउ, उद्दंड **ओड्ड** जसु भअ पलाउ।
गुरु विक्कम **विक्कम** जिणिअ जुज्झ, ता **कण्ण** परक्कम कोइ बुज्झ ॥१२६॥ (२१६)
जिहि आसावरि देसा दिण्हउ, सुत्थिर **डाहर** रज्जा लिण्हउ।
कालंजर जिणि कित्ती थप्पिअ, धणु आवज्जिअ धम्मक अप्पिअ ॥१२८॥ (२२२)
हणु उज्जर-**गुज्जर**-राअ-कुलं, दल-दलिअ चलिअ **मरहट्ठ**-वलं।
वल मोडिअ **मालव**-राअ-कुला, कुल उज्जल **कलचुलि कण्ण** फुला ॥१८५॥ (२९६)
धिक्क दलण थोंग-दलण तक्क-दलण रिंगए,
णंग-ग-णुकट दिग दुकट रंगल तुरंगए।

---

[१] पृथिवी

फुल्लिअ किंशु चंद्र तिमि विकसिय मंजरि त्याजै चूता।
दक्षिण-वायु शीत-भय प्रवहै, कंप वियोगिनि हीया।
केतकि-धूलि सर्व दिशि प्रसरै, पीयर सर्वंउ भासै।
आउ वसंत काह् सखि ! करिये, कंत न थाके[1] पासे ॥२०३॥

(४) वीर-प्रशंसा

सुर-तरु सुरभी परस-मणि, नहिं बीरेश-समान।
वह बल्कल अरु कठिन-तनु, वह पशु वह पाषाण ॥९७॥

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चलु गुर्जर ! कुंजर त्याजि, मही, तव बर्बर जीवन आज नहीं।
यदि कोपिय **कर्ण**-नरेन्द्रवरा, रणें को हरि को हर-वज्रधरा ॥१३०॥
कर्ण चलंते कूर्म चलै पुहुवि अशरणा,
कूर्म चलंते महि चलै भुवन-भय-करणा।
मही चलंते महिधर तहँ असुरजना,
चक्रवर्त्ति चलंते चलै चक्र तिमि तिभुवना ॥९६॥
जे गंजिअ **गौडाधिपति** राउ, उद्दंड **ओड्** जसु भय पलाउ।
गरु-विक्रम **विक्रम** जिनिहि जुज्झु, तो कर्ण-पराक्रम कोइ बुज्झ ॥२१९॥
जिनि **आसावरि** देशा दीनेंउ, सुस्थिर **डाहर** रज्जा लीनेंउ।
कालंजर जिति कीर्त्ति थापिय, धन आवर्जिय धर्महँ अर्पिय ॥१२८॥
हनु उज्वल **गुर्जर**-राजकुलं, दरदारिय चलिय **मरहट्ठ**-बलं।
बल मोडिय **मालव**, राजकुला, कुल-उज्वल **कलचुरि** कर्ण-फुला ॥१८५॥
थिक्क दलन थोंग दलन तक्क दलन रेंगए,
नं-ननु-कट दिग-दुकट रंग चल तुरंगए।

---

[1] रहै

धूलि धवल हक्क सवल पक्खिपवल पत्तिए,
कण्ण चलइ कुम्म ललइ भुम्मि भरइ कित्तिए ॥२०१॥ (३२२)
जुज्झ भट भूमि पड, उट्ठि पुणु लग्गिआ,
सग्ग-मण खग्ग हण कोइ णहि भग्गिआ।
बीस सर तिक्ख कर **कण्ण** गुण अप्पिआ,
पत्थ तह जोलि दह चाउ सह कप्पिआ ॥१६१॥ (४८८)
सज्जिअ जोह विवड्ढिअ कोह चलाउ धणू,
पक्खर वाह चलू रणणाह कुरंत तणू।
पत्ति चलंत करे धरि कुंत सुखग्गकरा,
कण्ण-णरेंद सुसज्जिअ विंद चलंति धरा ॥१७१॥ (५०२)
कण्ण पत्थ ढुक्कु लुक्कु सूरवाण संहएण,
घाउ जासु तासु लग्गु अंधआर संहएण।
एत्थ पत्थ सट्ठि वाण **कण्ण** पूरि छड्डुएण,
पेक्खि **कण्ण** कित्ति धण्ण वाण सव्व कट्टिएण ॥१७३॥ (५०४)

३—कविका संदेश

(जगत् तुच्छ—)

अइचल जोव्वण देह धणा, सिविणअ सोअर बंधु-अणा।
अवसउ कालपुरी गमणा, परिहर **बब्बर** पाप-मणा ॥१०३॥ (४१४)
ए अत्थीरा देक्खु सरीरा, घरु जाया,
वित्ता, पित्ता, सोअर, मित्ता, सबु माया।
काहे लागी **बब्बर** बेलावसि[1] मुज्झे,
एक्का कित्ती किज्जहि जुत्ती, जइ सुज्झे ॥१४२॥ (४६३)

---

[1] बेलावसि=बाहर निकालते हो (मैथिली क्रि० बैलाएब)

धूलि धवल हाँक सबल पक्षि-प्रबल पत्तिए[1],
कर्ण चलै कूर्म ललै भूमि भरै कीत्तिए ॥२०१॥
जूझ भट भूमि पडु उट्ठि पुनि लग्गिया,
स्वर्ग-मन खङ्ग हन कोइ नाहि भग्गिया।
बीस-शर तक्ष्णि कर **कर्ण** गुणें अप्पिया,
पार्थ तहँ जोरि दश चाप-सह कप्पिया[2] ॥१६१॥
सज्जित योध विवर्द्धित-क्रोध चलाउ धनू,
पक्खर-वाह[3] चलो रणनाथ फुरंत तनू।
पत्ति[1] चलंत करे धरि कुंत सु-खङ्गकरा,
कर्ण-नरेन्द्रें सु-सज्जित-वृन्दें चलंति धरा ॥१७१॥
कर्ण-पार्थ ढुक्कु लुक्कु सूर-वाण-संहतेहिँ,
घाव जासु तासु लागु अंधकार संहतेहिँ।
अत्र पार्थ साठ वाण कर्ण पूरि छाडतेहिँ,
पेखि कर्ण-कीत्तिधन्य वाण सर्व काटियेहिँ ॥१६३॥

३—कविका संदेश

(जगत् तुच्छ—)

अतिचल-यौवन-देह-धना, स्वप्नए सोदर-बंधु-जना।
अवसए काल-पुरी-गमना, परिहर **बब्बर** पाप मना ॥१०३॥
ए अस्थीरा देक्खु शरीरा, घरु जाया,
वित्ता, पित्ता, सोदर, मित्रा, सब माया।
काहे लागी **बब्बर** बैलावसि मुज्झे,
एक्का कीर्त्ती किज्जइ युक्ती, यदि सुज्झे ॥१४२॥

---

[1] प्यादा　[2] काटा　[3] बख्तरदार घोड़ा

§२८. कनकामर मुनि

काल—१०६० ई०(?)। देश—बुंदेलखंड(?)। कुल—ब्राह्मण, दिगंबर

१—भौगोलिक वर्णन

(१) अंग-देश-वर्णन

दीवाण पहाणहिँ दीव-दिवे। जंबू-दुम लंछिएँ जंबुदिवेँ।
वेढिय लवणण्णव वलयमाणेँ। जोयण सय-सहस परिप्पमाणेँ।
वित्थिण्णउ इह सिरि भरह-छेत्तु। गंगाणइ सिंधुहु विप्फुरन्तु।
छक्खंड भूमि रयणहँ णिहाणु। रयणायरोव्व सोहायमाणु।
एत्थत्थि रवण्णउ अंगदेसु। महि-महिलइँ णं किउ दिव्ववेसु।
जहिँ सरवरि उग्गय पंकयाइँ। णं धरणि वयणि णयणुल्लयाइँ।
जहिँ हालिणि[1] रूवणि वद्धणेह। संचल्लहिँ जक्खण दिव्वदेह।
जहिँ बालहिँ रक्खिय सालिखेत्त। मोहेविणु गीयएँ हरिणखेत।
जहिँ दक्खइँ भुंजिवि दुहु मुयंति। थल-कमलहिँ पंथिय सुहु सुयंति।
जहिँ सारणि सलिल सरोय-पंति। अइरेहइ मेइणि णं हँसंति।

(२) चंपानगरी

घत्ता। तहँ देसि रवण्णइँ धण-कण-पुण्णइँ अत्थि णयरि सुमणोहरिया।
जण-णयण-पियारी महियलि सारी, चंपा णामइँ गुणभरिया॥

जा वेढिय परिहा-जलभरेण। णं मेइणि रेहइ सायरेण।
उत्तुंग-धवल कउ सीसएहिँ। णं सग्गु छिवइ बाहू-सएहिँ।
जिण-मंदिर रेहहिँ जाहिँ तुंग। णं पुण्णपुंज णिम्मल अहंग।
कोसेय पडायउ घरि लुलंति। णं सेय-सप्प णहि सलवलंति।

---

[1] देखो स्वयंभू (पृ० ३२), और पुष्पदंत (पृ० १९२ और १९४)

§ २८. कनकामर मुनि

साधु। कृति—करकंड-चरिउ[1]

१—भौगोलिक वर्णन

(१) अंग-देश-वर्णन

द्वीपन कों प्रधानो द्वीप-दीप। जंबुद्रुम-लांछित जंबुद्वीप।
वेठिय लवणार्णव वलयमान। योजन-शत-सहस-परिप्रमाण।
विस्तीर्णउ इह श्रीभरत-छेत्र। गंगानदि-सिंधुउ विस्फुरंत।
छै खंड भूमि रतनहँ निधान। रतनाकर इवँ शोभायमान।
एहिँ अहै रम्य (ऍहु) **अंग**-देश। महि-महिलैं जनु किउ दिव्यवेष।
जहँ सरवरें उग्गैं पंकजाइँ। जनु धरनि-वदनें नयनुल्लयाइँ।
जहँ हालिनि[2] रूप-निबद्ध-नेह। संचल्लैं यक्ष न दिव्यदेह।
जहँ बाला राखिय शालि-खेत। मोहेविय गीतहिँ हरिन खेत।
जहँ द्राक्षइँ भुंजिय दुधु मुँचंति। स्थलकमलहँ पंथिक सुख सोंवंति।
जहँ सरवर-सलिलें सरोज-पंक्ति। अतिराजै मेदिनि जनु हसंति।

(२) चंपानगरी

घत्ता। तहँ देशें रमणयइँ, धन-कण-पूर्णइ, आहि नगरि सुमनोहरिया।
जननयन-पियारी, महियल-सारी, **चंपा** नामइँ गुण-भरिया॥
जा वेठिय परिखा-जल-भरेहिँ। जनु मेदिनि राजै सागरेहिँ।
उत्तुंग-धवल कपि-शीशएहिँ। जनु स्वर्ग छुवै बाहूशतेहिँ।
जिनमंदिर राजैं जाहँ तुंग। जनु पुण्य-पुंज निर्मल अभंग।
कौषेय-पताकउ घरें लुलंति। जनु श्वेत-सर्प नभें सरसरंति।

---

[1] कारंजा जैन-ग्रंथमाला (कारंजा, बरार) में प्रो० हीरालाल जैन द्वारा संपादित (१९३४) [2] हलवाह-वधू

जा पंचवण्ण-मणि-किरण-दित्त। कुसुमंजलि णं भयणेण चित्त।
चित्तलियहिँ जा सोहइ घरेहिँ। णं अमर-विमाणहिँ मणहरेहिँ।
णव-कुंकुम-छडयहि जा सहेइ। समरंगणु मयणहोँ णं कहेइ।
रत्तुप्पलाइँ भूमिहि गयाइँ। णं कहइ धरंती फलसयाइँ।
जिण-वास पुण्ण-माहप्पएण। ण वि कामुय जित्ता कामएण।
घत्ता। तहिँ अरिविद्दारणु, मयतरु-वारणु, धाडी वाहणु पहु हुयउ।
जो कवगुणजुत्तउ, गुरुयणभत्तउ, विज्जासायर पारगउ।

—करकंड-चरिउ, पृ० ४, ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एक्कहिँ दिणि करकंडएण। पुणु दिण्णु पयाणउ तुरियएण।[1]
गउ सिंहलदीवहोँ णिवसमाणु। करकंडु णराहिउ णरपहाणु।
जहि पाउल पिल्लइँ मणुहरंति। सुर-खेयर-किंणर जहिँ रमंति।
गयलीलइँ महिलउ जहिँ चलंति। णियरूवेँ रइरूउवि खलंति।
जहि देक्खिवि लोयहँतणउ भोउ। वीसरियउ देवहँ देवलोउ।
आवासिउ णयरहोँ बहिय एसेँ। अरिसंक पवड्ढिय तहिँ जि देसेँ।
आवासु मुएँवि सहयरसमेउ। करकंडु गयउ रमणिहिँ अमेउ।
तहिँ गरुवउ सवणसएँहिँ भरिउ। णं कप्पवच्छु देवेहिँ धरिउ।
दलवंतहि पत्तहिँ परियरिउ। बड़ु विट्ठु राएँ समु वित्थरिउ।
घत्ता। करकंडेँ पेक्खवि तहोँ वडहोँ, दीहइँ सुट्ठु सुकोमलइँ।
ता लेविणु गुलिया धणुहडिया विद्धाइँ असेसइँ सद्दलइँ॥

—वहीँ पृ० ६४

---

[1] तूर्य=नगाड़ा

जा पंचवर्ण-मणि-किरण-दीप्त । कुसुमांजलि जनु भगणेहिँ[1] क्षिप्त ।
चित्तलियहिँ जा सोहै घरेहिँ । जनु अमर-विमानहिँ मनहरेहिँ ।
नवकुंकुम-छटयेहिँ जा सहेइ । समरांगण मदनहोँ जनु कहेइ ।
रक्तोत्पलाइँ भूमिहिँ गताइँ । जनु कथै धरित्री-फल-शताइँ ।
जिन-वास-पूजा-माहात्म्यएहिँ । नहि कामुक चिता कामएहिँ ।

घत्ता । तहँ अरिविद्दारन, मदतरु-वारन, धाडीवाहन प्रभु हुअऊ ।
जो कविगुण-युक्तउ, गुरुजन-भक्तउ, विद्यासागर-पारगऊ ॥

——करकंड चरिउ , (पृ० ४. ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एकहिँ दिन करकंडएहिँ । पुनि दिन्न प्रयाणहिँ तूर्ययेहिँ ।
गउ सिंहलद्वीपहु निवसमान । करकंड नराधिप नरप्रधान ।
जहँ पावस पिल्ल[2] मनहरंति । सुर-खेचर-किन्नर जहँ रमंति ।
गजलीलहिँ महिलउ जहँ चलंति । निजरूपे रतिरूपहँ खलंति ।
जहँ देखिय लोकहँ केर भोग । वीसरियउ देवहँ देवलोक ।
आवासेँउ नगरहँ वहिप्रदेशेँ । अरि-शंका बाढी ताहि देशेँ ।
आवास छाडि सहचर-समेत । करकंड गयेँउ रमणिहिँ अमेय ।
तहँ गरुअउ लवण शतेँहिँ भरिउ । जनु कल्पवृक्ष देवेँहिँ धरिउ ।
दलवंतहिँ पत्रहिँ परिचरिऊ । वट देखु राव सम-विस्तरिऊ ।

घत्ता । करकंडेहिँ दीसेँउ सो वट, दीरघ सुष्ट सुकोमलइ ।
तो लेइय गोली धनुहडिया, वेँधेँउ अशेषइँ शाद्वलइ ॥५॥

——वहीँ पृ० ६४

---

[1] नक्षत्रमंडल

[2] पक्षी कोई

२—सामन्त-समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँ 'वि लोयहिँ कलियमाणु। गउ सुन्दरु पुरवरें जणसमाणु।

घत्ता। सो पुरवरणारिहि गुणणिलउ पइसंतउ दिट्ठउ णयरे कह।
णं दसरहणंदणु तेयणिहिँ उज्झहिँ सुरणारीहि जहँ॥

तहुँ पुरवरें खुहियउ रमणियाउ। झाणट्ठिय मुणि-मण-दमणियाउ।
कवि रहसइँ तरलिय चलिय णारि। विहडप्फड़ संठिय कावि बारि।
कवि धावइ णव-णिव णेहलुद्ध। परिहाणु ण गलयउ गणइ मुद्ध।
कवि कज्जलु बहलउ अहरें देइ। णयणुल्लयें[1] लक्खारसु करेइ।
णिग्गंथ-वित्ति कवि अणुसरेइ। विवरीउ डिंभु कवि कडिहिँ लेइ।
कवि णेउरु करयलि करइ बाल। सिरु छंडिवि कडियले धरइ माल।
णियणंदणु मण्णिवि कवि वराय। मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय।
कवि धावइ णवणिउ मणें धरंति। विहलंघल मोहइ धर सरंति।

घत्ता। कवि माण-महल्ली मयण-भर, करकंडहों समुहिय चलिय।
थिर थोरय ओहरि मयणयण उत्तत्त-कणय-छवि उज्जलिय॥

णवरज्जलंभ रंजिय हिएण। करकंडइं पुरें पइसंतएण।
गयखंधें चडण्णिय जंतएण। णिउ-राउलु लीलए पत्तएण।
त्तं दिट्ठउ राय-णिकेउ तुंगु। अइमणहरु णं हिमवंत-सिंगु।
मुक्ता-हल-माला-तोरणेहिं। णं विहसइ सियदंतहिँ घणेहि।
किंकिणि रणंतु धयवडउ मालु। णं णच्चइ पणयणि बिहिय-तालु।
चामीय-रमणि-रयणेहिँ घडिउ। णं सग्गहों अमर-विमाणु पडिउ।
तहिँ पइसइ णवणिउ विमलबुद्धि। पारंभिय गुरु-यणु मण-विसुद्धि।
कर हेमकुंभु मंगलु करंति। कवि माणिणि णिग्गयता तुरंति।

---

[1] नयन=नयनुल्ला

२—सामन्त समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँहु लोकहिँ कलितमान[1]। गयो सुन्दर पुरवरे जनसमान[2]।

घत्ता। सो पुरबरनारिहिँ गुणनिलय पइसंता दीठें उ नगरें किमि।
जनु दशरथनंदन तेजनिधि 'योध्या सुरनारीहि जिमि॥

तहँ पुरवरें क्षुभ्यउ रमणियाउ। ध्यान स्थित-मुनि-मन-दमनियाउ।
कोँइ रहसें तरलिय चलिय नारि। हडफड सं-ठिय कोई दुवारि।
कोँइ धावै नव-नृप-नेह-लुब्ध। परिधान न गलियउ गनै मुग्धाँ।
कोँइ कज्जल बहुतो अधर देइ। नयनुल्लैं लाक्षारस करेइ।
निर्ग्रन्थ-वृत्ति[3] कोँइ अनुसरेइ। विपरीत बाल कोँइ कटिहिँ लेइ।
कोँइ नूपुर करतलें करै बाल। शिर छाडी कटितलें धरै माल।
निजनंदन मानिय कोँइ वराकि। मार्जार न फेंकै सानुराग।
कोइ धावै नवनृप मनें धरंति। विह्वलधर मोहै धराँ स्मरंति।

घत्ता। कोँइ मान-महल्ली मदन-भरा, करकंडह सम्मुख चलिया।
स्थिर थोडा अपहरि मदनयना, उत्तप्त-कनक-छवि-उज्ज्वलिया॥

नव-राज्य-लाभ-रंजित-हियेहिँ। करकंडहिँ पुरें पइसंतएहिँ।
गज-कंधे चढिया जंतएहिँ। नृप-राजुल-लीला-प्राप्तएहिँ।
सो देखउ राज-निकेत तुंग। अतिमनहर जनु हिमवंत-शृंग।
मुक्ताफल-माला-तोरणेहिँ। जनु विहसै सित-दंतहिँ घनेहिँ।
किंकिणि रणंत ध्वजपटि'व माल[4]। जनु नाचै प्रणयिनि विहित-ताल।
चामीकर-मणि-रतनेहिँ गढें उ। जनु सर्गहँ अमर-विमान पडें उ।
तहँ पइसै नव-नृप विमल-बुद्धि। प्रारंभिय गुरु-जन मन-विशुद्धि।
कें हेम-कुंभ मंगल करंति। कोइ मानिनि नीसरि गइ तुरंति।

---

[1] सम्मान कृत [2] जनों सहित [3] नंगापन [4] महल

परिमंगलु किउ वर-दीवएहि। जयकारिउ पुणु णारी-सएहि।
सोवण्ण-कलस-कय उच्छवम्मि। पइसारिउ सो णिव-मंदिरम्मि।
घत्ता। सो सयल-गुणायरु सीलणिहि, विणयभाव-संजुत्तउ।
सामंत-मंति-जण-परियरिउ, पुरि अच्छइ[1] रज्जु करंतउ।

—वहीं पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकंडहों उप्परि खेयरासु। अइपउरु पवड्ढिउ णेहु तासु।
पाढाविउ सो णीतिएँ जुयाइँ। वायरण-तक्क-णाडय-सयाइँ॥
कविविरइय कव्वइँ बहुरसाइँ। बच्छायण-गणियइँ णवरसाइँ।
मंताइँ असेसइँ तंतयाइँ। वसियरण सुसोहइँ जंतयाइँ॥
असिचक्क-कुंत-छुरियउ वराउ। धणुवेय—सत्ति-दिढ-तोमराउ।
मल्लाण जुज्झ तणुघट्टणाइँ। उल्ललणइँ वलणइँ लोट्टणाइँ।
फल-फुल्ल-पत्त-छेयंतराइँ। जाणाविउ सयलइँ सुहयराइँ।
पडु-पंडह-मुरय-वीणाइ वंसु। विज्जाइँ असेसइँ कलिउऍसु।
घत्ता। जं किंपि पसिद्धउ भुवणयले, खेयरइँ जणाविउ सो सुरइ।
लोहेण विडंविउ सयलु जणु, भणु किं कर चोज्जइँ णउ करइ॥

—वहीं पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता। हल्लोहलि हूयउ सयलुजणि अपरंपरि जाणइ संचलहि।
हा-हा-रउ उट्ठिउ करुण-सरु, नहों सोए णरवर-सलवलहि॥
जा णर-पंचाणणु वियसिय-आणणु जलि पडिउ।
ता सयलहिँ लोयहिँ पसरिय सोयहिँ अइडरिउ॥
रइवेय सुभामिणि णं फणि-कामिणि विमणभया।
सव्वंगे कंपिय . चित्ते चमक्किय मुच्छगया॥

---

[1] रहता है, है

परि-मंगल किउ बर-दीपकेहिँ । जयकारेँउ पुनि नारी-शतेहिँ ।
सौवर्ण-कलश-कृत उत्सवहीँ । पइसारेँउ सो निजमंदिरहीँ ।
घत्ता । सो सकल-गुणाकर शील-निधि, बिनय-भाव-संयुक्तऊ ।
सामंत-मंत्रि-जन-परिवरिय, पुरि आछै राज्यकरंतऊ ॥

—वहीँ, पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकंडहु-ऊपर खेचराहु । अतिप्रबर प्रबाढेँउ नेह तासु ।
पढयउ सो नीतिय जुताइँ । व्याकरण-तर्क-नाटक-शताइँ ।
कवि-विरचित-काव्यइँ वहु-रसाइँ । वात्स्यायन-गनितइँ नवरसाइँ ।
मंत्राइँ अशेषइँ तंत्रयाइँ । वशिकरण सु-सोहैँ मंत्रयाइँ ।
असि-चक्र-कुंत-छुरियउ बराउ । धनु-वेद-शक्ति दृढ तोमराउ ।
मल्लाहँ युद्ध तनु घट्टनाइँ । उल्ललनैँ वलनैँ लोट्टनाइँ ।
फल-फूल-पत्र-छेकन्तराइँ । जानावेँउ सकलैँ शुभकराइँ ।
पटु-पटह-मुरज बीणाइँ वंशि । विद्याइँ अशेषइँ कपिटएसु[१] ।
घत्ता । जो किछुउ प्रसिद्धउ भुबनतले, खेचरइँ जनायेउ सो सुरति ।
लोभेहिँ विडंबिउ सकल जन, भन की.कर प्रेरणे न करइ ॥

—वहीँ पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता । हल्लाहल हूयो सकल जन, अपरापर जानै संचलही ।
"हा हा" रव उठेँउ करुण-स्वर, पुनि-शोके नरवर कलवलहीँ ॥
जो नर-पंचानन विकसित-आनन जलेँ पडेँऊ ।
तो सकलहिँ लोकहिँ प्रसरित-शोकहिँ अति डरेँऊ ॥
रति-वेग सुभामिनि जनु फणि-कामिनि बिमन-भया ।
सर्वांगे कंपिय चित्तेँ चमक्किय मूर्छंगता ॥

---

[१] मुकुट

किय-चमर-सुवाएँ सलिल-सहाएँ गुणभरिया।
उड्डाविय रमणिहि मुणि-मण-दमणिहि मणहरिया[1] ॥
सा करयल-कमलहिँ सुललिय-सरलहिँ उरु हणइ।
उब्बा-लउणयणी गग्गिर-वयणी पुणु भणइ ॥
"हा वइरिय वइवस पावमलीमस किं कियउ।
मइँ आसिव रायउ रमणु परायउ किं हियउ ॥
हा दइव परम्मुह दुण्णय-दुम्मुह तुहुँ हुयउ।
हा सामि ! स-लक्खण सुट्ठु वियक्खण कहिँ गयउ।
महोँ उपरि भडारा णरवर सारा करुण करि।
दुह-जलहिँ पडंती पलयहोँ जंती णाह धरि ॥
हउँ णारि वराइय आवइँ आइय को सरउँ।
परछंडिय तुम्हहिँ जीवमि एवहिँ किं मरउँ" ॥
इय सोय-विमुद्धइँ लवियउ सद्धइँ जं हियइ।
हउं बोल्लिसु तइयहुं। मिलिहइ जइयहुं मज्झु पइ।

वहीं पृ० ६७

(४) पत्नि-विरह

आवसहो आवइ जाव राउ। मयणावलि णउ पेच्छइ 'वि ताउ ॥
जोइयइ चउदिसु हिययहीणु। उव्वेविरु हिंडइ महिहेँ दीणु ॥
ता संकिउ णरवइ गलिय-गव्वु। "कहिं गउ कलत्तु सव्वंग-भव्वु ॥
मयणावलि जा आणंद-भूअ। सा एवहिँ किं विपरीय हूअ" ॥
ता पेसिय किंकर वर-णिवेण। अवलोयहु सामिणि दिसिवहेण ॥
जोएवि दिसिहिँ आगयवलेवि। पुक्कारहिँ उब्भा-कर करेवि ॥
ता राए देक्खिवि ते सुपंत। परिमुक्क अंसु णयणहिँ तुरंत ॥
"हे पयवइ तुहुँ सवणाणुबंधु। महु अक्खहि सुंदर-णेह-बंधु ॥

---

[1] मण हरिया (=मनहरिया)

क्रत-चमर-सुवातें सलिल-सहायें गुण-भरिया।
उद्धाइय रमणिहिं मुनिमन-दमनिहि मणहरिया॥
सा करतल-कमलहिं सुललित-सरलहिं उर हनई।
उद्-व्याकुल-नयनी गद्गद-वदनी पुनि भनई॥
"हा वैरी बीवस पाप-मलीमस की कियऊ।
मम अहेंउ वराकिउ रमण परायउ की हियऊ॥
हा दैव! पराङ्मुख दुर्नय दुर्मुख तुहुँ भयऊ।
हा स्वामि! सलक्षण सुष्ट विचक्षण कहँ गयऊ॥
मम उपर भटारा[1] नरवर सारा करुण करो।
दुख-जलधि-पडंती प्रलयहँ जांती नाथ धरो॥
हौं नारि वराकी आपति आये को सुमिरऊँ।
पर छाडिय तुम्हहिं जीवौं एवं की मरऊँ॥"
इमि शोक-विमुग्धइं लपियउ क्षुब्धहिं जो हियइं।
हौं बोलेसु तइयहुँ मिलिहै जइहउँ मोर पती॥
वही पृ० ६७

(४) पत्नि-विरह

आवासहों आवई जाव राव। मदनावलि ना पेखेउ ताव॥
जोइयै चतुर्दिश हृदयहीन। उद्वेगिर हिडै महिहें दीन॥
तो शंकेंउ नरवरें गलित-गर्व। कहँ गउ कलत्र सर्वांग-भव्य॥
मदनावलि जा आनंदभूअ। सा एवं की विपरीत हूअ॥
तव प्रेषेउ किंकर वर-नृपेहिं। "अवलोकहु स्वामिनि दिशि-पथेहिं॥"
जोयउ दिसीहिं आगत-वलेइ। पुक्कारहिं ऊँचा कर करेइ।
तब राय देखियउ ते सोंवंत। परि-मुंच अश्रु नयनहिं तुरंत।
"हे प्रजापति तुहुँ श्रवणानुबंध। मोहि आखहु सुंदर-नेह-बंधु।

---

[1] भट्टारक=राजा

हा मुद्धि मुद्धि तुहुँ केण णीय। किं एवहिं लिहक्किवि कहिमि ठीय ॥
हा कुंजर किं तुहुँ जमहों दूउ। किं दोसइँ महों पडिकूलु हूउ ॥
घत्ता। चिरु मोहु वहंतउ कोवि हियइँ, लडह-रूउ अग्गइँ हुयउ।
विज्जाहरु आयउ सोवि तहिं, विज्जासायर पारु गउ ॥

—वही पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवकं। करकंडइ साहिवि महि-सयल, परिपुच्छिउ मइवरु विमलमइ।
भणु सम्मइ मइवर को 'वि णिरु, जो अज्जु'वि दुट्ठउ णवि णवइ ॥
सो मइवरु पभणइ "देव देव। तुह महियलु सयलु'वि करइ सेव।
परि दिविड-देसें णिव अत्थि विट्ठ। ते णमहि ण कासुवि हियइँ दुट्ठ।
सिरि चोडि पंडि णामेण चेर। णउ करहिँ तुहारी देवकेर" ॥
आयण्णि'वि तं चंपाहिवेण। संपेसउ दूयउ तहों खणेण।
"तें जाइवि ते बोडाइ राय। इउ भणिय णवहु करकंड-पाय।"
[1]णिब्भत्थिउ दूयउ तेहिं सोवि। "जिणु मेल्लिवि अण्णुण णवहु कोवि।"
करकंडहों आइवि कहिउ तेण। "णउ करहि सेव तुह किं परेण।"
तं सुणिवि वयणु करकंडु राउ। "जइ देमि ण तहों सिर णियय पाउ।
तो महियल पुत्त इंदिय सुहासु। महों अत्थि णिवित्ति परिग्गहासु।"
एँहु पइज करिवि करकंडएण। लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण।
घत्ता। चंपाहिउ चल्लिउ तहों उवरि, गय चडिवि विणिग्गउ पुरवरहो।
चउरंगइँ सेण्णइँ संजुयउ, सो लीला धरइ सुरेसरहो ॥
तहों जंतहों महि हय-खुरहिँ भिण्ण। गयणंगणि गय-रय-धूम-वण्ण।
पसरंतहि तेहिँ दिग्गाणणाहँ। णं मुहवड्ड किउ दिसिवारणाहँ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरिंद। कंपंत पणट्ठा खे सुरिंद।
दक्खिण-वहे गउ तेरापुरम्मि। तहों दक्खिण-दिसिहि महावणम्मि।

---

[1] डाँटा, फटकारा

हा मुग्धे मुग्धे तुहुँ केहिं नीउ। की एवं लुक्किय कतहुँ ठीय।
हा कुंजर ! की तुहुँ यमहुँ दूत। की दोषहिं मोहि प्रतिकूल हूअ।
घत्ता। चिर मोह वहंतउ कोउ हियहिं, सुँदर रूप अग्रे हुयउ।
विद्याधर आयउ सोउ तहिं, विद्यासागर पार गउ॥

—वहीं पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवक। करकंडेहिं साधिउ महि-सकल, परिपूछेंउ मति वर विमलमति।
"भणु सम्यक् मतिवर कोंउ निश्चय, जो आजउ दुष्टउ नहि नवइ।"
सो मतिवर प्र-भणै "देवदेव। तुहुँ महियल सकलहु करै सेव।
पर द्रविड-देशे नृप अहै धृष्ट। सो नमै न काहुहिं हृदय-दुष्ट।
श्री **चोल पांड्य** नामेन **चेर**। ना करै तुहारी देवकेर।"
सुनि केहू सो चंपाधिपेहिं। संप्रेषेंउ दूतहिं तहँ क्षणेहिं।
"तैं जाइवि तेहि **चोलाधिराज**। इमि भनिवि 'नमहु करकंडपाद'।"
निर्भर्त्स्येंउ दूतउ तेहिं सोउ। "जिन छाडि अन्य ना नमहुँ काहु।"
करकंडहिं आई कहेंउ तेन। "ना करै सेव तव की परेन।"
सो सुनिय वचन करकंडु राव। "यदि देउँ न तेहि शिर निजहि पाव॥
तो महितल-पुत्र-इन्द्रिय-सुहास। मम अहै निवृत्ति-परिग्रहास।"
ऐंहु पइज[1] करेंउ करकंडएहिं। लघु[2] दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिं।
घत्ता। चंपाधिप चल्लेंउ तेहि उपरि, गज चढ़िय नीसरेंउ पुरवरहुँ।
चतुरंगइँ सैन्यइँ संयुतउ, सो लीला धरै सुरेश्वरहुँ॥
तहँ जातेंउ महि हय-खुरेहिं भिन्न। गगनांगने गजरज धूमवर्ण।
पसरंता ते दिश-आननाहुँ। जनु मुख-बंधु किउ दिश-वारणाहुँ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरेंद्र। कंपंत प्रनष्ट रवे[3] सुरेंद्र।
दक्षिणपथें गउ **तेरापुरेइ**। ताँहु दक्षिण-दिशी महाद्रनेइ।

---

[1] प्रतिज्ञा [2] तुरंत [3] आकाश में

आवासिउ तहिँ बलु चाउरंगु। खणे सीहु पुलिंदहँ हुयउ भंगु।
संताडिय दूसय पंचवण्ण। णं अमरगेह-भूमिहि पवण्ण।
गय करिवर लेविणु जलहों मेट्ठ। रासहियहिँ धाविय खर पहिट्ठ।
लोलाविय धय णिव-णरवरेहिँ। महि णच्चइ णं उब्भिय करेहिँ।
घत्ता। आवासिउ अच्छइ जाव तहिँ, करकंड-णराहिउ पउर-बलु।
पडिहारु पराइउ तहो पुरउ, दूराउ णमंतउ हरियमलु।।
—वहीं पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

तं सुणिवि वयणु चंपाहिराउ। सण्णज्झइ ता किर बद्धराउ।
तावेत्तहिं दंतीपुरि-णिवेण। कंपाविय मेइणि मंदरेण।
णिण्णासिय अरि-यण-जीवएण। उड्डाविय दहदिसि रय रणेण।
णहु छायउ [1]खलियउ रविवएण। लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण।
गंगापएसु संपत्तएणु। गंगाणइ दिट्ठी जंतएण।
सा सोहइ सिय-जल कुडिलयंति। ण सेयभुजंगहो महिल जंति।
दूराउ वहंती अइविहाइ। हिमवन्त-गिरिन्दहो कित्ति-णाइं।
विहिँ कूलहिँ लोयहिँ ण्हंतएहि। आइच्चहो जलु परिदिंतएहि।
दब्भंकिय उड्ढहि करयलेहिँ। णइ भणइ णाइँ एयहिँ छलेहि।
"हउँ सुद्धिय णिय-मग्गेण जामि। मा रूसहि अम्हहो उवरि सामि"।
णइ पेक्खिवि णिउ करकंडु णामु। गउ जणण-णयरु गुण-गणिय-धामु।
घत्ता। जे संगरि सुरवर-खेयरहँ, भउ जणियउ धणुहर-मुअस-रहीं।
तं वेढिउ पट्टणु चउदिसिहिँ, गय-तुरय णरिंदहिँ दुद्धरहीं।।
ता हयइँ तूराइँ, भुवणयल पूराइँ।
वज्जंति वज्जाइँ, आणाए घडियाइँ, परबलइँ भिडियाइँ।

---

[1]स्खलित, खंडित

आवासेँउ तहँ बल-चातुरंग। क्षणेँ सिंह पुलिंदहँ भयेँउ भंग।
संताड़िय दुस्सह[1] पंचवर्ण। जनु अमरगेह-भूमिहि प्रपन्न।
गय करिवर लेइय जलहोँ मेँठ[2]। रासभियहिँ धाइय खर प्रहृष्ट।
लोलाइय ध्वज नृपनरवरेहिँ। महि नाचै जनु उत्थित-करेहिँ।
घत्ता। आवासेँउ अच्छइ जब्ब तहँ, करकंड-नराधिप पौरबल।
प्रतिहार पर्-आयेँउ तेँहि पुरउ, दूराउ नमंतउ हरियमल ॥
—वहीँ पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

सो सुनिय वचन **चंपाधिराज**। सन्नाहेँ तो फुरि वद्ध-राग।
तब्बै तहँ **दंतीपुर**-नृपेहिँ। कंपाइय मेदिनि मंदरेहिँ।
निर्-नाशिय अरिजन-जीवितेहिँ। उड्डाविय दश-दिशि रज रणेहिँ।
नभ छायउ खलियउ रविपदेहिँ। लघु दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिँ।
गंगा - प्रदेश संप्राप्तएहिँ। गंगानदी देखेँउ जांतएहिँ।
सो सोहै सित-जल-कुटिल-पंक्ति। जनु श्वेतभुजंगह महिलों जंति।
दूराउ वहंती अति-विभाइ। हिमवन्त-गिरीन्द्रह कीर्त्ति-न्याइँ।
दोँउ कूलहँ लोगहि न्हांतएहिँ। आदित्यहँ जल परि-देंतएहिँ।
दर्भांकित उड्डा-करतलेहिँ। नदि भनै न्याइँ एतहिँ छलेहिँ।
"हउँ केवल निजमार्गेहिँ जाउँ। ना रूसहु हम्महँ उपर स्वामि"।
नदि पेखिय नृप करकंड-नाम। गउ जनन-नगर गुण-गणिय धाम।
घत्ता। जो संगर सुरवर-खेचरहँ, भय जनियउ धनुधर-मुच-शरहीँ।
सो बेठेँउ पाटन चउदिशिहिँ, गज-तुरग नरिंद्रेहिँ दुर्धरहीँ ॥
तब हयइँ तूराइँ, भुवन - तल - पूराइँ।
बाजंति बाजाइँ, आनाद-घटिताइँ। पर-बलहिँ भिड़ियाइँ।

---

[1] दुशाले   [2] महावत

कुंताइँ भज्जंति, कुंजरइ गज्जंति । रहसेण वग्गंति, करि-दसेण लग्गंति ।
गत्ताइँ तुट्टंति, मुंडाइँ फुट्टंति । सुंडाइँ धावंति, अरिथाणु पावंति ।
अंताइँ गुप्पंति, रुहिरेण थिप्पंति । हड्डाइँ मोडंति, गीवाइँ तोडंति ।
घत्ता । केवि भग्गा कायर जेवि णर, केवि भिडिय केवि पुणु ।
खग्गुग्गामिय केवि भड, मंडेविणु थक्का केवि रणु ॥

—वही पृ० २८-३१

३—कविका संदेश[1]

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकंड सुणेविणु तं वयणु, अत्थाणहों उट्ठिउ तक्खणिण ।
गउ सत्तपयइँ मउलेवि कर, सुमरंतउ मुणिवरपय मणिण ॥
ता आणंदभेरि तुरंतएण । देवाविय तुट्ठइँ राणएण ।
तहे णद्दु सुणेविणु लद्धभोय । परिमिलिय खणद्धे भविय लोय ।
कवि माणिणि चल्लिय ललिय देह । मुणि-चरण-सरोयहँ बद्धणेह ।
कवि णेउर सद्दे रणझणंति । संचल्लिय मुणि-गुण णं थुणंति ।
कवि रमणु णं जंतउ परिगणेइ । मुणि-दंसणु हियवएँ सइँ मुणइ ।
कवि अक्खयधूव भरेवि थालु । अइरहसइँ चल्लिय लेवि बालु ।
कवि परिमलु वहलु वहंति जाइ । विज्जाहरि णं महियलि विहाइ ।
घत्ता । काइवि छण ससहर-आणणिया, करे कमलकरंती संचलिया ।
आणंदिय भेरिहे सुणिवि सुरु, लहु भवियण सयलवि तहिँ मिलिया ।
जिणिंद-धम्म-रत्तओ, मुणिंद - पाय - भत्तओ ।
सुवण्णकंति - दित्तओ, सरोय - पत्त - णेत्तओ ।
पलंब - पीण - हत्थओ, बिबुद्ध - सव्व - सत्थओ ।
विसुद्ध-सन्धि-गत्तओ, खणेण जाव पत्तओ ।

---

[1] गयेउ

कुंताइँ भज्जंति । कुंजरइ गर्जन्ति । रथसेन वल्गंति । करि-दशन लग्गंति ।
गात्राइँ टूटंति । मुंडाइँ फूटंति । रुंडाइँ धावंति । अरि-थान पावंति ।
अंत्राइँ गोपंति । रुधिरेहिँ थप्पंति । हड्डाइँ मोडंति । ग्रीवाइँ तोडंति ।
घत्ता । केँऊ भग्ग कायर जेउ नर, केँउ भिड़िया केउ पुनि ।
खड्ग उट्ठाइय कोउ भट, मँडियउ थाकेँउ केउ रणेँ ।।

—वहीँ पृ० २८-३१

३—कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकंडू सुनीया सो वचन । आस्था[1]नहँ उट्ठेँउ तत्-क्षणहीँ ।
गउ सप्तपदे मुकुलित-कर, सुमिरंतउ मुनिवर-पद मनहीँ ।।
तव आनँदभेरि तुरंतएहिँ । देवायउ तुष्टहिँ राणएहिँ ।
तहँ नष्ट सुनीया लब्ध-भोग । परिमिलेउ क्षणावेँ भाँवुक लोग[2] ।
कोँइ मानिनि चल्लिय ललित-देह । मुनि-चरण-सरोजहँ बद्ध-नेह ।
कोँइ नुपुर-शब्देँ रुनभुनंति । सं-चल्लिय मुनि-गुण जनु स्तुवंति ।
कोँइ रमण न जातउ परि-गनेइ । मुनि-दर्शन-हिय पद स्वयँ जनेइ ।
कोँइ अक्षय-धूप भरीय थाल । अति रभसैँ चल्लिय लेइ बाल ।
कोँइ परिमल-बहुल बहंति जाइ । विद्याधरि जनु महितलेँ विहारि ।
घत्ता । काहुउ क्षण शशधर-आनननिया, करेँ कमल करंती संचलिया ।
आनंदिय भेरिहि सुनिय स्वर, लघु भविजन[3]सकलउ तहँ मिलिया ।।
जिनेंद्र-धर्म-रक्तओ । मुनींद्रपाद-भक्तओ ।
सुवर्ण-कांति-दीप्तओ । सरोजपत्र-नेत्रओ ।
प्रलंब-पीन-हस्तओ । विबुद्ध-सर्व-शास्त्रओ ।
विशुद्धि-संधि-गात्रओ । क्षणेहिँ जाव प्राप्तओ ।

---

[1] दर्बार　[2] जैन भक्त　[3] भक्त

तहिं पि ताव दिट्ठिया, भणंति हा पमूठिया।
पुरंधि[1] काबि दुक्खिया, हणंति दोवि कुक्खिया।
रुवंति अंसु वाहुलं, जणाण दुःख-सकुलं।
कुणंति चित्तु आउलं, धरंति वेसु वाउलं।
घुलंति जावि मुच्छए, पडंति भू-पएसए।
सुणेवि तं णरेसरो, सुवारणि-द्धणीसरो।
घत्ता। करकंडइ पुच्छिउ कोवि णरु, ऍह णारि वराई किं रुवइ।
विलवंती हियवइँ मुहु करइ, अप्पाणउ विहलंघल मुअइ॥
—वही पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

तं सुणिवि वयणु रायाहिराउ। संसारहो उवरि विरत्त-भाउ।
धी धी असुहावउ मच्च-लोउ। दुहु कारणु मणुरहँ अंग-भोउ।
रयणायर-तुल्लउ जेत्थु दुक्खु। महुबिंदु-समाणउ भोय-सुक्खु।
घत्ता। हा माणउ दुक्खइं तडढ-तणु, बिरसु रसंतउ जहिं मरइ।
भण णिग्घिणु विसयासत्त-मणु, सो छंडिवि को तहिँ रइ करइ॥
कम्मेण परिट्ठिउ जो उवरे। जम-रायए सोणिउ णिययपुरे।
जो बालउ बालहि लावियउ। सो विहिणा णियपुरि चालियउ।
णव-जोव्वणि चडियउ जो पवरु। जमु जाइ लएविणु सोजि णरु।
जो बूढउ वाहि-सएहि कलिउ। जमदूयहिँ सो पुणु परिमलिउ।
वहलद्दएं सहु हरि अतुलबलु। सो विहिणा णीयउ करिवि छलु।
छक्खंड वसुन्धर जेहि जिया। चक्केसर[2] ते कालेण णिया।
विज्जाहर किणर जे खयरा। बलवंता जम-मुहे पडिय सुरा।
फणिणाहइ सरिसउ अमर-वइ। जमु लिंतउ कवणु वि णउ मुअइ।

---

[1] स्त्री [2] चक्रवर्ती

तहाँउ तव्व दिट्ठिया । भनंति "हा" प्रमुड्ढिया ।
पुरंध्रि काउ दुःखिया । हनंति दोउ कुक्षिया ।
रोवंति अश्रु-वाहुलं । जनाइ दुःख सकुलं ।
करेइं चित्त आकुलं । धरंति वेष वाउरं ।
घुरंति जा विमूढिया । पडंति भू-प्रदेशए ।
सुनीय सो नरेश्वरो । सुवारुणी धनीश्वरो ।

घत्ता । करकंडइ पूछेंउ कोइ नर, एहु नारी बराकी का रोवैं ।
विलपंती हियइँ दुहू करहिं, अप्पानउ विह्वलता मुंचैं ॥

—वहीं पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

सो सुनिय वचन राजाधिराव । संसारहँ उपर विरक्त-भाव ।
'धिक धिक [1]असोंहावउ मर्त्यलोक । दुख-कारण मनोंरथ-अंग-भोग ।
रतनाकर-तुल्यउ यत्र दुःख । मधुबिंदु-समानो भोग-सुक्ख ।

घत्ता । हा मानव दुःखइँ स्तब्ध-तन, विरस हसंतउ जहँ मरै ।
भन निर्घृण विषयासक्त मन, सो छाडिय को तहँ रति करै ॥

कर्मेहिं परिट्-ठिउ जो उबरे । यमराजेहिं सो लेइ निजय-पुरे ।
जो बाल्येहिं बालउ लालियऊ । सो विधिना निजपुरें चालियऊ ।
नवयौवन चढियउ जो प्रवरू । यम जाइ लिवावन सोउ नरू ।
जो बूढउ व्याधिशतेंहिं कलिऊ । यमदूतहिं सो पुनि परिमर्दिऊ ।
बलभद्रहु सम हरि अतुल-बलू । सो विधिना लीयउ करिय छलू ।
छै-खंड वसुन्धर जेउ जिया । चक्रेश्वर ते कालेहिं लिया ।
विद्याधर किन्नर जे खचरा । बलवंता यम-मुखें पड़ेंउ सुरा ।
फणिनाथैं सरिसउ अमर-पती । यम लेतउ कवन न ना मुवई ।

---

[1] अशुभावह या अस्वभाव

घत्ता । णउ सोसिउ बंभणु परिहरइ, णउ छंडइ तवसिउ ताव-ठियउ ।
धणवंतु ण छुट्टइ णवि णिहणु, जह काणणे जलणु समुट्ठियउ ।
दइवेण विणिम्मिउ देहु जंपि । लायण्णउ मणुवहँ थिरु ण तंपि ।
णव-जोव्वणु मणहरु जं चडेइ । देवहि वि ण जाणिउ कहिँ पडेइ ।
जे अवर सरीरहिँ गुण वसंति । णवि जाणहुँ केण पहेण जंति ।
ते कायहोँ जइगुण अचल होंति । संसारहँ विरइँ ण मुणि करंति ।
करि-कण्ण जेम थिर कहिँ ण थाइ । पेक्खंतहँ सिरि णिण्णासु जाइ ।
जह सूयउ करयलि थिउ गलेइ । तह णारि विरत्ती खणि चलेइ ।
भू-णयण-वयण-गइ कुडिल जाहँ । को सरल करेवइँ सक्कु ताहँ ।
मेल्लंती ण गणइ सयण इट्ठु । सा दुज्जण-मेत्ति'व चल णिकिट्ठु ।
घत्ता । णिज्झायइ जो अणुवेक्ख चल, वइरायभाव संपत्तउ ।
सो सुरहरमंडणु होइ णरु, सुललिय-मणहर-गत्तउ ॥
संसार भमंतहँ कवणु सोक्खु । असुहावउ पावइ विविहु दुक्खु ।
णरयालइँ णाणा णारएहिँ । चिरकियहिँ णिहम्मइ वइरएहिँ ।
हियएण'वि चिंतहुँ सक्कियाइँ । तहिँ भुत्तइँ पवरइँ दुक्कियाइँ ।
अवरुप्परु जाइ विरुद्धएहि । तिरियाण मज्झे उप्पण्णएहि ।
मुहबंधण-छेयण-ताडणाइँ । पावीयहिँ तेहिँ तणु-फाडणाइँ ।
मणुयत्तणे माणउ परिमलंतु । परिभिज्जइ णियमणे सलवलंतु[1] ।
सुरलोएँ पवण्णउ णट्ठबुद्धि । मणि झिज्जइ देक्खिवि परहोँ रिद्धि ।
णउणारि जेम रूवइँ करेइ । तिम जीउ-कलेवर सइँ धरेइ ।
घत्ता । संसारहँ उवरि णिहालणउ, किउ जेण णरेण कयायरेण ।
भणु काइँ ण लद्धउ तेण जइ, पवर रयण रयणायरेण ॥
जीवहोँ सुसहाउ ण अत्थि कोवि । णरयम्मि पडंतउ धरइ जोवि ।
सुहि सज्जण-णंदण इट्ठु-भाव । णवि जीवहोँ जंतहोँ ए सहाय ।

---

[1] हड़बड़ाता

घत्ता। ना श्रोत्रिय ब्राह्मण परिहरई। ना छाडै तपसिउ तपें थितऊ।
धनवंत न छुट्टइ ना निधनू, जिमि काननें ज्वलन समुत्थितऊ॥

दैवेन विनिर्मेउ देह जोँउ। लावण्यउ मनुजहँ थिर न सोँउ।
नवयौवन मनहर जो चढेइ। देवहुँउ न जानेँउ कहँ पडेइ।
जो अवर शरीरहिँ गुण वसंति। ना जानहु केन पथेन जंति।
सो कायहु यदि गुण अचल होंति। संसारहु विरति न मुनि करंति।
करि-कर्ण जेम थिर कहुँ न थाइ[1]। पेखंतहँ श्री निर्-नाश जाइ।
जिमि सूतउ[2] करतलें ठिउ गलेइ। तिमि नारि-विरक्ती क्षणें चलेइ।
भ्रू-नयन-वदन-गति-कुटिल जाहु। को सरल करावन सक्क ताहु।
छोडंती न गनै स्वजन-इष्ट। सा दुर्जन मैत्रि'व चल निकृष्ट।

घत्ता। निज्-भंखै जो अनुपेख चल, वैराग्य-भाव-संप्राप्तऊ।
सो सुरघर-मंडन होइ नर, सुललिय-मनहर-गात्रऊ।

संसार भ्रमंतहँ कवन सुक्ख। असुहावउ पावै विविध-दुःख।
नरकालय नाना नारकेहिँ। चिरकृतहिँ निहन्यै वैरएहिँ।
हृदयेउ न चिंतन सक्कियाइँ। तहँ भोगैं अवरइँ दुःखियाइँ।
अपरापर जाति विरुद्धएहि। तिर्यञ्च-माँझ उत्पन्नएहि।
मुख-बंधन-छेदन-ताडनाइँ। पावीयहिँ तहँ तन-फाडनाइँ।
मनुजत्तने मानव परि-मलंत। परि-भंखै निजमनें खलबलंत।
सुरलोकें अवर्णउँ नष्ट-बुद्धि। मनें खीझै देखि पराइ ऋद्धि।
नवनारि जेम रूपइँ करेइ। तिमि जीव कलेवर-शत धरेइ।

घत्ता। संसारहु उपर निहारनउ, किउ जोँउ नरेउ कृतादरहीं।
भन काइँ न लब्धउ सोइ यदी, प्रवर-रतन रतनाकरहीं।

जीवहु सुस्वभाव न अहै कोँउ। नरक काहँ पडंत धरै जोउ।
सुखि सज्जन नंदन इष्ट भाय। ना जीवहँ जाते होँइ सहाय।

---

[1] रहै [2] पारा

णिय जणणि जणणु रोवंतयाइँ। जीवें सहुँ ताइँ ण पउ-गयाइँ।
धणु ण चलइ गेहहों एक्कुपाउ। एक्कल्लउ भुंजइ धम्मु पाउ।
तणु जलणि जलंतइ परिवडेइ। एक्कल्लउ वइवस धरि चडेइ।
जहिँ णयण-णिमेसु ण सुहु हवेइ। एक्कल्लउ तहिँ दुहुँ अणुहवेइ।
अहि-णउल-सीहि-वणयरहँ मज्झे। उप्पज्जइ एक्कुवि जिउ असज्झे।
सुर-खेयर-किणर-सुहयगाम। तहिँ भुंजइ एक्कुवि जियइ जाम।

—वहीं पृ० ८२-८५

§ २९. जिनदत्त सूरि

काल—११००(१०७५–११५४)ई०। देश—धवलक(धोलका) गुजरात। कुल—

१—जिन-वंदना

पणमह पास-वीर-जिण भाविण। तुम्हि सव्वि जिव मुच्चहु पाविण।
घर-ववहारि म लग्गा अच्छह। खणि-खणि आउ गलंतउ पिच्छह॥[1]

—उवएस-रसायण[1]

२—गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमिवि जिणेसर-धम्मह, तिहुयण-सामियह।
पायकमलु ससिनिम्मलु, सिवगयगामियह॥
करिमि जइट्ठिय गुणथुइ, सिरि जिणवल्लहह।
जुग-पवरागम-सूरिहि, गुणगण-दुल्लहह॥१॥

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अपमाणु पमाणइ, छद्दरिसण-तणइ।
जाणइ जिव नियनामु, न तिण जिव कुवि घणइ॥

---

[1] वहीं

निज जननि-जनक रोवंतयाइँ। जीवेँ सँग ताहु न पद-गयाइँ।
धन न चलै गेहहँ एक पाव। एकल्लै भोगै धर्म्म-पाप।
तनु ज्वलनेँ ज्वलंतइ परि-पडेइ। एकल्लै बरबस धरि चढेइ।
जहँ नयन-निमेष न सुख हवेइ। एकल्लै तहँ दुख अनुभवेइ।
अहि-नकुल-सिंह-वनचरहँ माँझ। उप्पज्जै एकइ जिव अ-साझ।
सुर-खेचर-किन्नर सुखद-ग्राम। तहँ भोगै एकै जियै जाम[1]।

—वहीँ पृ० ८२-८५

§ २९. जिनदत्त सूरि

हुंडब-वणिक्, जैन साधु। कृतियाँ—चाचरि[२], उवएसरसायण[२], कालस्वरूप-कुलक[२]।

१—जिन-वंदना

प्रणमहु पार्श्व-वीर-जिन भावेँहिँ। तुम्म सर्वजिव मोचहु पापेँहिँ।
घर-व्यवहार न लागे रहा। क्षण-क्षण आयु गलंतउ पेखा। ।१।।

—उपदेश-रसायन

२—गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमवि जिनेश्वर-धर्महँ, त्रिभुवन-स्वामियहा।
पाद-कमल शशि-निर्मल, शिवगति-गामियहा।।
करउँ यथा स्थिति गुण-'थुति, श्री जिनवल्लभहा।
युग-प्रवर-गम-सूरिह, गुण-गण दुर्लभहा।।१।।

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अप्रमाण प्रमाणै, छै दर्शन-तनई।[३]
जानै जिव निज नाम, न तेँन जिंव कोँइ हनई।।

---

[1] जबं लों [2] Gaikwad's Oriental Series 1927, Vol. XXXVII "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" [3] तन=केर, का

परु - परिवाइ - गइंद - वियारण - पंचमुहु ।
तसु गुणवन्नणु करण, कु सक्कइ इक्कमुहु ॥२॥
जो वायरणु वियाणइ, सुहलक्खण-निलउ ।
सद्दु असद्दु वियारइ, सुवियक्खण-तिलउ ॥
सुच्छंदिण वक्खाणइ, छंदु जु सुजइमउ ।
गुरु लहु लहि पइठावइ, नरहिउ विजयमउ ॥३॥
कव्वु अउव्वु जु विरयइ, नव-रस-भर-सहिउ ।
लद्धपसिद्धिहिँ सुकइहिँ, सायरु जो महिउ ॥
सुकइ **माहु**ंति पसंसहिँ, जे तसु सुहगुरुहु ।
साहु न मणहि अयाणुय, मइ जियसुरगुरुहु ॥४॥
कालियासु कइ आसि, जु लोइहिँ वन्नियइ ।
ताव जाव **जिणवल्लहु**, कइ ना अन्नियइ ॥
अप्पु चित्तु परियाणहि, तंपि विसुद्धनय ।
तेवि चित्तकइराय, भणिज्जहि मुद्धनय ॥५॥
सुकइ विसेसिय वयणु, जु [1]**वप्पइराउकइ** ।
सुवि **जिणवल्लह** पुरउ, न पावइ कित्ति कइ ॥
अवरि अणेय विणेयहि, सुकइ-पसंसियहिँ ।
तक्कव्वामयलुद्धिहिँ, निच्चु नमंसियहिँ ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जिण कय नाणा चित्तइँ, चित्त हरंति लहु ।
तसु दंसणु विणु पुन्निहिँ, कउ लब्भइ दुलहु ।
सारइँ बहु थुइ-थुत्तइ, चित्तइँ जेण कय ।
तसु पयकमलु जि पणमहि, ते जण कय-सुकय ॥७॥

---

[1] "गउडबहो" (प्राकृत महाकाव्य) के रचयिता

पर - परिवाद - गयंद - विदारण पंच - मुखू ।
तॉसु गुण वर्णन करण, कों सक्कै एक-मुखू ॥२॥
जो व्याकरण वि-जानै, शुभलक्षण-निलयू ।
शब्द-अशब्द विचारै, सु-विचक्षण-तिलकू ॥
सुच्छंदेन बखानै, छंद जों सुयति-मयू ।
गुरु लघु लेंइ पइठावै, नर-हिय विजय-मयू ॥३॥
काव्य अपूर्व जों विरचै, नव-रस-भर-सहितो ।
लब्ध-प्रसिद्धिहिं सुकविहँ, सागर जो मथितो ॥
सुकवि **माघ**'ति प्रशंसैं, जे तॉसु शुभ-गुरुहो ।
साधु न मनहि अजानय, मैं जित-सुरगुर-हो ॥४॥
कालिदास कवि अहेंउ, जों लोकेहि वर्णियऊ ।
सो जितनो **जिनवल्लभ**-,कवि ना अन्ययऊ ॥
आपु चित्त परि-जानै, सोउ विशुद्ध-नय ।
तोउ चित्र कविराय, भनिज्जै मूर्धनय ॥५॥
सुकवि-विशेषित-वचन, जों **वाक्पतिराज** कवी ।
सोंउ जिनवल्लभ समुंह, न पावै कीर्त्ति कवी ॥
अवर अनेकानेक. . .हि सुकवि प्रशंसियही ।
तत्काव्यामृतलुब्धेंहिं, नित्य नमंसियही ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जो कृत-नाना - चित्रइँ, चित्त-हरंति लघू[१] ।
तॉसु दर्शन विनु पुण्यहिं, को लब्भै दुलभू ॥
सारइँ वहु-'थुति-'थुत्तै, चित्तैं जेहिं कृत ॥
तॉसु मदकमल जें प्रणमै, ते जन कृत-सुकृता ॥७॥

---

[१] तुरंत

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जहि सावय तं बोलु न भक्खहि, लिंति नय ।
जहि पाण-हिय धरंति, न सावय-सुद्धनय ॥
जहि भोयणु न सयणु, न अणुचिउ बइसणउ ।
सह पहरणि न पवेसु, न दुट्ठउ बुल्लणउ ॥२१॥
जहि न हासु नवि हुड्ड, न खिड्डु न रूसणउ ।
कित्ति निमित्तु न दिज्जइ, जहिँ धण अप्पणउ ॥
करहि जि बहु आसायण, जहिँ तिन मेलियहि ।
मिलिय ति-केलि करंति, समाणु महेलियँहिँ[१] ॥२२॥
जहिँ संकंति न गहणु, न माहि न मंडलउ ।
जहँ सावयसिरि दीसइ, कियउ न विटलउ ॥
ण्हवणयार जण मिल्लिवि, जहि न विभूसणउ ।
सावयजणिहि न कीरइ, जहि गिह-चित्तणउ ॥२३॥
जहिँ न अप्पु वन्निज्जइ, परु वि न दूसियइ ।
जहि सग्गुणु वन्निज्जइ, विगुणु उवेहियइ ॥
जहि किर वत्थु-वियारणि, कसु वि न वीहियइ ।
जहि जिणवयणुत्तिन्नु, न कहवि पयंपियइ ॥२७॥. . . .
इह अणुसोय पयट्टह, संख न कुवि करइ ।
भवसायररिति पडंति, न इक्कु वि उत्तरइ ॥
जे पडिसोय पयट्टहि, अप्पवि जिय धरइ ।
अवसय सामिय हुंति ति, निव्वुइ पुरवरइ ॥३१॥
तसु पयपंकउ धुन्नहि, पाविउ जण-भमरु ।
सुद्ध नाण-महुपाणु, करंतउ हुइ अमरु ॥

---

[१] मेहरी, महिला

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जाँसु श्रावक[1] सो बोल न भाखैं, लिप्तन या ।
जाँसु प्राण हित धरंति, न श्रावक शुद्ध-नया ॥
जाँसु भोजन न शयन, न अनुचित वइसनऊ ।
सँग प्रहरणें न प्रवेश, न दुष्टउ बोलनऊ ॥२१॥
जहँ न हास ना हुड्ड, न खेल न रूसनऊ ।
कीर्त्ति-निमित्त न दीजै, जहँ धन आपनऊ ॥
करैं भि बहु-आस्वादन, जहँ तुण मेलियई[2] ।
मिलिया केलि करंति, सहित्त महेलियहीं[3] ॥२२॥
जहिँ संक्रान्ति न ग्रहण, न मास न मंडलऊ ।
जहँ श्रावक-श्री दीसै, कियउ न विट्टलऊँ[4] ॥
स्नानचार जन मेलविं[5], जहँ न विभूषणऊ ।
श्रावकजनेंहिं न करियै, जहँ गृह-चिन्तनऊ ॥२३॥. . . .
जहँ न आपु वर्णिज्जै, परउ न दूषियई ॥
जहँ सद्गुण वर्णिज्जै, वि-गुण उपेक्षियई ॥
जहँ पुनि वस्तु-विचारणें, काँसुउ न बीँधियई ।
जहँ जिन-वचन-उत्तीर्ण, न कथा प्रजल्पियई ॥२७॥. .
ऐँहि अनुशोच प्रवृत्तह, शंकों न कोँउ करई ।
भवसागरेंति पडंत, न एकउ ऊतरई ॥
जे प्रतिशोच प्रवृत्तहिं, आपुउ जिय धरई ।
अवशिय स्वामी होंति तें, निर्वृतिपुर-वरेंई[6] ॥३१॥. .
ताँसु पदपंकज पुण्यहि, पायेंउ जनभ्रमरू ।
शुद्ध-ज्ञान-मधुपान, करंतउ होंइ अमरू ॥

---

[1] शिष्य [2] छोड़ कर [3] महिला, मेहरी
[4] विटलाहा (मल्लिका)=गदा, पतित [5] छोडें [6] निर्वाण-पुर०

सत्थु हंतु सो जाणइ, सत्थपसत्थ सहि।
कहि अणुवमु उवमिज्जइ, केण समाण सहि ॥४३॥
इय जुग-पवरह् सूरिहि, सिरि **जिणवल्लहह्** ।
नाय समय परमत्थह, बहुजण-दुल्लहह् ॥
तसु गुण थुइ बहुमाणिण, सिरि **जिणदत्त-गुरु**।
करइ सु निरुवम, पावइ, पउ जिणदत्तगुरु ॥४७॥
—चाचरि[1]

३—वेश्या-निंदा

जोव्वणत्थ जा नच्चइ दारी। सा लग्गइ सावयह् वियारी।
तिहि निमित्तु सावयसुय-फट्टहिँ। जंतिहिँ दियसिहिँ धम्मह् फिट्टहिँ ॥३॥
बहुय लोय रायंध सपिच्छहि। जिण-मुह-पंकउ विरला वंछहि।
जणु जिणभवणि सुहत्थ जु आयउ। मरइ सु तिक्ख-कडक्खिहिँ घायउ ॥३४॥

४—कविका संदेश

(१) जात-पाँत मजबूत करो

बेट्टा-बेट्टी परिणाविज्जहिँ। तेवि समाण धम्म-घरि दिज्जहिँ।
विसमधम्म-घरि जइ बीवाहइ। तो सम्मत्तु सु निच्छइ बाहइ ॥६३॥
इय जिणदत्तुवएस-रसायणु। इह-परलोयह् सुक्खह् भायणु।
कण्णंजलिहिँ पियंति जि भव्वइँ। ते हवंति अजरामर सव्वइँ ॥८०॥
—उवएसरसायणु

(२) धर्मोपदेश

विक्कम संवच्छरि सय-बारह। हुयइ पणट्ठउ सुह घरवारह।
इय संसारि सहाविण संतिहि। वत्तहि सुम्मइ सुक्खु वसंतिहि ॥३॥

---

[1] बिरहा गीत

शास्त्रहूँतें सो जानै, शास्त्र प्रशस्त सही ।
किमि अनुपम उपमिज्जै, केन समान सही ॥४३॥
इति युग-प्रवरह सूरिहि, सिरि जिनवल्लभहा ।
न्याय[1]-समय-परमार्थह, वहुजन-दुर्लभहा ॥
ताँसु गुण-थुति वहुमानें, सिरि जिणदत्तगुरु ।
करै सों निरुपम पावै, पद जिन-दत्त-गुरू ॥४७॥
—चाचरि

३—वेश्या-निंदा

यौवनार्थ जो नाचै दारी[2]। सा लागै श्रावकहँ पियारी।
तेंहि निमित्त श्रावक श्रुत-काढैं। जाते दिवसें धर्महिं फोडैं ॥३३॥
वहुत लोग रागांध सों पेखहिं। जिन-मुख-पंकज विरला वांछहिं।
जन जिनभवनें शुभार्थ जों आयउ। मरै सों तीक्ष्ण-कटाक्षें घायलु ॥३४॥

४—कविका संदेश

(१) जात-पाँत मजबूत करो

वेटा-वेटी परनावीजै[3]। सोउ समानधर्म[4]-घरें दीजै।
विषम-धर्म-घरें यदि बीवाहै। तो सम्यक्त्व[5] सों निश्चय वाहै[6] ॥६३॥
इति जिनदत्तु-'पदेश-रसायन। इह-परलोकह सुक्खह-भाजन।
कर्णांजलिहिं पियंति जें भव्यहँ। ते भवंति अजरामर सबैं ॥८०॥
—उवएसरसायण

(२) धर्मोपदेश

विक्रम-संवत्सर शत-वारह। होई प्रनष्टउ सुख-घरवारह।
इति संसारें स्वभावें शांतेंहि। वर्त्तै सुम्मति सुक्खु वसंतेंहि ॥३॥

---

[1] नात=ज्ञातृ (-पुत्र) महावीर [2] गणिका, दारिका [3] विवाहिज्जै
[4] एकधर्मी [5] जैनीपन [6] वहाना, फेंकना

तह वि वत्त नवि पुच्छहि धम्मह । जिण गुरु मिल्लहि कज्जिण दम्मह ।
फलु नवि पावहि माणुस-जम्मह । दूरे होंति तिज्जि सिव-सम्मह ॥४॥
मोह-निद्द जणु सुत्तु न जग्गइ । तिण उट्ठिवि सिव-मग्गि न लग्गइ ।
जइ सुहत्थु कुवि गुरु जग्गावइ । तुवि तव्वयणु तासु नवि भावइ ॥५॥
परमत्थिण ते सुत्तवि जग्गहिं । सुगुरु-वयणि जे उट्ठे'वि लग्गहिं ।
राग-दोस-मोंह 'वि जे गंजहि । सिद्धि-पुरंधि ति निच्छइ भुंजहि ॥६॥
बहुय लोय लुंचियसिर दीसहिं । पर रागद्दोसिहिं सहुं विलसहिं ।
पढहिं गुणहिं सत्थइ बक्खाणहि । परि परमत्थु तित्थु सु न जाणहि ॥७॥
दुद्धु होइ गो-यक्किहि धवलउ । पर पेज्जंतइ अंतरु बहलउ ।
एक्कु सरीरि सुक्खु संपाडइ । अवरु पियउ पुणु मंसु 'वि साडइ ॥१०॥
ईसर धम्म-पमत्त जि अच्छिहि । पाउ करेवि ति कुगइहिं गच्छहिं ।
धम्मिय धम्मु करंति जि मरिसहि । ते सुहु सयलु मणिच्छिउ लहिसहि ॥२३॥
कज्जउ करइ बुहारी वुद्धी । सोहइ गेहु करेइ समिद्धी ।
जइ पुण सावि जुयंजुय किज्जइ । ता किं कज्जा तीएँ सहिज्जइ ॥२७॥
इय **जिणदत्तुवएसु** जि निसुणहि । पढहि गुणहि परियाणवि जि कुणहि ।
ते निव्वाण-रमणि सहुँ विलसहि । बलिउ न संसारिण सहुँ मिलिसहि ॥३२॥

काव्यस्वरूपकुलक[1]

(३) दुर्लभ मानुष-जन्म

लद्धउ माणुस-जम्मु महारहु । अप्पा भवसमुद्दि गउ तारहु ।
अप्पु म अप्पहु रायह रोसह । करहु निहाणु म सव्वह दोसह ॥२॥

(४) गुरु सब कुछ

दुलहउ मणुय-जम्मु जो पत्तउ । सह लहु करहु तुम्हि सुनिरुत्तउ ।
सुह-गुरु-दंसण विणु सो सहलउ । होइ न कीवइ बहलउ बहलउ ॥३॥

---

[1] **अपभ्रंश-काव्य-त्रय**, Gaikwad's Oriental Series. Vol. XXXVII, 1927

तँहाँ बात ना पूछैं धर्महँ। जिन-गुरु मीलहिँ कार्ये दामहँ।
फल ना पावैं मानुष-जन्मह। दूरे होंति त्याग शिव-शर्महँ ॥४॥
मोह-निद्र जनु सुत्तु न जागै। मो उट्ठिउ शिव-मार्ग न लागै।
यदि शुभार्थ कोंइ गुरु जग्गावै। तोंउ तद्वचन तासु ना भावै ॥५॥
परमार्थे ते सूतउ जागैं। सुगुरु-वचनें जे उठिया लागैं।
राग-द्वेष-मोंहउ जे गंजैं। सिद्धि-पुरंध्रि तें निश्चय भुंजैं ॥६॥
बहुत लोग लुंचित-शिर दीसैं। पर राग-द्वेषहिँ सँग विलसैं।
पढ़ैं गुनैं शास्त्रहिँ वक्खानैं। पर परमार्थ-तीर्थ सों न जानै ॥७॥....
दुग्ध होइ गो-यक्कतउ धवलउ। पर पीवंतै अंतर बहलउ।
एक शरीर सुक्खु सं-पातै। अवर प्रियउ पुनि मांसउ स्वादै ॥१०॥
ईश्वर-धर्म प्रमत्त जे आछहिँ[1]। पाप करिय ते कुगतिहिँ गच्छहिँ[2]।
धार्म्मिक धर्म करंत जें मर्पहिँ। ते सुख सकल मनीच्छित लभिहैं ॥२३॥
कार्य करै (जों) वुहारी[3] बुद्धी। सोहै गेह करेइ समृद्धी।
यदि पुनि सोउ युगंयुग कीजै। ता का कार्य तीय साधीजै ॥२७॥
इति **जिनदत्त**-उपदेश जे सुनहीं। पढैं गुनैं परि-ज्ञान जें करहीं।
ते निर्वाण-रमणि-सँग विलसहिँ। वलें उ न संसारे सँग मिलिसहिँ[4] ॥३२॥
—काव्यस्वरूपकुलक

(३) दुर्लभ मानुष-जन्म

लाभें उ मानुष-जन्म महारघु। आपे भव-समुद्रतें तारहु।
आपु न अर्पहु रागहँ रोषहँ। करहु निधान न सर्वहँ दोषहँ ॥२॥

(४) गुरु सब कुछ

दुर्लभ मानुष-जन्म जों पायउ। सह लघु करहु तुम्म सु-निरुक्तउ।
शुभ-गुरु-दर्शन विनु सो सहलउ। होइ न करतें वहलउ[5] बहलउ ॥३॥

---

[1] हैं　[2] जावेंगे　[3] बधू (गढ़वाली)　[4] मिलिहैं　[5] बहुत

सुगुरु सु वुच्चइ सच्चउ भासइ। पर-परिवायि-नियरु जसु नासइ।
सव्वि जीव जिव अप्पउ रक्खइ। मुक्ख-मग्गु पुच्छियउ जु अक्खइ ॥४॥
इह विसमी गुरुगिरिहिं समुट्ठिय। लोय-पवाह-सरिय कु पइट्ठिय।
जसु गुरुपाउ नत्थि सों निज्जइ। तसु पवाहि पडियउ परिखिज्जइ ॥६॥
पर न मुणइ तयत्थु जो अच्छइ। लोय-पवाहि पडिउ सुंवि गच्छइ।
जइ गीयत्थु कोवि तं वारइ। ता तं उट्ठिवि लउडइ मारइ ॥१६॥
तिव तिव धम्मु कहिंति सयाणा। जिव ते मरिवि हुंति सुर-राणा।
चित्तासोय करंत ट्ठाहिय। जण तहिं कय हवंति नट्ठाहिय ॥३१॥
—उवएस-रसायण

५ : बारहवीं सदी

§ ३०. हेमचंद्र सूरि

(कलिकाल-सर्वज्ञ) काल—१०८८-११७९[1], देश—धवधकलपुर (गुजरात) में जन्म, अनहिलवाडा पाटन (गुजरात) में साहित्यिक कार्य। कुल—मोढ

१—सामन्त-समाज

(१) राज-प्रशंसा

खीर-समुद्दिण लवण-जलहि, कुवलय-कुमुयहिं।
कालिंदी सुर-सिंधु जलिण, महु-महणु हरिण ॥

---

[1] सोलंकी (चालुक्य) अनहिलवाडा (गुजरात) के राजा कर्ण (१०७४-९१), जयसिंह सिद्ध-राज (१०९३-११४२), कुमारपाल (११४२-७३), अजयपाल (११७२-७४), मूलराज द्वितीय (११७६-७८) और भीमदेव भोला (११७८-१२२४) के समकालीन। कुमारपालके गुरु।

सु-गुरु सो उच्चै सच्चै भाषै। पर-परिवादि-निकर जसु नाशै।
सर्व जीव जिव आपउ राखै। मुख्यमार्ग पूछियउ जो आखै ॥४॥
इहँ विषमी गुरु गिरहिं सम्-उट्ठिय। लोकप्रवाह-सरित कोँ पइट्ठिय।
जाँसु गुरु-पाद नाहि श्रवणिज्जै। तासु प्रवाहेँ पडिय परि-खिद्यै ॥६॥
पर न मोँनै तदर्थ जो अच्छै। लोक-प्रवाह पडिय सोँउ गच्छै।
यदि गेयार्थ कोउ तेहिँ वारै। सो तेहिँ उट्ठिय लगुडहिँ मारै ॥१९॥
तिमि तिमि धर्म कहंति सयाना। जिमि ते मरिय होहि सुर-राना।
चित्ताशोक करंता थाइय[1]। जन तहँ कृत भवंति नष्टाहित ॥२१॥

—उवदेश-रसायन

५ : बारहवीं सदी

§ ३०. हेमचंद्र सूरि

वणिक्, जैनसाधु-आचार्य। अपभ्रंश-कृतियाँ—प्राकृतव्याकरण[2], छन्दोनुशासन[3], देशीनाममाला (कोश)

१—सामन्त-समाज[4]

(१) राज-प्रशंसा

क्षीरसमुद्रेँहिं लवण-जलधि, कुवलय-कुमुदहिँ।
कालिंदी सुर-सिंधु-जलेँहिँ, मधु-मथन हरिन ॥

---

[1] ठहरा [2] डाक्टर पी. एल्. वैद्य द्वारा संपादित, मोतीलाल-लाधाजी (पूना) द्वारा प्रकाशित १९२८। अपभ्रंश के सभी उद्धरण हेमचंद्रके रचे नहीं हैं

[3] देवकरण मूलचंद्र (बंबई) द्वारा प्रकाशित, १९१२

[4] सभी उद्धरण हेमचन्द्र की रचना नहीं हैं। ये पद्य हेमचंद्र-संगृहीत हैं, शायद कोई उनके अपने रचित भी हों

कइलासिण सरिसउ हू किरि, सो अंजण-गिरि ।
इह तुह जस-सिरि धवलिओ, पहु कि पंडरु नहुरि ॥१२॥
जे तुह पिच्छहि वयण-कमलु, ससहर-मंडल-निम्मलु ।
जे विहु पालहिं भिच्च-कम्मु, थुणहिं जि निरुवमु विक्कमु ॥
जे विहु सासण धरहिं, पायकमलु जे पणमहि ।
ता हंत लच्छी-विमुह, पहु-जस-धवलिय दिसि-मुह ॥१३॥
उक्करडा-खल-चउ-गज्जउ, चिरु जुज्झमणु ।
उन्नामउ सिर-कमरु म लज्जओं, थक्क महब्भर तुहु कट्ठहिं ।
अन्नुन्न ति-हुअणि किंत्ति-धवल विसाओ तुह वट्ठइ ॥१४॥
पहु ! तुह वेरि अरण्णि गय, निच्चु'वि निवसहिं जिंव ससय ।
घण-कटय-दुस्सचरणि, तहिं झंवडइ करीर-वणि ॥१६॥
जइ जाहि सुर-सरिअ जइ गिरि-निज्झर सेवहि, जइ पइसहि काणण-तरु-संडय ।
रिउ-निव तुवि नवि छुट्टहिं पहु ! तुज्झ पयावहु, कालहु अइदीहि-हर-भुअ-दंडय ।५५।
—छन्दोनुशासन[1]

(२) वीर-रस

भल्ला हुआ जों मारिआ, वहिणि ! महारा कंतु ।
लज्जेज्जंतु वयंसियहु, जइ भग्गा घरु ऍन्तु ॥३५१॥
जहिं कप्पिज्जइ सरिण सरु, छिज्जइ खग्गिण खग्गु ।
तहिं तेहइ भड-घड-निवहि, कंतु पयासइ मग्गु ॥३५७॥
कंतु महारउ हलि सहिऍ ! निच्छइँ रूसइ जासु ।
अत्थिहिं सत्थिहिं हत्थिहिं वि, ठाउ'वि फेडइ तासु ॥३५८॥
अम्हे थोवा रिउ बहुअ, कायर एव भणंति ।
मुद्धि निहालहि गयण-यलु, कइ जण जोण्ह करंति ॥३७६॥
खग्ग-विसाहिउ जहिं लहहु, पिय ! तहिं देसहिं जाहुँ ।
रण-दुब्भिक्खे भग्गइ, विणु जुज्झें न वलाहुँ ॥३८६॥

---

[1] पृ० ३७ ख, ३८ क, ४१ क, ४५ ख

कैलासेहि मदृशउहुफुर, सो अंजन-गिरि।
इह तव यश-श्री धवलियउ, प्रभु का पांडुरु नभ ॥१२॥
जो नव पेखै वदन-कमल, शशधर-मंडल-निर्मल।
जो विधि पालैं भृत्यकर्म, थुवैं[1] जें निरुपम विक्रम॥
जे विध शासन धरैं, पाद-कमल जे प्रणमैं।
तो हंत! लक्ष्मी-विमुख, प्रभु-यश-धवलिय दिशिमुख ॥१३॥
उत्करटा[2]-आखल चउ गर्जेउ, चिर-युद्धमना।
उन्नामित-शिर-कायर ना लज्जउ, थाक मतिभर तव निकटे।
अन्योन्य त्रिभुवनें कीर्ति-धवल, विषादो तव वाटे॥१४॥
प्रभु तव वैरि अरण्य-गज, नित्यउ निवसे जिमि सशंक।
घन-कंटक-दुःसंचरणें, तहँ भंवड़ै करीर-वनें!॥१६॥
यदि जावें सुर-सरित यदि गिरि-निर्झर सेवैंहिं, यदि पइसैं[3] कानन-तरु-खंडें।
रिपु-नृप तउ नहि छूटें प्रभु! तुम्ह प्रतापहँ, कालह अति-दीर्घ-हर-भुज-दंडें॥५५॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३७, ३८, ४१, ४५)

(२) वीर-रस

भल्ला हुआ जों मारिया, वहिनि! हमारा कंत।
लज्जिज्जेहु वयस्ययहिँ, यदि भागा घर ऐंन्त[4] ॥५३१॥
जहँ काटिज्जै शरहिँ शर, छिद्यै खङ्गहिँ खङ्ग।
तहँ तेही भट-घट-निवहें, कंत प्रकाशै मग्ग॥३५७॥
कन्त हमारो रे सखिय, निश्चै रूसै जासु।
अस्त्रहिँ शस्त्रहिँ हाथियहिँ, ठावहिँ फोड़ै तासु॥३५८॥
हम हैं थोड़े रिपु बहुत, कायर एम भनंति।
मूढ निहारैं गगन-तल, कवि जन जोन्ह[5] करंति॥३७६॥
खङ्ग बेसाहिव जहँ लहउ, प्रिय! तहँ देशहिँ जाहु।
रण-दुर्भिक्षें भागई, विनु युद्धेहिँ बलाहु[6]॥३८६॥

---

[1] स्तवैं [2] हाथी [3] पइठैं [4] आता [5] ज्योत्स्ना [6] सेना

अब्भड-वंचिउ बे पयइँ, पेम्मु निअत्तइ जाँव।
सव्वासण-रिउ-संभवहों, कर परिअत्ता ताँव॥
हिअइ खुडुक्कइ गोरडी, गयणि घुडुक्कइ मेहु।
वासा-रत्ति पवासुअहँ, विसमा संकडु एहु॥
अम्मि! पओहर वज्ज मा, निच्चु जे संमुह थंति।
महु कंतहों समरंगणइँ, गय-घड भज्जिउ जंति॥
पुत्ते जाएँ कवण गुणु, अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पी की भूँहडी,[1] चंपिज्जइ अवरेण॥
तं तेत्तिउ जलु सायरहों, सो तेवडु वित्थारु।
तिसहें निवारण पलवि नवि, पर घुट्ठुअइ असारु॥३६५॥
महु कन्तहों गुट्ठ-ट्ठिअहों, कउ भुंपडा बलंति।
अह रिउ-रुहिरें उल्हवइ, अह अप्पणें न भंति॥४१६॥
जइ भग्गा पारक्कड़ा, तो सहि! मज्भु पियेण।
अह भग्गा अम्हहँ तणा, तो तें मारिअ देण॥४१७॥
सामि-पसाउ सलज्जु पिउ, सीमा-संधिहिँ वासु।
पेक्खिवि बाहु-बलुक्कडा, धण मेल्लइ नीसासु॥४३०॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-५२, १५६, १५८, १६०, १६५, १७१)

कर-हय-थणहर-गलिअ-लोल-मणोहर-हारय।
गंडत्थल - लुलिअ - मइल-जडिल - कुंतल - भारय।
अणवरय-वाहणि-वड-पसूण सोण-विलोअण।
तुह हुअ नर-वइ-तिलय संपय वेरि वहू-यण॥६॥
जेत्थु गज्जहिँ मत्त-करि-णिवह, रंखोलहिँ जत्थु हय।
जेत्थु भिउडि-भीसण भमंति भड,
तहिँ तेहइ रणि वरइ विजय-लच्छि, पइँ पर समरोब्भउ॥२६॥
जसु भुअ-बलु हेलुद्धरिअ-धरणि,
निसुणिवि वणयर - गण - उवगीउ - सुविक्कमु।

---

[1] पितृभूमि

'लिगन-वंचित दो पदैं, प्रेम निवत्तैं जव्व।
सर्वासन रिपु संभवहु, कर परिवत्तैं तव्व ॥
हृदय खुडुक्कै गोरडी, गगन घुड़क्कै मेह।
वर्षा-रात्रि प्रवासुकहँ, विषमा संकट एह ॥
अम्म ! पयोधर बज्र ना, नित्य जे संमुख थंति[1]।
मम कंतह समरांगणे, गज-घट भाजेँउ जांति ॥
पुत्रे जाये कवन गुण, अवगुण कवन मुएहिँ।
जो बापेकी भूमिड़ी, चाँपिज्जै अपरेहिँ ॥
सो तेत्तउ जल सागरहँ, सो तेवड[2] विस्तार।
तृषह निवारण चिलुव ना, पर धूँटनो असार ॥३९५॥
मम कंतह गोष्ठ-स्थितह, केँत झोँपडा ज्वलंति।
चहेँ रिपु-रुधिरेँ बूझवै, चहेँ आपने न भ्रान्ति ॥४१६॥
यदि भागा परकेरआ, तो सखि ! मोर प्रियेहिँ।
औ भागा हमकेरका, तो तेँ मारिय तेहि ॥४१७॥
स्वामि-प्रसाद सलज्ज प्रिय, सीमा-संधिहिँ बास।
पेखिय बाहु-बलक्कडा, धनि मेलै निःश्वास ॥४३०॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-२, १५६, १५८, १६०, १६५, १७१)

करहत-स्तन-धर गलिय लोल मनोहर हारय।
गंडस्थले लुलित मइल-जटिल-कुंतल भारय ॥
अनवरत-वाहनि-वट - प्रसून शोण - विलोचन।
तव हुअ नरपति-तिलक संप्रति वैरि-वधू-जन ॥६॥
यत्र गर्जेँ मत्त-करि-निवह, (औ) कूदैँ यत्र हय।
यत्र भृकुटि-भीषण भ्रमंति भट।
तहँ तेही रणेँ वरै विजय-लक्ष्मि तैँ पर-समरोद्भवउ ॥२६॥
जाँसु भुजबले हेला उद्धरेउ धरणि,
सुनिया बनचर-गण-उपगीत-सुविक्रम।

---

[1] रहते   [2] उतना (गढ़वाली)

अज्जवि हरिसिअ नव-दब्भंकुर-दभिण,
पयडहिँ कुल-महिहर पुलउग्गमु ॥४४॥
—छन्दोनुशासन[1]

(३) कु-नारी

जासु अंगहिँ घणु नसा-जालु- जसु पिंगल-नयण-जुओ ।
जसु दंत परिरत्त-विअडुन्नय,
न धरिज्जइ दुह-करिणी मत्तकरिणि जिंव घरिणि दुन्नय ॥२७॥
गाँवि पट्टणि हट्टि चउहट्टि, राउलि देउलि पुरि जं दीसइ ।
लडह-अंगिअ विरहिद-जालएणँ, न सा एक्कवि कय-वहु-रूव-कलिअ ॥३०॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३६ख)

(४) शृंगार-रस

विप्पिअ-आरउ जइवि पिउ, तोवि तँ आणहि अज्जु ।
अग्गिण दड्ढा जइवि घरु, तो तें अग्गि कज्जु ॥३४३॥
जिंव जिंव वंकिम लोअणहँ, णिरु सामलि सिक्खेइ ।
तिंव तिंव वम्महु निअय-सर, खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥३४४॥
तुच्छ-मज्झहें तुच्छ-जम्पिरहे,
तुच्छच्छ-रोमावलिहे तुच्छ-राय-तुच्छयर-हासहें ।
पिय-वयणु अलहंतिअहे, तुच्छकाय-वम्मह-निवासहें ।
अन्नु जु तुच्छउँ तहे धणहे, तं अक्खणउँ न जाइ ।
कटरि थणंतरु मुद्धडहें, जें मणु विच्चि ण माइ ॥३५०॥
फोडेंति जे हियडउँ अप्पणउँ, ताहँ पराई कवण घण ।
रक्खेज्जहु लोअहों अप्पणा, वालहें जाया विसम-थण ॥३५०॥

---

[1] पृ० ३५ख, ३६ख, ४५क

आजउ हरिय नव-दर्भांकुरके मिस,

प्रकटैं कुल-महिधर पुलकोद्‌गम ॥४४॥

—छन्दोनुशासन (पृ० ३५, ३६, ४५)

(३) कु-नारी

जसु अंगहिं घन नसा-जाल, जसु पिंगल-नयन-युग ।

जसु दंत प्रविरल-विकटोन्नत,

न धरीजै दुख-करिणि मत्त-करिणि इव घरिणि दुर्नय ॥२७॥

गाँव पाटन हाट चौहट, रावल देवल पुर जो दीसै ।

सुंदरांगी बिरहेंद्रजालकेंहिं, तेहिं सा एकउ कृत-बहुरूप-कलिता ॥३०॥

—वहीं (पृ० ३६)

(४) शृंगार-रस

बिप्रियकारक यदपि पिउ, तउ तेहिं आनहु आज ।

आगिहिं डाहा यदपि घर, तउ तेहिं आगीं काज ॥३४३॥

जिमि जिमि बंकिम लोचनहें, बहु-साँवारि सीखाय ।

तिमि तिमि मन्मथ विजयशर, खर-पाथर तीखाय ॥३४४॥

तुच्छ मध्ये तुच्छ जल्पने,

तुच्छ[1]-अच्छ रोमावलिहें, तुच्छ-राग तुच्छतर हासे,

प्रियवचन अलभंतियहें, तुच्छकाय मन्मथ निवसहें ।

अन्य जों तुच्छउ तेंहि धनिहि, सो भाषनउ न जाइ ।

कटरि थनंतर मुर्धडहिं, जो मन-बीच न माइ[2] ॥३५०॥

फोडहिं जे हियडा आपनउं, तीह पराई कवन घृण ।

राखीजहु लोगो ! आपना बाला जाया विषम थन ॥३५०॥

---

[1] अल्प [2] समाइ

एक्कहिँ अक्खिहिँ सावणु अन्नहिँ भद्दवउ,
माहउ महिअल-सत्थरि गण्ड-स्थले सरउ।
अंगिहिँ गिम्ह सुहच्छी-तिल-वणि मग्गसिरु,
तहे मुद्धहे मुह-पंकइ आवासिउ सिसिरु।
हिअडा फुट्टि तडत्ति करि, काल-क्खेवे काइँ।
देक्खउँ हय-विहि कहिँ ठवइ, पइँ विणु दुक्ख-सयाइँ ॥३५७॥
जइ न सु आवइ दूइ ! घरु, काइँ अहो-मुहु तुज्झु।
वयणु जु खंडइ तउ सहिएँ, सो पिउ होइ न मज्झु ॥
भमरु म रुण-झुणि रण्णडइ, सा दिसि जोइ म रोइ।
सा मालइ देसंतरिअ, जसु तुहुँ मरहि विओइ ॥३६६॥
मुह-कवरि[1]-बन्ध तहे सोह धरहिँ, नं मल्ल-जुज्झु ससि-राहु करहिँ।
तहे सहहिँ कुरल भमर-उल-तुलिअ, नं तिमिर-डिंभ खेल्लंति मिलिअ ॥३८२॥
बप्पीहा पिउ-पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास।
तुह जलि महु पुण वल्लहइ, बिहुँ वि न पूरिअ आस ॥
बप्पीहा कइँ बोल्लिएण, निग्घिण वार-इ-वार।
सायरि भरिअइ विमल-जलि, लहहि न एक्कइ धार ॥३८३॥
भमरा ! एत्थुवि लिंबडइ, केँवि दियहडा विलंबु।
घण-पत्तलु छाया-बहुलु, फुल्लइ जाम कयंबु ॥३८७॥
केम समप्पउ दुट्ठु दिण, किध रयणी छुडु होइ।
नव-बहु-दंसण-लालसउ, वहइ मणोरह सोइ।
ओ गोरी-मुह-णिज्जिअउ, वद्दलि लुक्क मियंकु।
अन्नु वि जो परिहविय-तणु, किह ठिउ सिरि-आणंद ॥
निरुपम-रसु पिएँ पिअवि जणु, सेसहोँ दिण्णी मुद्द।
भण सहि निहुअउँ तेँव मइँ, जइ पिउ दिट्ठु सदोसु ॥४०१॥

---

[1] जूड़ा

एकहिं आँखें सावन, अन्यहिं भादों,

माधव महियल-साथरें गंडस्थलें शरदो।

अंगहिं ग्रीष्म शुभाक्षी तिल-वनें मार्गसिरू,

तेहि मुग्धहें मुख-पंकजे आवासिउ शिशिरू।

हियड़ा फूट तडक्क करि, कालक्षेपे काइँ।

देखउँ हत-विधि कहँ थपै, तैं विनु दुःख शताइँ ॥३५७॥

यदि न सों आवै दूति ! वर, काइँ अधोमुख तोर।

वचन न खंडै तव सखी, सो पिउ होइ न मोर ॥

भ्रमर ! न रुनझुन रणरणै, सो दिशि जोय न रोउ।

सा मालति देशांतरिय, जसु तुहु मरै वियोग ॥३६८॥

मुख कबरि-बन्ध तहँ सोह धरहिं। जनु मल्ल-युद्ध शशि-राहु करहिं।

तहि सोभै कुरल[1]-भ्रमर-कुल तुलिय। जनु तिमिर डिंभ खेलंति मिलिय ॥३८२॥

पप्पीहा पिउ-पिउ भनवि केतिक रोवै हताश।

तव जलें मम पुनि वल्लभें, दोहूँ न पूरिय आश ॥

पप्पीह का बोलियेंइ, निर्घृण बारंबार।

सागरें भरियइ विमल जल, लहै न एकहु धार ॥३८३॥

भ्रमरा ! ईहै लिपटिया, किछु दीवसें विलंबु।

घनपत्ता छाया-बहुल, फूलै जब्ब कदंब ॥३८७॥

केमि समपंउ दुष्ट दिन, किमि रजनी यदि होइ।

नव - बधु - दर्शन - लालसउ, वहै मनोरथ सोइ ॥

ओ गोरी-मुख-निर्जितउ, बादल लुक्कु मृगांक।

अन्यउ जो परिभविय तनु, किमि ठिउ श्री आनंद ॥

निरुपम-रस पिउ पियबि जनु, शेषहों दीनी मुद्र।

भन सखि ! निभृतउ तिमि मइँ, यदि पिउ दीस सदोस ॥४०१॥

---

[1] सशब्द

अन्ने ते दीहर-लोअण, अन्नु तं भुअ-जुअलु ।
अन्नु सु घण-थण-हारु तें, अन्नु जि मुह-कमलु ॥
अन्नु जि केस-कलावु, सुअन्नु जु पाउ विहि ।
जेण णिअंविणि घडिअ स, गुण-लायण्ण-णिहि ॥
एसी पिउ रूसेउ हउँ, रुट्ठी मइँ अणुणेइ ।
पग्गिंव एइ मणोरहइँ, दुक्करु दइउ करेइ ॥४१४॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४६-१५२, १५४, १५७, १५८, १६१-६२)

गयणुप्परि कि न चडहिँ, कि नरि विक्खरहिँ दिसिहि वसु,
भुवण-त्तय-संतावु हरहि, कि न किरवि सुहारसु ।
अंधयारु कि न दलहिँ, पयडि उज्जोँउ, गहिउल्लओँ,
कि न धरिज्जहिँ देवि सिरहँ, सइँ हरि सोहिल्लओँ ।
कि न तणउ होहि रयणारहु, होहि कि न सिरि-भायरु ।
तुवि चंद निअवि मुहु गोरिअहि, कुवि न करइ तुह आयरु ॥५॥
परहुअ-पंचम-सवण-सभय मन्नउँ सो किर,
ति भणि भणइ न किपि मुद्ध-कलहंस-गिर ।
चंदु न दिक्खण सक्कइ जं सा ससि-वयणि,
दप्पणि पमुहु न पलोअइ ति भणि मय-नयणि ।
वइरिउ मणि मन्नवि कुसुम-सरु, खणि खणि सा वहु उत्तसइ ।
अच्छरिउ रूव-निहि कुसुम-सरु, तुह दंसणु जं अहिलसइ ॥६॥
जइ अज्झलक्कहिँ नयण दीह-नयणि अहि-खणु,
केअइ-कुसुम-दलम्मि भसलु बिलसइ त जणु ।
जइ तीए मुहि हावि मंदु हासउ चडइ,
ता जणु हीरय-पउमराय-संचओँ भडइ ।
जइ तीएँ महुर-मिउ-भासिणिहि, वयण-गुंफ निसुनिज्जइ ।
तावह करेप्पि जणु अमय-रसु, कण्ण-पण्ण-पुडि पिज्जइ ॥७॥
सवण-निहिअ-हीरय-हसंत-कुंडल-जुअल,
थूलामल-मुत्तावलि-मंडिअ-थण-कमल ।

अन्य सों दीरघ-लोचन, अन्य सों भुज-युगल ।
अन्य सों घन-थनहार त, अन्यउ मुख-कमल ॥
अन्यउ केश-कलाप सों, अन्य जों पाव विधि ।
जेहिँ नितंबिनि गढ़िय सों, गुण-लावण्य-निधि ॥
ऐसी पीउ रुषेउ हउँ, रूठी मोंहिँ अनुनेइ ।
प्राय् इव एहि मनोरथहिँ, दुष्कर दैव करेइ ॥४१४॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४९-५२, १५४, १५७, १५८, १६१, १६२)

गगनोपरि कि न चढै कि नरे बीखरै दिशहिँ वस ।
भुवनत्रय संताप हरै, कि न किरवि सुधारस ।
अंधकार कि न दलै, प्रकटि उज्जोंत ग्रहियुल्लउ ।
की न धरिज्जै देवि-सिरहँ स्वयं हरिं सोहिल्लउ ।
कि न तनय होहि रतनाकरइ, होहि चाहें श्रीभ्रातर ।
तउ चंद्र देखि मुख गोरियहि, कोंउ न करै तव आदर ॥५॥
परभृत-पंचम श्रवण सभय मानउ सों फुर ।
तो भनि भनै न किछुअ, मुग्ध कलहंस-गिरि ।
चंद्र न देखन सक्कै जो सा शशिवदनि ।
दर्पन मुँह न अलोकै कि मने मृगनयनि ।
वैरिउ मनें मानिय कुसुम-शर, क्षण-क्षण सा वहु उत्त्रसै ।
आश्चर्य रूपनिधि कुसुम-शर, तव दर्शन जो अभिलषै ॥६॥
यदि आ-झलकैं नयन दीर्घनयनि अभि-क्षण,
केतकि-कुसुमदलेहिँ भ्रमर विलसै तो जनु ।
यदि तेंही मुखें भावें मंद हासउ चढई ,
तो जनु हीरक-पदुमराग-संचय झडई ।
यदि तेहि मधुर मृदु भाषिणिहि वचन-गुंफ नि-सुनीजै ।
तो बध करीय जन् अमृत-रस कर्ण-पर्ण-पुटें पीजै ॥७॥
श्रवण-निहित-हीरक-हसंत कुंडल-युगल ।
स्थूलामल-मुक्तावलि-मंडित-थनकमल ।

सेअं-'सअ-पंगुरण वहल-सिरिहंड-रसुज्जल,
बहु-पहुल्ल-विअइल्ल-फुल्ल-फुल्लाविअ-कुंतल।
तो पयड़ धाइ दंसण-जणिय-खल-यण-उर-भर-भारिअ,
अहिसरइ चंद-सुंदर निसिहिँ, पइँ पिअयम-अहिसारिआ ॥११॥
जइ तुह मुह करयलु उ मोडवि। चल्लिअ चीरंचलु अच्छोडवि।
माणिणि! तुवि पसाओँ-करि सुम्मउ। पइँ पिइ उत्तावलिअ म गम्मउ।
जइ किं वइवि संवह-पय-जुयलु, इह विहि वसिण विहट्टइ।
ता तुज्झ मज्झु खीणतु खरउ, किं न खामोअरि! तुट्टइ ॥१३॥
गोवी-अण-दिज्जंत-रासय निसुणंतहँ,
वासा-रत्ति पहुच्चइ पहिअहँ पवसंतहँ।
निअ-वल्लह तिंव किंवइ हिअयंतरि निवडिअ,
जिंव जनह न वहंति चलण नावइ निअडिअ ॥३॥
अहरुट्ठ दलइ जवापसूण दंत-कुंद,
पाणि-चरण-नयण-वयण विअसि-आरविंद।
कुसुम परु पच्चक्खु'वि सुंदरि! तुज्झ देहु,
तुह तनु-मज्झ-देसु वहसि विवरीउ एहु ॥५॥
हंसि तहारओँ गइ-विलासु पडिहासइ रित्तओँ,
कोइल-रमणिइ तुहवि कंठु कुंठत्तणु पत्तओँ।
विरहय कंकेल्लिहु दोहल संपइ पूरंतिअ,
जं किर कुवलय-वयण एह हिंडइ गायंतिअ ॥८॥
भ्रू-वल्लि-चावयं मणोहवस्स ससितुल्लं वयणं,
अंगं चामीअरप्पहँ अहिणव-कमल-दल-नयणं।
तीए हीराविलव दंतपंति विद्दुमं अहरं,
पेच्छंताणं पुणो पुणो, काण न हवइ मणं विहुरं ॥११॥
निच्छिउ करिवि चंदु दोण्णि खंड। तहि निम्मिय मय-नयणाइ गंड।
वर-कुसुमंडेविणु गंध-चंगु। कोमलु तह विरइओँ एहु अंगु ॥१४॥

श्वेतांशुक-प्रावरण-बहुल, श्रीखंड-रसोज्वल ।
बहुप्रफुल्ल विकचिल्ल-फुलन फुल्लाविय कुंतल ।
तो प्रकट थाइ दर्शन-जनित खल-जन उर-भर-भारिया ।
अभिसरै चंद्र-सुंदर निशिहिं, तैं प्रियतमं अभिसारिया ॥११॥

यदि तुहँ मुख-करतल उ मोडवि । चल्लिय चीरांचले आ-छोडवि ।
मानिनि ! तव प्रसाद करि सुनऊ । तैं प्रिय उत्तावलिय न जावउ ।

यदि कि पतिउ संवह पदयुगल, इहँ विधि-वशेंहि बाटई ।
तो तव मध्य क्षीणतउ खरउ, कि न क्षामोदरि ! टूटई ॥१३॥

गोपी-जन दीजंत राशक नि-सुनंतहँ ।
वासर-रात्रिं पहूँचै पथिकहँ प्रवसंतहँ ।
निज-वल्लभ तिमि किमिवहि हृदयंतरें निवडिय ।
जिमि जनह न वहंति चरण नावै निगडिय ॥३॥

अधरोष्ठ दलै जवाप्रसून दंत कुंद,
पाणि-चरण-नयन-वदन विकसित-अरविंद ।
कुसुम पर प्रत्यक्षउ सुंदरि ! तव देह,
तव तनु-मध्यदेश बहहु विपरीत एह ॥५॥

हंसि तुहारउ गति-विलासें प्रतिभासै रिक्तउ,
कोकिल-रमणिहि तोर कंठें कुंठत्वहिं प्राप्तउ ।
विरहइ कंकेली दोहल संप्रति पूरंतिअ,
जो पुनि कुवलय-नयनें ! एह हिंडै गायंतिअ ॥८॥

भ्रूवल्लि-चापकं मनोभवहँ शशि-तुल्यंव्वदनं,
अंगे चामीकर-प्रभं अभिनव-कमलदल-नयनं ।
ताही हीरावलींव दंतपंक्ति विद्रुम अधरं ।
पेखंतेहिं पुनी पुनि , काह न होई मन विधुरं ॥११॥

निश्चय करवि चंद दोंइ खंड । तहि निर्मित मदनयनइँ गंड ।
वरकुसुम लेपियउ गंध चंग । कोमल तिमि विरचिय एहु अंग ॥१४॥

कुमुअ-कमलहँ एक्क उप्पंति मउलेइ तुवि,
कमल-वणु कुमुअ-संडु निच्चुवि विअासइ।
स-च्छंद-विआरिणिअ चंद-जोण्ह कि मत्त-वालिआ ॥१६॥

मणहरु तुह मुह-सररुह, रयणीअर-विब्भमु धरइ ।
कामिणि हास-विलासु'वि, जोण्हा-पसरहु अणुहरइ ॥४४॥

कवणु सु धन्नउ जिण विणु, कामिणि कंकण हत्थओ विअलहिँ ।
अन्नु कि एँवइ ससि-मुहि, हिवइ उन्नमिहहिँ कर-कमलहिँ ॥५१॥

जइ गंगा-जलि धवलि, कालइ जउणा-जलि जइ खित्तअउ ।
राय-हंसि नहु वहु न तुट्टु, सुज्झत्तणु तुवि तेत्तउ ॥१०७॥

वयणु सरोजु नयण कुवलय-दल, हासु नव-फुल्लिअ मल्लि ।
कर-पाय असोअ-पल्लव-च्छाय, सहजि कुसुमाउह भल्लि ॥१०८॥

तुहुँ उज्जाणि म वच्चसु जइविहु, विलसइ मयणूसवु पवलु ।
गइ-नयणिहिँ लज्जीहइ तुह हंसीउलु सहि तह हरिण-उलु ॥८॥

पिउ आइउ निवडिउ पइहिँ, सपणय-वयणिहिँ, अणुणिवि माणु सुआविआ ।
इअ सिविणयभरि आलिंगिमि जांवहिँ तांवहिँ सहि ! हय कुक्कुडि रडिआ ॥२७॥

—छन्दोनुशासन (पृ० ३४क ख, ३६क, ४-क ख, ४२क, ४३ ख, ४४ख)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

रेहइ अरुण-कंति धरणी-अलि इंदगोवया[1],
पाउस-सिरि नाइ पय जावय-विंदु लग्गया ।
एहवि विज्जु-लेह कलकंतिअ वहल-कंतिआ,
लक्खिज्जइ जायरूव-निम्मिअव्व कंठिआ ॥७॥
मत्तंवुवाह वरसंतिण पइ समहिओ,
आयण्णसु संपय महिअलि जं विरहओ ।

---

[1] वीरबहूटी

कुमुद-कमलह एक उत्पत्ति मुकुले तउ,
कमल-वन कुमुद-षंड नित्यहिँ विकासै।
स्वच्छंद-विहारिणिय चंद्र-ज्योत्स्न कि मत्त-वालिका ॥१६॥
मनहर तव मुख-सरुरुह, रजनीकर-विभ्रम धरइ।
कामिनि ! हास-विलासउ, ज्योत्स्ना-प्रसरह अनुहरइ ॥४४॥
कवन सोँ धन्यउ जिन विनु, कामिनि कंकण हस्तहँ विगलै।
अन्य कि एवं शशिमुखि, हिँडै उन्नमितइँ कर-कमलैँ ॥५१॥
यदि गंगा-जलेँ धवली, कालइ यमुना-जलेँ यदि क्षिप्तऊ।
राजहंसि नभ वहु न टूटु, शुद्धत्वेँ तव तेत्तऊ ॥१०७॥
वदन-सरोज नयन कुवलय-दल, हास नव-फुल्लिय मल्ली।
कर-पाद अशोक-पल्लव-छाय, सहजे कुसुमायुध भल्ली[1] ॥१०८॥
तुहुँ उज्जेनि न व्रजहु जइविहु, विलसै मदनोत्सव प्रबल।
गति-नयनेँहिँ लज्जीहै, तुहु हंसीकुल सखि तिमि हरिण-कुल ॥८॥
पिय आयउ नि-पडेँउ पदहिँ, स-प्रणय-वचनेँहिँ अनुनइ मान सोँ आविया।
इमि स्वपने भरि आलिंगउँ जौ लोँ, तौ लोँ सखि ! हत कुक्कुटि रटिया ॥२७॥
—छन्दो० (पृ० ३४, ३६, ४०, ४२, ४३, ४४)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

राजै अरुण-कांति धरणीतलेँ इन्द्रगोपका,
पावस-श्री न्याइँ पद यावक-विन्दु लगया।
ईहउ विज्जु-लेख कल-कंतिय वहुल-कंतिया,
लक्खीजै जातरूप - निर्मितव्य कंठिया ॥७॥
मत्त-’म्बुवाह वर्षतेहिँ पति समधिका,
आकर्णहु संप्रति महितलेँ जो विरचिया।

---

[1] भाला

हंस-हंकल-सद्दिण जं आसि णोहरु, दद्दूर-रडिआउलु निम्मिओ तं सरवरु ॥ ६ ॥

गहिरु गज्जइ धरइ मय-वारि, विहलं-घुलु नहु कमइ।
दुन्निवारु दिसि-दिसि पलोट्टइ! ओ मत्त-वालिय-सरिसु विसम-चेट्ठु पाउसु पयट्टइ॥ १८॥

गज्जइ घण-माला घणघणाह। नं मयण-निवइणो कुंजर-घड ॥६१॥

कुसुमग्गमु अज्जुण-केअइ-कुडयह। पेच्छिवि कहवि हु न हु रइ-मंडहिँ।
नव-पाउसि पइसंतइ ओ जाइ। निअंत भमर दुओ हिंडहिँ ॥३७॥

वज्जहिँ गज्जिर-घण-मद्दल, नच्चहिँ नह-यल-अंगणि नव-चंचल-विज्जुल।
गायहिँ सिहि इह संगीअउ. पाउस-लच्छिहिँ करइ जुआणह मण-आउल ॥४३॥

—छन्दोनुशासन[1]

(ख) शरद्-वर्णन

तरुणी किलकिंचिअइँ विसट्टहिँ, ससि-जोण्ह-समुज्जल रत्तडी।
मल्लिअ पुल्लइँ परिमल-सारइँ, जउ तउ गय मग्गहु वत्तडी ॥११३॥
तुहु मुहुलायन्न-तरंगिणिएँ, झलकंतउ कंति-करंबिअओ।
सोहइ निम्मल-वट्टुल-मंडलु, जल-मज्झि नाइ ससि-बिंबिओ॥११४॥

—छन्दो० (पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क)

(ग) हेमन्त-वर्णन

महु-रसु घुंटिउ जेहिँ जहिच्छइ, ते अलि दीसंत भमंत।
मालइ-ओहुल्लणउँ करंतिण, कि सोंहिओं पइँ हेमंत ॥१११॥

—छन्दो०[2]

(घ) वसंत-वर्णन

कि न फुल्लइ पाडल पर-परिमल। महमहेइ किं न माहवि अविरल।
नवमल्लिअ कि न दलइ पहल्लिय। कि उत्थरइ कुसुम-भरि मल्लिय।

---

[1] पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क [2] पृ० ४२ ख

हंस-हंकल-शब्दें हिँ जो अहें उ नोहर, दर्दुर-रटनाकुल निर्मित सो सरवर ॥ ६ ॥

गँभिर गर्जै धरै मद-वारि, विहूल नभ क्रमई,
दुर्निवार दिशि-दिशि प्र-लोटै, ओ मत्त-वालिक-सदृश विषम-चेट पावस प्रवर्त्तै ॥१८॥

गर्जै घनमाला घनघनाइ, जनु मदन-नृपतिकर कुंजर-घट ॥ ६१ ॥

कुसुमोद्‌गम अर्जुन-केतकि-कुटजहँ । पेखिय कइविउ नहि रति-मंडहिँ ।
नव-पावसें पइसंतइ ओ जाइ, देखंत भ्रमर दूत हिंडहिँ ॥३७॥

वाजैं गज्जर-घन-मर्दल, नाचैं नभतल-आंगनें नव-चंचल-विज्जुल ।
गावैं शिखि इहँ संगीतउ, पावस-लक्ष्मिहि करै युवानह मन-आकुल ॥४३॥

—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ख) शरद्-वर्णन

तरुणी किलकिंचितैं विसट्टैं, शशि ज्योत्स्न-समुज्ज्वल-रातड़ी ।
मल्ली फुल्लै परिमल सारैं, जो तो गय मागहु बातड़ी ॥११३॥
तव मुख-लावण्य-तरंगिणिएँ, झलकंतउ कांति करंवितओ[१] ।
सोहै निर्मल-वर्त्तुल-मंडल, जल-माँझ न्याइँ शशि-बिंबओ ॥११४॥

—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ग) हेमन्त-वर्णन

मधु-रस घोंटिउ जेहि यथेच्छहँ, ते अलि दिसत भ्रमंत ।
मालति-ओलहनउ करति, की साधिउ तैं हेमंत ॥१११॥

—छन्दो० (पृ० ४)

(घ) वसंत-वर्णन

की न फूलै पाटल पर-परिमल । महमहै की न माधवि अविरल ॥
नव-मल्लिक की न दलै पहँषिया । की उच्छलै कुसुम-भरें मल्लिय ।

---

[१] पुष्ट

दीहिय-तलाय-सर-तल्लडिहिँ। कि न पसाहि पउमिणि फुडइ।
तुवि जाइ जाय-गुण-संभरणु झाणु। कि भसलुहु मणि खुडइ ॥१२॥
सुणिवि वसंति पुर-पोढ-पुरंधिहिँ रासु।
सुमरि विलडहि हूओ तक्खणि पहिउ निरासु ॥१५॥
मत्त-कोइल-नाय णंदीइ सिंगार-रसोग्गंमिण, नच्चमाण-मायंद-पत्तहि।
अहिणिज्जइ मयण-जय-नाडउव्व, संपइ वसंतिण ॥१६॥
लुट्टिद्दुं चंदण-वल्लि-पल्लंकि सम्मिलिदु लवंग-वणि खलिदु वत्थु-रमणीय-कयलिहिँ।
उच्छलिदु फणि-लयहिँ घुलिदु सरल-कक्कोल-लवलिहिँ, चुंबिदु माहवि-वल्लरहिँ।
पुलइद-काम-सरीरु भमर-सरिच्छउ संचरइ, रहुउ मलय-समीरु ॥३१॥
माणु म मेल्हि [1]गहिल्लिएँ निहुई होहि खणु,
उभयओँ चंदु पयट्टओँ रासावलय खणु।
दिक्खिसु एहिवि नयणिहिँ, पइ हलि मयण-हय,
वल्लह पयह पडंति, भणंतिय वयण-सय ॥३॥
आमूलु वि बहु-पंकिण सँवलिअ सव्व-वार-पडिबोह सोहर-हिय।
कंटय-सय-संसेविअ-जल-सयण, जिण उववयणु न सोहहिँ कमल-वण ॥७॥
कोइल-कल-रवु चंदणु, चंदुज्जोअ-बिलासु।
वल्लह-संगमि अमय-रसु, विरहिय जलिउ हुआसु ॥२६॥
जं सहि! कोइल कलु पुक्कारइ, फुल्लु निलओ।
तं पत्तु वसंतु मासु, कामहु लीलालओ ॥६८॥
दीसइ उववणि, फुल्लिओ नाय-केसरो।
नं माहविण वण-सिरिहि दिण्ण-सेहरो ॥७२॥
कर असोअ-दलु मुहु-कमलु हसिउ नव-मल्लिअ।
अहिणव-वसंत-सिरि एह, मोहण-इल्लिअ ॥८१॥
पत्तउ एहु वसंतउ, कुसुमाउल-महुअरु।
माणिणि! माणु मलंतउ, कुसुमाउह-सहयरु ॥६४॥

---

[1] छोटेसे घरमें, छोटी उमरकी घरवाली (गृहिणिके!)

दीघी-तलाव-सर-तालडिहिँ । की न प्रसाधि पद्मिनि फूटई ।
तह्नु जाति ! जात-गुण-संभरण ध्यान । की भ्रमरह्नु मणि खूटई ॥१२॥
सुनिय वसंतेँ पुर-प्रौढ-पुरंध्रिय रास ।
सुमिरि बिलटहि ह्नुयउ तत्क्षण पथिक निराश ॥१५॥
मत्त-कोकिल-नाद-नंदी शृंगार-रसोद्गम्येँहि नृत्यमान माकंद-पंक्तिहिँ ।
अभिनीजै मदन-जयनाटकहँ, संप्रति वसंतेँहीँ ॥१६॥
लोटिय चंदन-बल्लि-पर्यंकेँ सम्मिलिय लवंग-वनेँ स्खलिय वस्तु-रमणीय-कदलिहिँ ।
उच्छलिय फणि-लतहिँ घुरिय सरल-कंकोल-लवलिहिँ, चुंबिय माधवि-वल्लरिहिँ ।
पुलकित काम-शरीर भ्रमर-सरीसउ संचरै, रोयउ[1] मलय-समीर ॥३१॥
मान न मेलि गृहिल्लिएँ, निभृता होहि क्षण,
उभयउ चंद्र प्रकटेउ, रासा-वलय[2] क्षण ।
देखिह्नु एहिहि नयनहिँ, तैँ री मदन-हृत,
वल्लभ-पदहँ पडंति, भनंतिय वचन-शत ॥३॥
आमूलउ वहु-पंकेँहिँ सँवरिय, सर्व-द्वार-प्रतिबोध सोहर-हिय ।
कंटक-शत-संसेविय जल-शयन, जिन उपवचन न सोहैँ कमल-वन ॥७॥
कोकिल-कलरव चंदन, चंद-उदोत-विलास ।
वल्लभ-संगमेँ अमृत-रस, विरहे जलेँउ हुताश ॥२६॥
जो सखि ! कोकिल कल-पुक्कारै, फुलेँउ निलम्रो ।
सो आउ वसंत मास, कामहँ लीला-लयो ॥६८॥
दीसै उपवनेँ, फुल्लिय नागकेसरो ।
जनु माधवेँ वन-श्रीहिँ दियेँउ शेखरो ॥७२॥
कर अशोक-दल मुख कमल हसित नव-मल्लिय ।
अभिनव-वसंत-श्री एह, मोहनइल्लिय[3] ॥८६॥
आयउ गह्नु वसंतउ, कुसुमाकुल-मधुकर ।
मानिनि ! मान मलंतउ, कुसुमायुध-सहचर ॥९४॥

---

[1] चिल्लाया [2] रश्मिवलय [3] मोहिनी

घोलिर-नवपल्लवु, परिफुल्लिम्रों रेहइ असोम्र-तरु।
विरइम्रों रम्मु नाइ, महु-मासिण कुसुमा-उहु-सेहरु ॥९८॥
—छन्दो०[1]

(४) विरह-वर्णन

जे महु दिण्णा दिम्रहडा, दइएँ पवसंतेण।
ताण गणंतिऍ अंगुलिउ, जज्जरिम्राउ नहेण ॥३३३॥
विरहानल-जाल-करालिम्रउ, पहिउ कोवि बुड्डिवि ठिम्रम्रो।
अनु सिसिर-कालि सम्रल-जलहु, धूमु कहन्तिहु उट्ठिम्रम्रो ॥४१५॥
पिय-संगमि कउ निद्दड़ी, पिम्रहों परोक्खहों केव।
मइँ विन्नि वि विन्नासिम्रा, निद्द न ऍंव न तेंव ॥४१८॥
हिम्रड़ा पइ ऍंहु बोल्लिम्रम्रों, महु अग्गइ सय-वार।
फुट्टिसु पिएँ पवसंतिहउँ, भंडय ढक्करि-सार ॥४२२॥
सुमरिज्जइ तं वल्लहउँ, जं वीसरइ मणाउँ।
जहिं पुणु सुमरणु जाउँ गउ, तहों नेहहों कइँ नाउँ ॥४२६॥
हिम्रडा जइ वेरिम्र घणा, तो किं अब्भि चडाहुँ।
म्रम्हाहीं बे हत्थड़ा, जइ पुणु मारि मराहुँ ॥
रक्खइ सा विस-हारिणी, बे कर चुंबिवि जीउ।
पडि बिंबिम्र-मुंजालु जलु, जेहिं अहाडिउ पीउ ॥
बाह-विछोडवि जाहि तुँह, हउँ तेवइँ को दोसु।
हिम्रय-ट्ठिउ जइ नीसरहि, जाणउँ मुंज स रोसु ॥४३९॥
—प्राकृतव्याकरण (१४७, १६५, १६९, १७०, १७३)

निक्कंदल-किय-कच्छ, नलिणि-वज्जिय-किय सरसरि,
निच्चंदण किय मलम्रों, तुहिण-वज्जिय किय हिमगिरि।

---

[1] ३४ख, ३५ख, ३६क-ख, ३७क, ३९ख, ४१क-ख, ४२क, ४५क

डोलिलय नवपल्लव, परिफुल्लिय राजै अशोक-तरु ।
विरचेँउ रम्य न्याइँ, मधुमासेँहिँ कुसुमायुध-शेखरु ॥९८॥
—छन्दो० (पृ० ३४-३७, ३९, ४१, ४२, ४५)

(४) विरह-वर्णन

जो मोँहिँ दिन्ना दिवसड़ा, दयितेँ प्रवसंतेइँ ।
ताह गनंतिउ अंगुलिउ, जर्जरियाउ नखेइँ ॥३३३॥
विरहानल-ज्वाल-करालियउ, पथिक कोउ बूडिय ठियउ ।
अनु शिशिर-कालेँ सकल-जलहु, धूम कहंतिउ उट्ठियउ ॥४१५॥
प्रिय-संगमेँ कहँ नीँदड़ी, प्रियह परोक्षहु केमि ।
मैँ दोउहि विन्यासिया, निद्र न एम तेमि ॥४१८॥
हियड़ा तै ऍहु बोल्लियउ, मम आगे शतबार ।
फूटेँसु प्रिय प्रवसंतही, भंडक[1] ठिक्करि-सार ॥४२२॥
सुमिरज्जै तेँहिँ बल्लभउँ, जो बीसरै मनाउ ।
जहँ पुनि सुमिरन चलि गउ, तह नेहह की नाउँ ॥४२६॥
हियरा यदि बैरी घना, तो की नभहिँ चढाउँ ।
हमरो ही दो हाथड़ा, यदि पुनि मारि मराउँ ॥
राखै सा बिष-धारिणी, दोउ कर चुंबिय जीउ ।
प्रतिबिंबित-मुंजाल जल, जेँहिँ ले लीयउ पीउ ॥
बाँह विछोडिय जाहि तुहुँ, हउँ तेवइँ को दोष ।
हृदय-स्थित यदि नीसरै, जानउँ मुंज सरोष ॥४३९॥
—प्राकृत-व्या० (पृ० १४७, १६५, १६९, १७०, १७३)

निर्-कंदल किय कच्छ, नलिनि-वर्जित किय सुरसरि ।
निश्चंदन किय मलय, तुहिन-वर्जित किय हिमगिरि ॥

---

[1] भांडा वर्त्तन ।

निप्पल्लव किय करि पयत्तु-कंकेल्लि-विडवि-सय,
पत्त-चत्त किय बाल-कयलि, अकुसुम किय तरु-लय ।
सिसिरोवयार किहिँ परियणिहिँ, णिम्मुत्तावलि किय भुवण ।
तो विहु न तीइ विरह-तुह भरि, खसइ दाह-दारुण-विअण ॥४॥
तरुणि - हूण - गंड-प्पहु - पुंछिअ - तिमिर - मसि,
उक्क - झलुक्का[1] - वडणु दुसहु मा करउ ससि ।
मलयानिलु मय-नयणि घुणिअ-कप्पूर-कयलि-वणु,
संधुक्किय-मयण-'ग्गि सहि ! इमा तुज्झ तवउ तणु ।
तणु-अंगि ! म खडहडि पडहि तुह, मयण-वाण-वेयण-कलह ।
चयमाणु माणि वल्लहिण सहुँ, चडि म जीव संसय-तुलह ॥१०॥
लायण्ण-विब्भमं तरंगतिहिँ । निद्दड्ढ-वम्म जिआवंतिहिँ ।
प्रेमि प्रियाहिँ जो पुलोइज्जइँ । ता मत्तलोइ सग्गु पाविज्जइ ॥१३॥
मत्त-महुअरि-तार-झंकार-कलयंठि-कलयलिहिँ, मयण-धणु-हुडुंकार-ससिहिँ ।
कह जीवहुँ विरहिणिउ, दुर - देस - पवसंत - रमणिउ ॥२१॥
कुविदो मयणो महाभडो, बण-लच्छी अ वसंत-देहिआ ।
कह जीवउँ सामि ! विरहिणि, मिउ-मलयानिल-फंस-मोहिआ ॥५४॥
जलइ जइवि कुसुम-लया-हरु, तवइ चंदु जह गिम्हि दिवायरु ।
तुवि ईसा-भर-तरलिअ, पिअ-सहि वयणु न मन्नइ बालिअ ॥५७॥
जलइ सरोवरि नीलुप्पल-वणु ! वणि लय फुल्लिअ नहयलि हिम-किरणु ।
विरह-रहक्कइँ तुह तणु-अंगिहिँ, सुहय ! विणिम्मिओ जलु थलु नहु जलणु ॥३२॥
सइ विज्जुल-अविउत्तउ तुहुँ जल-हर-करि, गुंदलु निट्ठु न जाणसि विरहिअहँ ।
इअ भणि चितवि किंपि अमंगलु, दइअहुँ असु-पवाहु पलुट्टउ पंथिअहँ ॥४५॥
विरह रहक्कइँ सुहय न जंपइ, न हसइ जीवइ केवलु पिअ-पच्चासइ ।
अहवा किंति उरत्थावण्णणु, करिसहुँ निच्छइँ मरिसहुँ तुहु जसु नासइ ॥४६॥

---

[1] ऊककी तरह भक्से बलनेवाला, ऊक झरकानेवाला

निष्पल्लव किय करि प्रयत्न कंकेलि - विटप - शत ।
　　पत्र-त्यक्त किय बाल-कदलि, अ-कुसुम किय तरु-लत ॥
शिशिरोपचार किउ परिजनिहिँ, निर्मुक्तावलि किय भुवन ।
　　तोपिउ न ताहि विरह तुह भरेँ, खसै दाह-दारुण-विजन ॥४॥
तरुणि हूण-गंड-प्रभ पोँछिय तिमिर-मसि,
　　उल्क-झलुक्का वलन दुसह ना करउ शशि ।
मलयानिल मृग-नयनि घूर्णि कर्पूर-कदलि-वन,
　　संधुक्षिय मदनाग्नि सखि ! एँहु तोर तपउ तनु ।
तनु-अंगि ! न खडहृडि पहि तुहूँ, मदन-वाण-वेदन-कलह ।
　　त्यजमान मान बल्लभेँहिँ सँग, चढि न जीउ संशय-तुलहँ[1] ॥१०॥
लावण्य-विभ्रम-तरंगतिहिँ । निदृड्ढ मन्मथ जियावंतिहिँ ।
　　प्रेमेँ प्रियाहि जो पुलकिज्जै । तो मर्त्यलोकेँ स्वर्ग पाइज्जै ॥१३॥
मत्त-मधुकरि तार-झंकार कलकंठि-कलकलहिँ, मदनधनु-टंकार-सरिसहिँ ।
　　किमि जीवहु विरहिनिउ, दूर-देश प्रवसंत रमणेँउ ॥२१॥
कुपितउ मदन-महाभटउ, वन-लक्ष्मीउ वसंत-रेखिता ।
　　किमि जीवउ स्वामि ! विरहिणी, मृदु-मलयानिल-स्पर्श-मोहिता ॥५४॥
ज्वलै यदपि कुसुमलता-घर, तपै चंद्र जिमि ग्रीष्म-दिवाकर ।
　　तउ ईर्ष्या-भर-तरलिय, प्रिय-सखि-वचन न मानै बालिका ॥५७॥
ज्वलै सरोवरेँ नीलोत्पल-वन । वनेँ लतौं फूलिय नभतलेँ हिमकिरण ।
विरह-धधक्केँ तुह तनु-अंगिहिँ, सुभग ! विनिर्मेउ जल थल नभ ज्वलन ॥३२॥
स्वयं विज्जुल अवियुक्तउ तुहँ जलधर करि, गुंदल[2] निष्टौं न जानसि विरहियहँ ।
इमि भनि चिंतै किछुअ अमंगल दयितहँ, अश्रु-प्रवाह प्रलोटउ पथिकहँ ॥४५॥
विरह धधक्कैँ सुभग न जल्पै, न हसै जीवै केवल प्रिय-प्रत्याशैं ।
अथवा काउ अवस्था-वर्णन, करिहउँ निश्चय मरिहहुँ तव यश नाशैं ॥४६॥

---

[1] तराजू　　[2] मस्त

उण्हय अमयमऊह-मऊह विदूसहु, चंदण-पंकुवि जलइ लयाहरु वि ।
इय तुह विरहिण तहि तणु-अंगिहि सुहय, सुहाइ न किंपि'वि पसिअहि दय करिबि ।।५०।।
—छन्दो०[1]

३—नीति-वाक्य

सायरु उप्परि तणु धरइ, तलि घल्लइ रयणाइं ।
सामि सुभिच्चु 'वि परिहरइ, सम्माणेइ खलाइं ।।३३४।।
गुणहिं न संपइ कित्ति पर, फल लिहिआ भंजंति ।
केसरि न लहइ बोड्डिअवि, गय लक्खेहिं घेप्पंति ।।३३५।।
जीविउ कासु न वल्लहउं, धणु पुणु कासु न इट्ठु ।
दोण्णिवि अवसर-निवडिअइं, तिण-सम गणइ विसिट्ठु ।।३५८।।
वासु महारिसि एँउ भणइ, जइ सुइ-सत्थु पमाणु ।
मायहं चलण नवन्तहं, दिवि-दिवि गंगा-ण्हाणु ।।३९९।।
बम्भ तें बिरला केवि नर, जे सव्वंग-छइल्ल ।
जे वंका ते वंचयर, जे उज्जुअ तें बइल्ल ।।४१२।।
गयउ सु केसरि पिअहु जलु, निच्चिंतइं हरिणाइं ।
जसुकेरएं हुंकारडएं, मुहहुं पडंति तृणाइं ।।४२२।।
सिरि चडिआ खंति प्फलइं, पुणु डालइं मोडंति ।
तोवि महद्दुम सउणहं, अवराहिउ न करंति ।।४४५।।
—प्राकृतव्याकरण[2]

जे निअहिं न पर-दोस । गुणिहिं जि पयडिअ तोस ।
ते जगि महाणुभावा । विरला सरल-सहावा ।।१२४।।
पर-गुण-गहणु स-दोस पयासणु । महु महुरक्खरहि अमिअ-भासणु ।
उवयारिण पडिकिओ वेरिअणहं, इअ पद्धडी मणोहर सुअणहं ।।१२८।।
—छंदोनुशासन (पृ० ४३क)

---

[1] पृ० ३४क, ३५ख, ३६क, ४०ख, ४४ख, ४५क-ख

[2] पृ० १४७, १५२, १६१, १६६, १६९, १७५

उष्णइ अमृतमयूख मयूखउ दुस्सह, चंदन-पंकउ ज्वलै लताघर भी।
एँहु तव विरहे तस तनु-अंगिहि सुभग ! सोँ हाइ न किछुउ प्रियसखि दयाँ करबि।५०।
—छन्दो० (पृ० ३४-३६, ४०, ४४, ४५)

३–नीति-वाक्य

सागर ऊपर तन धरै, तलें घालै[1] रतनाइँ।
स्वामि सुभृत्यहँ परिहरै, सम्मानेइ खलाइँ ॥३३४॥
गुणहिँ न संपति कीर्त्ति पर, फल लिखिया भंजंति।
केसरि न लहै कौडियउ, गज लक्षहँ घेप्पंति[2] ॥३३५॥
जीविबु कासु न वल्लभउ, धन पुनि कासु न इष्ट।
दोउहिँ अवसर आपड़े, तृण-सम गनै विशिष्ट ॥३५८॥
व्यास महाऋषि इमि भनै, यदि श्रुति-शास्त्र-प्रमाण।
मातह चरण नमन्तहँ, दिने-दिने गंग-नहन ॥३६९॥
ब्रह्म ! सोँ विरला कोउ नर, जो सर्वांग छइल्ल।
जो वंका सो वंचकर, जो ऋजुका सोँ बइल्ल ॥४१२॥
गयउ सोँ केसरि पियहु जल, निश्चिते हरिनाइँ।
जासुकेर दह्हाडये, मुखइँ पडंति तृणाइँ ॥४२२॥
शिर चढिया खावइँ फलहिँ, पुनि डालिहिँ मोडंति[3]।
तऊ महाद्रुम शकुनहीं, अपराधी न करंति ॥४४५॥
—प्राकृत० (पृ० १४७, १५२, १६१, १६६, १६९, १७५)
जे देखहिँ न पर-दोष। गुणे हिँ जे प्रकटें तोष।
ते जगें महानुभावा। विरला सरल-स्वभावा ॥१२५॥
पर-गुण-ग्रहण स्वदोष-प्रकाशन। मधु-मधुराक्षरें अमृत-भाषण।
उपकारेँहिँ प्रतिकरिय वैरिजन, एँउ पद्धती मनोहर सुजन ॥१२८॥
—छन्दो० (पृ० ४३)

---

[1] डारै　　[2] लेते　　[3] तोड़ते

§ ३१. हरिभद्र सूरि

(चंद्रसूरि-शिष्य)। काल—११५९ ई० (जयसिंह-कुमारपाल १०९३-११४२-७३)। देश—गुजरात (अनहिलवाडा पाटणमें निवास) कुल—

१—प्रकृति-वर्णन

(१) प्रात: वर्णन

तपणु वियलिर तिमिर धम्मिलु परिल्हसिर तारय वसण-कलयलंत तरुसिहर पक्खिय।
परिसंदिर कुसुम-महु-बिंदु-मिसिणएँ पइ वड्ढुक्खिय।
जस मइ कुमरिहें दुक्खेण वइरेण रयणि-विलीण,
पडिवक्खिय खयरिंद सुहबुद्धिं'व कुमुदणि की।
कुमर-रयणह पहु पयासेंउ मिव-वियसइँ विसिमुहइँ, उदयगिरिहिँ आरुहिउ दिणयरु।
संपाविययउ वडनिरु रायहंस कमलोह-सुहयरु।
पत्तावसर समुल्लसिय संभराय सिंगार।
नं कुंकुम कोसुंभ वरवत्थ-कयालंकार।
संत चक्कहँ विहिय संतोस पविरायइ पुव्वदिसि अवहरंत तम-वल्लि-लज्जेण।
पसरंत रायारुणेण नववहु'व्व रवि-दइय-संगेण।
उदयंते णयरवि निवेण गंजंतेण पडिवक्खु।
कमलकोसें विणिहित करवट्टु गुरुत्तणें लक्खु।
हरिय तारय-रेणु-नियरंमिग्रइ निप्पहें दोसयरें, निम्मलं मि गयणयलें चड्डिउ।
रवि रेहइ कणयमउ-मंगलज्जुनं कलसु मंडिउ।
भमरा धावहिँ कुमुइणिउ उब्भिवि कमलवणेसु,
कस्सव कहिं पडिवंधु जगें चिरपरिचिय-गणेसु।

---

*प्रो० हर्मान् याकोबी द्वारा संपावित—देखो पृ० ३८५ पर

§ ३१. हरिभद्रसूरि

जैन साधु, महामंत्री पृथ्वीपालके अनुगृहीत। कृति—नेमिनाथ-चरिउ* (८०३ श्लोक)

१—प्रकृति-वर्णन

(१) प्रातः वर्णन

तपन-विदलिय तिमिर-धम्मिल्ल[1] परि-खसिय तारक-वसन, कलकलंत तरुशिखर पक्षिय।
परिस्यंदित कुसुम-मधुबिंदु-मिश्रण[2] तैं वहु-रक्षिय।
जसु मैं कुमरिहि दुःखें वैरें रजनि-विलीन।
प्रति-पक्षिय खंचरेंद्र सुख-बुद्धि व कुमुदिनि की।
कुमर-रतनह प्रभ प्रकाशें उ मृदु विकसै बिसि[3]-मुखैं, उदयगिरिहिं आरुहें उ दिनकर।
सं-पायें उ अतिशय राजहंस कमलोघ-सुखकर।
प्राप्तावसर समुल्लसिय शांब-राज[3]-शृंगार।
जनु कुंकुम - कौसुम्भ - वरवस्त्र - कृतालंकार।
शांत-चक्रहं विहित-संतोष प्रबिराजै पूर्व दिनें अपहरंत तम-वल्लि-लज्जहिं।
प्रसरंत रागारुणेहिं नववधु इव रवि-दयित-संगेहिं।
उदयंते नव-रवि नृपेहिं गर्जन्तेहिं प्रतिपक्ष।
कमलकोशें विनिहित कर-वर्त्तें गुरुत्वे लक्खु[5]।
हरित तारक-रेणु निकुरंविय निष्प्रभें दोषाँकरें, निर्मले गगनतले चढें उ।
रवि राजै कनकमय-मंगलार्जुन-कलश-मंडें उ।
भ्रमरा धावैं कुमुदिनिउ खिलें उ कमलवनहं।
केहि इव कहं प्रतिबंध जगें चिरपरिचित-गणहं।

---

[1] केश [2] कमल [3] कामदेव [4] किरण समूह [5] लख्यो

विरह-विहुरिय चक्कमिहुणाइँ मिलिऊण साणंद, हुय तुट्ठ भमहिँ पहियण महियलें।
कोसिय[1]-कुलु ऍक्कु परिदुहिउ रविहिँ ग्रारूढें नहयलें।
——णेमिणाह-चरिउ ७

(२) वसंत-वर्णन

पाणि संठिय मंजु सिंजंत भमरावलि सामलियदलि कुसुम-सहयार-मंजरि।
पसरंत हरिसुल्ल सिय पुलय भरें ण रेहंत सिरुवरि।
विरइवि करसंपुटु भणहिँ, उज्जाणिय आगंतु।
जह पहु हरिसिय भुवण-जणु, संपइ पत्तु वसंतु।
जमिह पसरिउ दइय-संगु'व्व मलयानिलु अंगसुहु पत्तविहवु पुणु कुसुम-परिमलु।
चारिज्जय तूर-रव-रम्मु फुरिउ कलयंवि-कलयलु।
पउमारुण कंकेल्लि-तरु-कुसुमइँ नयणसुहाइँ।
तवणिज्जुज्जल कुसुम-भरु हूय कोरिंट-वणाइँ।
जत्थ माहवि लइय तो मरिय सेहालिय कुंतलिय जालईय लहु सुरहि लइयवि।
भूयद्दुम मंजरिय वहुगुलुंब पायव असोयवि।
आलिंगिज्जहिँ पूगफलें, तरु कामुय सव्वंगु।
नागवल्लि तरुणिहिँ जणहँ, उज्जीविरिहि अणंगु॥
जहिँ पवालंकुरें हिँ कयसोह डिंभाइँ'व तिलयकय गरुयमहिम कामिणि मुहाइँ'व।
वहुलक्खण चित्त-सय मणहराइँ नर-वइ-गिहाइँ'व।
उत्तिम जाइ प्पसवकय-महिमंडणाइँ वणाइँ।
विलसहिँ भुवणाणंदयर, नं नरनाहकुलाइँ॥
जहिय विज्ज सियकुसुम कणियार-वणराइ कंचणमयव कुणइ पहिय हिययाण विब्भमु।
अहिकंखहिँ भुवणयले सयल-मिहुण नियदइय-संगमु।
गिज्जहिँ रासहिँ चच्चरिउ, पेज्जहिँ वरमहुराउ।
माणिज्जहिँ तुंगत्थणिउ, किज्जहिँ जल-कीलाउँ॥
—णेमिणाह-चरिउ[2]

---

[1] कौशिक=उल्लू [2] संधि ४

विरहविधुरित चक्रमिथुनाइँ मिलियउ सानंद, हुयेँ तुष्ट भ्रमैँ पँथिजन महितलेँ।
कौशिक-कुल एक परि-दुखित रविहिँ आरूढे नभतलेँ।
—नेमिनाथ-चरित ७

(२) वसंत-वर्णन

पाणि-सं-ठिय मंजु सिंजंत भ्रमरावलि श्यामलिय,दलेँ कूसुम सहकार-मंजरि।
पसरंत हर्षिल सित-पुलक-भरेँ राजंत शिरवरेँ।
विरचिय कर-संपुट भनैँ उद्-जानिय आगंत।
जिमि प्रभु हर्षिय भुवन-जन, संप्रति आउ वसंत।
जो ऍहि पसरेँउ दयित-संग इव मलयानिल अंग-सुख प्राप्तविभव पुनि कुसुम-परिमल।
संचारिय तूर्य-रव रम्य फुरेँउ कलकंपि-कलकल।
पद्मारुण कंकेलि[1]-तरु-कुसुमा नयन-सुखाइँ।
तपनीय ज्वल कुसुंभ-भर हुअ कोरिंट-वनाइँ।
यत्र माधवि लतिक तोमरियँ-शेफालिक कुंतलिय जालकित लघु सुरभि लइयउ।
भुर्जद्रुम मंजरिय बहु-गुल्म-पादप अशोकउ।
आलिंगिज्जैँ पूग-फलेँ, तरु कामुक सवांग।
नागवल्लि-तरुणिहिँ जनहँ, उज्जीवियहि अनंग॥
जिमि प्रवालांकुरेँहिँ कृतशोभ डिंभा इव,तिलककृत गरुव-महिम कामिनि-मुखाइव।
बहुलक्षण-चित्रशत-मनहरा नरपति-गृहा इव।
उत्तम-जाति-प्रसवकृत, महिमंडना वनाइँ।
विलसैँ भुवनानंदकर, जनु नरनाथ-कुलाइँ॥
जाहि फुटिय सित-कुसुम कर्णिकार-वन-राजि कंचनमृदउ,करै पथिक-हृदयाहँ विभ्रम।
अभिकांक्षैँ भुवनतलेँ सकल-मिथुन निज-दयित-संगम।
गाइज्जै रासहिँ चर्चरिउ, पीइज्जै वर-मदिराव।
मानिज्जै तुंग-स्तनिउ, किज्जै जल-क्रीडाव॥
—नेमिनाथ-चरित संधि ४

---

[1] अशोक [2] फैला हुआ

२–सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जीएँ रयणिहिँ नियय तणु किरणमालच्चिय दीव सिव सोह मेतु मंगल-पईवय।
सवणाग विहूसणइँ नयणकमल विइ मेत्तं मेवय।
गंडयलच्चिय तिमिर-हर, जगेँ पहु ससि-रवि-संख।
सवण जेँ अंदोलय ललिय, विहल महुहु आकंख॥
जणु सुहावहिँ मुहह निसास किं मलयानिल भरेण,दंतकिरण धवलहिँ किं चंदेण।
अहरो विहुरं जवइ जगु विकइण किं अंगरागेण।
रसण पउच्चिय मिउफरि, सूनपा-मयण सयणेज्ज।
नह-मणि-किरणच्चिय कुणहिँ, कुसुम अयारह कज्जु॥
तरल-नयणेहिँ कुडिल-केसेहिँ थण-जुयलेण, पुणु कठिण तुज्झ रुव मज्झपएपेण।
अच्चंतं बाउलिय देवपूय गुरु विणय हरिसेण।
इय सा सयलुवि जगु जिणइ, निय-गुण-दोस-सएण॥
—णेमिणाह-चरिउ[1]

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौंदर्य

नील-कुंतल कमल-नयणिल्लु विवाहरु सियदसणु, कंबुगीवु पुर-अररि उरयलु।
जुय दीहर-भुय-जुयल वयण ससि जिय कमल-उप्पल।
पउमदलारुण करचलणु, तविय - कणय - गोरंगु।
अट्ठ वरिस वउ पहु हुयउ, सभहिय विजिय अणंगु॥
—वही

(३) विवाह-महोत्सव

ता पहुत्तइ लग्ग समये मिलिएहिँ सुहि-सज्जणेहितेसि, कुमरकुमरीण दोण्हवि।
पारद्ध विवाह-विहि तयणु-खयर पहु दुहिय अन्नवि।

---

[1] संधि ७

२—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जेहि रजनिहिँ निजय तनुकिरण-मालार्चित दीप शिव सोह मात्र मंगलप्रदीपय।
श्रवणाइँ विभूषणँ नयन-कमल द्वे मित्र एवय॥
गंडतल-अर्चि तिमिरहर, जग प्रभ शशि-रवि-शंख।
श्रवण जें आंदोलै ललित, विफल न होहु आकंक्ष॥
जनु स्वभावें मुखनिःश्वास की मलयानिल भरेहिँ, दंतकिरण धवलहिँ की चंदेहिँ।
अधराहु-हु रंजवै जग विकचें की अंगरागेहिँ॥
रसन अ-उच्चिय मृदुफलें, सून मदन शयनिज्ज।
नख-मणि-किरणार्चिय करै, कुसुम-विारहैं काज॥
तरलनयनेहिँ कुटिल-केशेंहिँ स्तन-युगलेहिँ, पुनि कठिन तोर रूप मध्यप्रदेशेहिँ।
अत्यंत व्याकुलित देँव-,पूजा गुरु-विनय हर्षेहिँ।
इमि सा सकलउ जग जितै, निज गुण-दोष-शतेहिँ॥ ॥

—नेमिनाथ-चरित संधि ७

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौंदर्य

नीलकुंतल कमल-नयनिल्ल बिंबाधर[2] सित-दशन, कंबुग्रीव पुर-अरर[1] उरतल।
युग-दीरघ-भुज-युगल बदन सीस जिमि कमल-उत्पल।
पद्मदलारुण कर-चरण, तप्तकनक-गोरंग।
आठ वर्ष वय प्रभु हुयेंउ, समधिक-विजित-अनंग॥

—वहीं

(३) विवाह-महोत्सव

तब प्रभूतउ लग्न समये मिलितेहिँ सुहृद्-साजनहितैषि, कुमर कुमरीहु दोनउ।
प्रारब्ध विवाह-विधि तपनः-खचर-प्रभ दुहित अन्यउ।

---

[1] अरर=कपाट [2] बिम्बाधर

नियनिय जणयाणुग्गहिणु, कयसायर सिंगार ।
लग्ग कुमारह पाणितलें, फुरिय मलय-पब्भार ॥
ता कुमारह वित्ति विवाहे पसरंत महूसवेण नयरलोउ सयलोवि सहरिसु ।
आसीसहँ सय-सहस देइ कुणइ मंगलिय पगरेसें ।
अह नरनाहेंण वित्थरेंण, नियनयरंमि असेसें ।
पारद्धउ वद्धावणउँ, तंमि विवाह विसेसें ॥
वज्जंत गज्जंत वहुभेय-तूरं । लभिज्जंत दिज्जंत कप्पूर-पूरं ।
पणच्चंत णच्चंत वेसा-समूहं । दसिज्जंत हिंडंत वावणयतूहं ।
एंत गच्छंत चिट्ठंत वहुसज्जणं । लेंत वियरंत सुयसंत जण-रंजणं ।
खंत पिज्जंत दिज्जंत वहुभक्खयं । लोय उल्लसिय वहुभेय मणसुक्खयं ।
धावंत कीलंत वग्गंत खुज्जयगणं । वंत उट्ठंत निवटंत वालयजणं ।
—णेमिणाह-चरिउ[1]

(४) नारी-विलाप

हरिण-णयणिय चंपयच्छाय ससि-सोमवयणंवुरुह, कुंद-कलिय-सम-दंत-पंतिया ।
परिदेविय रव-भरिय धरणि गयण अंतरमय विय ॥
कुट्टहिँ सिरु कर-मुग्गरिहिँ, पीडहिँ उरु बादाहिँ ।
ताडहिँ वच्छोरुहवियउ, नियकरसाहाहिँ ॥
रुयहिँ गायहिँ ललहिँ मुच्छहिँ सिक्कारत्रिँ पुक्कारिहिँ, सहिहि गहियउ उरें हार तोडहिँ ।
उल्लूरहिँ चिहुर-भर कणय-रयण-वलयालि मोडहिँ ॥
सरिवि सरिवि निय-पियय मह, गुणगणु तहिँ विलवंति ।
जह स विहट्ठिय तरु विहय, नियरु वि रोयावंति ॥
—णेमिणाह-चरिउ[2]

---

[1] संधि ७ [2] संधि ६

निज निज जनकानुग्रहें उ, कृत - सादर - शृंगार ।
लाग कुमारह पाणितलें, फुरिय मलय पह्हार ।।

तो कुमार-कृत-विवाहें पसरंत महोत्सवें, नगर लोग सकलऊ सँहर्षेउ ।
आशीषहँ शत-सहस दें इ करै मंगलिय प्रकर्षेउ ।

अथ नरनाथें विस्तरें, निज नगर ही अशेषें ।
प्रारंभेउ बधावनउ, तेहिँ विवाह - विशेषें ।।

वाजंत गाजंत बहुभेद-तूरं । लभिजंत दीयंत कर्पूर-पूरं ।
प्र-नाचंत नाचंत वैश्या-समूहं । द्रशिज्जंत हिंडंत वामन-समूहं ।

जांत आवंत तिट्ठंत बहुसज्जनं । लेंत वितरंत सुप्रशांत जनरंजन ।
खांत पीयंत दीयंत बहु-भक्षणं । लोक उल्लसिय बहुभेद मनसुक्खयं ।
धावंत क्रीडंत वलंत कुब्जक-गणं । वांत उट्ठंत निपतंत बालकजनं ।।

—वहीं

(४) नारी-विलाप

हरिन-नयनिय चम्पक-छाय शशि-सौम्य वदनांबुरुह, कुंदकलिय-सित-दंत-पंक्तिया ।
परिदेवें उ रव-भरिय धरणि-गगन-अंतरमय इव ।।

कूटैं शिर कर - मुद्गरिहिँ, पीडैं उरु - पादाहँ ।
ताडैं वक्षोरुह विकट, निज(निज)कर-शाखाहिँ ।।

रोवैं गावैं ललैं मूर्छैं सीत्कारैं पुक्कारैं, सखिहि गहिउ उर-हार तोड़हीं ।
उल्लूरैं[1] चिकुर-भर कनक-रतन-वलयालि मोडहीं ।

सुमिर सुमिर निज-प्रियहं महाँ,-गुण-गण तहँ विलपंति ।
जिमि स-तिरस्कृत-तरु विहग, नितरुउ रोआपंति ।।

—वहीं संधि ६

---

[1] नोचैं

३—कविका संदेश

(सब तुच्छ)

तरलु तारुण्णु जल'व चवल संपयवि ।
इच्छ आयास मदुलह पुणु वंचियवि ॥
तण्णु विणस्सरु सयण नियय कज्जट्ठिया ।
विसम-परिणामु'वि हि कामिणि 'वि दुट्ठिया ॥
पिसुणवल पिच्छिणो महि दुराराहया ।
मणुवि मक्कड, मयच्छीउ तव्वाहया ॥

—वहीं

§३२. अज्ञात कवि

(बीसल-देव काल ११५३–६४)

(१) जगड्डू साहुके दानकी प्रशंसा

नउ करवाली मणियडा, ते अग्गीला च्यारि ।
दानसाल जगड्डू-तणी, दीसइ पुहवि मँझारि ॥११८॥
बीसलदे विरुअं करइ-जगडु कहावइ जी ।
तु(उ) परीसइ फालिसिउँ, एउ परीसइ घी ॥११९॥

—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४२

(२) अकालमें दुर्दशा

कल्लिहिँ बोर जि वीणती, अज्ज न जाणइ खल्ल ।
पुणरवि अडविहिँ करि सुघर, न सहुँ एह अणक्ल ॥१३७॥
भूमी गुणेण जइ कहवि तुंगिमा तुज्झ होइ ता होउ ।
तह तुह फलाण रिद्धी होही वीआणुसारेण ॥१३८॥

—उ० त०, पृ० ४६

३—कविका संदेश

(सब तुच्छ)

तरल तारुण्य जल इव चपल संपदउ।
इच्छि आकाश मृदुलह पुनि वंचियउ॥
ताप विनस्वर शयन निजय कार्य-ट्ठिया।
विषम-परिणामउ हि कामिनिउ दुट्-ठिया॥
पिशुन-बल प्रेक्षका महि दुराराधग्रा।
मनउ मर्कट, मृगाक्षीउ तद्-वाधग्रा॥
—वही

§ ३२. अज्ञात कवि

कृति—स्फुट

(१) जगडू साहुके दानकी प्रशंसा

ना करवाली मनियरा ते आगिल्ला चारि।
दानशाल जगडूकेरी, दीसै पुहवि-मँझारि॥११८॥
बीसलदे विरुदं करै, जगडु कहावै जीव।
तू(तो) परसै फालसैं, एह परीसै घीव॥११९॥
—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४२

(२) अकालमें दुर्दशा

कालहिँ वोर जो वीनती, आज न जानै कक्ख।
पुनरपि अटविहिँ करिसु घर, ना सँग एह अनक्ख॥१३७॥
भूमि गुणेहीं यदि कहवि तुंगिमा तुज्झ होउ ता होउ।
तिमि तव फलाहँ ऋद्धी होही बीजानुसारेहीं॥१३८॥
—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१, ४२, ४६

§३३. आम भट्ट

काल, (जयसिंह—कुमारपाल १०९३-११४२-७३)। देश—अन्हिलवाडा-

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

डरि गइंद डगमगिअ चन्द करमिलिय दिवायर,
डुल्लिय महि हल्लियहि मेरु जलझंपइ सायर।
सुहडकोडि थरहरिय कूरकूरंभ कडक्किअ,
अतल वितल धसमसिअ, पुहवि सहु प्रलय पलट्टिय ॥
गज्जंति गयण कवि **आम** भणि, सुरमणि फणिमणि इक्कहूअ।
मागहि हिमगहि मम गहि मगहि मुंच मुंछ **जयसिंह** तुह ॥२०२॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे रक्खइ लहुजीव वडवि रणि मयगल मारइ,
न पिइ अणग्गलनीर हेलि रायह संहारइ।
अवर न बंधइ कोइ सधर रयणायर बंधइ,
परनारी परिहरइ लच्छि पररायह रुंधइ।
कुमरपाल कोपिँ चडिउ फोडइ सत्तकडाहि जिमि,
जे जिणधम्म न मन्निसइँ तीहवि चाडिसु तेम-तिम ॥२०४॥
—वहीँ उ० त०, पृ० ६५

§ ३३. आम भट्ट

पाटन (गुजरात)। कुल—ब्राह्मण, राज-कवि। कृतियाँ—स्फुट

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

डरि गयंद डगमगिय चन्द करमिलिय दिवाकर,
डोलिय महि हल्लियह मेरु जल जंपै सागर।
सुभट-कोटि थरथरिय कूर-कूरम्भ कडक्किय,
अतल वितल धसमसिय पुहवि सँग प्रलय पलट्टिय।
गजँति गगन कवि **आम** भन, सुर-मणि फणि-मणि एक हुअ।
मागहि हिम गहि मम गहि मगहि मुंच मुंछ **जयसिंह** तुव ॥२०३॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे राखै लघुजीव बडउ रणें मदकगल मारै,
न पिउ अनगंल नीर हेरि राजहँ संहारै।
अवर न बाँधै कोइ स-घर रतनाकर बाँधै,
परनारी परिहरै लक्ष्मि पर-राजहँ रुंधै।
कुमरपाल कोपी चढेउ फोडै सप्तकडाहि जिमि।
जो जिनधर्म न मानिहैं, तेहहिं चाढिसु ताम तिमि ॥२०४॥

—उपदेशतरंगिणी (पृ० ६४, ६५)

§ ३४: विद्याधर

काल—११८० (जयचंद ११७०-९४)। देश—कन्नौज। कुल—ब्राह्मण,

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा[1]

(वीर-रस)

चंदा कुंदा कासा, हारा हीरा तिलोअणा केलासा।
जेत्ता जेत्ता सेत्ता, तेत्ता कासीस जिण्णिआ ते कित्ती ॥७७॥ (१३७)
विसुह चलिअ रण अचलु, परिहरिअ हअ-गअ-वलु।
हलहलिअ **मलअ** णिवइ, जसु जस तिहुअण पिअइ।
वरणसि-णरवइ लुलिअ, सअल उवरि जस फरिअ ॥८७॥ (१४८)
भअ भंजिअ **वङ्ग** भग्गु **कलिंगा**, तेलंगा रण मुक्कि चले।
मरहट्टा ढिट्टा लग्गिअ कट्ठा[2], **सोरट्ठा** भअ पाअ पले।
चंपारण कंपा पव्वअ झंपा, ओत्था ओत्थी जीवहरे।
कासीसर राआ किअउ पआणा, विज्जाहर भण मंतिवरे ॥१४५॥ (२४४)
राअह भग्गंता दिगलग्गंता, परिहर हअ-गअ-घर-घरिणी।
लोरहिं[3] भर सरवरु पअ अरु परिकरु, लोट्टइ पिट्टइ तणु धरणी।
पुणु उट्ठइ संभलि कर दंतंगुलि, वाल तनअ कर जमल करे।
कासीसरु राआ णंहलु काआ, करु माआ पुणु थप्पि घरे ॥१८०॥ (२८९)
जे किज्जिअ धाला जिण्णु णिवाला, **भोटुंता** पिट्टंत चले।
भंजाविअं चीणा दप्पहि हीणा, लोहावल हाकंद पले।

---

[1] "The King's (Jaichandra's) minister Vidyadhara" the Hist. of Rashtrakuta, p. 128. [2] दिशा
[3] लोर (मल्लिका) आंसू

§ ३४. विद्याधर

राज महामंत्री।[1] कृतियाँ—स्फुट कवितायें[2]।

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा

(वीर-रस)

चंदा कुंदा काशा हारा हीरा त्रिलोचना कैलाशा।
जेत्ता जेत्ता श्वेता, तेत्ता काशीश जीतिया तव कीर्त्ति ॥७७॥

बिमुख चलिय रणें अचल, परिहरिय हय-गज-बल।
हलहलिय मलय नृपति, यासु यश त्रिभुवन पिवई।
बनरसि-नरपति लुलिय सकल-उपरि यश फुरिया ॥८७॥

भय भाजिय बंगा भागु कलिंगा, तेलंगा रण मुंचि चले।
मरहट्ठा दिट्ठा लागिय काष्टा, सौराष्ट्रा भय पाद पड़े।
चंपारन कंपा पर्वत झंपा, उट्ठी उट्ठी जीवहरे।
काशीश्वर राना कियेउ पयाना, विद्याधर, भनु मंत्रिवरे ॥१४५॥

राजा भागंता दिश-लागंता, परिहरि हय-गज-घर-घरनी।
लोरहिं भरु सरवर पद पर-परिकर, लोटै-पीटै तनु धरणी।
पुनि उट्ठै संभलि कै दंतांगुलि, वाल-तनय कर यमल करै।
काशीश्वर-राजा स्नेहल-काया, करु माया, पुनि थापि धरै ॥१८०॥

जेहिं कीजिय धारा जित्तु नेपाला, भोट्टंता पिट्टंत चले।
भंजावेंउ चीना दर्पहिं हीना, लोहावले 'हा'क्रंदि पड़े॥

---

[1] 'सर्वाधिकार-भार-धुरंधरः।...चतुर्दशविद्याधरो विद्याधरः...।" प्रबंध-चिन्तामणि (मेरुतुंगाचार्य १३०४ ई०) पृष्ठ ११३-१४ (सिंघी जैन-ग्रंथ माला १, शांतिनिकेतन १९३२ ई०) The king's (Jaichanda's) minister Vidyādhara. Hist. of the Rashtrakutas (Altekar) p. 128

[2] "प्राकृत-पैंगल" (Biblio thica Indica) में संगृहीत। जिनमें कविका नाम नहीं, उनका कर्तृत्व संदिग्ध है।

ओड्डा उड्डाविअ किती पाविअ, मोलिअ मालव-राअ-बले ।
तैलंगा भग्गिअ पुणवि ण लग्गिअ, कासीराआ जखण चले ॥१०६॥ (३१८)

भत्ति पत्ति पाअ भूमि कंपिआ, टप्पु खुंदि खेह सूर झंपिआ ।
गोलराअ-जिण्णि माण मोलिआ, कामरूअ-राअ वंदि छोलिआ ॥१११॥ (४२३)

भंजिआ मालवा गंजिआ [1]कण्णला, जिण्णिआ गुज्जरा लुंठिआ कुंजरा ।
बंगला-[2]भंगला-ओड्डिआ मोड्डिआ, मेच्छआ कंपिआ कित्तिआ थप्पिआ ॥१२८॥(४४६)

रे गोड ! थक्कंति ते हत्थि-जूहाइ, पल्लट्टि जुज्झंतु पाइक्क-वूहाइ ।
कासीसु राआ सरासार अग्गे ण, की हत्थि की पत्ति की वीर-वग्गेण ॥१३२॥ (४५०)

§ ३५ : शालिभद्र सूरि

काल—११८४ ई० । देश—गुजरात । कुल—. . . जैन साधु ।

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पेखवि पुरह प्रवेसु, दूत पहूतउ रायहरें ।
सिउँ प्रतिहार प्रवेसु, पामिय नरवर-पय नमइ ॥६८॥

चउकिय माणिक-थंभ-, माहि बईठउ बाहुबलें ।
रूपिहिँ जीसिय रंभ, चमरहारि चालइँ चमर ॥६९॥

मंडिय मणिमइ दंड, मेघाडंबर सिर धरिय ।
जस पयडे भुयदंडि, जयवंती जयसिरि वसइँ ॥७०॥

जिम उदयाचल सूर, तिम सिरि सोहइ मणिमुकुटों ।
कस्तुरि कुसुम कपूर, कूचुंबरि महमह(मह)ए ॥७१॥

---

[1] कर्नाटक [2] भग्गल—अंगदेश (भागलपुर प्रदेश)

ओड्डा उड्डापेँउ कीर्त्ति पायेँउ, मोडिय **मालव-राज** बले।
तेलंगा भागेँउ पुनहुं न लागेँउ, **काशी-राजा** जखन चले ॥१९८॥
भट्ट पत्ति[1]-पाद भूमि कंपिया, टाप खूँदि खेह सूर झंपिया।
गौड-राज जित्तु मान मोड़िया, **कामरूप-राज** वंदि छोड़िया ॥१११॥
भंजिया **मालवा** गंजिया **कन्नडा**, जित्तिया **गुर्जरा** लूटिया कुंजरा।
बंगला भंगला ओडिया मोड़िया, म्लेच्छया कंपिया कीर्तिया थापिया।१२८।
रे **गौड** ! थाकंति ते हस्ति-यूथाइँ, पल्लट्टि जूझंति पाइक्क इयूहाइँ।
काशीश राजा सरासार आगेहिँ, की हस्ति की पत्ति की वीर-वग्गेहिँ ॥१३२॥

§ ३५: शालिभद्र सूरि

कृति—बाहुबलिरास[2]

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पेखेँउपुरहेँ प्रवेश, दूत बहूतउ राजघरेँ।
स्वयँ प्रतिहार प्रवेशु, पाइय नरवर-पद नमैँ ॥६८॥
चउकी माणिक-थंभ-, माँझ बईठउ बाहुबलि।
रूपे जैसी रंभ, चमरधारि चालैँ चमर ॥६९॥
मंडित मणिमय दंड, मेघाडंवर पशर धरिय।
जसु प्रकटे भुजदंडेँ, जयवंती जयश्री वसिय ॥७०॥
जिमि उदयाचलेँ सूर, तिमि शिर सोहै मणि-मुकुट।
कस्तुरि-कुसुम कपूर-, कच्चूमर महमह-महइ ॥७१॥

---

[1] प्यादा, पदाति [2] "भारतीय-विद्या" (वर्ष २, अंक १) में मुनि जिनविजय जी द्वारा पंद्रहवीं-सोलहवीं सदीके हस्तलेखके आधार पर सम्पादित

झलकइ कुंडल कानि, रवि शशि मंडिय किर अवर ।
गंगाजल गजदानि, गाढिय गुण गज गुडउडइँ ।।७२।।
उरवरि मोतियहार, वीरवलय करि झलहलइ ।
नवल अंग सिणगार, खलकए टोडर वामए ।।७३।।
पहिरणि जादर चीर, कलइ करि माल करें ।
गुरुऊ गुण गंभीर, दीठउ अवर कि चक्कधर ।।७४।।

(२) सेना-यात्रा

ठवणि ।। अहि उग्गमि पूरबदिसिहिँ, पहिलउँ चालिय चक्क ।
धूजिय धरयल थरहरएँ, चलिय कुलाचल-चक्क ।।१८।।
धूठि पियाणुं तउ दियएँ, भूयबलि भरह-नरिंदु तु[1] ।
पिडि पंचायण परदलहँ, हलियलि अवर सुरिंदु ।।१९।।
वज्जिय समहरि संचरिय, सेनापति सामंत ।
मिलिय महाधर मंडलिय, गाढिम गुण गज्जंत ।।२०।।
गडयडतू गयवर गुडिय, जंगम जिमि गिरि-शृंग ।
सुंड-दंड चिर चालवइँ, वेलइँ अंगिहिँ अंग ।।२१।।
गंजइ फिरि फिरि गिरि-सिहरि, भंजइँ तरुअर डालि ।
अंकस वसि आवइँ नहीँ, करइँ अपार अणालि ।।२२।।
हींसइँ हसमिसि हणहणइँ, तरवर तार तोखार ।
खंदइँ खुरलइँ खेडविय, मन मानइँ असुवार ।।२३।।
पाखर पंखि कि पंखरुय, ऊडाऊडिहिँ जाइ ।
हुंफइँ तलपइँ ससइँ घसइँ, जडइँ जकारिय थाइ ।।२४।।
फिरइँ फेंकारइँ फोरणइँ, फुड फेणाउलि फार ।
तरणि-तुरंगम समतुलइँ, तेजिय तरल ततार ।।२५।।

---

[1] तु हर जगह अलापनेके लिये जोडा हुआ है, जिसे हमने आगे छोड दिया ।

झलकै कुंडल कान, रवि-शशि-मंडित जनु अवर ।
गंगा-जल गजदान, ग्रंथित गुण-गज गुडगुडै ॥७२॥
उरवरें मोतीहार, बीर वलय करें झलझलै ।
नवल अंग शृंगार, खलकतो टोडर[1] वामए ॥७३॥
पहिरनि चादर चीर, कंकोलह करि माल करें ।
गुरुओ गुण-गंभीर, दीसेंउ अपर कि चक्रधर ॥७४॥

(२) सेना-यात्रा

ठवनि ॥ रवि-उद्गमें पूरवदिशहिं, पहिलेंइ चालिय चक्र ।
धूनिय धरतल थरथरै, चलिय कुलाचल-चक्र ॥१८॥
पीछें प्रयाणा तब दियो, भुजवलि भरत नरेंद्र ।
पिडि पंचानन परदलहं, धर-तल अपर सुरेंद्र ॥१९॥
वाजिय समभेंरि संचरिय, सेनापति सामंत ।
मिलिय महाधर-मंडलिय, ग्रंथित गुण गजंत ॥२०॥
गड़गड़तो गजवर गुड़िय, जंगम जिमि गिरिशृंग ।
शुंड-दंड चिर चालवैं, मोडैं अंगें अंग ॥२१॥
गंजें फिरि फिर गिरि-शिखर, भंजें तरुवर-डालि ।
अंकुश-वश आवैं नहीं, करें अपार अनाडि ॥२२॥
हीसैं घसमस हिनहिनैं, तरवर तार **तुखार** ।
स्कंदैं खुरलैं खेलइय, मनमाना असवार ॥२३॥
पाखर[2] पंख इव पाखेंरु, ऊड़ाऊड़ी जाइ ।
हांफैं तडफैं श्वस-धसैं, जडैं जकारिय धाइ ॥२४॥
फिरैं फेंकारै स्फोरणैं, फुर फेनावलि फार ।
तरल-तुरंगम समतुलैं, ताजिक तरल ततार ॥२५॥

---

[1] आभूषण [2] जीन

घडहडंत धर द्रम-द्रमिय, रह रुंधइँ रहवाट ।
रव-भरि गणइँ न गिरि-गहण, थिर थोभइँ रहथाठ ॥२६॥
चमर-चिन्ध-धज लहलहइँ, मिल्हइँ, मयगल माग ।
वेगि वहंता तिहँतणइ, पायल न लहइँ लाग ॥२७॥
दडयडंत दह-दिसि दुसह, (प)सरिय पायक-चक्क ।
अंगोअंगिहिँ अंगमइँ, अरियणि असणि अणंत ॥२८॥
ताकइँ तलपइँ तलिमिलिइँ, हणि हणि हणि पभणंत ।
आगलि कोइ न अछइ भलु, जे साहसु जूझंत ॥२९॥
दिसि दिसि दारक संचरिय, वेसर वहइँ अपार ।
संघ न लाभइँ सेनतणि, कोंइ न लहइँ सुधि सार ॥३०॥
बंधव बंधवि नवि मिलइँ, बेटा मिलइँ न बाप ।
सामि न सेवक सारवइँ, आपिहिँ आप विथाप ॥३१॥
गयवडि चडिऊ चक्कधरोँ, पिडि पयंड भुयदंड ।
चालिय चहुँदिसि चलचलिय, दिइँ देसाहिव दंड ॥३२॥
वज्जिय समहरि द्रमद्रमिय, घण नीनाद निसाण ।
संकिय सुरवरि सग्ग सवेँ, अवरहँ कवण पमाण ॥३३॥
ढाक ढूक् त्रंबकतणइँ, गाजिय गयण निहाण ।
षट् षंडह षंडाहिवहँ, चालतु चमकिय भाण ॥३४॥
भेरिय-रव-भर तिहुँ-भुयणि, साहित किमइँ न माइ ।
कंपिय पय-भरि शेष रहु, विण साहीउ न जाइ ॥३५॥
सिर डोलावइ धरणिहिँ, टंकु टोल गिरिशृंग ।
सायर सयलवि झलझलिय, गहलिय गंग-तरंग ॥३६॥
खर-रवि खुंदिय[१] मेहरवि, महियलि मेहंधार ।
उजु-आलइ आउध तणइँ, चलइँ राय खंधार ॥३७॥

---

[१] उच्चारण ख

धड़धड़ंत धर द्रमद्रमिय, रथ रुंधैं रथवाट ।
रव-भरें गनैं न गिरि-गहन, थिर स्तोभैं रथ ठाट ॥२६॥
चमर-चिन्ह-ध्वज लहलहैं, छोडैं मदगल मार्ग ।
वेग वहंता तेहिकर, पायल न लहैं लाग ॥२७॥
दड़दड़ंत दशदिशि दुसह, पसरिय पायक[1]-चक्र ।
अंगा-अंगी अंगमैं, अरिजनें अशनि अनंत ॥२८॥
ताकैं तडपैं तिलमिलैं, "हन हन हन" प्र-भनंत ।
आगे कोइ न अहै भल, जे साहस जूभंत ॥२९॥
दिशिदिशि दारक संचरिय, वेसर[2] वहैं अपार ।
शंक न लावै सेनते, कोंइ न लहैं सुधि सार ॥३०॥
चांधव बांधवें ना मिलैं, बेटा मिलैं न बाप ।
स्वामि न सेवक सारखैं, आपुहिं आपउ थाप ॥३१॥
गजपति चढेऊ चक्रधर, पीडि प्रचंड भुजदंड ।
चालिय चहुँदिशि चलचलिय, देंइ देशाधिप दंड ॥३२॥
वाजिय भेरी द्रमद्रमिय, घनो निनाद निसान ।
शंकित सुरवर स्वर्ग सब, अपरहँ कवन प्रमाण ॥३३॥
ढाक-ढूक[3] त्र्यंवकतनइँ[4], गाजिय गगन निधान ।
षट् खंडहँ खंडाधिपहँ, चालत चमकिय भान ॥३४॥
भेरी-रव-भर तिहु भुवन, समुहा कतहुँ न माइ[5] ।
कंपित पदभरें शेष रहु, विन साधेंऊ न जाइ ॥३५॥
शिरें डोलावैं धरणिहीं, टुंक डोल गिरिशृंग ।
सागर सकलउ झलझलिय उछलिय गंग-तरंग ॥३६॥
खर रवें खुंदिय मेघ रवि, महितल मेघ'न्धार ।
ऋतुकालै आयुधन कर, चलै राज-खंधार[6] ॥३७॥

---

[1] प्यादा [2] खच्चर [3] आवाज [4] त्र्यंबककेरा [5] समाइ [6] स्कंधावार-सेना-कैम्प

मंडिय मंडलवइ न मुहें, ससि न कवइँ सामंत।
राउत राउत-वट रहिय, मनि मुंझइँ मतिवंत ॥३८॥
कटक न कवणिहिं भरतणूँ, भाजइ भेडि भडंत।
रेलइँ रयणायर जमलें, राणोराणि नमंत ॥३९॥

ठवणि १०। तउ कोपिहिँ कलकलिउ कालके(र)य कालानल,
कंकोरइ कोरंबियऊ करमाल महाबल।
काहल कलयलि कलगलंत मउडाधा मिलिया,
कलह तणइ कारणि कराल कोपिहिँ पर जलिया ॥१२०॥
हुउउ कोलाहल गहगहारि, गयणंगणि गज्जिय,
संचरिया सामंत सुहड सामहणिय सज्जिय।
गडगडंत गय गडिय गेलि गिरिवर सिर ढालइँ,
गूगलीय गुलणई चलंत करिय ऊलालइँ ॥१२१॥
जुडइँ भिडइँ भडहडइँ खेदि खडखडइँ खडाखडि,
धणिय धुणिय धोसवइँ दंतु दो त (डातड़ात)डि।
खुरतलि खोणि खणंति खेदि तेजिय तरवरिया,
समइँ धसइँ धसमसइँ सादि[1] पय सइँ पाषरिया ॥१२२॥
कंधग्गल केकाण कवी करडइँ कडियाला,
रणणइँ रवि रण बखर सखर घण घाघरियाला।
सींचाणा वरि सरइँ फिरइँ सेलइँ फोकारइँ,
ऊडइँ आडइँ अंगि रंगि असवार विचारइँ ॥१२३॥
धसि धामइँ धडहडइँ धरणि रवि-सारथि गाढा;
जडिय जोध जडजोड जरद सन्नाहि सनाढा।
पसरिय पायल पूर कि पुण रलिया रयणायर,
लोह लहर वरवीर वयर वहवटिइँ अवायर ॥१२४॥

---

[1] सवार

भंडित मंडलपतिन मुखें, शशि न ऋवइँ सामंत।
राउत[1] राउतपन-रहिय, मनें मोहैं मतिवंत ॥३८॥
कटकन कौनेंहि भरतको, भागै भीडिभडंत।
रेलैं रतनाकर युग, रानारान नमंत ॥३९॥

ठवनि १० । तब कोपेहिँ कलकलेँउ कालकेरइ कालानल,
कंकोलइ कोरंबिउ करमाल महाबल।
काहल कलकलें कलकलंत मुकुटाधर मिलिया,
कलहकेर कारण कराल कोपेहिँ पर ज्वलिया ॥१२०॥
भयेँउ कौँलाहल गडगडाट, गगनंगण गज्जिय,
संचरिया सामंत सुभट साधनिय सज्जिय।
गडगडंत गज गुडिय गैल गिरिवर-शिर ढारैं,
गुग्गलीय हस्तिनि चलंत करिय उल्लालै ॥१२१॥
जुड़ैं भिड़ैं भट-भटहिँ खेदि खड़खड़ैं खड़ाखड़,
धनियधुनिय धूसवैं दंत दोऊ(त) तड़ातड़।
खुरतर क्षोणि खनंत खेदि त्याजिय तरवरिया,
शमैं धसइँ धसमसैं सादि पदसँग पाखरिया ॥१२२॥
स्कंधाग्रेछल लगाम-करडै कडियाली,
रणणैं रवि रण बखर सखर घन घाघरियाला।
सिंचाना[2] बरसरइँ फिरैं सेलैं फुक्कारैं,
ऊड़ैं आड़ैं अंगें रंग असवार विचारैं ॥१२३॥
धसि धामैं धड़धड़ैं धरणि रवि-सारथि गड्ढा,
जटित जोध जटजूट जरद सन्नाह सनद्धा।
प्रसरिय पायल पूर कि पुनि रलिया रतनाकर,
लोह लहर बरवीर बैर बधवटैं आया कर ॥१२४॥

---

[1] राजपुत्र [2] बाज

रणणिय रवि रण-तूर तार त्रंबक त्रहत्रहिया,
ढाक-ढूक-ढम-ढमिय ढोल राउत रह रहिया ।
नेच निसाण-निनादि (निनी) नीभरण निरंभिय,
रणभेरी भुंकारि भारि भुयबलिहिँ वियंभिय ॥१२५॥
चल चमाल करिमाल कुंत कड़तल कोदंड(उ),
झलकइँ साबल सबल सेल हल मसल पयंड(उ) ।
सिंगिणि गुण टंकार सहित बाणावलि ताणइँ,
परशु उलालइँ करि धरइँ भाला ऊलालइँ ॥१२६॥
तीरिय तोमर भिंडपाल डबतर कसबंधा,
साँगि सकति तरुआरि छुरिय अनु नागतिबंधा ।
हय खर रवि ऊछलिय खेह छाइय रविमंडल,
धर धूजइ कलकलिय कोल कोपिउ काहडुल[१] ॥१२७॥
टलटलिया गिरि टंक टोल खेचर खलभलिया,
कडडिय कूरम कंध-संधि सायर झलहलिया ।
चल्लिय समहरि सेस सीसु सलसलिय न सक्कइ,
कंचणगिरि कंधार भारि कमकमिय कसक्कइ ॥१२८॥
कंपिय किन्नर कोडि पडिय हरगण हडहडिया,
संकिय सुरवर सग्गि सयल दाणव दडवडिया ।
अतिप्रलंब लहकइँ प्रलंब वलचिंध चहूँ दिसि,
संचरिया सामंत-सीस सीकिरिहिँ कसाकसि ॥१२९॥
जोइय भरह-नरिंद कटक मूँछह बल घल्लइ,
कुण बाहूबलि जेउ बरब मइँ सिउँ बलबुल्लइ ।
जइ गिरि कंदरि विचरि वीर पइसंतु न छूटइ,
जइ थलि जंगलि जाइ किम्हइ तु मरइ अपूटइ ॥१३०॥

---

[१] सन्दिग्ध

रणणिय रवि रण-तूर्य तार त्र्यंबक त्रहत्रहिया,
ढाक-ढूक ढमढमिय ढोल राउत[1] रथ रहिया।
नेजाँ निशान निनाद (निनी) निर्झरन् अरंभिय,
रणभेरी हुंकार भार भुजवलेंहिँ विजृम्भिय ॥१२५॥
चम-चमाल[2] करवाल कुंत कडतल कोदंडउ,
झलकैं सावर सबल शेल हल मुशल प्रचंडउ।
शारंग गुण टंकार-सहित बाणावलि तानैं,
परशु उलालै करधरैं भाला ऊलालैं ॥१२६॥
तीरिय तोमर भिंदपाल डबतर कसबंधा,
साँगि शक्ति तरुवार छुरी अरु नाग त्रिबंधा।
हयं खर रवें ऊछलिय, खेह छाइय रविमंडल,
धराँ कंपै कलकलिय कोल कोपेंउ काहल्ल ॥१२७॥
टलटलिया गिरि टंक टोल खेचर खलबलिया,
कड़ड़िय कूरम स्कंध-संधि सागर झलझलिया।
चालिय समरा शेष-सीस सलसलेंउ न सक्कै,
कंचनगिरि कंधार भार कपकपिय कसक्कै ॥१२८॥
कंपिय किन्नर-कोटि पड़िय हर-गण हड़हड़िया,
शंकिय सुरवर स्वर्गें सकल दानव दड़वड़िया।
अतिप्रलंब लहकै प्रलंब बल-चिन्ह चहूँ दिशि,
संचरिया सामंत-शीर्ष सीकरेंहिँ कसाकसि ॥१२९॥
जोयेंउ **भरत** नरेन्द्र कटक मूँछहँ बल डालै,
को **बहुबलि** जो गरव मोंहिँ सँगे बल बोलै।
यदि गिरिकंदर-बिवरें वीर पइठंत न छूटै,
यदि थल जंगल जाइ कैसहु तो मरै अखूटै ॥१३०॥....

---

[1] राजपुत्र [2] चमकते

गय आगलिया गलगलंत दीजइँ हय लास-ा,
हुइँ हसमस.......[1]भरहराय केरा आवास-ा।
एक निरंतर वहइँ नीर एकि ईंधण आणईं,
एक आलसिइँ पर-तणुं पँगु आणिउँ तृण ताणइँ ॥१३३॥
एकि उतारा करिय तुरय तलसारे बाँधइँ,
ऍक मरडइँ केकाण खाण इकि चारे राँधइँ।
ऍक झीलिय नयनीरि तीरि तेतिय वोलावइँ,
एक वारू असवार सार साहण वेलावइँ ॥१३४॥
ऍक आकुलिया तापि तरल तडि चडिय झँपावइँ,
ऍक गूडर सावाण सुहड चउरा दिवरावइँ।
—भरतेश्वर बाहुवली-रास

§३६. सोमप्रभ

काल—११९५। देश—अनहिलवाडा (गुजरात)। कुल—पोरवाल

१—नीति-वाक्य

वसइ कमलि कल-हंसी जीवदया जसु चित्ति।
तसु-पक्खालण-जलिण होसइ असिव-निवित्ति ॥ प्रस्ताव १(२६)
आभरण-किरण दिप्पंत देह। अहरीकय सुरवहु-रूवरेह।
घण-कुंकुम-कद्दम घर-दुवारि। खुप्पंत-चलण नच्चंति नारि ॥ (३२)
तीयह तिन्नि पियारईं, कलि-कज्जलु-सिंदूर।
अन्नइ तिन्नि पियारइँ, दुद्धु जँवाइउ तूरु ॥ (३२)
बेस विसिट्ठइ वारियइ, जइवि मणोहर-गत्त।
गंगाजल-पक्खालियवि, सुणिहि कि होइ पवित्त ॥

[1] खंडित

गज आगड़िया गलगलंत दीजै हय लास-न,
　　ह्वै धसमस......भरतराय केरा आवासा ।
एक निरंतर लाव नीर ऍक ईंधन आनै,
　　एक आलसेंहिं पर तनु पग आनेंउ तृण तानैं ॥१३३॥
एक उतारा करिय तुरग हयसारे बाँधै,
　　ऍक रगड घोडा हूँ खान ऍक चारा राँधै ।
ऍक पकड नदनीर तीर सो स्त्रिय वोलावै,
　　एक वार असवार सार साधन[1] वेलावैं ॥१३४॥
ऍक आकुलिया तापें तरल तडि-चढिय भँपावैं,
　　ऍक गूदर[2], सावान[3] सुभट चौरा देवरावैं ।
　　—बाहुबलीरास

§ ३६. सोमप्रभ

वैश्य—जैन साधु (महन्त) । कृतियाँ—कुमारपाल-प्रतिबोध[4]

१—नीति-वाक्य

वसइ कमल कलहंसी, जीव-दया जसु चित्त ।
　　तसु प्रक्षालन जलहीं, होइह अशिव-निवृत्ति ॥ (पृ० २६)
आभरण-किरण दीप्यंत देह । अधरीकृत सुरवधु-रूपरेख ।
　　घन कुंकुम-कर्दम घर-दुवार । लिपटंत चरण नाचति नारि ॥ (३२)
तीयहँ तीन पियारईं, कलि-काजल-सिंदूर ।
　　अन्यउ तीन पियारईं, दूध-जमाई-तूर्य ॥ (३२)
वेशविशिष्ट[1]हिं वारियत, यदपि मनोहर गात्र ।
　　गंगाजल प्रक्षालियउ, सुनह कि होइ पवित्र ॥

---

[1] हाथन　[2] बिदा करें ।　[3] तंबू　[4] Gaikwad's Oriental Series; XIV, 1920. १४०२ ई० की हस्तलिखित (उत्तरी भारतकी अन्तिम) ताल-पोथी

नयणिहि रोयइ मणि हसइ, जणु जाणइ सउ तत्तु।
वेस विसिट्ठह तं करइ, जं कट्ठह करवत्तु ॥ (८६)

पडिवज्जिवि दय देव गुरु, देवि सुपत्तिहि दाणु।
विरइवि दीण-जणुद्धरणु, करि सकलउँ अप्पाणु ॥ (१०७)

पुत्तु जु रंजइ जणय-मणु, थी आराहइ कंतु।
भिच्चु पसन्नु करइ पहु, इहु भल्लिम पज्जंतु ॥

मरगय वन्नह पियह उरि, पिय चंपय-पह-देह।
कसवट्टइ दिन्निय सहइ, नाइ सुवन्नह रेह ॥ (१०८)

हियडा संकुडि मिरिय जिम, इंदिय-पसरु निवारि।
जित्तिउ पुज्जइ पंगुरणु, तित्तिउ पाउ पसारि ॥ (१११)

संसय-तुलहि चडावियउँ, जीविउ जान जणेण।
ताव कि संपइ पावियइ, जा चिंतविय मणेण ॥ (२४६)

रिद्धि विहूणह माणुसह, न कुणइ कुवि सम्माणु।
सउणिहि मुच्चइ फलरहिउ, तरुवरु इत्थु पमाणु ॥

जइविहु सूरु सुरूवु विअक्खणु। तहवि न सेवइ लच्छि पइक्खणु।
पुरिस गुणागुण-मुणण-परम्मुह। महिलह बुद्धि पयंपहिँ जंबुह ॥ (३३१)

रावणु जायउ जहिँ दियहि, दह-मुह एक्क-सरीरु।
चिंताविय तइयहिँ जणणि, कवणु पियावउँ खीर ॥ (३६०)

२—सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलभद्र

पुरि चिट्ठइ **पाडलियुत्त** नामु। धण-कण-सुवन्न-रयणाभिरामु।
तहिँ नवमु नंद पालेइ रज्जु। पडिवक्ख-महीहर-हलण-वज्जु ॥१॥

मुणि पत्त-कप्प-जल-सित्तु गत्तु। वालत्तणि जसु रोगेहि चत्तु।
तसु कप्पय मंतिहि बंसि हूओं। **सगडालु**[1] मति निववक्खु भूओं ॥२॥

---

[1] शकटारि नन्द राजाका मंत्री

नयनें रोवै मनें हँसै, जनु जानै सब तत्त्व।
वेश विशिष्टहँ[1] सो करै, जो काठहँ करपत्र ॥ (८६)
प्रतिपादन दयाँ देव गुरु, देव सुपात्रहँ दान।
विरचिव दीन-जनोद्धरन, करि सकलउँ अप्पान ॥ (१०७)
पुत्र जो रंजै जनक-मन, स्त्री आराधै कंत।
भृत्य प्रसन्न करै प्रभू, यही भला परि-अन्त ॥
मर्कत-वर्ण प्रियह उरें, प्रिय चंपक-प्रभ देह।
कसौटियहँ दीनी सोहै, नारि सुवर्णह रेख ॥ (१०८)
हियरा संकुचि कच्छु जिमि, इन्द्रिय-प्रसर निवारि।
जेतै पूरै प्रावरण, तेतै पाव पसार ॥ (१११)
संशय-तुलहिं चढावियउ, जीवित जान जनेहिं।
तब का संपत् पाइहै, जो चिंतविय मनेहिं ॥ (२४६)
ऋद्धि-विहूनहँ मानुषहँ, न करै कोंइ सम्मान।
शकुना मुंचैं फल-रहित, तरुवर इहाँ प्रमाण ॥
यद्यपि शूर सुरूप विचक्षण। तदपि सेवै लक्ष्मि प्रतिक्षण।
पुरुष गुणागुण-मनन-पराङ्मुख। महिलहँ वुद्धि प्रजल्पैं जो बुध ॥ (३३१)
रावण जायेँउ जसु दिनहिं, दशमुख एक शरीर।
चिंतविया तहिया जननि, कौन पियाअउँ क्षीर ॥ (३६०)

२—सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलिभद्र

पुरि आहै पाटलिपुत्र नाम। धन-कन-सुवर्ण-रतनाभिराम।
तहँ नवम नंद पालेइ रज्ज। प्रतिपक्ष-महीधर-दलन-वज्र ॥१॥
मुनिपात्र-कल्प जल-सिक्त गात्र। वालत्वें जसु रोगेहिं त्यक्त।
तसु कल्पक मंत्रिहि वंश हूअ। शकटारि मंत्रि नृप-चक्षु-भूत ॥२॥

---

[1] वेश्या

तसु थूलभद्दु सुओं आसु पढमु । मयणुव्व मणोहर रूव परमु ।
जो जम्म दियहि देवयहिँ वुत्तु । इह होही चउदह-पुव्व-जुत्तु ॥३॥
सिरिउत्ति विइज्जउ आसि पुत्तु । नय-विणय-परक्कम-बुद्धि-जुत्तु ।
तह जक्खा-पमुह पसिद्ध पत्त । मेहाइ गुणिहिँ भइणीउ सत्त ॥४॥

(२) नारी-सौंदर्य

कंचण कलसिहि जणि फलिय, सहइ लच्छिलय चित्त ।
कोसा वेसा पुव्वकय, सुकय जलिण जें ऍव सित्त ॥६॥
रयणालंकिय सयल-तणु, उज्जल-वेस-विसिट्ठ ।
नं सुर-रमणि विमाण-गय, लोयण-विसइ-पविट्ठ ॥७॥
जसु वयण विणिज्जिउ नं ससंकु । अप्पाणु निसिहिँ दंसइ स-संकु ।
जसु नयण-कंति-जिय-लज्ज-भरिण । वणवासु पवन्नय नाइ हरिण ॥८॥
जसु सहहिँ केस-घण-कसण-वन्न । नं छप्पय मुह-पंकय-पवन्न ।
भुवणिक्क-वीर-कंदप्प-धणुह । सुंदरिम विडंबहि जासु भमुह ॥९॥
जसु अहर हरिय-सोहग्ग-सारु । नं विद्दुम[१] सेवइ जलहि खारु ।
जसु दंत-पंति सुंदेरु रुंदु । नहु सीओसहँ तुवि लहइ कंदु ॥१०॥
असणंगुलि पल्लव नह पसूण । जसु सरल-भुयउ लयाउ नूण ।
घण-पीण-तुंग-थण-भार-सत्तु । जसु मज्झु तणुत्तणु नं पवत्तु ॥११॥

(३) वसन्त

अह पत्तु कयाइ वसंत समओं । संजणिय-सयल-जण-चित्त-पमओं ।
उल्लासिय-रत्त-पवाल-जालु । पसरंत-चारु-चच्चरिव्व मालु ॥१॥
जहिँ वण-लय-पयडिय कुसुम-वरिस । महु-कंत समागय जणिय हरिस ।
पवमाण-चलिर-नवपल्लवेहिँ । नच्चंति नाइ कोमल-करेहिँ ॥२॥

---

[१] मूंगा, प्रवाल

तसु स्थूलिभद्र सुत रहेँउ प्रथम । मदन इव मनोहर रूप परम ।
जेहि जन्मदिवस देवतहिँ उक्त । ई होइहै चौदह पूर्व[1] युक्त ॥३॥
श्री सिरिय दुतियो अहेँउ पुत्र । नय-विनय-पराक्रम-बुद्धि-युक्त ।
तिमि यक्षा-प्रमुख प्रसिद्धि प्राप्त । मेधादि गुणेँहि भगिनीउ सप्त ॥४॥

(२) नारी-सौंदर्य[2]

कंचन कलशेहिँ जनु फटिक, सोँहै लक्ष्मिलय चित्र ।
कोशा वेश्या पूर्वकृत, सुकृत जलेँही सिक्त ॥६॥
रतनालंकृत सकल तनु, उज्ज्वल वेश-विशिष्ट ।
जनु सु-रमणि विमान-गत, लोचन-विषय प्रविष्ट ॥७॥
जसु वदन विनिर्जित जनु शशांक । अप्पान निशिहिँ दर्शै स-शंक ।
जसु नयनकांति जित लज्ज भरेँहिँ । वनवास सिधारेँउ मनहु हरिन ॥८॥
जसु सोँहै केश घन-कृष्ण-वर्ण । जनु षट्पद मुखपंकज-प्रपन्न[3] ।
भुवनैकवीर कंदर्प धनुह । सुंदरिम विडंबै जासु भउँह ॥९॥
जसु अधर धरिय सौभाग्य-सार । जनु विद्रुम सेवै जलधि खार ।
जसु दंत-पंक्ति सुंदेर रुंदं[4] । नख शीतोषध[5]-तोउ लहै कंद ॥१०॥
हस्तांगुलि-पल्लव नखप्रसून । जसु सरल भुजउ लताउ नून[6] ।
घन-पीन-तुंग-थनभार-सक्त । जसु मध्य[7] तनुत्वहँ जनु प्रवृत्त ॥११॥

(३) बसन्त

पुनि आव कदाचि बसंत-समय । संजनिय सकल जन चित्त प्रमद ।
उल्लासिय वृक्ष-प्रवाल-जाल । प्रसरंत चारु चर्चरिँव माल ॥१॥
जहँ वनलताँ प्रकटिय कुसुम-वर्ष । मधुकांत समागत जनित-हर्ष ।
पवमान चलिय नवपल्लवेहिँ । नाचंति न्याइँ कोमलकरेहिँ ॥२॥

---

[1] धर्म-ग्रंथ [2] मंत्रि पुत्र स्थूलिभद्रकी प्रेयसी वेश्या कोशा [3] प्राप्त
[4] विस्तृत [5] चंद्र [6] निश्चय [7] कटि

नव-पल्लव-रत्त-असोअ-विडवि । महुलच्छिहि सउँ परिणयणु घडवि ।
जहिँ रेहहिँ नाइ कुसुंभ-रत्त । वत्थेहिँ नियंसिय सयल-गत्त ॥३॥
हसइ' व्व फुल्ल-मल्लिय-गणेहिँ । नच्चइ'व पवण वेविर-वणेहिँ ।
गायइ भमरावलि रविण नाइ । जो सयमवि मयणुम्मत्तु भाइ ॥४॥
घण मयण-महूसवि, पिज्जंतासवि, तहि वसंति जणचित्तहरि ।
कय-विसय-पसंसिहि नीओं वयं सिहिँ, थूलभद्दु कोसाहि[१] घरि ॥५॥

(४) (वेश्या-) प्रेम

अवरुप्परु अणुराय गुणु, दोहिहिँ पयडंतीहिँ ।
थूलभद्द कोसहँ पढमु, किउ दूहत्तणु तीहिँ ॥१२॥
निम्मल-मुत्तिय-हारमिसि, रइय चउक्कि पहिट्ठु ।
पढमु पविट्ठह हिय तसु पच्छा भवणि पविट्ठु ॥१३॥
चंदणु दंसिउ हसिय मिसि, इय कोसहिँ असमाणु ।
घरि पविसंतह तासु किउ, निय अंगिहि सम्माणु ॥१४॥
अक्ख-विणोइण ते गमहिँ, जा दुन्निवि दिण-सेसु ।
ता पच्छिम-दिसि कामिणिहि, अंकि निविट्ठु दिणेस ॥२३॥
सव्व-कला-संपन्नु रसिय, - जण - संतोसु कुणंतु ।
अमयमयइ कर-फंसि-सुहि, तहि कुमुइणि वियसंतु ॥२४॥
पारद्धु संगीउ तहिँ, कोस वेस नच्चिय वियक्खणि ।
रंजिय-मणु घणु दविणु, थूलभद्दु तसु देइ तक्खणि ॥
तयणंतरु अणुरत्तमण, मयण-पलंकि निसन्न ।
माणिय-मयण-विलास-सुह, दुन्नि'वि निद्द-पवन्न ॥२५॥

---

[१] कोशा गणिका

नवपल्लव-रक्त-अशोक विटप । मधु लक्ष्मिहिँ सँग परिणयहँ करव ।
जहँ राजै नारि [1]कुसुंभ-रक्त । वस्त्रेहिँ आच्छादिय सकल-गात्र ॥ ३॥
हसई इव फुल्ल-मल्लीगणेहिँ । नाचइ'व पवन-कंपिर-वनेहिँ ।
गावै भ्रमरावलि-रवेँहिँ न्याइँ । जो स्वयमपि मदनोन्मत्ता भाइ ॥४॥
घन मदन-महोत्सवेँ पीयंत'ासव, तहँ वसंतेँ जनचित्तहरे ।
किय विषय प्रशंसेँ, निजहिँ वयस्यहिँ, थूलभद्र कोशाकेँ घरे ॥५॥

(४) (वेश्या-) प्रेम

अपरापर अनुराग गुण, दोउहिँ प्रकटंतेहिँ ।
थूलभद्र-कोशाँहँ प्रथम, किउ दूतीत्वहँ तेहिँ ॥१२॥
निर्मल मोतिय हार-मिस, रचित चतुष्क प्रहृष्ट ।
प्रथम बईठेउँ हिय तंसु, पाछे भवन प्रविष्ट ॥१३॥
चंदन दर्शेँउ हसित-मिस, ई कोशहिँ अ-समान ।
घर प्रविशंतहँ तासु किउ, निज अंगहिँ सम्मान ॥१४॥. . . .
अक्षविनोदेँहि वीतवैँ, जौं दोऊ दिन शेष ।
तो पश्चिम दिश-कामिनिहँ, अंकेँ निविष्ट दिनेश ॥२३॥
सर्वकला-संपन्न रसिक, - जन - संतोष करंत ।
अमृतमयइ कर-पर्श सुखेँ, तह कुमुदिनि विकसंत ॥२४॥
प्रारंभेउ संगीत तहँ, कोश वेश नाचै विचक्षणी ।
रंजित मन घन द्रविण, स्थूलभद्र तेँहिं देइ तत्क्षणी ॥
तदनंतर अनुरक्त मन, मदन पलंग निषण्ण ।
माणिक मदनविलास-सुख, दोऊ निद्रापन्न ॥२५॥

---

[1] चम्पई या केसरिया (कुसुंभी) रंगमें रँगे

(५) विरह-वर्णन

पियं ! हउँ थक्किय सयलु दिणु, तुह विरहग्गि किलंत ।
थोडइ जलि जिम मच्छलिय, तल्लोविल्लि करंत ॥
मइँ जाणिउँ पिय-विरहियह, कवि धर होइ वियालि ।
न वरि मयंकु वि तह तवइ, जह दिणयरु खयकालि[१] ॥ (८६)

३–कविका संदेश

(१) जग तुच्छ

एवंति भणिय तो थूलभद्दु । चिंतेइ तत्थ परमत्थ भद्दु ।
मणुयत्तह सारु ति-वग्ग-सिद्धि । तिहि विग्घ-हेउ अहिगार-रिद्धि ॥४७॥
जं तत्थ राय-चित्ताणुकूल । आरंभ कणंतह पावमूल ।
कउ मंतिहि जायइ विमलधम्मु । जिणि लब्भइ सासउ सिद्ध-सम्मु ॥४८॥
पर-पीड-करेविणु जं पभूअ । गिन्हहिं निउ गिरुहि रुव जलूअ ।
नरनाहिण घिप्पइ नंपि दव्वु । निप्पीलिवि सहुँ पाणेहिँ सव्वु ॥४९॥
पर-वसहें सव्वु भय-भिभलाहें । अन्नन्न-पओअण वाउलाहें ।
अहिगार-जणहं (पुणि) कामभोअ । संभवहिँ वियंभिय गुरु-पमोय ॥५०॥
कोसा-घर वारस-वच्छरेहि । विसइहि न तित्तु लोउत्तरेहिँ ।
वहु रज्ज-कज्ज-वक्खित्त-चित्तु । किं संपइ होहिसि मूढ-चित्तु ॥५१॥
पइ जम्म-मरणु कल्लोलमत्तु । भवजलहि भमिवि मणुअत्तु पत्तु ।
परिहरिवि विसय-फलु तासु लेहि । किं कोडी कवडिइँ हारवेहि ॥५२॥
इम विसय-विरत्तउ, पसमपसत्तउ, थूलभद्दु संविग्गमणु ।
सिव-सुक्ख-कयायरु, भवभयकायरु, महइ चित्ति दुच्चर चरणु ॥५७॥

× × ×

---

[१] प्रलयकाल

(५) विरह-वर्णन

पिय ! हउँ रहिया सकल दिन, तव विरहाग्नि किलॉन्त ।
थोडइ जलें जिमि माछरी, तल्लोबिल्ल करंत ॥
मैं जानेंउँ पिय विरहियह, कोंइ धरों होइ विकाल[1] ।
नतरु मयंकउ तिमि तपै, जिमि दिनकर क्षयकाल ॥ (८६)

३—कविका संदेश

(१) जग तुच्छ

ऐसोइ भनिय तब थूलभद्र । चिंतेइ तहाँ परमार्थ भद्र ।
मनुजत्वह सार त्रिवर्ग-सिद्धि । तेंहि विघ्नहेतु अधिकार-ऋद्धि ॥४७॥
जो तहाँ राज-चित्तानुकूल । आरंभ करंतह पापमूल ।
को मंत्रिहिँ उपजै विमलधर्म । जेंहिँ लब्भै शाश्वत सिद्ध-शर्म ॥४८॥
परपीड करेइय जो बहूत । ग्रहणें निज गिरही रूप जलौक ।
नरनाहेंहिँ दीजै जोउ द्रव्य । निष्पीडिब सँग प्राणीहिँ सर्व ॥४९॥
परबशा सर्व-भय-विह्वलाह । अन्यान्य-प्रयोजन-व्याकुलाह ।
अधिकार जनहँ (पुनि) काम-भोग । संभवैं विजृंभिय गुरु-प्रमोद ॥५०॥
कोशा-घर बारह वत्सरेंहिँ । विषयहिँ न तृप्ति लोकोत्तरेंहिँ ।
बहुराज्य-कार्य-प्रक्षिप्त-चित्त । का संप्रति होइसि मूढ-चित्त ॥५१॥
तैं जनम-मरण-कल्लोल मत्त । भवजलधि भ्रमिय मनुजत्व प्राप्त ।
परिहरिय विषय-फल तासु लेहि । का कोटी कौडिहिँ हारवेहि ॥५२॥
इमि विषय-विरक्तउ-प्रशम-प्रसक्तउ, स्थूलभद्र संविग्नमना ।
शिव-सुक्ख-कृतादर, भवभय कातर, चहै चित्तें दुश्चर-चरना ॥५७॥

× × ×

---

[1] विकारी

(२) चलु जीवउ जुव्वणु धणु सरीरु । जिम कमलदलग्ग-विलग्ग नीरु ।
अथवा इहत्थि जं किंपि वत्थु । तं सव्वु अणिच्चु हहा धिरत्थ ॥
पिइ माय भाय सुकलत्तु पुत्तु । पहु परियणु मित्तु सिणेह-जुत्तु ।
पहवंतु न रक्खइ कोवि मरणु । विणु धम्मह अन्नु न अत्थि सरणु ॥
रायावि रंकु सयणो वि सत्तु । जणओ तणऊ जणणि वि कलत्तु ।
इह होइ नडव्व कुकम्मवंतु । संसार-रंगि वहुरूव्वु जंतु ॥
एक्कल्लउ पावइ जीवु जम्मु । एक्कल्लउ मरइ विढत्त-कम्मु ।
एक्कल्लउ परभवि सहइ दुक्खु । एक्कल्लउ धम्मिण लहइ मुक्खु ॥
जहँ जीवह एडवि अन्नु देहु । तहिँ किं न अन्नु धणु सयणु गेहु ।
जं पुण अणन्नु तं एक्कचित्त । अज्जेसु नाणु दंसणु चरित्तु ॥
वस-मंस-रुहिर-चम्मट्ठि-बद्ध । नउ-छिद्दु-झरंत-मलावणद्ध ।
असुइ-स्सरूव-नर-थी-सरीर । सुइ बुद्धि कहवि मा कुणसु धीर ॥....
जह मंदिरि रेणु तलाइ वारि । पविसइ न किंचि ढक्किय दुवारि ।
पिहियासवि जीवि तहा न पावु । इय जिणिहि कहिउ संवरु पहाव ॥...
जहिँ जम्मणु मरणु न जीवि पत्तु । तं नत्थि ठाणु [1]वालग्ग-मत्तु ॥ (३११)....

(२) इन्द्रिय मारना

नहु गम्मु अगम्मु व किंपि गणइ । अब्बंभ कलुस अहिलास कुणइ ।
सकलत्ति वि हुंतइ महइवेस । पररमणि गमणि पयडइ किलेस ॥१२॥
सिसिरम्मि निवाय धरग्गिसयडि । घण-घुसिण-तेल्ल-वहुवत्थ-सवडि ।
चंदण-रस-कुसुम-जलावगाह । धारागिहि गिंभि महेइ नाइ ॥१३॥
पाउसि पय-पंक-पसंग तद्दु । वंछइ अच्छिद्द भवणयलु लद्धु ।
जइ कुणइ विविह-विसयाणुवित्ति । तेंह विहु न एहु पावेइ तित्ति ॥१४॥
एक्कवि फासिंदिउ, बुहयण निंदिउ, करइ किंपि दुच्चरिउ तिहि ।
नानाविहु जम्मिहि, पीडिओं कम्मिहि, सहसि विडंबण सामि जिह ॥१५॥

---

[1] बालकी नोकके बराबर भी

(२) चल जीवन यौवन धन शरीर। जिमि कमलदलाग्र-विलग्न नीर।
अथवा इहाँहि जो किछुव वस्तु। सो सर्व अनित्य "हहाधिग्"अर्थ ॥
पितु माय भाय सुकलत्र पुत्र। प्रभु परिजन मित्रसिनेह-युक्त।
सक्कै ना रोकिय केहु मरन। विनु धर्महि अहै न अन्य शरण ॥
राजाउ रंक स्वजनऊ शत्रु। जनकउ तनयउ जननी कलत्र।
इह होइ नटव्य कुकर्मवन्त। संसार-रंगें वहुरूप जंतु ॥
एकल्लै पावै जीव जन्म। एकल्लै मरै करीय कर्म।
एकल्लै परभवें सहै दुःख। एकल्लै धर्में हिं लहै मूर्ख ॥
जहँ जीवहि ईहउ अन्य देह। तहँ का न अन्य धन स्वजन गेह?
जो पुनि अनन्य सो एक चित्त। आर्यहिं ज्ञान-दर्शन-चरित्र ॥
वशाँ-मांस-रुधिर-चर्म-ास्थि-बद्ध। नौ छिद्र झरंत मलावनद्ध।
अशुचि स्वरूप नर-तिय-शरीर। शुचि बुद्धि कहव ना करसु धीर ॥. . .
जिमि मंदिरें रेणु तलायें वारि। प्रविशै न किछू ढाँके दुवारि।
ढँकि आस्रव[१] जीवें तथा न पाप। इमि जिनहिं कहिउ संवर[२]-प्रभाव ॥
जहँ जन्म न मरण न जीव पाय। सो नाहि थान वालाग्र-मात्र ॥ (पृ० ३११)

(२) इन्द्रिय शत्रु

ना गम्य अगम्यउ किछउ गनै। अब्रह्म[३] कलुष अभिलाष करै।
सकलत्रहु होतेंउ चहै वेश। पररमणि-गमन प्रकटेंउ किलेश[४] ॥१२॥
शिशिरेंहिं नि-वात घरेऽग्नि सिगड़ि। घन-घुसृण-तेल वहुवस्त्र सँपड़ि।
चंदन-रस-कुसुम-जलावगाह। धारागृहें[५] ग्रीष्मे चहै न्हाय ॥१३॥
पावस पदपंक प्रसंग स्तब्ध। वांछै अच्छिद्र भवनतल लब्ध।
जो करै विविध-बिषयानुवृत्ति। तेंहि विनु न एहु पावही तृप्ति ॥१४॥
एकउ फरसेंद्रिय बुधजन निंदिय करै केंतक दुश्चरित तेंही।
नानाविध जन्मेंहिं पीड़िय कर्मेंहिं सहस विडंवन स्वामि जेंही ॥

---

[१] चित्तमल [२] संयम [३] व्यभिचार [४] चित्त-मालिन्य [५] फौवारा-घर

तह भक्खाभक्ख-विवेय-मूढु । रस-विसय-गिद्धि-दोलाधिरूढु ।
अविभाविय पेयापेय वत्थु । रसणुवि कुणेइ बहुविहु अणत्थु ॥१६॥
जं हरिण-ससय-संबर-वराह । वणि संचरंत अकयावराह ।
तण-सलिल-मत्त-संतुट्ठ चित्त । मम्मर-रव-सवणुब्भंत-नेत्त ॥१७॥
हिंसंति केवि मिगया पयट्ट । पसरंत - निरंतर - तुरयघट्ट ।
कर-कलिय-कुंत-कोदंड-बाण । संसय-तुल-रोविय-नियय-पाण ॥१८॥
जं गहिरि सलिल वियरंत मीण निक्करुण केवि निहणहिं निहीण । (४२६)
जं लावय-तित्तिरि-दहिय-मोर । मारेंति अदोसवि केवि घोर ॥१६॥
तं रसणह विलसिउ, दुक्कय कलुसिउ, तुम्हहं कित्तिउ कित्तियइ ।
जं वरिस-सएणवि, अइनिउणेणवि, कहवि न जंपिउ सक्कियइ ॥२१॥[1]

(३) नरक-भय

तह नरयवासि जं परवसेण । मइं नरयवाल-मुग्गुर-हएण ।
अवगूढु वज्ज-कंटय-सणाहु । सिंबलितरु-जणिय-सरीर-बाहु ॥६८॥
कंदंतु कलुणु जं हढिण धरवि । खाविय नियमंसु भडित्तु करिवि ।
जं वेयण-विहुरिय-सव्व-गत्तु । हउं पायउं तउयउं तंबु तत्तु ॥६९॥
जं पूय - रुहिर - वस - वाहिणीइ । मज्जाविउ वेयरणी - नईं ।
जं तत्त-पुलिणि चलउव्व भुग्गु । जं सूलवेह दुहु पत्तु दुग्गु ॥७०॥ (४३२)
जं वज्ज-जलण-जालोलि-तत्त । मइं लोहमइय महिलावसत्त ।
जं महि हिमु कुसई खंडु करवि । उद्धिओं खणेण पारउव्व मिलिवि ॥७१॥
जं कुंभिपाकि पक्कओं परद्धु । जं चंड-तुंड-पक्खीहि खद्धु ।
जं तिलु'व निपीलिउ लोहजंति । जं वसहि'व वाहिउ भरि महंति ॥७२॥
अच्छोडिओं जं सिचउव्व सिलहिं । करवत्ति भित्तु जं कंठ कयलहिं ।
जं तलें'उ कठल्लिहिं पप्पडु'व्व । सत्थेहि छिन्नु जं चिब्भडुव्व ॥७३॥

—कुमारपाल-प्रतिबोध[2]

---

[1] वहीं पृष्ठ ४२७ [2] पृ० ४३३

तिमि भक्ष्या-भक्ष्य-विवेक-मूढ । रस-विषय-गृद्धि-दोलाधिरूढ ।
बिनु सोचे पेयापेय वस्तु । रसनउ करेइ बहुविध अनर्थ ॥१६॥
जो हरिन-शशक-साँभर-बराह । वनें संचरंत अकृतापराध ।
तृण-सलिल-मात्र संतुष्ट चित्त । मर्मर रव-श्रवण-ोद्भ्रांत-नेत्र ॥१७॥
हिंसंति केउ मृगया-प्रवृत्त । प्रसरंत निरंतर तुरग घट्ट ।
करकलित कुंत कोदंड बाण । संशयतुलाँ रोपिय निजय प्राण ॥१८॥
जो गहिर-सलिल विचरंत मीन । निष्करुण केउ निहनै निहीन ॥ (४२६)
जो लावक तित्तिर दधिक मोर । मारंति अदोषउ केउ घोर ॥१९॥
सो रसनहु-विलसिय दुष्कृत-कलुषित तुम्हहँ कीर्त्तिउ कीर्त्तियई ।
जो वर्ष शतेहूँ, अतिनिपुणेहूँ, कतहुँ न जल्पन शक्कियई ॥२१॥ (पृ० ४२७)

(३) नरक-भय

तहँ नरकवासें जो परवशेहिं । मैं नरकपाल-मुद्गर-हतेहिं ।
लिपटिया वज्रकंटक-सँनाह[१] । सेमलतरु जनित शरीर-बाध ॥६८॥
क्रंदंत करुण जो हठेहिं धरवि । खाइय निजमांस भत्ता करवि ।
जो वेदन-विफुरिय सर्व गात्र । हौं पादेउँ तडपेउँ ताम्र तप्त ॥६९॥
जो पूत रुधिरवश वाहिनीइ । मज्जावेउ **बैतरणी-नदीइ** ।
जो तप्तपुलिनें चलताहु भोगु । जो शूलवेध दुख पाव दुर्ग ॥७०॥ (४३२)
जो वज्र ज्वलन ज्वालालितप्त । मैं लोहमयी महिलावसक्त ।
जो महि हिम कुशईं खंड करबी । उड्डिय क्षणेहिं पारउ मिलबी ॥७१॥
जो कुंभिपाके पाकेउ परार्थ । जो चंड-तुंड-पक्षीहिं खाद्य ।
जो तिल'व निपीडेउ लोहयंत्रें । जो वृषभ'व वाहेउ भरें महंत ॥७२॥
आ-छोडेउ जो पटइव शिलहिं । करपत्रें भिद्यउ जो कंठ तलहिं ।
जो तलेउँ कडाहिहिं पापडेव । शस्त्रेहिं छिदेउँ जो ककडि ईव ॥७३॥ (४३३)

—कुमारपाल-प्रतिबोध

---

[१] कवच

§ ३७. जिनपद्म सूरि

काल—१२०० ई०। देश—गुजरात। कुल—जैन साधु।

१—ऋतु-वर्णन

पावस—

झिरिमिरि झिरिमिरि झिरिमिरि ए मेहा वरिसंति।
खलहल खलहल खलहल ए वादला वहंति।
झबझब झबझब झबझब ए वीजुलिय झल्कइ।
थरहर थरहर थरहर ए विरहिणि मणु कंपइ ॥६॥
महुर गंभीर सरेण मेह जिमि जिमि गाजंते।
पंचबाण निय-कुसुम-बाण तिम तिम साजंते।
जिम जिम केतकि महमहंत परिमल विहसावइ।
तिम तिम कामिय चरण लग्गि निय रमणि मनावइ ॥७॥
सीयल कोमल सुरहि वाय जिम जिम वायंते।
माण-मडफ्फर माणणिय तिम तिम नाचंते।
जिम जिम जलभर भरिय मेह गयणंगणि मलिया।
तिम तिम कामीतणा नयण नीरहि झलहलिया ॥८॥
भास। मेहारव भर उलटिय, जिमि जिमि नाचइ मोर।
तिम तिम माणिणि खलभलइ, साहीता जिमि चोर ॥९॥

—थूलिभद्द-फागु[1]

---

[1] पृष्ठ ३८-३९

§ ३७. जिनपद्म सूरि

कृति—थूलिभद्द-फाग।

१—ऋतु-वर्णन

पावस—

झिरझिर झिरझिर झिरझिर ए, मेघा वरसंति।
खलखल खलखल खलखल ए, बादला वहंति ॥
झबझब झबझब झबझब ए, वीजुली झबक्कै।
थरथर थरथर थरथर ए, विरहिनि मन कंपइ ॥
मधुर गभीर स्वरें मेघ जिमि जिमि गाजंते।
पंचवाण निज-कुसुम-बाण तिमि तिमि साजंते ॥
जिमि जिमि केतकि महमहंत परिमल विहसावै।
तिमि तिमि कामिय चरण लागि निज रमणि मनावै ॥७॥
शीतल कोमल सुरभि वायु, जिमि जिमि वायंते।
मान-मडफ्फर[१] माननिय, तिमि तिमि नाचंते ॥
जिमि जिमि जलभर भरिय, मेघ गगनांगनें मिलिया।
तिमि तिमि कामीकेर नयन, नीरहिं झलझलिया ॥८॥
भास। मेघारव भर उलसिय, जिमि जिमि नाचैं मोर।
तिमि तिमि माननि खलवलै, साहीता[२] जिमि चोर ॥९॥

—थूलिभद्द-फागु (पृ० ३८-३९)

---

[१] गर्व　　[२] पकड़ा

२–सामन्त-समाज

(१) शृङ्गार-सजाव

भइ सिंगारु करेइ वेस मोटइ मन ऊलटि।
रइयरंगि बहुरंगि चंगि[1] चंदणरस ऊगटि।
चंपय केतकि जाइ कुसुम सिरि खुंप भरेइ।
अति आछउ सुकुमाल चीरु पहिरणि पहिरेइ ॥१०॥
लहलह लहलह लहलह ऐं उरि मोतियहारो।
रणरण रणरण रणरणऐं पगि नेउर सारो।
गमग गमग गमग ए कानिहि वरकुंडल।
झलझल झलझल झलझल ए आभरणहँ मंडल ॥११॥
मयण-खग्ग जिम लहलहंत जसु वेणी दण्डो।
सरलउ तरलउ सामलउ रोमावलि दण्डो।
तुंग पयोहर उल्लसइ सिंगार थवक्का।
कुसुमवाणि निय अमियकुंभ किर थापणि मुक्का ॥१२॥
भास। काजलि अंजिवि नयणजुय, सिरि संथउ फाडेई।
बोरियावडि कांचुलिय पुण, उरमंडलि ताडेई ॥१३॥
कन्नजुयल जसु लहलहंत किर मयण हिंडोला।
चंचल चपल तरंग चंग जसु नयणकचोला।
सोहइ जासु कपोल पालि जणु गालि मसूरा।
कोमलु बिमलु सुकंठ जासु वाजइ सँखतूरा ॥१४॥
लवणिम-रसभर कूवडीय जसु नाहिय रेहइ।
मयणराइ किर विजयखंभ जसु ऊरू सोहइ।

---

[1] अच्छा

२—सामन्त-समाज

(१) शृंगार-सजाव

अति शृंगार करेइ वेष मोटै मन ऊलटि,
रचितरंग बहुरंग चंग चंदन रस ऊबटि[१]।
चंपक-केतकि-जाति-कुसुम शिर-खोंप भरेई,
अति-आछउ सुकुमार चीर पहिरन पहिरेई ॥१०॥
लहलह लहलह लहलहए उर मोतिय हारो,
रणरण रणरण रणरणइ पग नूपुर सारो।
जगमग जगमग जगमगै कानहिँ वर-कुंडल,
झलमल झलमल झलमलै आभरणहँ मंडल ॥११॥
मदन खड्ग जिमि लहलहंत जसु वेणी-दंडो,
सरलउ तरलउ श्यामलउ रोमावलि-दंडो।
तुंग पयोधर उल्लसै शृंगार स्तवक्का,
कुसुम-वाण निज अमृतकुंभ जनु थापन रक्खा ॥१२॥
भास[२]। काजल अंजिय नयन युग, सिर सैंथौं[३] फाड़ेइ।
बोंरिपट्टी[४] कंचुकिय पुनि, उरमंडल ताड़ेइ ॥१३॥
कर्ण-युगल जसु लहलहंत जनु मदन हिंडोला,
चंचल चपल तरंग चंग जसु नयन-कचोला[५]।
सोहैं जासु कपोल-पालि जनु गरल मसूरा,[६]
कोमल विमल सुकंठु जासु बाजै शँख-तूरा ॥१४॥
लवणिम रसभर कूपडीयं[७] जसु नाभिय राजै,
मदनराय कर विजय खंभ जसु ऊरू सोहै।

---

[१] उबटन [२] छन्द विशेष [३] माँग [४] लिलारी [५] कटोरा [६] फूला [७] कुआँ

जसु नह-पल्लव कामदेव-अंकुसु जिम राजइ ।
रिमझिमि रिमझिमि पायकमलि घाघरिय सुवाजइ ॥१५॥
नवजोवन विलसंत देह नवनेह गहिल्ली ।
परिमल लहरिहि मदमयंत रइ-केलि पहिल्ली ।
अहरबिंब परवाल खण्ड वर-चंपावन्नी ।
नयन सलूणिय हावभाव बहुगुण संपुन्नी ॥१६॥
इय सिणगार करेवि वर, जब आवीं मुणिपासि ।
जो एवा कउतिगि मिलिय, सुर-किनर आकासि ॥१७॥
—वहीं पृ० ३९-४०

(२) हाव-भाव

नयणकडक्खिय आहणऍं वांकड जोवन्ती ।
हावभाव सिणगार भंगि नवनविय करंती ।
तहवि न भीजइ मुणि-पवरो तडवेस बोॅलावइ ।
"तवणु तुल्लु तुह देह नाह ! महतणु संतावइ ॥१०॥
बारह वरिसहँ तणउ नेहु किणि कारणि छाडिउ ।
एवडु निठुरपणउ कइ मूसिउ तुम्ही मंडिउ ।
थूलिभद्द पभणेइ वेस ! अह खेदु न कीजइ ।
लोहिहि घडियउ हियउ मज्झ तुह वयणि न थीजइ ॥१९॥
मह विलवंतिय उवरि नाह अणुराग धरीजइ ।
रिसु पावसु-कालु सयलु मूसिउ माणीजइ ।
मुणि-वइ जंपइ वेस ! सिद्धि रमणी परिणेवा ।
मणु लीणउ संजम सिरी सुं भोग रमेवा ॥२०॥
—वहीं[1]

---

[1] पृष्ठ ४०

जसु नख-पल्लव कामदेव-अंकुश जिमि राजै,
रिमझिम रिमझिम पादकमल घाघरिय सुबाजै ॥१५॥
नवयौवन विलसंत देह नवनेह-गहिल्ली,[1]
परिमल लहरेंहि मदमदंत रतिकेलि पहिल्ली ।
अधरबिंब पर-वाल-खंड बर-चंपा-वर्णी,
नयन सलोनिय हावभाव बहुगुण-संपुर्णी ॥१६॥
इमि श्रृंगार करीय वर, जब आई मुनि पास ।
जोयेबा कौतुक मिलेंउ, सुर-किन्नर आकास ॥१७॥
—वहीं पृ० ३९–४०

(२) हाव-भाव

नयन-कटाक्षहँ आहनई वांको जोयंती,
हाव-भाव श्रृंगार-भंगि नव-नविय करंती ।
तबउ न बींधै मुनि-प्रवरो तब वेश बोंलावैं,
"तपन तुल्य तुव देह नाथ ! मम तनु संतापै ॥१८॥
बारह वर्षहँ केर नेह केंहि कारण छड्डिउ,
एवड[2] निठुरपनइ का मोसे तुम मंडिउ[3] ।"
थूलिभद्र प्र-भनेइ "वेश[4] ! इह खेद न कीजै,
लोहेंहि गडियउ हृदय मोर, तुव बचन न बिंधै ॥१९॥"
"मम बिलपंतिय उपर नाथ ! अनुराग धरीजै,
ऐसो पावस-काल सकल मोसो मानीजै ।"
मुनिपति जल्पै "वेश ! सिद्धि-रमणी परिणेबा ।
मन लीनउ संयम श्री सों भोग रमेवा ॥२०॥"
—थूलिभद्द-फाग पृ० ४०

---

[1] ग्रहण किये　　[2] इतना　　[3] शुरू किया　　[4] वेश्या

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

काल—१२०० ई० (?)। देश—गुजरात। कुल—. . .जैन साधु।

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमरु सुमरवि गिरनारि। सिद्धी राजल कन्न-कुमारि।
श्रावणि सरवणि कडुय मेहु। गज्जइ विरहिनि भिज्झइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव। नेमिहि विणु सहि सहियइ केम ॥२॥
सखी भणइ सामिणि मन झूरि। दुज्जण-तणा म वंछिति पूरि।
गयउ नेमि तउ विणठउ काइ। अछइ अनेरा वरह सयाइ ॥३॥
बोलइ राजल तउ इहु वयणु। नत्थी नेमी सम वर-रयणु।
धरइ तेजु गहगण सविताव। गयणु न उग्गइ दिणयरु जाव ॥४॥
भाद्रवि भरिया सर पिक्खेवि। सकरुण रोअइ राजलदेवि।
हा एकलडी मइ निरधार। किम ऊवेषिसि करुणासार ॥५॥
भणइ सखी राजल मन रोइ। नीठुरु नेमि न अप्पणु होइ।
सिंचिय तरुवर पारि पलवंति। गिरिवर पुणि कउ-डेरा हुंति ॥६॥
साँचउ सखि वरि गिरि भिज्जंति। किमइ न भिज्जइ सामलकंति।
धण वरिसंतइ सर फुट्टन्ति। सायरु पुण धण ओह डुलिंति ॥१७॥
आसोमासह अंसु-पवाह। राजल मिल्हइ विणु नमि नाह।
दहइ चंद चंदण हिम सीउ। विणु भत्तारह सउ विवरीउ ॥८॥
—चतुष्पादिका[1]
सखि नवि खीना नेमि हिरेसि। मन आपणपउ तउ खय नेसि।
जिणि दिक्खाड़िउ पहिलउ छोहु। न गणिउ अट्ठ भवंतर-नेहु ॥९॥
नेमि दयालू सखि निरदोसु। कीजइ उग्रसिण पर रोसु।
पसुय भराविउ मूकउ वाडु। मुझु प्रिय सरिसउ कियउ विहाडु ॥१०॥

---

[1] प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

कृति—नेमिनाथ-चतुष्पादिका[1]

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमर सुमिरिय गिरनार। सिद्धी राजल कन्य-कुमारि।
श्रावण श्रवणे कडुआ मेह। गर्जै विरहिन छीजै देह।
विज्जु झमक्कै राक्षसि जेम। नेमि बिना सखि ! सहियै केम ॥२॥
सखी भनै "स्वामिनि ! मन झूर। दुर्जन करे न वाँछित पूर।
गये`उ नेमि तब विवशे`उ काइ। आछै अन्यहुँ बरहुँ शताइँ ॥३॥"
बोलै राजल "तव एँहु वयन। नाही नेमि सम वर-रत्न।
धरै तेज ग्रह-गण सव ताउ। गगन न ऊगै दिनकर जाउ ॥४॥"
भादों भरिया सर पेखेइ। सकरुण रोवै राजल-देइ।
"हा एकलड़ी मैं निराधार। का उद्वेजिस करुणासार ॥५॥
भनै सखी राजल मन रोइ। "नीठुर नेमि न आपन होइ।
सिंचिय तरुवर परि प्लवंति। गिरिवर पुनि करडेरा होंति ॥६॥
साँचउ सखि ! वारि गिरि भिद्यंति। काहु न भिद्यै स्यामल कांति।
घन वर्षन्ते सर फूटंति। सागर पुनि घन-ओघ डुलंति ॥७॥"
आश्विन मासहँ आँसु-प्रवाह। राजल मेलै[2] बिन ने`मि नाह।
दहै चंद चंदन हिम शीत। बिनु भर्त्तारहँ सँगउ विपरीत ॥८॥
—चतुष्पादिका
"सखि ! ना क्षीणा नेमि हृदेश। मन आपनयौ तउ क्षय लेस।
जिन देखाड़े`उ पहिलउ छेहु[3]। न गणे`उ आठ भवांतर[4]-नेहु ॥९॥
नेमि दयालू सखि ! निर्दोष। कीजै उग्रसेन पर रोष।
पशू भराये`उ मूके`उ वाड। मम प्रिय सरिसउ कियउ बिगाड ॥१०॥

---

[1] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह", G.O.S. Vol. XIII (बड़ोदा) 1920
[2] छोडै [3] आशा-भंग [4] जन्मांतर

कत्तिग क्षित्तिग उग्गइ संझ। रजमति झिज्झिउ हुइ अतिझंझ[1]।
राति दिवसु आछइ विलपंत। बलिबलि दय करि दयकरि कंत ॥११॥
नेमितणी सखि मूकि न आस। कायरु थग्गउ सो घरवास।
इमइ ईसि सनेहल नारि। जाइ कोइ छांडवि गिरिनारि ॥१२॥
कायरु किमि सखि नेमि जिणिंदु। जिमि रिणि जित्तउ लक्खु नरिंदु।
फुरइ सासु जा अग्गलि नास। ताव न भिल्लउ नेमिहिं आस ॥१३॥
मगसिरि मग्गु पलोअइ बाल। इणयरि पभणइ नयण विसाल।
जो मइ मेलइ नेमि कुमार। तसुणी वेल वहउ सवि वार ॥१४॥
एहु कयाग्रहु तउ सखि मिल्हि। करसु काइ तिणि नेमिहि हिल्लि।
मंडि चडाविउ जो किर मालि। हे हे कु करइ रोहणि कालि ॥१५॥
अठभव सेविउ सखि मइ नेमि। तासु समाहुउ किम न करेमि।
अवगन्नेसइ जइ मइ सामि। लग्गी आछिसु तोइ तसु नामि ॥१५॥
पोसि रोस सवि छोडिबि नाहु। राखि राखि भइ मयणहु पाहु।
पडइ सीउ नवि रयणि विहाइ। लहिय छिद्दु सवि दुक्ख अमाइ ॥१७॥
नेमि नेमि तू करती मुद्धि। जुव्वणु जाइ न जाणिसि सुद्धि।
पुरिस-रयण भरियउ संसारु। परणु अनेरउ कुइ भत्तारु ॥१८॥
भोली तउ सखि खरी गमारि। बारि अछंतइ नेमि कुमारि।
अन्न पुरिसु कुइ अप्पणु नडइ। गइवरु लहिउ कु रासभि चडइ ॥१९॥
माहमासि माचइ हिम रासि। देवि भणइ मइ प्रिय लइ पासि।
तइ विणु सामिय दहइ तुसारु। नवनव मारिहि मारइ मारु ॥२०॥
इहु सखि रोइसि सहू अरन्नि। हत्थि कि जामइ धरणउ कन्नि।
तउ न पती जिसि माहरि माइ। सिद्धि रमणि रत्तउ नमि जाइ ॥२१॥
कंति वसंतइ हियडामाहि। वाति पहीजउं किमहि लसाइं।
सिद्धि जाइ तउ काइ त बीह। सरसी जाउत उगसेंण-धीय ॥२२॥
फागुण वागुणि पन्न पडंति। राजल दुक्खि कि तरु रोयंति।
गब्भि गलिवि हउ काइ न मूय[2]। भणइ विहंगल धारणि धूय ॥२३॥

---

[1] दुर्बल [2] मृत

कातिक क्षित्तिग ऊगै साँझ। रजमति छीजेउ होइ अति झाँझ।
राति-दिवस आछै बिलपंत। "बलि बलि दयों करु दयों करु कंत" ॥११॥
नेमि केर सखि मुंचउ आश। कायर भागेँउ सो घर-वास।
ऍहु ऐसीह सनेहल नारि। जाइ कोइ छाडिय **गिरिनार**" ॥१२॥
"कायर का सखि! नेमि जिनेंद्र। जिन रणेँ जीतेँउ लाख नरेन्द्र।
फुरै श्वास जौ आगल नास। तौ लोँ न छोड़उँ नेमिहि आश ॥१३॥"
मगसिर मार्ग प्रलोकै बाल। ऐसोँ प्रभनै नयन-विशाल।
"जो मोँहि मिलवै नेमिकुमार। तसु उपकार बहुउ सब बार" ॥१४॥
"एहु कुआग्रह तव सखि! मेलु[1]। करसि काह तिन नेमिहिँ हिल्ल।
मंडेँ चढ़ायेँउ जो पुनि माल। हे हे को करै टोअन[2]-काल" ॥१५॥
अठ भव सेवेँउँ सखि! मैं नेमि। तसु ऊमाइ[3] किमि न करेमि।
अवश छिजीहै जो मोँहिँ स्वामि। लागी रहोँ तऊ तसु नाम" ॥१६॥
"**पूस** रोष सब छाड़हु नाह। राखु राखु मोहिँ पद-नह-पाँह।
पडै शीत ना रजनि विहाइ। लहिय छिद्र सब दुःख अमाइ" ॥१७॥
"नेमि नेमि तू करती मुग्धेँ। यौवन जाइ न जानसि शुद्ध।
पुरुष-रतन भरियउ संसार। परनहु अन्य कोँई भर्तार" ॥१८॥
"भोली तैँ सखि! खरी गँवारि। वर अच्छंते नेमिकुमार।
अन्य पुरुष कोँइ आपन नहई। गज-वर लहे कोँ रासभ चढ़ई" ॥१९॥
माघ मास मातै हिम-राशि। देवि भनै "मोँहि प्रिय लेउँ पास।
तव बिनु स्वामिय! दहै तुषार। नवनव मारहि मारै मार" ॥२०॥
"ऍहु सखि रोवसि जिमि आरण्येँ। हाथ कि जोये धरियौँ कर्णेँ।
तौ न पतीजसि हम्मर माइ। सिद्धि-रमणि-रातो नेँमि जाइ" ॥२१॥
कंत वसंतै हियरा-माँहि। बात पहीजौ किमिहि लसाइ।
सिद्धि जाइ तोहि काई भीय[4]। ओहि सँग जाऊ उगसेँन-धीय" ॥२२॥
फागुन पवना पर्ण पडंति। राजल दुःख कि तरु रोवंति।
"गर्भ गलिय होँ काह न मूय।" भनै विहव्वल धारणि-धूय[5] ॥२३॥

---

[1] छोड़ [2] रक्षा, पहरा [3] वांछा [4] भय [5] पुत्री

अजिउ भगिउ करि सखि विम्भासि। अछइ भला वर नेमिहि पास।
अनुसखि मोदक जउ नवि हुंति। छुहिय सुहाली किन रुच्चंति ॥२४॥
मणह पासि जइ वहिलउ होइ। नेमिहि पासि ततलउ ना कोइ।
जइ सखि वरउँ त सामल-धीरु। घण विणु पियइ कि चातक नीरु ॥२५॥
चैत्र मासि वणसइ पंगुरइ। वणि वणि कोयल टहका[1] करइ।
पंचबाणि करि धनुष धरेबि। वेभइ भाँडी राजल देवि ॥२६॥
जुइ सखि! मातउ मासु बसंतु। इणि खिल्लिज्जइ जइ हुइ कंतु।
रमियइ नवनव करि सिणगारु। लिज्जइ जीविय जुब्बण-सारु ॥२७॥
सुणि सखि मानिउ मुभु परिणयणु। नवि ऊपरि थिउ बंधव-वयणु।
जइ पडवन्नइ चुक्कइ नेमि। जीविय जुब्वणु जलणि जलेमि ॥२८॥
वइसाहह विहसिय वणराइ। मयणमित्तु मलयानिलु वाइ।
फुट्टिरि हियडा माभि वसंतु। विलपइ राजल पिक्खउ कंतु ॥२९॥
सखी दुक्ख वीसरिवा भणइ। "संभलि भमरउ किम रुणभुणइ।
दीस पंचथिरु जोव्वणु होइ। खाउ पियउ विलसउ सहु कोइ ॥३०॥
रमणि पसंसिय राजल-कन्न। जीह कंतु वसि ते पर धन्न।
जसु पउ न करइ किमइ मुहाडि। सा हउँ इक्क ज भुंडनि लाडि ॥३१॥
जिट्ठ बिरहु जिमि तप्पइ सूरु। छण वियोगि सुसियं नइ पूरु।
पिक्खिउ फुल्लिउ चंपइ विल्लि। राजल मूछी नेह गहिल्लि ॥३२॥
मूछी राणी हा सखि धाउं। पडियउ खंडइ जेवडु घाउ।
हरि मूछा चंदण पवणेहि। सखि आसासइ प्रिय-वयणेहि ॥३३॥
भणइ देवि विरती संसार। पडिखि पडिखि मइ जाउव सार।
नियपडिवन्नंउ प्रभु संभारि। भइ लइ सरिसी गढि गिरिनारि ॥३४॥
आसाढह दिठु हियँउ करेवि। गज्जु विज्जु सवि अवगन्नेवि।
भणइ वयणु उगसेणह जाय। करिसि धम्मु सेविसु प्रिय पाय ॥३५॥
मिलिउ सखी राजल पभणंति। चिणय जेम नमिरिय खण्णंति।
अउगी अच्छि सखि! भखि मन आल। तपु दोहिल्लउ तउँ सुकुमार ॥३६॥
—नेमिनाथ-चतुष्पदिका[2]

---

[1] टहका आधुनिक शब्दानुकरण [2] पृष्ठ ९-१०

अजउ भनेँउ कर सखी विमर्षि। अछै भलो वर नेमिह-पास।
"पुनि सखि! मोदक यदि ना होंति। छुधितेँ सोँ हारी किन रुच्चंति ॥२४॥
"मनह पास यदि जल्दी होइ। नेमिहिँ पास तेँतनउ ना कोइ।
यदि सखि! वरौं त स्यामल-धीर। घन विनु पियै कि चातक नीर" ॥२५॥
चैत्र मास वनसपती अँकुरै। वन-वन कोयल टहका करै।
पंच-बान केँर धनुष धरेवि। बेधै लक्षिय राजल-देवि ॥२६॥
"जोँउ सखि! मातेँउ मास वसंत। इमि खेलीजै यदि होँइ कंत।
रमियै नव नव कर शृंगार। लीजै जीवित यौवन-सार" ॥२७॥
"सुनु सखि! मानेँहु मम परिणयन। ना ऊपर ठिय बाधव-वयन।
यदि प्रतिपन्ना चूकै नेमि। जीवित यौवन ज्वलनेँ ज्वलेमि ॥२८॥
बैशाखह विहसिय वनराजि। मदनमित्र मलयानिल वाइ।
फुट्टिय हियरा माँझ वसंत। विलपै राजल पेखिय कंत ॥२९॥
सखी दुःख बीसरिबा भनई। "सुनु सुनु भ्रमरउ का रुनझुनई।
"दिवस पंच थिर यौवन होइ। खाहु पियहु बिलसहु सब कोइ" ॥३०॥
रमण प्रशंसिय राजल-कन्य। "जाहि कंत वशेँ ते पर धन्य।
जसु पिय न करै किछुउ पुछारी। सो हौँ[1] एकइ फूट-लिलारी" ॥३१॥
जेठ विरह तप्पै जिमि सूर। घन-वियोगेँ सुखियो नदि-पूर।
पेखेँउ फुल्लिय चंपक-बेल्लि। राजल मूर्छी नेह-गहिल्लि ॥३२॥
"मूर्छी रानी हा सखि! धाव! पडियउ खंडह जेवड़ घाव।"
हरि मूर्छा चंदन पवनेहिँ। सखि आश्वासै प्रिय-वचनेहिँ ॥३३॥
भनै "देवि! विरती-संसार। परिख परिख मैं जानेँउ सार।
निज प्रपन्नउ[1] प्रभु सम्हारि[2]। मोँहि लइ साथे गढ गिरनार ॥३४॥
आषाढ़ह दृढ हियइँ करेवि। गर्ज विज्जु सब अवगण नेवि।
भनै वचन उगसेनहँ जाय। करिसि धर्म सेविसि प्रिय-पाय ॥३४॥
"मिलिउ सखी!" राजल प्रभनंति। चना जेम न मिरिच खाचंति।
एकली अच्छ[3] सखि! झँख मन आल[4]। तप-दोहिल्लउ[5] तूँ सुकुमार ॥३५॥
—नेमि-चौपाई (पृ० ९-१०)

---

[1] होनेवाला पति [2] याद करके [3] हूँ [4] मिथ्या [5] दुर्लभ

§ ३९. चन्दबरदाई

चंदबरदाई। काल—१२०० ई०। देश—लाहौर-दिल्ली। कुल—भाट। कृति—पृथिवीराज-रासो[1]

१—हिमालय-वर्णन

सकल भूमि कौ भेद राज जानै ए भग्गै।
अति सु-विकट बन-जूह चढ़ै संग्राम न होई॥
अश्व-पाय गज-पाय चढन किहि ठौर न कोई।
बनविकट जूह परबत गुहा बरबेहर बंकम बिषम॥
दारु भयानक अति सरल बर प्रस्तर जल नहिं सुषम।
झरै झरनि झोरं-सु आघात सोरं जिने सद्द या सद्द ता अंग मोरं
हयं तज्जि राजं चलै हत्थ डोरं इथं इक्क पच्छौ बियं जंन जोरं।
बजै सद्द-सद्दं परच्छंद उट्ठै सुनै कंन सोरं सुधीरज्ज छुट्टै
इकं होइ राजं पथं सन्त रूंधै दिये हत्थ तारी तिनं को न बूधै।

२—सामन्त-समाज

(१) राजा बीसलदेवकी प्रशंसा

धर्माधिराज रति जोग भोग षट षुंट णित्ति षग्गह सु-भोग
जग दुष्ष बीर बीसल नरिंद महापाप रत द्रव्यान अंध

---

[1] वर्तमान रूप १६वीं सदीसे पहिलेका नहीं है।

ऋत अक्रित काम क्रितह सु कीन जिन असुर घोर षनि द्रव्य लीन
संसार थागि पुनि द्रव्य काज उपजाई मति **अजमेर** राज
कोडी सु मोल गज कियौ एक लीयो न किनह किरि सहर नेक
कामंध अंध सुज्झ्यो न काल हक अहक जोरि गिरि इक्क भाल
चलल्यौ न राज नीतिह प्रमान आनीत बंधि नृप थान थान
सुज्झ्यौ न ध्रम्म चलल्यौ प्रमान मुकजो निगम्म करि अगम-मान
अब लोह छोह छांडिय सु-कित्ति मुक्कयो ध्रंम आध्रंम जिति
दरबार अतिथि दीसै न कोइ अप्प-सुह कित्ति संभरै लोइ
चौसठि बरस बर राज कीन पायौ न पुण वर सुषष हीन

—पृथ्वी०रासो—पृ० ७८-७९

आनन्द अग्ग पर इन्द्र सम ध्रंम्म नंद जस उब्बरै।
अजमेर नयर अरिजेर कारि विमल राज **बीसल** करै॥
वर पट्टन अट्टन अमित समित बेद फुनि राज।
समय अंत **बीसल** सिरह धर्यौ छत्र सम साज॥

—पृ० रा०—पृ० ९१

(२) शृंगार-रस

रतिराज रु जोवन राजत जोर, चंप्यो सिसिरं उर सैसव-कोर।
उनी मधि मङ्खि मधू धुनि होइ, तिन उपमा बरनी कवि कोइ।
सुनी बर आगम जुव्वन बैन, नव्यो कबहू न सुउद्दिय मैन।
कबहूँ ढुरि कंन न पुच्छत नैन, कहो किन अव्व ढुरी ढुरि वैन।

ससि रोरन सैसव दुंदुभि बज्जि, उथै रतिराज सजोबन सज्जि।
कही बर श्रोन सुरंगिय रज्जि, भये नर दोउ बनंबन भज्जि।
इय मीन नलीन भये रत रज्जि,
भय बिभ्रम भाइ परी नहि नंजि।
सुनि प्रथम बालिय रूप, बरबाल लच्छिन रूप।
अहिसंधि सैरुव-थाल, अजु अरक राका हाल।
सैसव सुसूर समान, बयचंद चढ़न प्रमान।
सैसव्व जोवन एल, ज्यों पंथ पंथी मेल।
परि भौंह भवर प्रमान, वै बुद्धि अच्छरि आन।
द्रिग स्याम सेत सुभाग, सावक्क मृग छुटि बाग।
बिय दृगन ओपम कोउ, सिसभ्रंग षंजन होउ।
बरबरन नासिक राज, मनि जोति दीपक लाज।
गतिसिषों पतंग नसाव, ओपंम दे कवि आव।
नासिक्क दीपन साल, भँप दत षंजन-बाल।
बिय बरल जोवन सेव, ज्यों दंपती हथलेव।
वैसंधि संधिय चिंद, ज्यों मत्त जुरहि गुविंद।
तुछ रोमराज विसाल, मनो अग्गि उग्गिय बाल।
कुच तुच्छ तुच्छ समूर, मनों कामफल-अंकूर।
बयरूप ओपम एह, जा जनक नृप कर तेह।
बर छिन्न थक्कर तेह, मनों काम द्रप्पन देह।
वै संधि कविबर बंध, ज्यों वृद्ध बाल बिबंध।
वै संधि संधि प्रामन, ज्यों सूर ग्रहन प्रमान।

वै राहु ससि गिलि सूर, नव ग्रह (प्र)मत्त करूर ।
वरवाल वै संधि एह, सिक्कार काम करेह ।
लसकरे लसलसि छंडि, चितरंक दीन समंडि ।
कर्यो सुल्लांन कामिनी, दिपंत मेघ दामिनी ।
सिंगार षोडसं करे, सुहस्त दर्पनं धरे ।
बसन्न बासि बासनं, तिलक्क भाल भासनं ।
दुनैन श्रैन अंजए, चलं चलंत षंजए ।
सुहंत श्रोन कुंडलं, ससी रवी कि मंडलं ।
सुमुत्ति नास सोभई, दसंन दुत्ति लोभई ।
अनेक जाति जालितं, धरंत पुप्फ मालितं ।
झँकार हार नोपुरं, घमंकि घुंघरं धुरं ।
बिलेपि लेपचंदनं, कसी सु कंचुकी घनं ।
सुछुद्र घंटि घंटिका, तमोल आय अंटिका ।
कनक्क नग्ग कंकनं, जरे जराइ अंकनं ।
बिसाल बानि चातुरी, दिषंन रंभ आतुरी ।
अनेक दुत्ति अंगकी, कहंत जीभ भंगकी ।
निसि थट्टिय-फट्टिय तिमिर, दिसि रत्ती धवलाइ ।
सैसव में जुव्वन कछ, तुच्छ तुच्छ दरसाइ ।
दक्षिन वृत्त सुनाभि, तुंग नासा गजगमनी ।
सासनि गंध रुषं जु चारु, कुटिल केस रतिरमनी ।
बरजंघन मृदुपथु सुरंग, कुरंग लज्जे छविहीनं ।

(३) युद्ध

(क) बीर-रस

हत्थ हूत्थ सुज्झै न, मेघ डंभरि मंडि रज्जी ।
निसि निसीथ अंतरो, भान उत्तरि सथ सज्जी ॥
विज्ज बीर झलकंत, पवन पच्छिम दिसि बज्जै ।
मोर सोर पप्पीह, अवनि सक्ति घन गज्जै ॥
बंटी जु सिलह निसि सत्तमिलि, सधिय पंग दरबार दिसि ।
चामंडराय दाहर ननै, लरन लोह कड्ढे तिरसि ॥
पच्छैं भौं संग्राम, अग्ग अपछर बिच्चारिय ।
पुच्छै रंभ मेनिका, अज्ज चित्त किमि भारिय ॥
तब उत्तर दिय फेरि, अज्ज पहुनाई आइय ।
रथ्थ बैठिश्रौ थान, सोभ तह कंज न पाइय ॥
भर सुभर परे भारत्थभिरि, ठाम ठाम चुप जीत संधि ।
उथकीय पंथ हल्लै चल्यो, सुथिर सभौ देखिय नभ ॥

(ख) रण-यात्रा

ढलकंत ढाल तरवर प्रमान, हलके हलंत गज नग-समान ।
अपसकुन सकुन चितहि न चित्त, निरिमान वन्त गुन धरत तत्त ।
कदवति सलिल जहाँ सलिलपंक, चितचित्त डवंक जे करे कंक ।
चल्ले नरिंद अरि पुब्ब गाव, भुमिया ससंक सब लगत पाव ।
गढ़ घेरि पंग किअ अप्रमान, मानौं कि मेरि पारस्स भान ।

पंगह सुबीर गढ़ करि गिरद्द, जनु सर्बरि परस चंदा सरद्द ।

गोरी नरिंद हय-गय-सुभर, सजि आयौ उप्पर सुअय ।

चैत मास रवि तीज, सेत पष्षह कल चंदह ।

भयौ सुदिन मध्यान, चढ्यो प्रथिराज नरिंदह ।।

कटक सबर हिल्लोर, भार सेसह करि भग्गिय ।

चढि सामंत सकज्ज, नद्द सुर अंमर जग्गिय ।।

गज रोर सोर बंधे घटा, सिलह बीज सिल काबलिय ।

पप्पीह चीह सह नाइ सुर, नदि घग्घर मैलान दिय ।।

(ग) युद्ध-वर्णन

पंग जंगं षुलं । कूह मच्ची हुलं ।। सार तुट्टे पलं । षग्ग मच्चे षलं ।।
हाल हालाहलं । सोब्ब बित्थौ तलं ।। गिद्ध कोलाहलं । अंत दंती रुलं ।।
उद्ध पीयं छलं । चर्म अस्ति तलं ।। बीर निद्धी चलं । सिद्ध ठट्टे रुलं ।।
संभु मालं गलं । ब्रम्ह चिता चलं ।। भूत बित्ता तलं । पत्थ पारथ्थलं ।।
देव देवानलं । फट्टि फारक्कलं ।। घाय बज्जे घलं । सूर घुम्मै रुलं ।।
तार चौसट्ठिलं । बाइ भूतं तलं ।। रीति पच्छी षिनं । तार आयासनं ।।
सूर उग्यौ ननं । कोट चड्ढे फन ।।

जहाँ उत्तर्यो साहि चिन्हाव मीरं । तहाँ नेज गड्यो ढढुक्के पुंडीरं ।।
करी आन साहाब साबंधि गोरी । धकी धींग धिगं धकावै सजोरी ।।
दोऊ दीन दीनं कढ़ी बंकि अस्सि । किधौं मेघमें बीजु कोटिं निकस्सि ।।
किए सिग्घरं कोरता सेलं अग्गी । किधौं बद्दरं कोर नागिं न नग्गी ।।
हबक्के जु मेछं भ्रमंतं ज छुट्टै । मनो घेरनी घुंम्मि पारेव तुट्टै ।।
उरं फुट्टि बरछी बरं छब्बि नासी । मनो जालमें मीन अद्धी निकासी ।।

लटक्के जुरं नं उडै हंस हल्लै। रसं भीजि सूरं चवग्गान षिल्लै ॥
लगे सीस नजा भ्रमैं भेजि तथ्थें। भषे बाइसं भात दीपत्ति सथ्थें ॥
करै मार मारं महाबीर धीरं। भए मेघधारा बरष्षंत तीरं ॥
परे पंच पुंडीर सा चंद कढ्यौ। तबै साहि गोरी स चन्हाव चढ्यौ ॥
घर घरकि धाहर करवि काइर रसमिसू रस कूरयं ॥
गजघंट घनकिय, रुद्र भनकिय, षनकि संकर उड्ड्यो।
रननंकि भेरिय कन्ह हेरिय, दंति दान धनंदयौ ॥
बरं बंबरं चोरं माही ति साई। हले छत्र पोतं बले यार घाई ॥
बुले सूर दुक्के दहक्के पचारं। घले बथ्थ दोऊ धरं जा अषारं ॥
उतंमंग तुट्टै परैं श्रोन धारी। मनो दण्ड सुक्की अगीवाइ वारी ॥
नच्चै कंधबंधं दकै सीस भारी। तहाँ जोग-माया जकी सो बिचारी ॥
सोलंकी माधव नरिंद, षान षिलजी मुख लग्गा।
सबर बीररस बीर, बीर बीरा रस पग्गा ॥
दुअन बुड्ब जुध तेग, दुहूँ हत्थन उब्भारिय।
तेग तुट्टि चालुक्क, बथ्थ परिकड्ढि कटारिय ॥
लइ बग्ग कैमास बीरं अमानं। धमंके धरा गोम गण्णे गुमानं ॥
उतें उप्परी बाग तत्तार षानं। मिले हिंदु मीरं दोऊ दीन मानं ॥
बजे राज सिंधू सु मारुअ बज्जै। गजे सूर सूरं असूरं सुभज्जै ॥
चढे व्योम बिम्मान देषंत देवं। बढ़े स्वामि-कज्जै सुसज्जै उभेवं ॥
छुटे नाल गोला हवाई उछंगं। नछत्रं मनों जानि तुट्टे निहंगं ॥
करष्षै चलै बान बानं कमानं। भई अंध-धुंधं न सुज्झै सु भानं ॥
मिले सेल' भेलं समेलं अपारं। सनाहं फटैं हीय होवंत पारं ॥
मदं मत्त दंतं उषारै मसंदं। मनो मिल्लिया पब्ब उष्षालि कंदं।

मचै हूक हूकं वहै सार-धारं। चमक्कें चमक्कें करारं करारं ॥
भभक्कै भभक्कै वहै रत्तधारं। सनक्कै सनक्कै वहै बान-भारं ॥
हबक्कै हबक्कै वहै सेल भेलं। कुकें कूक फूटी सुरत्तांन ढालं ॥
बकी जोगमाया सुरं अप्पथानं। वहै चट्ट-पट्टं उघट्टं उलट्टं ॥
कुलट्टा धरै अप्प-अप्पं उहट्टं। दडक्कं बजै सेन सेना सुघट्टं ॥

(घ) युद्धमें छल

छल तक्यौ श्रीरांम, सेत साइर तब बंध्यौ।
छल तक्यौ सुग्रीव, बालिजिउ ताउह संध्यौ ॥
छल तक्यो लछिमना, सूरमंडल अलि वेध्यौ।
छल तक्यो नरसिंघ, अग्गकस नष उर छेद्यौ ॥
छलबल करंत दूषन न कोइ, किस्न कलह कंसह करिय।
सोमेस राज तकि अप्प बिधि, रत्तिबाह छलमन धरिय ॥

३—कविका संदेश

(भाग्यवाद)

नर करनी कछु और, करै करता कछु औरै।
अनचिंतन करै ईस, जीय सुनर औरै दौरै ॥
रचे रचन नर कोरि, जोरि जम पाइ वस्त सह।
छिनक मध्य हरि हरै, केलि किरतव्य कम्मइह ॥
प्रथिराज गमन देवास दिसि, ब्याह बिनोद सुमंडिजिय।
अनचिंति जग्गि गज्जन बलिय, आनि उतंग सु कंक किय ॥
जु कछू लिष्यो लिलाट, सुष्ष अरु दुःष समंतह।
धन विद्या सुन्दरी, अंग आधार अनंतह ॥
कलप कोटि टरि जाहिं, मिटै न न घटै प्रमानह।
जतन जोर जो करै, रंच न न मिटै बिनानह ॥

तेरहवीँ सदी

§४०: लक्खण

काल—१२५७ ई० । देश—रायवड्डिय (रायभा, आगरा) कुल—वैश्य,

१—आत्म-परिचय

(१) काव्य-महिमा

तं सुणेँवि भणिउ साहुल-सुएण । जिण-चरणच्चण-पसरिय-भुएण ॥
भो [1]लंब-कंचु कुल-कमल-सूर । कुलमाणव चित्तासा पऊर ॥
घत्ता । तुहुँ कइ-यण-मण-रंजणु पाव-विहंजणु गुणु-गण-मणि-रयणायरऊ ।
उच्छट्टि अवट्टिउ सुणयो मट्टिउ(?)णिहिल-कला-मलणायरऊ ॥
तुहुँ धण्णु जासु एरिसिउ चित्तु, तिपयत्थ रसुज्जलु मइ पवित्तु ।
सयणासण तंबेरम तुरंग, धयछत्त चमर बालावरंग ॥
धण-कण-कंचण घण-दविण-कोस, जंपाण जाण भूसण सँतोस ।
धरपुर णयरायर देस-गाम, पट्टोलंबर पट्टण समाण ॥
संसार-सारु पयवत्थु भावु, जंजं दीसइ णाणा सहाउ ।
तंतं सुहेण पावियइ सव्वु, लहियइ ण कव्वु माणिक्कु भव्वु ॥

(२) आत्म-परिचय

एक्कहि दिणेँ सुकइ पसण्ण चित्तु, णिसि सेज्जायलेँ झायइ सइत्तु ।
महुबोह-रयणु धडगरुय सरिसु, बुहयण-भव्वयणहं जणिय हरिसु ॥
करकंठकण्ण पहिरण असक्कु, णरहरमई तेण सजोरु थक्कु ।
भइ सुकइत्तणु विज्जा विलासु, बुहयण-मुह-मंडणु साहिलासु ॥
आणंद लयाहरु अमिय रोइ, णवि याणइ सूण-इण इत्थ कोवि ।

---

[1] बड़े बालवाला

तेरहवीं सदी

§ ४०: लक्खण

जैन-गृहस्थ। कृति—अणुवयरयण पईव (अनुव्रत-रत्नप्रदीप)[1]

१—आत्मपरिचय

(१) काव्य-महिमा

सो सुनिय भनेंउ साहुल-सुतेहिं। जिन-चारणार्चन-प्रसरिय-भुजेहिं॥
"हे लंबकंचु-कुल-कमल-सूर। कुल मानव चित्ताशा-प्रपूर॥
घत्ता। तुहुँ कवि-मन-रंजन, पाप-विभंजन, गुण-गण-मणि-रतनाकरऊ।
उच्छेदि कुवर्त्तन-सुनयउ मार्जउ, निखिल-कलामल-नागरऊ॥
तुहुँ धन्य जासु ऐसहु चित्त। त्रिपदार्थ रसोज्ज्वल मति-पवित्र॥
शयनासना स्तंवेरम तुरंग। ध्वज छत्र चमर बालावरंग॥
धन-कण-कंचन-धन द्रविण-कोश। भंपान-यान-भूषण सँतोष॥
घर पुर नगरागर देश ग्राम। पट्टोल[2]-अंबर-पट्टन समान॥
संसारसार पद-वस्तु[3] भाव। जो जो दीसै नाना स्वभाव॥
सो सो सुखेहिं पाइयै सर्व। लभियै न काव्य-माणिक्य भव्य॥

(२) आत्म-परिचय

एकै दिन सुकवि प्रसन्न चित्त। निशि शय्यातलें ध्यावै स्वपित्त।
"मम बोधरतन धड[4] गरुव सरिस। बुधजन भाविकजन[5] जगिय हरख॥
करकंटकर्ण पहिरन असक्क। नरहरमति तेन सँजोर थक्क[6]।
मैं सुकवित्वहँ विद्याविलास। बुधजन मुखमंडन साभिलाष॥
आनंद लताघर अमृत रोपि। ना जानै सुनै न इहाँ कोइ।

---

[1] १५१८ (१५७५ संवत्) की हस्तलिखित प्रति—अप्रकाशित
[2] रेशमी [3] पदार्थ [4] तन [5] जैन-भक्त [6] रहना

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मइं अमुणंते अक्खर विसेसु, न मुणमि पबंधु न छंद-लेसु।
पद्धडिया बंधें सुप्पसणउ, अवगमउ अत्थु भव्वयणु तण्णु।
हीणक्खउ मुणेंवि इयरु तत्थु, संभवउ अण्णु वज्जेंवि अणत्थु।

२–सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इह-जउणा-णइ-उत्तर-तडित्थ। मह-णयरि रायवड्डिय[1] पसत्थ।
धण-कण-कंचण-वण-सरि-समिद्ध। वाणुण्णयकर-जण-रिद्धि-रिद्ध॥
किम्मीर-कम्म णिम्मिय रवण्ण। सट्टल सत्तोरण विविह-वण्ण।
पंडुर पायारुण्णइ समेय। जहि सहहि णिरंतर सिरिनिकेय॥
चउहट्ट चच्चरू दाम जत्थ। मग्गण-गण-कोलाहल समत्थ।
जहिँ विवणे विपणे घण कुप्पभंड। जहि कसिअहिँ णिच्च पिसंडि खंड॥
णिच्चिच्च-याण-संमान-सोह। जहिँ वसहिं महायण सुद्धबोह।
ववहार चार सिरि सुद्ध लोय। विहरहिँ पसण्ण चउवण्ण लोय॥
जहिँ कणयचूड मंडण विसेस। सिंगार-सार-कय निरवसेस।
सोहग्ग लग्ग जिणधम्म सील। माणिणि-णिय-पइ-वय-वहण-लील॥
जहि पण्ण पऊरिय पण्ण साल। णायर-णरेहि भूसिय विसाल।
थिय जिण बिंबुज्जल जणियसम्म। कूडग्ग धयावलि-रुद्ध-धम्म॥
चउ सालुण्णय-तोरण-सहार। जहिँ सहहिँ सेय सोहण-विहार।
जहिँ दविणंगण वहि पेम छित्त। लावण्ण-पुण्ण-धण लोलचित्त॥
जहि चरउ चाउ कुसुमाल भेउ। दुज्जण सखुद्द खल पिसुण एउ।
ण वियंभहिँ कहिमि न धणविहीण। दविणड्ढ णिहिल णर धम्मलीण॥
पेम्माणुरत्त परिगलिय गव्व। जहिँ वसहिँ वियक्खण मणुवसव्व।
वावार सव्व जहिँ सहहिँ णिच्च। कणयंबर भूसिय राय-भिच्च॥
तंबोल-रंग-रंगिय धरग्ग। जहि रेहहिँ सारुण सयल मग्ग।

---

[1] रायभा गाँव

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मैं अबुभंता अक्षर-विशेष । न बुझौं प्रबंध न छन्दलेश ।
पद्धतिका[1] बंधैं सुप्रसन्न । अवगमैं भव्यजन अर्थ तूर्ण ।।
हीनाक्षउ जानी इतर तत्र । संभवउ अन्य वधेंउ अनर्थ ।

२—सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इहँ यमुना नदि उत्तर तटस्थ । महनगरि रायभा(हैं) प्रशस्त ।
धन-कण-कंचन-वन-सरि-समृद्ध । दानोन्नत कर-जन-ऋद्धि-ऋद्ध ।।
किर्मरि[2] कर्म निर्मिय रमण्य । स'ट्टल स-त्तोरण विविधवर्ण ।
पांडुर प्राकार-उन्नति समेत । जहँ रहैं निरंतर श्रीनिकेत ।।
चौहट्ट चर्चर-ह्दाम यत्र । माँगन-गण-कोलाहल-समर्थ ।
जहँ विपणि विपणि घन कुप्यभांड । जहँ कसियैं नित्य पिषंग-खंड ।।
निश्चित यान सम्मान सोह । जहँ बसैं महाजन शुद्ध-बोध ।
व्यवहार चारु श्री शुद्धलोक । विहरैं प्रसन्न चौवर्ण लोक ।।
जहँ कनकचूड-मंडन विशेष । शृंगार-सार कृत-निरवशेष ।
सौभाग्य लग्न जिन-धर्मशील । माननि निजपति वच-वहन-शील ।।
जहँ पण्य प्रपूरिय पण्यशाल । नागर-नरेहिं भूषित विशाल ।
ठिय जिन बिंबोज्ज्वल जनित शर्म । कूटाग्र ध्वजावलि रुद्ध धर्म ।।
चतुशालोन्नत तोरण स-द्वार । जहँ अहैं श्वेत शोभन विहार ।
जहँ द्रविणांगन बहि[3] प्रेमक्षेत्र । लावण्यपूर्ण धन लोलचित्त ।।
जहँ चरउ चारु कुसुमाल भेव । दुर्जन स-क्षुद्र खलपिशुन एव ।
न विजुभै कतहुँ न धनविहीन । द्रविणाढ्य निखिल नर धर्मलीन ।।
प्रेमानुरक्त परिगलित-गर्व । जहँ बसैं विचक्षण मनुज सर्व ।
व्यापार सर्व जहँ सधैं नित्य । कनकांबर-भूषित राजभृत्य ।।
तांबूल रंग-रंगिय'धराग्र । जहँ राजैं सारुण सकल मग्ग ।

---

[1] चौपाई [2] चित्रविचित्र [3] बाहर

(२) राजा (आहवमल्ल)की प्रशंसा

तहिँ णरवइ आहवमल्ल एउ। दारिद्द समुद्दत्तरण-सेउ ॥
घत्ता। उव्वासिय-पर-मंडलु दंसिय-मंडलु, कास-कुसुम-संकास-जसु।
छल-बल-सामत्थेँ णीइ णयत्थेँ, कवण राउ उवमियइ तसु ॥

णिय-कुल-कैरव-सिय-पयंगु। गुण-रयणाहरण-विहूसियंगु।
अवराह-बलाहय-पलय-पयणु। मह-माग-मगण-पडिदिण्ण-तवणु ॥
दुव्वसण-सोस-णासण-पवीणु। किउ अखलिय-सजस मयंक सीणु।
पंचंग-मंत-वियरण-पवीणु। . . . .
माणिणि-मण-मोहणु-मयर-केउ। णिरुवम-अविरल-गुण-मणि-णिकेउ।
रिउ-राय-उरत्थल दिण्ण हीरु। विसमुण्णय-समरेँ भिडंत वीरु ॥
खग्गग्गि-डहिय-पर-चक्कवंसु। विपरीय-बोह-माया-विहंसु।
अतुलिय-बल खल-कुल-पलयकालु। पहु-पट्टालंकिय विउल भालु ॥
सत्तंग-वज्ज-धुर दिण्णु खंधु। संमाण-दाण-पोसिय सबंधु।
णिय-परियण-मण-मीमसण-दच्छु। परिवसिय-पयासिय-केर कच्छु।
करवाल-पट्टि-विप्फुरिय जीहु। रिउ दंड चंड सुंडाल सीहु।
अइ-विसम-साह-सुद्दामधामु। चउ-सायरंत-पायडिय-णामु ॥
णाणा-लक्खण-लक्खिय सरीरु। सोमुज्जव(ल) सामुद्दय गहीरु।
दुप्पिच्छ-मिच्छ-रण-रंग-मल्ल। **हम्मीर**[1]-वीर-मण-णट्ठ-सल्ल ॥
चउहाण-वंस-तामरस-भाणु। मुणियइँ न जासु भुय-बल-पमाणु।
चुलसीदि-खंड-विण्णाण-कोसु। छत्तीसाउह(प)यउण समोसु ॥
साहण-समुद्दु बहुरिद्धि रिद्धु। अरि-राय-विसह संकरु-पसिद्धु।
घत्ता। खत्तिय सासणु परबल तासणु, ताण-मडल उव्वासणु।
जस पसर पयासणु णव जल-हरसणु, दुण्णय वित्ति पवासणु॥

---

[1] रणथम्भोरवाले

(२) राजा (आह्वमल्ल)की प्रशंसा

तहँ नरपति आह्वमल्ल एव। दारिद्रय-समुद्रोत्तरण-सेसुतु।
घत्ता। उद्वाँसित परमंडल देशित मंडल, काशकुसुम-संकाश-यशू।
छलबल-सामर्थ्यें नीतिनयार्थें, कवन राव उपमियै तसू॥

निज-कल-कैरव-सित-पतंग। गुण-रतनाभरण-विभूषितांग।
अपराध वलाहक प्रलय-पवन। मथ[1]-मार्गंगण प्रतिदत्त तपन॥
दुर्व्यसन शोष-नाशन-प्रवीण। किउ अ-खलित स्वयश-मयंक सैन्य।
पंचांग मंत्र-विचरन प्रवीण। . . . .
मानिनि मन-मोहन मकरकेतु। निरुपम अविरल गुण-मणि-निकेत।
रिपु-राज-उरस्थलें दीन हीर। विधिमोन्नत समरें भिडंत वीर॥
खड्गाग्नि-दग्ध-पर-चक्रवंश। विपरीत बोध-माया विध्वंस।
अतुलित-बल खलकुल-प्रलयकाल। प्रभु पट्टालंकृत विपुल भाल॥
सप्तांग-राज्य-धुर दीनु कंध। सम्मान-दान-पोषित स्वबंधु।
निज-परिजन-मन-मीमांस-दक्ष। परिवसिय-प्रकाशिय-केर कक्ष॥
करवाल पट्ट विस्फुरति जीह। रिपुदंड-चंड-शुंडाल-सींह।
अतिविषम साहसोद्दाम-धाम। चतुसागरांत प्राकटित नाम॥
नाना लक्षण-लक्षित शरीर। सोमोज्ज्वल सामुद्र'व गभीर।
दुष्प्रेक्ष्य म्लेच्छ रणरंग-मल्ल। हम्मीर-वीर मन-नष्ट-शल्य॥
चौहान-वंश-तामरस-भानु। बुझियै न जासु भुजबल-प्रमाण।
चौसट्ठि खंड विज्ञानकोश। छत्तीसायुध प्रकटन समोष[2]॥
साधन-समुद्र वहु-ऋद्धि-ऋद्ध। अरिराज-विषहृ संफर[3] प्रसिद्ध।
घत्ता। क्षत्रिय-शासन परबल-त्राशन त्राण मँडल-उद्वासनऊ।
यश-प्रसर-प्रकाशन नव जलधर सन, दुर्नयवृत्ति प्रवासन॥

---

[1] मन्मथ [2] समूह [3] जहरमोहरा

(३) रानी (ईसरदे)की प्रशंसा

तहों पट्ट महाएवी पसिद्ध। ईसरदे पणयणि पणय-विद्ध।
णिहिलंतेउर मज्झएँ पहाण। णिय पइ मण-पेसण सावहाण।
सज्जण-मण-कप्प महीय साह। कंकण केऊरंकिय सुबाह।
छण-ससि-परिसर संपुण्ण-वयण। मुक्कमल कमलदल सरल गयण॥
आसा सिंधुर गइ गमण लील। बंदियण-मणासा दाण-सील।
परिवार भार धुरधरण सत्त। मोयइ अंतर-दल ललिय गत्त॥
छद्दंसण चित्तासा बिसाम। चउ सायरंत विक्खायणाम।
अहमल्ल-राय-पय भत्तिजुत्त। अवगमिय णिहिल विण्णाणसुत्त॥
णियणंदणाहँ चिंतामणीव। णिय धवलग्गिह सरहंसिणीव।
परियाणिय-करण-विलासकज्ज। रूवेण जित्त-सुत्ताम-भज्ज॥
गंगा-तरंग कल्लोल माल। समकित्ति भरिय ककुहंतराल।
कलयंठि-कंठ कलमहुर-वाणि। गुणगरुअ रयण उप्पत्ति खाणि।
अरिराय विसह संकरहो सिट्ठु। सोहग्ग-लग्ग गोरिव्व दिट्ठु॥

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

अहमल्ल[1]-राय-महमंति सुद्धु। जिण-सासण-परिणइ गुणपवद्धु।
कण्हडु-कुल कइरव सेयभाणु। पहुणा समज्ज सव्वहँ पहाणु॥
गंजोल्लिय मणु लक्खणु वहूउ। सीयरिउ कव्व करणाण रूउ।
णियघरें पत्तउ वणगन्ध हत्थि। मयमत्तु फुरिय मुहरुह गभत्थि॥
वसि हुयउ स-सर दसदिसि भरंतु। मणि कोण पडिच्छइ तहों तुरंत।
सुयस्सण राउ घरइँ तवेइ। भणु कवणु दुवार कवाड देइ॥
अवमिय वयणलिणा चातुरंग। धण-कण-कंचण-संपुण्ण चंग।
घर समुह एंत पेच्छिवि सवारु। भणु कवणु वप्प झंपइ दुवारु॥

---

[1] आहवमल्ल राजा

(३) रानी (ईश्वरदेवी)की प्रशंसा

तह पट्ट महादेवी प्रसिद्ध । ईश्वरदे प्रणयिनि प्रणय-विद्ध ।
निखिल'न्तःपुर-मध्ये प्रधान । निज पति-मन-प्रेषण सावधान ॥
सज्जन-मन कल्प-महीपशाख । कंकण-केयूरं'कित सुबाहु ।
छण-शशि-परिसर-संपूर्ण-वदन । मुक्त'मल कमलदल सरल-नयन ॥
आशासिंधुर गज-गमनलील । वंदिजन-मनाशा-दानशील ।
परिवार-भार-धुर-धरन शक्त । मोचै अंतरदल ललित-गात्र ॥
छै-दर्शन चित्ताशा-विश्राम । चतुसागरांत-विख्यात-नाम ।
अहमल्ल-राय-पद-भक्तियुक्त । अवगमित[१]-निखिल-विज्ञान-सूत्र ॥
निजनंदनो(इ) चिंतामणी'व । निज-धवलगेह-सरहंसिनी'व ।
परि-जानिय करन विलासकाज । रूपेहिं जीत सूत्राम[२]-भार्य ॥
गंगा-तरंग-कल्लोलमाल । समकीत्ति भरिय ककुभान्तराल ।
कलकंठि-कंठ कलमधुर-वाणि । गुणगरुव रतन-उत्पत्ति-खानि ॥
अरिराज विषहु शंकरहों शिष्ट । सौभाग्यलग्न गौरी'व दृष्ट ॥

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

अहमल्लराय महामंत्रि शुद्ध । जिन-शासन-परिणय-गुण-प्रबद्ध ।
कान्हड-कुल-कैरव-श्वेतभानु । प्रभुहूँ समाज सव्र्वहूँ प्रधान ॥
गंजोल्लिय मन लक्षण बहूव । स्वीकारिउ काव्य-करणानुरूप ।
निज-घरें आयउ वन गंध-हस्ति । मदमत्त फुरिय मुखरुह-गभस्ति ॥
वश हुयउ स्व स्वर दशदिशि-भरंत । मन कोन प्रतीच्छै तह तुरंत ।
सुप्रसन्न राव घरई तवेइ । भनु कौन दुवार-किवाड़ देइ ।
जानीय वचन लिन चातुरंग । धन-कन-कंचन-संपूर्ण चंग ॥
घर समुँह आइ पेखेवि सवार । भनु कौन बप्प झंपइ दुवार ।

---

[१] ज्ञात [२] इन्द्र

चिंतामणि-ह्राडय-निवड-जडिउ । पज्जहइ कवणु सइँ हत्थ चडिउ ।
घर रंगुप्पण्णउ कप्प-रुक्खु । जलें कवणु न सिंचइ जणिय सुक्खु ॥

सयमेव पत्त घरु कामधेणु । पज्जहइ कवणु कय-सोक्खसेणु ।
चारण-मुणि-तेऍं जित्त भवइ । गयणाउ पत्त किर कोण णवइ ॥

पेऊस पिंड केँर पत्तु भव्वु । को मुयइ निवे(इय) जीवियव्वु ।
अहमल्ल-राय-कर-विहिय-तिलउ । महयणहँ महिउ गुणगरुअ-णिलउ ।

सो साहु पइट्ठवु जणिय-सेउ । सिवदेउ साहुकुल-वंस-केउ ॥

घत्ता । जो कण्हडु पुव्वुत्तउ, पुण्णपउत्त, महिमंडलि विक्खायउ ।
आहवमल्ल-णरिंदहु, मण-स्साणंदहु मंतत्तण पइभायउ ॥

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

पिया तस्स सल्लक्खणा लक्खणड्ढा । गुरूणं पए भक्ति काउं वियड्ढा ।
स भत्तार-पायारविंदाणुगामी । घरारंभ-वावार-संपुण्ण-कामी ॥

सुहायार चारित्त-चीरंक-जुत्ता । सुचेयाण गंधोदएणं पवित्ता ।
स पासाय-कासार-सारा-मराली । किवा-दाण संतोसिया वंदिणाली ॥

पसण्णा सुवाया अचंचेल-चित्ता । रमाराम-रम्मा मए वालणित्ता(?) ।
खलाणं मुहंभोय-संपुण्ण जुण्हा । पुरग्गो महासाहु सोढस्स सुण्हा ॥

दया-वल्लरी मेह-मुक्कंबुधारा । सइत्तत्तणे सुद्ध-सीयप्पयारा ।
जहा चंदचूडा[1]'नुगामी भवाणी । जहा सव्व वेइहिँ सव्वंग वाणी ॥

जहा गोत्त णिद्दारिणो रंभ रामा । रमा दाणवारिस्स संपुण्ण-कामा ।
जहा रोहिणी ओसहीसस्स सण्णा । महड्ढी सपुण्णस्स सारस्स रण्णा ॥

जहा सूरिणो मुत्तिवेई मणीसा । किसाणस्स साहा जहा रुवमीसा ।

---

[1] शंकर

चिंतामणि हाटक निवह जड़िउ । प्रज्जहै[1] कौन सँग हस्त चढ़िउ ॥
घर रंग् उत्पन्नउ कल्पवृक्ष । जल कौन न सींचै जनित सुक्ख ।
स्वयमेव प्राप्त घर कामधेनु । प्रज्जहै कौन कृत-सौख्य-सेन ॥
चारण मुनि-तेजे जें स हवै । गगनाहु आउ फुर को न नवै ।
पीयूष-पिंड करें पाइ भव्य । को मुंचै निवेदिय जीवितव्य ॥
अहमल्ल राय-कर-विहित-तिलक । महाँजनरु महित गुण-गरुव-निलय ।
सो साहु पईठउ जनित-सेतु । **शिवदेव** साहु कुल-वंश-केतु ॥ (१४ ख)

घत्ता । जो कान्हड पूर्वो-'क्तउ' पुण्य-प्रयुक्तउ महिमंडल विख्यात यऊ ।
अहमल्ल-नरेन्द्रह, मन-सानंदह, मंत्रित्वन प्रति-भातयऊ ॥ (१५ ख)

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

प्रिया तासु सुल्लक्षणा लक्षणाढ्या । गुरूणां पदे भक्ति-करणे विदग्धा ।
स्वभर्त्तार पादारबिन्दानुगामी । घरारंभ व्यापार संपूर्ण कामी ॥
शुभाचार चारित्र चीरांकयुक्ता । सुचेतन्न गंधोदकेहीं पवित्रा ।
स्वप्रासाद-कासार-सारा मराली । कृपादान-संतोषिया बंदित्ताली ॥
प्रसन्ना सुवाचा अचंचल्ल-चित्ता । रमा राम रम्या मदेवाल-नेत्रा ।
खलों-को मुखाम्भोज संपूर्णज्योत्स्ना । पुराग्रोमहासाहु सोढ़ाकों सुन्हा[2] ।
दया-बल्लरी-मेघ-मुक्तांबुधारा । सतीत्वत्तने शुद्ध-सील-प्रकारा ।
यथा चंद्रचूड़ानुगामी भवानी । यथा सर्व वेदेहिँ सर्वांग वाणी ।
यथा गोत्र निर्दारिण[3]हें रंभा राभा । रमा दानवारी कि संपूर्ण कामा ।
यथा रोहिणी ओषधीशाह संगी । महाढ्या सँपूर्णाहि साराहु रानी ॥
यथा सूरिकी मुक्तिवेदी मनीषा । कृशानार्क स्वाहा यथा रूप मीसा । (१६ ख)

---

[1] छोड़ै [2] स्नुषा=पुत्रवधू [3] इन्द्र

§ ४१: जज्जल[1]

काल—१२९० ई० (हम्मीर[2] १२८२-९९)। देश—उत्तरी राजपूताना।

वीर-रस

(राना हम्मीरकी प्रशंसा[3])

मुंचहि सुंदरि पाअ अप्पहि हसिऊण सुम्मुहि खग्गं मे।
कप्पिअ मेच्छ-सरीरं पेच्छइ वअणाइ तुम्ह धुअ हम्मीरो ॥७१॥ (१२७)

पअभरु दरमरु धरणि तरणि रह धुल्लिअ झंपिअ,
कमठ-पिट्ठ टरपरिअ मेरु-मंदर-सिरकंपिअ।
कोह चलिअ हम्मीर-वीर गअजूह-सँजुत्ते।
किअउ कट्ठ हा कंद! मुच्छि मेच्छहके पुत्ते ॥९२॥ १(५७)

पिंधउ दिढ-सण्णाह वाह-उप्पर पक्खर दइ,
वंधु समदि रण धसउ सामि हम्मीर वअण लइ।
उज्जल णह-पह भमउ खग्ग रिउ-सीसहि डारउ,
पक्खर-पक्खर ठेल्लि-पेल्लि पव्वअ अप्फालउ।
हम्मीरकज्ज जज्जल भणइ, कोहाणल मुह मह जलउ।
सुलताण-सीस करवाल दइ, तेज्जि कलेवर दिअ चलउ ॥१०६।(१८०)

ढोल्ला मारिअ ढिल्लिमह, मुच्छिअ मेच्छ सरीर।
पुर जज्जला मंतिवर, चलिअ वीर हम्मीर ॥
चलिअ वीर हम्मीर, पाअभर मेइणि कंपइ।
दिगमगणह अंधार धूरि सूरिय रह झंपइ ॥
दिगमग णह अंधार आणु खुरसाणक ओल्ला।
दरमरि दमसि विपक्ख भार अ ढिल्लिमह ढोल्ला ॥१४७॥ (२४९)

---

[1] "प्राकृत पैंगल" से। [2] रणथम्भोरके राजा वीर हम्मीर जिन पर अलाउद्दीन ने १२९९में चढ़ाई की। [3] जिन कविताओंमें जज्जलका नाम नहीं है, उनके बारेमें सन्देह है, कि वह इसी कविकी कृतियाँ हैं।

§ ४१: जज्जल

कुल—हम्मीरका मंत्री और सेनापति।

वीर-रस

(राना हम्मीरकी प्रशंसा)

मुंचहि सुंदरि ! पाव अर्पहि हँसियाउ सुमुखि खड्गहँ मे।
काटिय म्लेच्छ शरीरहँ पेंखिहँ वदनहँ तुम्ह ध्रुव हम्मीरो ॥१२७॥
पगभर दरमरु धरणि तरणि रह धूलिय झंपिय,
कमठ-पीठ टरपरिय मेरु-मंदर-शिर कंपिय।
क्रोधि चलिय हम्मीर वीर गज-यूथ-सँयुत्ते,
कियउ कष्ट "हाक्रंद" मूछि म्लेच्छनके पुत्ते ॥९२॥
पेन्हेंउ दृढ सन्नाह बाँह ऊपर पक्खर दइ,
वंधु समभि[1] रण धँसेंउ स्वामि हम्मीर वचन लइ।
उज्वल नभ-पथ भ्रमेंउ खड्ग, रिपु शीशहिं डारेउ,
पक्कड़-पक्कड़ ठेलि-पेलि पर्वत उच्छालेउ।
हम्मीर-कार्य उज्जल भनइ, क्रोधानल-मुख महँ ज्वलउ,
सुल्तानशीश करवाल दइ, त्यागि कलेवर दिवु चलउ ॥१०६॥
ढोला मारिय दिल्लि महँ मूछिय म्लेच्छ शरीर,
पुर[2] जज्जल्ला मंत्रिवर चलिय वीर हम्मीर।
चलिय वीर हम्मीर पाद-भर मेदनि कंपै,
दिग-मग-नभ अंधार धूलि सूरज-रथ झंपै।
दिग-मग-नभ अंधार आनि खुरसान कें ओल्ला[3],
दर मरि दमसि विपक्ष मार दिल्ली महँ ढोल्ला ॥१४७॥

---

[1] मीर मुहम्मदशाह और उनके साथियोंको हम्मीरने शरण दिया था, जिस पर अलाउद्दीनसे विरोध हो गया। [2] आगे [3] स्वामी

सहस मअमत्त गअ लाख लख पक्खरिअ,
साहि दुइ साजि खेलंत गिंदू ।
कोप्पि पिअ ! जाहि तहि थप्पि जसु विमल महि ।
जिणइ णहि कोइ तुअ तुलक[1]-हिंदू ॥१५७॥ (२६२)

घर लग्गइ आगि जलइ धह धह,
कइ दिगमग णह-पह अणल भरे ।
सब दीस पसरि पाइक लुलइ धणि,
थणहर जहण दिआव करे ।
भअ लुक्किअ थक्किअ वइरि तरुणि,
जण भइरव भेरिअ सद्द पले ।
महि लोट्टइ पिट्टइ रिउ-सिर टुट्टइ,
जक्खण वीर हमीर चले ॥१९०॥ (३०४)

खुर खुर खुदि खुदि महि घघर रव कलइ,
ण ण ण णगिदि करि तुरअ चले ।
ट ट टगिदि पलइ टपु धसइ धरणि धपु,
चकमक करि बहु दिसि चमले ।
चलु दमकि दमकि बलु चलइ पइक बलु,
धुलकि धुलकि करि करि चलिआ ।
वर मणु सअल कमल विपख हिअअ सल,
हमिर वीर जब रण चलिआ ॥२०४॥ (३२७)

जहा भूत वेताल णच्चंत गावंत खाए कवंधा,
सिआकार फेक्कार हक्का रवन्ता फुले कण्णरंधा ।
कआ टुट्ट फुट्टेइ मत्था कवंधा णचंता हसंता,
तहा वीर हम्मीर संगाम-मज्झे तुलंता जुझंता ॥१८३॥ (५२०)

---

[1] तुरुक

सहस मदमत्त गज, लाख-लख पक्कडी ,
शाह हय साजि खेलंत गेंदू ।
　　कोपि प्रिय ! जाहि तहँ थापि यश-विमल महि,
　　जितै नहि को तोहि तुरुक-हिंदू ॥१५७॥

घर लागै आग जलै धह-धह ,
करि दिग-मग नभ-पथ अनल-भरे ।
　　सब दीस पसरि पाइक्क[1] चलै ,
　　धनि थन-भर-जघन दियेउ करे ।

भय लुक्किय थाक्किय वैरि तरुणि-
जन भैरव-भेरिय शब्द पड़ै ।
　　महि लोटै-पोटे रिपु-शिर टुट्टै ,
　　जखन वीर हम्मीर चले ॥१९०॥

खुर-खुर खुदि-खुदि महि घघर रव करे ,
न न न नगिदि करि तुरग चले ।
　　ट ट ट गिदि परै टॉप धँसै धरणि वपु
　　चकमक करि बहु दिशि चमरे ।

चलु दमकि दमकि बल चलै पइक[1]-बल ,
घुलुकि घुलुकि करि करि चलिया ।
　　वर मनुष दल कमल विपख[2] हृदय सल ,
　　हमिर वीर जब रण चलिया ॥२०४॥

यथा भूत-वेताल नाचंत गावंत खाएँ कबंधा ,
शिवाकार फेक्कार हक्का रवंता फोड़ैं कर्ण-रंध्रा ।
　　काँया टुट फोड़ेइ मत्था कबंधा नचंता हसंता,
　　तथा वीर हम्मीर संग्राम-मध्ये तुरंता जुझंता ॥१८३॥

---

[1] प्यादा　　[2] विपक्ष

§४२ः अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

काल—तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध। देश—युक्त-प्रान्त या विहार।

१—सामन्त-समाज

युद्ध-वर्णन

अहि ललइ महि चलइ, गिरि खसइ हर खलइ,
ससि घुमइ अमिअ वमइ, मुअल जिवि उट्ठुए।
पुणु धसइ पुणु खसइ, पुणु ललइ पुणु घुमइ,
पुणु वमइ जिविअ विविह, परि समर दिट्ठुए ॥१६०॥ (२६६)
गअ-गअहि ढुक्किअ तरणि लुक्किअ, तुरअ तुरअहि जुज्झिआ।
रह-रहहि मीलिअ धरणि पीलिअ, अप्प-पर णहि बुज्झिआ॥
वल मिलिअ आइअ पत्ति जाइउ, कंप गिरिवर-सीहरा।
उच्छलइ साअर दीण काअर, बइर बढ्ढिअ दीहरा।१६३।(३०९)
कुंजरा चलंतआ पव्वआ पलंतआ।
कुम्म-पिट्ठि कंपए, धूलि सूर झंपए ॥५९॥ (३७८)
उम्मत्ता जोहा [1]ढुक्कंता, विप्पक्खा मज्झे लुक्कन्ता।
णिक्कंता जंता धावंता, णिम्भंती कित्ती पावंता ॥६७॥ (३७८)
ठामा-ठामा हत्थी-जूहा देक्खीआ,
णीला-मेहा मेरू-सिंगा पेक्खीआ।
वीरा हत्था अग्गे खग्गा राजंता,
णीला-मेहा-मज्झे विज्जू णच्चंता ॥११३॥(४२५)
मत्ता जोहा वट्टे कोहा अप्पा-अप्पी गव्वीआ,
रोसा रत्ता सव्वा गत्ता सल्ला भल्ला उट्ठीआ।

---

[1] घुस रहे हैं

§ ४२: अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

कुल—दर्बारी, भक्त । कृतियाँ—स्फुट कवितायें[1] ।

१—सामन्त-समाज

(१) युद्ध-वर्णन

अहि ललै महि चलै गिरि खसै हर स्खलै,
शशि घुमै अमिय वमै मुअल जीइ उट्ठए ।
पुनि धँसै पुनि खसै पुनि ललै पुनि घुमै,
पुनि वमै जीविता विविध परि समर दृष्टए ।।१६०।।
गज-गर्जहिं ढुक्किय तरणि लुक्किय तुरग-तुरंगहि जूझिया,
रथ-रर्थाहि मेलिय धरणि पेलिय, आप पर नहिं बूझिया ।
वल मिलै आइय पत्ति[2] जाइय, कंप गिरिवर शीखरा,
ऊछलै सागर दीन कातर वैरि बाढिय दीघरा ।।१६३।।
कुंजरा चलंतआ पर्वता पडंतआ ।
कूर्म पृष्ठ कंपए, धूलि सूर झंपए ।।५६।।
उन्मत्ता योधा ढुक्कंता, विप्पच्छा मध्ये लुक्कंता ।
निष्क्रांता जांता आवंता निर्भ्रांती कीर्त्ती पावंता ।।५७।।
ठावें ठावें हस्ति यूथा देखीया,
नीला मेघा मेरु-शृंगा पेखीया ।
वीरा - हस्ता - अग्रे खड्गा राजंता,
नीला - मेघा - मध्ये विज्जू नाचंता ।।११३।।
मत्ता योधा बाढ़े क्रोधा आपे-आपा गर्वीया,
रोषा रक्ता सर्वा गात्रा शल्या भल्ला उट्ठीया ।

---

[1] "प्राकृत-पैंगल" में संगृहीत, पृष्ठ कविताओंके अन्तमें—कोष्ठकमें । [2] प्यादा

हत्थी-जूहा सज्जा हूआ पाए भूमी कंपंता,
लेही देही छड्डो ओड्डो सब्बा सूरा जप्पंता ।१५७। (४८३)
झत्ति जोइ सज्ज होइ गज्ज वज्ज तंखणा,
रोस-रत्त सब्ब-गत्त हक्क[1] दिज्ज भीसणा ।
धाइ आइ खग्ग पाइ दाणवा चलंतआ,
वीर-पाअ णाअराअ कंप भूतलंतगा ॥१५९॥ (४८५)
चलंत जोह मत्त-कोह रण्ण-कम्म-अग्गरा,
किवाण-वाण-सल्ल-भल्ल-चाव-चक्क-मुग्गरा ।
पहार वार धीर वीर वग्ग मज्झ पंडिआ,
पअट्ठ ओट्ठ कंत दंत तेण सेण मंडिआ ॥१६९॥ (४९९)
उम्मत्ता जोहा उट्ठे कोहा ओत्था-ओत्थी जुज्झंता,
मेणक्का रंभा णाहं दंभा अप्पा-अप्पी वुज्झंता ।
धावंता सल्ला छिण्णे कंठा मत्था पिट्ठी पेरंता,
णं सग्गा मग्गा जाए अग्गा लुद्धा उद्धा हेरंता ॥१७५॥ (५०७)

२—देव-स्तुति

(१) दशावतार

जिण वेअ धरिज्जे महिअल लिज्जे, पिट्ठिहि दंतहि ठाउ धरा ।
रिउ-वच्छ विआरे छल तणु धारे, बंधिअ सत्तु सुरज्जहरा ।
कुल खत्तिअ कप्पे तप्पे दहमुह कप्पे, कंसअ केसि विणासकरा ।
करुणा पअले मेच्छह विअले सो, देउ णराअण तुम्ह वरा ॥२०७॥ (५७०)

(२) राम-स्तुति

वप्प अ-उक्कि सिरे जिणि लिज्जिउ, तेज्जिअ रज्ज वणंत चलेविणु ।
सोअर सुंदरि संगहि लग्गिअ, मारु विराध कवंध तहा हणु ।

---

[1] आह्वान, ललकार

हस्ती-यूथा सज्जा हुआ पायें भूमी कंपंता,
"लेही देही छाडो ओडो" सर्वा शूरा जल्पंता ॥१५७॥
भट्ट योधाँ सज्ज होइ, गर्जे वज्ज तत्क्षणा ।
रोष-रक्त सर्वगात्र हाँक दीजें भीषणा ।
धाइ आइ खड्ग पाइ दानवा चलंतआ ।
बीरपाद नागराज कंप भूतल'न्तगा ॥१५९॥
चलंत योध मत्त क्रोध रन्न-कर्म आगरा ।
कृपाण-वाण-शल्य-भल्ल-चाप-चक्र-मुग्दरा ॥
प्रहार-वार-धीर-वीर-वर्ग-मांझ-पंडिता ।
प्रदष्ट-ओष्ट-कांत-दंत तेन सेनाँ मंडिता ॥१६९॥
उन्मत्ता योद्धा उट्ठे क्रोधा उट्ठा-उट्ठी जुज्झंता,
मेनका-रम्भा-नाथं दम्भा अप्पा-अप्पी बुज्झंता ।
धावंता शल्या छिन्ना कंठा मत्था पीठी पड्डंता,
जनु स्वर्गा-मार्गा जाये अग्गा-लुब्धा उर्ध्वं हेरंता ॥१७५॥

२—देव-स्तुति

(१) दशावतार

जेहिं वेद धरिज्जै महितल लिज्जै, पीठहिं दंतहिं ठावें धरा ।
रिपु-बक्ष विदारे छल-तनु धारे, बंधिय शत्रु स्वराज्य हरा ॥
कुल-क्षत्रिय तापे दशमुख कप्पे[१], कंशय केशि बिनाश करा ।
करुणा प्रकटे म्लेच्छहँ विदले, सो देउ नरायण तुम्ह वरा ॥२०७॥

(२) राम-स्तुति

वापह उक्ति शिरे जिनि लिज्जिउ । त्यागिय राज्य वनंत चलेविऊ ।
सोदर संदरि संगहि लग्गिय । मार विराध कवंध तथा हन ॥

---

[१] काटा

मारुइ मिल्लिअ वालि विहंडिअ, रज्ज सुगीवह दिज्ज अकंटअ ।
बंधु समुद्द विणासिअ रावण, सो तुअ राहव दिज्जउ णिब्भअ ॥२११॥ (५७६)

(३) कृष्ण

अरे रे वाहहि काण्ह णाव छोडि, डगमग कुगति ण देहि ।
तइ इत्थि णइहि संतार देइ, जो चाहहि सो लेहि ॥६॥
जिणि कंस विणासिअ कित्ति पआसिअ, मुट्ठि-अरिट्ठि विणास करे, गिरि हत्थ धरे ।
जमलज्जुण भंजिअ पअभर गंजिअ, कालिअ-कुल संहार करे, जस भुअण भरे ।
चाणूर विहंडिअ णिअ-कुल मंडिअ, राहा-मुह महु-पाण करे, जिमि भमर वरे ।
सो तुम्ह णराअण विप्प-पराअण, चित्तह चिंतिअ देउ वरा भअ-भीअ-हरा ॥२०७॥
भुवण-अणंदो तिहुअण कंदो । भमरसवण्णो स जअइ कण्हो ॥४६॥
परिणअ ससिहर-वअणं, विमल-कमल-दल-णअणं ।
विहिअ-असुर-कुल-दलणं, पणमह सिरि-महुमहणं ॥१०६॥[1]

(४) शंकर-स्तुति

जा अद्धंगे पव्वई, सीसे गंगा जासु ।
जो लोआणं वल्लहो, वंदे पाअं तासु ॥८२॥ (१४३)
जसु सीसहि गंगा गोरि अधंगा, गिव पहिरिअ फणि-हारा ।
कंठ-ट्ठिअ वीसा पिंधण दीसा, संतारिअ संसारा ।
किरणावलि कंदा वंदिअ चंदा, णअणहि अणल फुरंता ।
सो संपअ दिज्जउ बहु सुह किज्जउ, तुम्ह भवाणी-कंता ॥६८॥ (१६६)
रण दक्ख दक्ख हणु जिण्णु कुसुम-धणु, अंधअगंध विणास करु ।
सो रक्खउ संकरु असुर-भअंकरु, गिरि-णाअरि अद्धंग-धरु ॥१०१॥ (१७२)
जो वंदिअ सिरगंग हणिअ अणंग, अद्धंगहि परिकर धरणु ।
सो जोइ-जण-मित्त हरउ दुरित्त, संकाहरु संकर चरणु ॥१०४॥ (१७६)

---

[1] पृष्ठ १२, ३३४, ३६५, ४२१

मारुति मेॅल्लिय बालि विघट्टिय, राज सुग्रीवहि दिज्ज अकंटक ।
बंध समुद्र विनाशिय रावण, सो तोॅहुँ राघव दिज्जिउ निर्भय ।।२११।।

(३) कृष्ण

अरे रे चालहि कान्ह नाव, छोटि डगमग कुगति न देहि ।
तै एहि नदिहि संतार देइ, जो चाहि सो लेहि ।।६।।
जिन कंस विनाशिय कीर्त्ति प्रकाशिय, मुष्टि अरिष्ट विनाश करे, गिरि हाथ धरे ।
यमलार्जुन भंजिय पदभर गंजिय, कालिय-कुल-संहार करे, यश भुवन भरे ।
चाणूर विखंडिय निज-कुल मंडिय, राधामुख मधु-पान करे, जिमि भ्रमरवरे ।
सो तुम्ह नरायण, विप्र-परायण, चित्ते चिंतित देहु वरे, भय-भीति-हरे ।।२०७।।
भुवन-अनंदा त्रिभुवन कंदा । भ्रमर-सवर्णा स जयतु कृष्णा ।।४६।।
परिणत-शशिधर-वदनं, विमल-कमल-दल-नयनं ।
विहित-असुरकुल-दलनं, प्रणमहु श्री मधुमथनं ।।१०।।

(४) शंकर-स्तुति

जेॅहि अर्धंगे पार्वती, शीशे गंगा जासु ।
जो लोकन कर वल्लभ, वंदे पादहँ तासु ।।८२।।
जसु सीसहि गंगा गौरि अधंगा, ग्रिव पहिरिय फणिहारा,
कंठे ठिय वीषा पहिरन दीशा, संतारिय संसारा ।
किरणावलि कंदा वंदिय चंदा, नयनहि अनल फुरंता,
सो संपति दिज्जउ बहु-सुख किज्जउ, तुम्ह भवानी कंता ।।६८।।
रण-दक्ष दक्ष [1]हनु, जित्तु कुसुमधनु अन्ध क-अंध विनाश करो ।
सो रक्खउ शंकर असुर-भयंकर, गिरि-नागरि-अर्धांग-धरो ।।१०१।।
जो वंदिय शिर गंग हनिय अनंग, अर्धंगहि परिकर धरणू ।
सो योॅगि-जन-मित्र हरहु दुरित्त, शंकाहर शंकर-चरणू ।।१०४।।

---

[1] मारा

जसु कर फणिवइ-वलअ तरुणिवर तणुमहँ विलसइ,
णअण अणल गल गरल विमल ससहर सिर णिवसइ।
सुरसरि सिर महँ रहइ सअल जण-दुरित-दमण कर,
हसि ससिहर हरउ दुरित, वितरहु अतुल अभअवर ॥१११॥ (१६०)
जाआ जा अद्धंग सीस गंगा लोलंती, सव्वासा पूरंति सव्व-दुक्खा तोलंती।
णाआ राआ हार दीस वासा भासंता, वेआला जा संग णट्ठा दुट्ठा णासंता।
णाचंता कंता उच्छवे ताले भूमी कंपले,
जा दिट्ठे मोक्खा पाविज्जे, सो तुम्हाणं सुक्ख दे ॥११६॥ (२०७)
सिर किज्जिअ गंगं गोरि अधंगं, हणिअ अणंगे पुर-दहणं।
किअ फणवइ हारं तिहुअण सारं, वंदिअ छारं रिउ-महणं।
सुर सेविअ चरणं मुणिगण सरणं, भव-भअ-हरणं सूलधरं।
साणंदिअ वअणं सुंदर-णअणं गिरिवर-सअणं णमहु हरं ॥१६५॥ (२१३)
जसु मित्त धणेसा ससुर गिरीसा, तहविहु पिंधण[1] दीस।
जह अमियह कंदा णिअलहि चंदा, तह विह भोअण वीस।
जइ कणअ-सुरंगा गोरि अधंगा, तहविहु डाकिणि संग।
जो जसुहि दिआवा देव सहावा, कवहु ण हो तसु भंग ॥२०६॥ (३३८)
गवरिअ-कंता अभिणउ संता। जइ परसण्णा दिअ महि धण्णा ॥४८॥ (३६५)
पिंग-जटावलि-ठापिअ गंगा, धारिअ णाअरि जेण अधंगा।
चंदकला जसु सीसहि णोक्खा, सो तुह संकर दिज्जउ मोक्खा ॥१०५॥ (४१७)
वालो कुमारो स छमुंडधारी, उप्पाउ-हीणा हउँ एक्क णारी।
अहंणिसं खाहि विसं भिखारी, गई भवित्ती किल का हमारी ॥१२०॥
तुअ देव दुरित्त गणा हरणा चरणा, जइ पावउ चंदकलाभरणा सरणा।
परि पूजउ तेज्जिअ लोभमणा भवणा, सुख दे मह सोक विणास मणा समणा ॥१५५॥
पहु दिज्जिअ वज्जअ सिज्जिअ टोप्पर, कंकण वाहु किरीट सिर।
पइ कण्णहि कुंडल णं रइमंडल, ठाविअ हार फुरंत उरे।

---

[1] परिधान, पहिरन

जसु कर फणिपति वलय, तरुणि-वर तनुमहँ विलसइ,
नयन अनल गल गरल विमल शशधर शिर निवसइ।
सुरसरि शिरमँह रहै सकल-जन-दुरित-दमनकर,
हसि शशिधरः हरहु दुरित, वितरहु अतुल अभय वर ॥१११॥
जाया अर्धांग शीशे गंगा लोलंती, सर्वाशा पूरंति सर्व दुक्खा तोडंती।
नागा-राजा हार दिशा वासा भासंता, वेताला जा संग नष्ट दुष्टा नाशंता।
नाचंता कंता उत्सवे ताले भूमी कंपरे।
जा देखे मोक्षा पाइज्जा, सो तुम्हा कहँ सुक्ख दे ॥११६॥
शिर किज्जिय गंगं गोरि अधंगं, हनिय अनंगं पुर-दहनं।
किय फणिपति हारं त्रिभुवन सारं, वंदिय छारं रिपु-मथनं।
सुर-सेवित-चरणं मुनिगण-सरणं भवभय-हरणं शूलधरं।
सानंदित बदनं सुंदर-नयनं, गिरिवर-शयनं नमहु हरं ॥१६५॥
जसु मित्र धनेशा ससुर गिरीशा, तेहि विध पेन्हन दीश।
जिमि अमृतह कंदा नियरइ चंदा, तेहि विध भोजन वीष ॥
यदि कनक-सुरंगा गौरि अधंगा, तेहि विध डाकिनि संग।
जो यशह दियावा देव स्वभावा, कवहु न हो तसु भंग ॥२०६॥
गौरिय कंता अभिनव शांता यदि परसन्न देँहुँ मोँहि धन्ना ॥४८॥
पिंग-जटावलि थापिय गंगा, धारिय नागरि जिनि अर्धंगा।
चंद्रकला जसु शीशहि नोखा, सो तेहिँ शंकर दिज्जउ मोक्षा ॥१०५॥
वालो कुमारो स छ-मुंड-धारी, उत्पाद-हीना हौँ एक नारी।
अहनिशा खाइ विषं भिखारी, गती हुवैया फुर का हमारी ॥१२०॥
तव देव ! दुरित्त-गणा-हरणा-चरणा, यदि पावउँ चंद्र कला-भरणा-शरणा।
परिपूजउँ त्यागिय लोभमना भवना, सुख दे मोँहि शोक-विनाश मनः शमना ॥१५५॥
प्रभु ! दीजिय वर्ज्जहि सृज्जिय टोप्पर[१] कंकण वाहु किरीट शिरे,
प्रति कर्णहि कुंडल जनु-रवि मंडल, थापिय हार फुरंत उरे।

[१] शिरस्त्राण

पइ अंगुलि मुद्दरि हीरहि सुंदरि, कंचण रज्जु सुमझ्झ तणू ।
तसु तूणउ सुंदर किज्जिअ मंदर, ठावह वाणह सेस धणू ॥२०६॥
जअइ जअइ हर वलहअ विसहर तिलइअ सुंदर चंदं मुणि आणंदं जणकंदं ।
वसह-गमणकर तिसुल-डमरु-धर, णअणहि डाहु अणंगं सिर गंगं गोरि अधंगं ।
जअइ जअइ हरि भुअजुअ धरु गिरि, दहमुह कंस विणासा पिअवासा सुंदर हासा ।
बलि छलि महि हरु असुर विलयकरु, मुणिजणमाणसहंसा पिअ सुहभासा उत्तमवंसा
॥२१५॥[1]

३—कविका संदेश

सन्तोष-और निराशा-वाद

सेर एक्क जइ पावउ घित्ता। मंडा वीस पकावउ णित्ता।
टंकु एक्क जउ सेंधव पाआ। जो हउ रंको सो हउ राआ ॥१३०॥ (२२४)
राआ लुद्ध समाज खल, वहु कलहारिणि सेवक धुत्तउ।
जीवण चाहसि सुक्ख जइ, परिहर घर जइ बहुगुण-जुत्तउ ॥१६६॥ (२७७)
पंडव-वंसहि जम्म धरीजे। संपअ अज्जिअ धम्मक दिज्जै।
सोउ जुहुट्ठिर संकट पावा। देवक लेक्खिल केण मेंटावा ॥१०१॥ (४१२)
सो जण जणमउ सो गुण-मंतउ। जो कर पर-उवआर हसंतउ।
जे पुण पर-उपआर विरुझ्झउ, ताक जणणि किण थक्कउ बंझउ ॥१४६॥ (४७०)

§ ४३: हरिब्रह्म

काल—तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध (चंडेश्वर-मंत्रीका काल)[2]। देश—विहार

१—मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

जहा सरअ-ससि-विंब, जहा हर-हार-हंस ठिअ,
जहा फुल्ल सिअ कमल, जहा सिरि-खंड खंड किअ।

---

[1] पृष्ठ ४३५, ४८०, ५७३, ५८६ [2] चंडेश्वर मिथिला-नेपाल के राजा हरिसिंह (१३१४-२५) के मंत्री थे, जिन्होंने "कृत्यरत्नाकर", "कृत्य-चिन्तामणि", "दानरत्नाकर" आदि ग्रंथ लिखे।

प्रति-अंगुलि मुंदरि हीरहिं सुंदरि, कंचन-रज्ज सुमध्य तनू।
तसु तूणहु सुंदर कीजिय मंदर, थापहु वाणहं शेष धनू ॥२०६॥
जयति जयति हर वलयित-विषधर, तिलकित सुंदर चंद्रं मुनि-ग्रानंदं जनकंदं।
वृषभ-गमनकर त्रिशुल-डमरु-धर, नयनहिं डाहु ग्रनंगं शिर गंगं गौरि ग्रधंमं।
जयति जयति हरि भुजयुग धरु गिरि, दशमुख-कंस-विनासा प्रियवासा सुंदर-हासा।
वलि छलु महि धरु ग्रसुर-विलय करु, मुनि-जन-मानस-हंसा प्रियभाषाउत्तमवंशा
॥२१५॥

३—कविका संदेश

सन्तोष ग्रौर निराशावाद

सेर एक यदि पावउँ घृत्ता, मंडा बीस पकावउँ नित्ता।
टंक एक यदि सेँधा पाया, जो हौँ रंकउ सो हौँ राजा ॥१३०॥
राजा लुब्ध समाज खल, वधु कलहारिनि सेवक धूर्त्तउ।
जीवन चाहसि सुक्ख यदि, परिहर घर यदि बहु-गुण-युक्तउ ॥१६६॥
पंडव-वंशहि जन्म धरीजे, संपति ग्रजिय धर्म कोँ दीजै।
सोउ युधिष्ठिर संकट पावा। देवकेँ लिक्खल कौन मिटावा ॥१०१॥
सो जन जनमेँउ सो गुणवंतउ। जो कर पर-उपकार हसंतउ।
जो पुनि पर-उपकार विरुद्धउ। ताकि जननि किनु थाकेउ[1] बाँझउ ॥१४६॥

§ ४३: हरिब्रह्म

(?)। कुल—ब्रह्मभट्ट (?), राजदर्बारी। कृतियाँ—स्फुट[2]

१—मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

यथा शरद-शशि-बिंब यथा हर-हार-हंस ठिय।
यथा फुल्ल-सित-कमल, यथा श्रीखंड-खंड किय।

[1] रहेउ [2] "प्राकृत-पैंगल" पृष्ठ १८४

जहा गंग-कल्लोल, जहा रोसाणिअ रुप्पइ,
जहा दुद्धवर सुद्ध फेण फेंफाइ तलप्पइ।
पिअपाअ पसाए दिट्ठि पुणि, णिहुअ हसइ जह तरुणि जण।
वरमंति चंडेसर किति्त तुअ, तत्थ पेक्ख हरिबंभ भण ॥१०८॥ (१८४)

§ ४४: अंबदेव सूरि

काल—१३१४। देश—अनहिलवाडा (गुजरात[1])। कुल—वैश्य(?),

१-सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)को प्रशंसा

जिंणि दिणि दिनु दक्खाउ, समरसीहि जिण धम्मवणि।
तसु गुण करउं उदोउ, जिम अंधारइ फटिकमणि ॥
सारणि अमियतणीय, जिणि वहाँवी मरुमंडलिहिं।
किउ कृतजुग अवतारु, कलिजुगि जीवउ बाहुवले ॥
ओसवाल कुलि चंदु, उदयउ एउ समान नहिं।
कलिजुगि कालइ पासि, छेदीयउ सचराचरहिं ॥....
रतन कुक्खि कुलि निम्मलीय भोली पुतुजाया।
सहजउ साहणु समरसीहु बहु पुन्निहि आया ॥
लहु अलगइ सुविचार चतुर सुविवेक सुजाण।
रत्न परीक्षा रंजवइ राय अउ राण ॥
तउ देसल नियकुल पईव ए पुत्र सधन्न।
रूपवंत अउ सीलवंत परिणाविय कन्न ॥
गोसलसुत्ति आवास कियउ अणहिलपुर नयरे।
पुन्न लहइ जिम रयण माहि नर समुद्दह लहरे ॥
—समर-रास (पृ० २७-२९)

[1] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. XIII.

यथा गंग-कल्लोल, यथा रोथाणित[1] रुपै।
यथा दुग्धवर-शुद्ध-फेन फंफाइ तलप्पै।
प्रियपाद प्रसादे दृष्टि पुनि, निभृत हसै जिमि तरुणिजन।
वरमंत्रि **चंडेश्वर** कीर्त्ति तव, तत्र पेखु हरिब्रह्म भन ॥१०८॥

§ ४४: अंबदेव सूरि

जैन साधु। कृति—समर-रास।

१—सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)की प्रशंसा

जिन दिनं दिन दक्षाउ, **समरसिंह** जिनधर्म-वणि।
तसु गुण करउँ उजोग्र, जिमि अंधारै फटिकमणि ॥
सरणी अमियतनीय[2]; जिन बहाइ मरु[3]मंडलहिँ।
किउ कृतयुग अवतार, कलियुग जीतेँउ बाहुबल ॥
ओसवाल कुल-चंद्र, उदयेँउ एउ समान नहिँ।
कलियुग कालइ पाश, छेदीयऊ सचराचरहिँ ॥
रतनकुक्षि कुल निर्मलीय भोली पुंतु जाया।
सहजउ साधन समरसीह बहु पुण्यहिँ आया ॥
लहु अलगइ सुविचार चतुर सुविवेक सुजाना।
रतन-परीक्षा रंजवई राजा अरु राना ॥
तौ देसल निज कुलप्रदीप एँहु पुत्र सधन्या।
रूपवंत अरु शीलवंत परिनाविय कन्या ॥
गोसल-सुत आवास कियउ **अनहिलपुर** नगरे।
पुण्य लहै जिमि रतन माँझ नर समुदह लहरे ॥
—समररास (पृ० २६-२६)

---

[1] रगडा   [2] अमृतकेर   [3] मारवाड़

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ) की प्रशंसा

तहि अच्छइ भूपतिहि भुवण-सतखंड-पसत्थो ।
विश्वकर्म विज्ञानि करिउ धोइउ नियं हत्थो ॥
अमिय सरोवरु सहसलिंगु ईकु धरणिहिं कुंडलु ।
कित्तिथंभु किरि अवरदेसि मागइ आखंडलु ॥
अज्जवि दीसइ जत्थ-धम्मु कलिकालि अगंजिउ ।
आचारिहिं इह नयर-तणइ सचराचरु रंजिउ ॥
पा[1]तसाहि [2]सुरताण भीवु तहिं राजु करेई ।
अलपखानु हींदूअह लोय घणु मानु जु देई ॥
साहु राय देसलह पूतु तसु सेवइ पाय ।
कलाकरी रंजविउ खानु बहु देइ पसाय ॥
मीरि मलिकि मानियइ समरु समरथु पभणीजइ ।
पर-उवयारिय माहि लीह जसु पहिलिय दीजइ ॥

२-(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगलि मुनिवर-संघु सावय जणा । तिलु न थिरइ तिम मिलिय लोय घणा ॥
मादल वंस विणा धुणि बज्जए । गुहिर भेरीय रवि अंबरे गज्जए ॥
नवय पाटणि नवउ रंगु अवतारिऍं । सुखिहिं देवालय संखारी-संचारिऍं ॥
धरि बयसवि करि केवि समाहिया । समरगुण रंजिउ विरलउ रहियउ ॥
जयतु कान्हु दुइ संघपति चालिया । हरिपालो लंढुको महाधर दूढ़ थिया ॥
बाजिय संख असंख नादि काहल दुडदुडिया ।
घोडे चडइ सल्लार सार राउत सींगडिया ।
तउ देवालय जोयि वेगि घाघरि रवु झमकइ ।
सम विसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ॥

---

[1] बादशाह [2] सुलतान

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ) की प्रशंसा

तहँ आछे भूपतिहिँ भुव सतखंड प्रशस्तो।
विश्वकर्म विज्ञान करेँउ धोइय निज हस्ते ॥
अमिय-सरोवर सहसलिंग ऍक धरणिहिँ कुंडल।
कीर्त्ति-खंभ फुर अवर देश माँगइ आखंडल ॥
आजउ दीसै यत्र धर्म कलिकाल अगंजेउ।
आचारेँहि इह नगरकेर सचाचर रंजेँउ।
पादशाह सुरतान **भीवु** तहँ राज करेई।
अलपखान हिंदुअहँ लोग धनमान जोँ देई ॥
साहु राय **देसलह** पुत्र तसु सेवैं पाये।
कलाकरी रंजविउ खान वहु देइ प्रसादे ॥
मीर मलिक मानियै समर समरथ प्र-भनीजै।
पर-उपकारी माँझ लेख जसु पहिली दीजै ॥

२–(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगे मुनिवर संघ श्रावक-जना। तिल न खिड़ै तिमि मिलिय लोग घना ॥
माँदल-वंश-वीणा धुनि बाजई। गहिर भेरीरव अंबरेँ गाजई ॥
नवक पाँटन नवउ रंग अवतारेँऊ। सुखेँहिँ देँवालय शंख-री संचारेँऊ।
घरेँ वइसवि करि कोइ समाहिया। **समर-गुण-रंजित** विरलउ राहिया ॥
जयतु कान्ह दुइ संघपति[1] चालिया। **हरिपालो लंढुको महाधर** दृढ ठिया ॥
बाजिय शंख असंख्य नाद काहल दुडदुडिया।
घोडे चढे **सलार**[2]सार राउत्त सीगडिया ॥
तब देवालय जोइ वेगि घाघर रव झमकै।
सम-विषमा ना गनै कोइ ना वारिउ थाकै[3] ॥

---

[1] जैन गृहस्थोंके संघके प्रधान [2] कमांडर [3] ठहरै, रहै।

सिजवाला धर धडहडइ वाहिणि बहु वेगे।
धरणि धडक्कइ रजु उडए नवि सूझवि मागे ॥
हय हींसइ आरसइ करह वेगि वहइ बइल्ल।
सादकिया थाहरइ अवरु नवि देई बुल्ल ॥
निसि दीवी झलहलहि जेम ऊगिउ तारायणु।
पावल पाउ न पामियए वेगि वहइ सुखासण ॥
आगे वाणिहि संचरए संघपती साहु **देसलु**।
बुद्धिवंतु बहुपुंनिवंतु परिकमिहिँ सुनिश्चलु ॥
पाछे वाणिहि सोमसीहु साहुसहजा पूतो।
सांगणु साहु दूणिगह पूतु सोमजिनि जुत्तो ॥
जोड करी असवार माँहि आपणि समरागरु।
चडिय हींड चहुगमे जोइ जो संघ असुहकरु ॥
सेरीसे पूजियउ पासु कलिकालिहिँ सकलो।
सिरखेजि थाइउ **धवलकए** संघु आविउ सयलो ॥
धंधूकउ अतिक्रमिउ ताम **लोलियाणइ** पहूतो।
नेमि भुवणि उछवु करिउ **पिपलालीय** वत्तो ॥
—वहीं (पृ० ३२-३३)

३—ग्रंथ-रचना-काल

संवच्छरि इक्कहत्तरए थापिउ रिसहजिणिंदो।
चैत्रवदि सातमि पहुतधरे नंदऊ ए नंदउ ए नंदउ जा रवि चंदो ॥
पासउ सूरिहिँ गणहरह नेउअच्छ निवासो।
तसु सीसहिँ, अंबदेव सूरिहिँ रचियउ ए रचियउ ए रचियउ समरारासो ॥
—समररासो[1]

[1] पृष्ठ ३७

सिजवाला धर धड़धड़े वाहिनि वहुवेगे।
धरनि धड़क्कै रज ऊड़े ना सूझै मार्गो ॥
हय हिनसैं आरसैं करभ वेग वहैं बइल्ला।
सा'दकिया थाहरै और ना देई बोल्ला ॥
निशि दीपा झलझलैं जेम ऊगिय तारागण।
पावल पाव न पाइये वेंगि वहै सुखासन ॥
आगे वाणी संचरै संघपति साहु **देसला**।
बुद्धिवंत वहुपुण्यवंत परिक्रमहिँ सुनिश्चला ॥
पाछे वाणिहि **सोमसीह** साँहु सहजा-पूतो।
सांगण साहु **दूनिगह** पूत सोम जिन युक्तो ॥
जोड़करी असवार माँह आपुहिँ समरागर।
चढिय हिंड चहुगमे जोय जो संघ असुखकर ॥
सेरीसे पूजियउ पार्श्व कलिकालहिँ सकलो।
सिरखेजी ठहरेउ **धवलकह** संघ आयेंउ सकलो ॥
धंधूकउ अति क्रमेंउ ताँह लोंलि यानह वहुतो।
नेमिभुवन उत्सव करेंउ **पिपलालिय** प्राप्तो ॥
—वहीं (पृ० ३२-३३)

३–ग्रंथ-रचना-काल

संवत्सर एकहत्तरे थापेंउ ऋषभ जिनेंद्रो।
चैत्रवदी सातमि पहुतघरें नंदउ जो लों रवि चंद्रो ॥
पार्श्वउ सूरिहिँ गणधरह **नेउअच्छ** निवासो।
तसु शिष्येहिँ **अंबदेव** (सूरि) रचियउ समरारासो ॥
—समररास (पृ० ३७)

---

[1] सवार, गाड़ीवान आदि

§ ४५: अज्ञात कवि

काल—१३०० (ई०), देश—गुजरात।

१–कक्का[1]

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कत्थ वच्छ कुवलय-नयण, सालिभद्द सुकुमाल।
भद्दा पभणइ देव तुह्, कह थिउ इत्तिय वार॥
खरउं कुड्डु ता पुत्त कहि, का देसण किय वीरि।
कवण अत्थु वरवाणिइउ, कंचणगोर सरीरि॥
खार समुद्दह आगलउ, माहर कहिउ संसारु।
संजमपवहण हीण तसु, कियइ न लब्भइ पारु॥
गमयमत्त वीरिय पवर, जे जगि पुरिस पहाण।
सालिभद्द भद्दा भणइ, संजमु सोहइ ताण॥
घण कुंकुम चंदण रसिण, तुह तणु वासिउ वच्छ।
वयह परीसह किम सहिसि, मुणि गंगाजल सच्छ॥
नविवउ लिज्जइ तरुण पणि, सालिभद्द सुकुमाल।
मह्नु कुलमंडल कुलतिलय, कुलपईव कुलबाल॥
चरणु लेसिजइ पुत्त तुह्, नंदणनीय पवीण।
रोअंती भद्दा भणइ, मइं किम मेल्हिसि दीण॥
छण मइलंछण समवयण, तुह भज्जा वत्तीस।
ते विलवंती पेमभरि, किम कारिसि कुलईस॥
जणणि भणइ जां वालपणु, तां पुत्तह पडिवंधु।
तारुमइ बुल्लाविअउ, बहु उन्नाडइ कंधु॥

---

[1] बाराखड़ी

§ ४५: अज्ञात कवि

कृति—शालिभद्र-कक्का ।[1]

१—कक्का

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कहाँ वास कुवलय-नयन, शालिभद्र सुकुमार ।
भद्रा प्र-भनै देव तुहु, कहँ रहु एत्तिय बार ॥
खरउ[2] कुडु[3] ता पुत्र कहँ, का देशन किउ वीर ।
कौन अर्थ वर-वाणिइउ, कंचन गौर शरीर ॥
खार समुद्रहँ आगलउ, मा हर कढेँउ संसार ।
संयम-प्रवहण-हीन तसु, किये न लब्भै पार ।
गमय-मत्त वीर्य प्रवर, जे जग पुरुष प्रधान ।
शालिभद्र भद्रा भनै, संयम सोहै तान[4] ॥
घनकुंकुम चंदन रसेँहिँ, तव तन बासेँउ वत्स ।
व्रतहँ परीसह[5] किमि सहिसि, मुनि गंगाजल स्वच्छ ॥
नववय छीजै तरुणपन, शालिभद्र सुकुमार ।
मम कुल-मंडन कुल-तिलक, कुलप्रदीप कुलपाल ॥
चरण लेसि यदि पुत्र तुव, नंदन नीच प्रवीण ।
रोअंती भद्रा भनै, मोँहिँ का छाडेँसि दीन ॥
छण-मृगलांछन सम-वदन, तुव भार्या बत्तीस ।
ते विलपंती प्रेमभर, का कारेसि कुलईश ॥
जननि भनै जो बालपन, सो पुत्रह प्रतिबंधु ।
तारमती बोलावियउ, वहु उन्नाडै[6] कंधु ॥

---

[1] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. Vol. XIII

[2] अच्छा [3] आश्चर्य [4] तिनको [5] उपसर्ग, कष्ट [6] हिलावै

झलकंतउ कंचणघडिउँ, सत्तभूमि पासाउ।
विहवउ कोडाकोडि धण, कहि कोइँ ऊणउ ठाउ॥
नरवइ सेणिउ तुम्ह पहु, सुरगोभद्दु सुताउ।
नित्तु नवएँ आभारणू, कहि को चित्तिविसाउ॥
टलटलेसि धम्मत्थ पुण, धम्मगहिल्ला बाल।
धम्म करेवा महु समउ, तुहु धणु रक्खण बाल॥
ठणकइ पुत्तसु चित्तिमहु, पुत्त विहूणिय नारि।
विहविह मुच्चइ दुहु सहइ, दीणी परघर बारि॥
डरपिसि सुणियइ सीहसरि, निसुणिसि सिव-फिक्कार।
भुक्खिउ तिसिइउ वच्छ, तुह किम हिंडिसि नार॥
ढलइँ चमर-वर पुत्त तुहु, सीस धरिज्जइ छत्तु।
मणि सीहासणि बइठणउँ, किणि कारणि वइचित्तु॥
नवउँ अंतेउरु नवउँ घरु, नवजोवणु नवरंगु।
सालिभद्द, नवकणयतणु, ढलकरि चरण पसंगु॥
तरुअरतलि आवासु मुणि, भिक्खह भोयणु पाणु।
भूमंडलि आसणु सयणु, वच्छ चरणु दुहठाणु॥
थल-डूंगर पाहणसघण, कक्कर कंट तुसार।
पाणह वज्जिय गुरि सहिउ, हिंडिसि केम कुमार॥
दहविह धम्मु करेसि किम, किम सोसिसि निय अंगु।
वच्छ तहं ता दोहिलउँ, होसिइ तुह सीलंगु॥
धम्मु किइउ जिम रिसहजिणि[१], तिम किज्जइ सुअ इत्थु।
पहिलउँ साखिहिँ पसरिउ, अंतिय यासिउ तित्थु॥
नवकप्पूरिहि पूरिया, नन्दण कोमल केस।
केतगि वालइँ वासिया, किम उद्धरिसि असेस॥

---

[१] एक तीर्थंकर

झलकंतउ कंचन गढ़िय, [1]सप्तभूमि प्रासाद ।
विभवउ कोटाकोटि धन, कहँ कोंउ ऊनउ ठाँव ॥
नरपति श्रेणिक तुम्ह प्रभु, सुरगोभद्र सुताउ ।
नित्य नवै आभारणू, कहँ को चित्त-विषाद ॥
टलटलेसि धर्मार्थ पुनि, धर्म-गहिल्ला बाल ।
धर्म करेबा मम समय, तुव धन-रक्षण-काल ॥
ठापै पुत्र सों चित्त मैं, पुत्र विहूनी नारि ।
विभवहिँ मुंचै दुख सहै, दीनी परघर वारि ॥
डरपसि सुनिया सिंहस्वर, नि-सुनिय शिवाँ-फेक्कार ।
भुखिय तृषितउ वत्स तुहुँ, किमि हिंडीयसि नार ॥
ढलैं चमर-वर पुत्र ! तव, सीस धरिज्जै छत्र ।
मणिसिंहासनें बइठनउ, किन कारण वैचित्र ॥
नव अंतःपुर नवघर, नवयौवन नवरंग ।
शालिभद्र नवकनकतनु ढलकर चरण-प्रसंग ॥
तरुवरतल आवास मुनि, भिक्षहँ भोजन-पान ।
भूमंडल आसन-शयन, वत्स ! चरण दुख-थान ॥
थल डूँगर पाहन सघन, कंकड कंट तुषार ।
पनही वर्जिय गोड सन, हिंडसि केम कुमार ॥
दशविध धर्म करेसि किमि, किमि शोषसि निज अंग ।
वत्स ! तहाँतहँ दोहलउ, होंइहै तुव शीलांग ॥
धर्म करेंउ जिमि **ऋषभ** जिन, तिमि कीजै सुत अत्र ।
पहिले सखिहिँ पसारियउ, अंते थायेउ तीर्थ ॥
नवकर्पूरहिँ पूरिया, नन्दन ! कोमल केश ।
केतकि वालैं वासिया, किमि उद्धरिसि अशेष ॥

---

[1] सात महलोंवाला

पट्टंसुग्र तइँ पहरियां, रसियउ दिव्व अहारु।
सुग्र उव्वासिहिं सोसिया, केम करेसि विहारु ॥
फणि-रायह सिरिपुत्त मणि, मुल्लेणय बहुमुल्लु।
सा गिण्हंता पाणहर, संजम-भरु तस तुल्लु ॥
बत्तीसहँ पल्लंकि तउं, सयण करइ नितु जाय।
[1]डूंगरि कासुगि करिसि किम, बलि किज्जउँ तह काय ॥
भमिसि विहारिहि भारिग्रग्रो, नंदण तं सुकुमाल।
वीर जिणंदह चरणु पुणु, मुणि बावन्नउँ फालु ॥
मयलंछण जिमि तारयहँ, सयलहँ किल भत्तारु।
तं बत्तीसह बहुग्ररहं, एक्कु देव ग्राधारु ॥
यइ तउँ संजमु लेसि सुग्र, मेल्हिवि सयलु सिणेहु।
ता गोभद्दु ग्रभागिहउ, हा धिगु छुड्डउ गेहु ॥
रहि रहि नंदण बयणु सुणि, मामा मइँ संतावि।
तुह विणु नितु कुण पूरिसइ, मुक्काहरणहँ वावि ॥
लडकइँ सउँ संजमु लियल, नंदसेणु मुणिराउ।
सो संजमुपव्वइय सुग्र, भोगह कम्मपसाय ॥
वच्छ ति नारी दुक्खिनिहि, जाहँ न कंतु न पुत्तु।
मुहुतइं नंदण जाइयइँ, हिंव ग्राविऊँ निरुत्त ॥
सहसाकारिहिं गहियवउ, सुयइ कंडरिएण।
नंदण तेणय नरइदुह, पामिय भट्ठवएण ॥
थलह मणोरह पूजिसइँ, सज्जण होसिइ सोसु।
नन्दण तुं थाइसि समणु, ऐंउ मह्णु कम्महँ दोसु ॥
समल देह कप्पउ समल, रत्तिदिवस गुरुग्राण।
होइसइं तुव भद्दा भणइ, पर-ग्राइत्त पवाण ॥

---

[1] वृक्ष-वनस्पतिहीन पर्वतको डूंगर कहते हैं।

पट्टांशुक तैं पहिरिया, रसियउ दिव्य-अहार।
सुत. उपवासेंहि शोषिया, केम करेसि विहार ।।
फणिराजह श्रीपुत्र मणि, मूल्येनउ बहुमूल्य।
सो गृहणंते प्राणहर, संयमभर तसु तुल्य ।।
बत्तीसेहँ पल्लंग तैं, शयन करै नित जाय।
डूँगरि कासुग[1] करिसि किम, बलि किज्जउँ तह काय ।।
भ्रमसि विहारें भारिअउ, नंदन सो सुकुमार।
वीरजिनेंद्रहँ चरण पुनि, मुनि बावनऊ फाल[2] ।।
मृगलांछन जिमि तारकहँ, सकलहँ कर भर्त्तार।
तिन बत्तीसहँ बधुअरहँ, एक देव आधार ।।
यदि तैं संयम लेसि सुत, मेलिय[3] सकल सनेह।
ता गोभद्र अभागिहउ, हा धिग छूटेंउ गेह ।।
रहि रहि नंदन वयन सुनि, मा मा मैं संताप।
तुह विन नित को पूरिहैं, मुक्ताभरणहँ बापि ।।
लडकैं सँग संयम लियउ, **नंदसेन** मुनिराव।
सो संयम प्रव्रजिय सुत, भोगहँ कर्म प्रसाद ।।
वत्स तें नारी दुःखिनी, जाहँ न कंत न पुत्त।
मम तैं नंदन जाइइहि, क्यों आवेंऊँ निरुत्त[4] ।।
सहसा कारेंहिं गहियऊ, सुनिय कंडरीकेहिं[5]।
नंदन ! ताते नरक-दुख, पाइय भ्रष्टव्रतेहिं ।।
खलह मनोरथ पूजिहैं, सज्जन होंइहै शोष।
नंदन ! तूँ होयेंउ श्रमण, ऐंहु मम कर्महँ दोष ।।
साँवर देह कल्पउ सँवर, रातदिवस गुरुज्ञान।
होइहै तू भद्रा भनै, पर-आयत्त-पराण ।।

---

[1] कायोत्सर्ग=खड़े बैठे ध्यानावस्थ होना [2] छलाँग
[3] छोड़ [4] निरर्थक [5] कंडरीककी कथा

हसत रोअंता पाहुणउ, ताम हसंता होउ।
सालिभद्द संजमु लियइ, मह्नु बुज्झिअइ पमोहु ॥
—सालिभद्द-कक्का[1]

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१—जीते-जी कीर्त्ति

कित्ती सा सलहिज्जइ जा सुणीइ अप्पणेहिँ कण्णेहिँ।
पच्छा मुअण सुंदरि ! सा कित्ती होउ मा होउ ॥
जस-सहित जे नर हुआ, रवि पहिला उगंति।
जोगा जाते दीहडे, गिरि पत्थरा ढुलंति ॥
कीरति हंदा कोटड़ा, पाड्याही न पडंति ॥
—उपदेशतरंगिणी[2] (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर[3] सूरि

काल—१३१४ ई० (?)। देश—गुजरात। कुल—जैन साधु।

१—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

अह सामल कोमल केशुपास किरि मोरकलाउ।
अद्ध - चंद - समु भालु मयणु-पोसइ भउवाउ ॥

---

[1] पृष्ठ ६२-६७ [2] "उपदेश-तरंगिणी" (रत्न-मन्दिर गणि १४६० ई०) धर्माभ्युदय-प्रेस, बनारस (२४१७ वीर संवत्) [3] कविराज राजशेखर नहीं

हसत रोअंता पाहुनउ, तहाँ हसंता होउ।
शालिभद्र संयम लियै, मम बूझिहै प्रमोह ॥
—शालिभद्र-कक्का (पृ० ६२-६७)

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१—जीते-जी कीर्त्ति

कीर्त्ति सा सलहिज्जै जा सुनीय आपनेहि कानेहिं।
पाछे मुये प'सुंदरि ! सा कीर्त्ती होहु न होहु ॥१२॥
यश-सहित जो नर हुआ रवि पहिला ऊगंत।
युग्गाँ जाते दीहड़े[1] गिरि-पत्थरा ढुलंति ॥१३॥
कीरति हंदा कोटडा पाड़्या ही न पडंति ॥
—उपदेशतरंगिणी (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर सूरि

कृति—नेमिनाथ-फाग[2]।

१—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

श्यामल कोमल केशपाश जनु मोरकलाप।
अर्धचंद्रसम भाल मदनपोसै भउबाहँ ॥

---

[1] दिवस　　[2] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. III

वंकुडिया लीय भुंहंडियहं भरि भुवणु भमाडइ।
लाडी लोयण लह कुडलइ सुरसग्गह पाडइ॥
किरि ससिबिंब कपोल कन्नहिं डोल फुरंता।
नासावंसा गरुड-चंचु दाडिमफल दंता॥
अहर पवाल तिरेह कंठु राजल सर रूडउ।
जाणुवीणु रणरणइं जाणु कोइलटहकडलउ॥
सरल तरल भुय वल्लरिय सिहण पीण घण तुंग।
उदरदेसि लंकाउलिय सोहइ तिवल-तरंगु॥
कोमल विमल नियंब बिंब किरि गंगा-पुलिणा।
करि-करऊरि हरिण जंघ पल्लव करचरणा।
मलपति चालति वेलहीय हंसला हरावइ।
संझारागु अकालिवालु नहकिरणि करावइ॥
सहजिहिं लडहीय रायमएँ सुलखण सुकुमाला।
घणउं घणेरउं गहणगहए नवजुव्वण बाला॥
भंभरभोली नेमि, जिण वीवाह सुणेई।
नेहगहिल्ली गोरडी, हियडाई विहसेई॥
सावण सुकिल छट्ठि दिणि बावीसमउ जिणंदो।
चल्लइ राजल परिणयण कामिणि नयणाणंदो॥
—नेमिनाथ-फाग (पृ० ८३-८४)

२—शृंगार-सजाव

किम किम राजलदेवितणउ[1] सिणगारु भणेवउ।
चंपइगोरी अइधोई अंगि चंदनु लेवउ॥
खुंपु भराविउ जाइ कुसुमि कसतूरी सारी।
सीमंतइ सिंदूररेह मोतीसरि सारी॥

---

[1] रानी

वांकडिया लिय भोंहडियहँ भर भुवन भ्रमाडइ ।
लारी लोचन लह कुडले[1] सुरवर्गहँ पाडै ॥
जनु शशिबिंब कपोल कर्ण हिंडोल फुरंता ।
नासावंशा गरुड-चंचु, दाडिमफल दंता ॥
अधर प्रवालहँ रेख, कंठ राजल सर रुडऊ[2] ।
जनु-वीणा रणरणै, जान कोंइलटहकलऊ[3] ॥
सरल तरल भुजवल्लरीय, थन-पीन-तुंग ।
उदर-देशें लंका सोहै त्रिबली तरंग ॥
कोमल विमल नितंब बिंब जनु गंगापुलिना ।
करि-कर उरुयुग हरिन-जंघ पल्लव कर-चरणा ॥
मलपतिं चालति बेलीइव हंसला हरावै ।
संध्याराग अकाल बाल नखकिरण करावै ॥
सहजैं सुंदर-राजमति, सुलखन सुकुमारा ।
घनउँ घनेरउ गहगहे, नवयौवन बाला ॥
भंवलभोली[5] नेमि जिन बीवाह सुनेइ ।
नेह गहिल्ली गोरडी हियरेई विहसेइ ॥
श्रावण शुक्ला छट्ठ दिन, बीई सवउँ जिनेन्द्र ।
चल्लै **राजल** परिणयन, कामिनि नयनानंद ॥
—नेमिनाथफाग (पृ० ८३-८४)

२—शृंगार-सजाव

किमि किमि राजलदेवि केर शृंगार भनेबउ ।
चंपकगोरी अतीधौत अँग चँदन लेंपेबउ ॥
खोंप भरावेउ जाति-कुसुम कस्तूरी सारी ।
सीमंतैं सिंदुर-रेख मोतीसर सारी ॥

---

[1] कटाक्ष	[2] सुन्दर	[3] टहकना	[4] मस्त	[5] भोली-भाली

नवरंगी कुंकुमि तिलय किय रयणतिलउ तसु भाले।
मोती कुण्डल कन्नि थिय बिंबालिय कर जाले॥
नरतिय कज्जलरेह नयणि मुंहकमलि तंबोलो।
नागोदर कंठलउ कंठि अनुहार विरोलो॥
मरगद [1]जादर कंचुयउ फुड फुल्लह माला।
करें कंकण मणि-वलय चूड खलकावइ बाला॥
रुणुझुणु रुणुझुणु रुणुझुणएँ कडि घाघरियाली।
रिमझिमि रिमझिमि रिमझिमएँ पयनेउर जुयली॥
नहि आलत्तउ वलवलउ सेअंसुय किमिसि।
अंखडियाली रायमइ प्रिउ जोअइ मनरसि॥
—वहीं (पृ० ८३-८४)

---

[1] 'चादर' शब्दका पूर्व रूप

नवरंग कुंकुम तिलक किय रतन तिलक तसु भाले ।
मोती कुंडल कर्णे ठिय बिबालिय कर जाले ॥
नरतिय कज्जल-रेख नयनें मुखकमल तँबूलो ।
नागोदर कंठलउ कंठ अनुहार विरोलो ॥
मरगत--जादर[1] कंचुकहुउ फुर फूलहँ माला ।
करहीं कंकण-मणिवलय चूड खड़कावै बाला ॥
रुनझुन-रुनझुन-रुनझुनै कटि घाघरियाली ।
रिमझिम-रिमझिम-रिमझिमै पद नूपुर युगली ॥
नखें अलक्तक बलबलउ श्वेतांशु-विमिश्रित ।
अंखड़ियाली राजमति प्रिय जोवै मन रसि[2] ॥
—वहीं (पृ० ८३-८४)

---

[1] दोनों जरीके कीमती वस्त्र [2] रस रखकर

हिन्दी काव्य-धारा

परिशिष्ट

— १ —

ग्रंथ, जिनसे सहायता ली गई

— २ —

कवियोंका कालक्रम, उनकी रचनाएँ

— ३ —

देहाती और तद्भव शब्द

— ४ —

सम-सामयिक राजवंश

नागार्जुन

परिशिष्ट १

निम्नलिखित ग्रंथों, संग्रहों और साहित्य-पत्रों (Journals)से सामग्री एकत्र की गई—

१. पुरातत्त्व निबंधावली—राहुल सांकृत्यायन। इंडियन प्रेस (प्रयाग)से प्रकाशित।

२. सिद्धोंके दोहे—The Journal of Department of Letters, Calcutta University के Vol. XXVIII में।

३. चर्यापद—J. D. L., Cal. के Vol. XXX में।

४. स्वयंभू रामायण (हस्तलिखित)—भांडारकर इन्स्टीटच्यूट, पूनामें सुरक्षित।

५. गोरखबानी—हिंदी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग)से प्रकाशित; १९९९ वि०सं०।

६. सावयधम्म दोहा।

७. महापुराण—पुष्पदंत; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचंद्र दिगम्बर-जैन-ग्रंथ-मालामें सम्पादित, तीन जिल्द (१९३७, १९४०, १९४१ ई०)।

८. जसहरचरिउ—पुष्पदंत; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथमाला (करंजा, बरार)में सम्पादित (१९३१ ई०)।

९. नायकुमारचरिउ—पुष्पदंत; प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा देवेंद्र-जैन-ग्रंथमाला (करंजा, बरार)में सम्पादित। (१९३३)।

१०. परमात्मप्रकाश दोहा और योगसार दोहा—योगींदु; ए० एन्० उपाध्ये द्वारा श्रीरायचंद-जैन-शास्त्रमाला (बंबई)की १०वीं ग्रंथसंख्या (१९३० ई०)।

११. पाहुड़दोहा—रामसिंह; करंजा-जैन-ग्रंथमालामें प्रकाशित।

१२. भविसयत्तकहा—धनपाल; गायकबाड़ ओरियंटल सिरीज़, बड़ोदा द्वारा प्रकाशित (१९२३ ई०)।

१३. प्रबंधचिंतामणि—मेरुतुंगाचार्य; मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित और विश्वभारती, शांतिनिकेतनसे प्रकाशित।

१४. संदेशरासक—अब्दुर्रहमान; 'भारतीय विद्या'में मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित (मार्च १९४२ ई०)।

१५. प्राकृतपैंगल—चंद्रमोहन घोष द्वारा Bibliothica Indica में सम्पादित (१९०२ ई०)।

१६. करकंडचरिउ—कनकामरमुनि; प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथमालामें सम्पादित (१६३४ ई०)।

१७. प्राचीनगुर्जरकाव्यसंग्रह—गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज़, बड़ोदासे प्रकाशित (१६२७)।

१८. अपभ्रंशकाव्यत्रय—गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज़, बड़ोदासे प्रकाशित (१६२७ ई०)।

१६. प्राकृतव्याकरण—हेमचंद्र सूरि; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा सम्पादित और मोतीलाल लाधाजी (पूना) द्वारा प्रकाशित (१६२८ ई०)।

२०. छंदोऽनुशासन—हेमचंद्र सूरि; देवकरण-मूलचंद (बंबई) द्वारा प्रकाशित (१६१२ ई०)।

२१. नेमिनाथचरित—हरिभद्र सूरि; डाक्टर हर्मन् याकोबी द्वारा सम्पादित।

२२. उपदेशतरंगिणी—रत्नमंदिरगणि; धर्माभ्युदय प्रेस, बनारससे प्रकाशित।

२३. कुमारपालप्रतिबोध—सोमप्रभ सूरि; गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज़, बड़ोदासे प्रकाशित (१६२० ई०)।

२४. पृथ्वीराजरासो

२५. अनुव्रतरत्नप्रदीप—लक्खण; (अप्रकाशित) भारतीय विद्याभवन, बंबईमें सुरक्षित।

परिशिष्ट २

कवि और उनकी कृतियाँ; उनके समसामयिक राजा आदि

आठवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
सरहपा—७६० ई०	उपदेशगीति दोहाकोष
	तत्त्वोपदेशशिखर ,,
	भावनाफल दृष्टिचर्या ,,
	वसंत तिलक दोहाकोष
	महामुद्रोपदेश ,,

कवि	कृतियाँ
	सरहपादगीतिका
शवरपा—८८० ई० धर्मपाल (७७०-८०६)	चित्तगुह्यगंभीरार्थगीति
	महामुद्रावज्रगीति
	शून्यतादृष्टि
	षडंगयोग
	सहजसंवरस्वाधिष्ठान
	सहजोपदेश स्वाधिष्ठान
स्वयंभूदेव—७९० ई० ध्रुव धारावर्ष (७८०-९४)	हरिवंशपुराण
	रामायण (पउरचरिउ)
	स्वयंभूछंद
भूसुकपा—८०० ई० धर्मपाल-देवपाल (शांतिदेव) (७८०-८०६-४९)	सहजगीति

नवीं शताब्दी

लुईपा—८३० ई० धर्मपाल-देवपाल	अभिसमय-विभंग
	तत्त्वस्वभावदोहाकोष
	बुद्धोदयभगवदभिसमय-गीतिका
विरूपा—८३० ई० देवपाल (८०६-४९)	अमृतसिद्धि-दोहाकोष
	कर्मचंडालिका- ,,
	विरूप-गीतिका
	विरूप वज्र-गीतिका
	विरूपपदचतुरशीति
	मार्गफलान्वितावादक
	सुनिष्प्रपंचतत्त्वोपदेश
डोम्बिपा—८४० ई० देवपाल	अक्षरद्विकोपदेश

कवि	कृतियाँ
	गीतिका
	नाडीविंदुद्वारे योगचर्या
दारिकपा—८४० ई० देवपाल	महागुह्यतत्त्वोपदेश
	तथतादृष्टि
	सप्तम सिद्धान्त
गुंडरीपा—८४० ई० देवपाल	गीति
कुक्कुरीपा—८४० ई० देवपाल	योगभावनोपदेश
	स्रवपरिच्छेदन
कमरिपा—८४० ई० देवपाल	असम्बंधदृष्टि
	असम्बंधसर्गदृष्टि
	गीतिका
कण्हपा—८४० ई० देवपाल	गीतिक
	महाढुंढन
	वसंततिलक
	असम्बंधदृष्टि
	वज्रगीति
	दोहाकोष
गोरखनाथ—८४५ ई० देवपाल	गोरखबानी
	वायुतत्त्वोपदेश
टेंडणपा—८४५ ई० देवपाल-विग्रहपाल (८०६-४९-५४)	चतुर्योगभावना
महीपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल (८५०-५४-९०८)	वायुतत्त्व
	दोहागीतिका
भादेपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल	चर्यापद
	(गीति)
धामपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल	कालिभावनामार्ग
	सुगतदृष्टिगीतिका
	हुंकारचित्तविंदुभावनाक्रम

दसवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
देवसेन—९९३ ई०	सावयधम्मदोहा
तिलोपा—९६० ई० राज्यपाल-गोपाल द्वि० विग्रह-पाल द्वि० (९०८-४०-६०-८०)	निवृत्तिभावनाक्रम
	करुणाभावनाधिष्ठान
	दोहाकोष
	महामुद्रोपदेश
पुष्पदंत—९५९-७२ ई० राठौड़ कृष्ण-खोट्टिग ती०-(९३९-६८-७२)	महापुराण
	(आदिपुराण
	उत्तरपुराण)
	यशोधरचरित
	नागकुमारचरित
शांतिपा—१००० ई० विग्रहपाल-महीपाल (९६०-८८-१०३८)	सुखदुःखद्वयपरित्यागदृष्टि
योगींदु—१००० ई०	परमात्मप्रकाशदोहा
	योगसारदोहा
रामसिंह—१००० ई०	पाहुडदोहा
धनपाल—१००० ई०	भविसयत्तकहा

ग्यारहवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
अज्ञातकवि—१००० ई० भोज (१००९-४२)	फुटकर रचनाएँ
अब्दुर्रहमान—१०१० ई०	संनेहरासय (संदेशरासक)
बब्बर—१०५० ई० कर्ण कलचूरी (१०४०-७०)	फुटकर रचनाएँ
कनकामर—१०६० ई०	करकंडचरिउ
जिनदत्तसूरि (१०७५-११५४)	चाचरि
	उपदेशरसायन
	कालस्वरूपकुलक

बारहवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
हेमचंद्र सूरि—११७६ ई० कर्ण, जयसिंह, कुमारपाल आदि सोलंकी राजाओंके समकालीन	प्राकृतव्याकरण छंदोऽनुशासन देशीनाममाला
हरिभद्र सूरि—११५६ ई० जयसिंह-कुमारपाल (१०६३-११४२-७३)	णेमिणाहचरिउ
अज्ञात कवि—वीसलदेव (११५३-६४)	फुटकर (उपदेशतरंगिणीसे)
आम भट्ट—जयसिंह-कुमारपाल	,, ,,
विद्याधर—११८० ई० जयचंद (११७०-६४)	स्फुट कविताएँ
शालिभद्र सूरि—११८४ ई०	बाहुबलिरास
सोमप्रभ—११६५ ई०	कुमारपालप्रतिबोध
जिनपद्म सूरि—१२०० ई०	थूलिभद्द फाग
विनयचंद्र सूरि—१२०० ई०	नेमिनाथ चतुष्पादिका
चंदवरदाई—१२०० ई०	पृथिवीराज रासो

तेरहवीं शताब्दी

लक्खण—१२५७ ई०	अणुवयरयण पईव (अनुव्रतरत्नप्रदीप)
जज्जल—१२६० ई० हम्मीर (१२६२-६६)	फुटकर (प्राकृतपैंगलसे)
कुछ और अज्ञात कवि...तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध..	फुटकर रचनाएँ
हरिब्रह्म...तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध... मिथिला-नेपालके राजा हरिसिंहके मंत्री चंडेश्वरके आश्रित	फुटकर कविताएँ
अंबदेव सूरि—१३१४ ई०	समररास
अज्ञात कवि—१३०० ई०	शालिभद्रकक्का (बारहखड़ी)
,, ...	फुटकर(उपदेशामृततरंगिणीसे)
राजशेखर सूरि—१३१४(?) ई०.....	नेमिनाथ फाग

परिशिष्ट ३

कुछ खास देहाती और तद्भव शब्द

शब्द	पृष्ठ
रंडी	४
चेल्लु (चेला)	,,
दीवे (दीवा)	,,
अच्छहु (अच्छा)	६
धंधा	,,
अवर (और)	,,
जइ भिँड़ि (जब तक—मैथिली, मगही और भोजपुरीमें 'भिड़ि'का प्रयोग होता है)	,,
अइस (ऐसा)	,,
चंगे (अच्छे, पंजाबीमें यह शब्द अभी भी जीवित है)	८
बणारसि (बनारस)	,,
आल-माल (क्रय-विक्रय, सौदा या सामान सूचक 'माल' शब्दका सगा जैसा ही यहाँका भी 'माल' मालूम पड़ता है)	,,
घरणी (गृहिणी)	१२
लुक्को (छिपा)	,,
बे (दो, गुजराती)	१४
थक्कु (रहै, थाक्—बंगला)	,,
अणठीय (अपरिचित, अन्यस्थित—अन्यत्र स्थितिवाला अनठिया—मैथिली)	१६
नियड़ि (निकट, नियर—भोजपुरी, काशिका, अवधी और ब्रजभाषा आदिमें)	१८
खांटि (अच्छा, खाँटि-बंगला)	,,
टानऊ (खींचो, ऊपरकी ओर करो; टान—बं०)	,,
थाकिब (रहूँगा, बं०)	,,
अच्छंत (रहते, अछैत—मै०)	,,
बलँद (बैल, बड़द—मै०)	,,
पागल	२०
मोँउलिल (मुरझाया, मौलायल, मौलल—मै० मग० भो०	,,
एकली (अकेली)	,,
खाट, सेज } मै० मग० भो० अव० का०	,,
जेम (जैसा, गु०)	२६
ढुक्कु (घुसा, ब्रज और बुंदेलीमें—देखा)	३०
थिउ (रहा)	३२
तलाय (तालाब)	३६
बट्टइ (है, बाटे-बाड़े, बाय—भोजपुरी काशिका)	,,
जेहा (जैसा)	,,
छुड (यदि ?)	४२

शब्द	पृष्ठ
जूड़ा; बं० अस० उड़ि० मै० मग० भो० अव० ब्रज० आदि प्राय: सभी उत्तर भारतीय भाषाओंमें खोंपा या खोप सुप्रयुक्त है)	४२४,४८०
संथ (सेंथ, सींथ, सीमंत)	
खरी (खरी, खरा)	४३०
गमारि (गँवारिन)	
सुहाली (बिना चुपड़ा फुलका, पतली-रूखी रोटी; अवधी, भोजपुरी और तिरहुतिया बोलियोंमें सुप्रयुक्त 'सोहारी' शब्द इसी सुहालीका उत्तराधिकारी है)	४३२
गिंदू (गेंद, कंदुक)	४५४
काअर (कायर, कातर)	४५६
तुलक (तुरक, तुरुक)	४५४
हिंदू (यहाँ तेरहवीं सदीके अंतिम चरणमें मौजूद कवि जज्जलकी और चौदहवीं सदीके प्रथम चरणमें मौजूद जैन मुनि अंबदेव सूरिकी कविताओंमें 'हिंदू' आया है। एकने रणथंभोरवाले हम्मीरदेवकी प्रशंसामें और दूसरेने अलाउद्दीनकी प्रशंसामें कविताएँ लिखी हैं। पहले-पहल 'हिंदू' शब्दका इस्तेमाल किस कविने और किस शताब्दीमें किया, कह नहीं सकते। किंतु यह नवीं सदीसे पहलेका नहीं हो सकता)	४५४-६८
टोप्पर (नुकीली सी बड़ी टोपी; बं० टोपर)	४६२
सेर	४६४
रंक	,,
पातसाहि (पातसाह, बादशाह—फा०)	४६८
सालार (मार्गदर्शक, नेता;—जंग सेनापति—फा०)	,,
खान (खान—सरदारों—सामंतोंकी फारसी उपाधि)	,,
बइल्ल (बैल)	४७०
डूंगर (वृक्ष-वनस्पतिहीन टीला छोटा पर्वत; गुजरात और राजस्थानमें अत्यंत ही प्रचलित शब्द)	४७४-७६
कक्कर (कंकड़)	४७४
लडका	४७६

संकेत—पं०-पंजाबी; सिं०-सिंधी; बं०-बंगला; भो०-भोजपुरी; मै०-मैथिली; म०-मगही; मरा०-मराठी; हिं०-हिंदी; गु०-गुजराती; राज०-राजस्थानी; सं०-संस्कृत; अस०-असमिया; उड़ि०-उड़िया।

परिशिष्ट

४. समसामयिक राज-वंश

शताब्दी	१ सिंध-अरब गुर्जर सोलंकी	२ मालव	३ चौहान	४ राष्ट्रकूट वंश	५ हिंदी कवि	६ पालवंश	७ (गुर्जर) प्रतिहार गहड़वाल (कन्नौज)	८ चंदेल (कालिंजर)	९ कलचूरी (त्रिपुरी)
VIII	उमय्या खलीफा ७१२-४९ अब्बासी खलीफा ७५१-८७१		विग्रहराज (I) चंद्रराज (I) गोपेंद्रराज दुर्लभराज (I)	दन्तिदुर्ग ७५४ कृष्ण (I) ७५८-७२ गोविंद (II) ७८० ध्रुव (I) ७८०-९४	सरहपा ७६० (शंकराचार्य) शबरपा ७८० स्वयंभू ७९० भूसुकुपा ८००	गोपाल ७६५ धर्मपाल ७६९	(देवशक्ति वत्सराज I) ७८३		
IX		उपेंद्रराज (कृष्ण)	गोविंदराज (गुवक) (I)	गोविंद (III) ८०६-१३ अमोघवर्ष (I) ८२१-७८	लूइपा ८३०	देवपाल ८१५	नागभट्ट (II) ८१५ रामभद्र		
		वैरिसिंह (I)	चंद्रराज		कण्हपा ८५०		भोज (I) ८३६	नन्नुक (चंदवर्मा) वाक्पति	
	(मुल्तान) इस्माईली ८७१-१०००	सीयक (I)	गुवक (II)			विग्रहशूरपाल (I) ८५४ नारायणपाल ८५७		जयशक्ति (जेज्जक)	कोक्कल ८७५-९०५
		वाक्पतिराज (I)	चंदनराज	कृष्ण (II)				विजयशक्ति (विज्ज)	
X		वैरिसिंह (II)	वाक्पति (विंध्य)	इन्द्र ९१५-१७		राज्यपाल ९११	महेंद्रपाल ८९३ भोज (II) महि (विनायक)पाल (I) ९१४	रहिल हर्ष	मुग्ध तुंग-शंकर गण (I)
		हर्ष (सीयक II) ९४८	सिंहराज	अमोघवर्ष (II) ९१७-१८ गोविंद (IV) अमोघवर्ष (III) ९३५-३९	तेलोपा ९५०	गोपाल (II)	महेन्द्रपाल (II) ९४५ देवपाल ९४८	यशोवर्मा (I)	
	गुर्जर— मूलराज (I) ९६१			कृष्ण (III) ९३९-६८ खोट्टिग अमोघवर्ष (IV) ९६८-७२	पुष्पदंत ९५९-७२		विनायकपाल (II) ९५३ महिपाल (II) ९५४ वत्सराज (II) ९५५ विजयपाल ९६०	धंग ९५४-१००१	
	चामुंडराज ९९६	वाक्पति मुंज ९७४ सिंधुराज (नवसाहसांक) ९९५	विग्रहराज (II) ९७३ दुर्लभराज (II) ९९९	कर्क (II) ९७२-७४ **दक्षिण चालुक्य—** तैलप (II) ९७३ सत्याश्रम ९९७	योगीन्दु १००० धनपाल १०००	विग्रहपाल II ९९२ महिपाल (I) ९९२			
XI	वल्लभराज १०१० दुर्लभराज १०१० भीमदेव (I) १०२२	भोज १०१०	गोविंदराज (II)	विक्रमादित्य (V) १००९ जयसिंह (II) १०१६	अब्दुर्रहमान १०१०		राज्यपाल १०१८	गड विद्याधर १०१९	
			वाक्पति (II)	सोमेश्वर (I) १०४२	(रामानुजाचार्य . . .) बब्बर १०५०	नयपाल १०४० विग्रहपाल (III) १०५५	त्रिलोचन पाल १०२७ यशः १०३७ **गहड़वाल वंश—**	विजयपाल देववर्मा १०५१	गांगेय विक्रमादित्य १०३० कर्ण (लक्ष्मी-) १०४१
	कर्णदेव १०६४	जयसिंह १०५५ उदयादित्य १०६० लक्ष्म (जगद्) देव	वीर्याराय चामुंडराय दुर्लभराज (III) (वैरिसिंह)	सोमेश्वर (II) १०७५ विक्रमादित्य (VI) १०७५	कनकामर १०६०	महिपाल (II) १०८२ शूरपाल (II) १०८३	चंद्रदेव १०८०		यशः कर्ण १०७३
XII	जयसिंह सिद्धराज १०९४	नरवर्मा १०९७	विग्रह (III) (बीसल) पृथिवीराज (I) ११०५ अजयराज	सोमेश्वर (III) ११२५	जिनदत्त १०७५-११५४ हेमचंद्र १०८८-११७९	रामपाल १०८४ कुमारपाल ११२६	मदन चंद्र (०पाल) ११०० गोविंदचंद्र १११४	कीर्त्तिवर्मा १०९८ सल्लक्षण वर्मा जयवर्मा १११७ पृथिवी वर्मा	
	कुमारपाल ११४४	यशोवर्मा ११३४ जयवर्मा	अर्णोराज ११३९ जगदेव विग्रहराज (IV) (बीसल) ११५३	जगदेकमल्ल ११३८ तैलप (III) ११४९ सोमेश्वर (III) ११६२	(निर्बाक ११५०) हरिभद्र ११५९	गोपाल ११३० मदनपाल ११३० गोविंदपाल ११५०	विजयचंद्र ११५५	मदन वर्मा ११२९ यशोवर्मा	जयकर्ण ११५१ नरसिंह ११५५
	अजयपाल ११७३ (बाल)मूलराज (II) ११७६ (भोला)भीमदेव (II) ११७८	अजयवर्मा विंध्यवर्मा ११९२	अपर गांगेय पृथिवीभट ११६७ पृथिवीराज (II) सोमेश्वर (II) ११७० पृथिवीराज (III) हरिराज ११९४		विद्याधर (११८०) शालिभद्र ११८४ सोमप्रभ ११९५		जयचंद्र ११७० हरिश्चंद्र ११९३	परमर्दि ११६७-१२०२	जयसिंह ११७५ विजयसिंह ११८०
XIII	(जयसिंह (I) १२२३)	सुभटवर्मा (गोहड)	**दिल्ली सुल्तान** शहाबुद्दीन गोरी ११९२ कुतुबुद्दीन १२०६ आराम १२१०		(मध्वाचार्य ११९९-१२७८)			त्रैलोक्य वर्मा १२०५	(महाकुमार) अजयसिंह
	त्रिभुवनपाल १२४१ (वीसलदेव बघेल १२४४) अर्जुनदेव १२६२		अल्तमश १२११ रुकनुद्दीन १२३६ रजिया १२३६ बहराम १२४० मसऊद १२४२		लक्खण १२५७			वीर वर्मा १२६१	
XIV	सारंगदेव १२७५ कर्णदेव (II) १२९७		नासिर महमूद १२४६ गयासुद्दीन बल्बन १२६६ कैकुबाद १२८७ जलालुद्दीन खिल्जी १२९० अलाउद्दीन १२९६		जज्जल १२८० राजशेखर (१३१४) खुशरो १२५५-१३२५			भोज वर्मा १२८८ हम्मीर वर्मा १३०८	
			शहाबुद्दीन उमर १३१६ कुतुब० मुबारक १३१६ नासिर खुशरो १३२० गयासुद्दीन तुगलक १३२० मुहम्मद तुगलक १३२५ फीरोज तुगलक १३५१		विद्यापति (१३५०-५३)				

[1] मराठी कवि मुकुंद राज, नामदेव (११९२-७२), ज्ञानदेव (११९७-१२७८) इसी समय में हुये, किन्तु जो गति चंदबरदाई के रासो की भाषा आदि की हुई, वही इन मराठी कवियों पर भी बीती।